Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अ 81/30

अष्टछापीय भक्तिसंगीत उद्भव और विकास

[हवेली संगीत]

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

[भाग 1] [खण्ड 1-2]

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

लय
णसी-५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदा
वाराणसी-5

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रेमलता शर्मा (निजी प्रति)

Rare

॥ श्री हरिः ॥

अष्टछापीय भक्तिसंगीत

(हवेली संगीत)

उद्भव और विकास

अ 1/30
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

लेखक
कीर्तनाचार्य, उस्ताद
श्री चम्पकलाल छबीलदास नायक
संगीत विशारद

कलौ केशव-कीर्तनम्

अष्टछाप संगीत कलाकेन्द्र,
अहमदाबाद.

मुद्रण व्यवस्थापक
डॉ. गजानन शर्मा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकाशक :
चम्पकलाल छ. नायक
अष्टछाप संगीत कला केन्द्र
६०, नायकनगर,
अहमदाबाद-३८० ०१४
(गुजरात)

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

मुद्रण व्यवस्थापक :
श्री वल्लभ प्रकाशन इन्दौर के लिए
मंत्री, डॉ. गजानन शर्मा

प्रथम मुद्रण : प्रतियाँ १०००

वि. संवत २०३९
ई. सन् १९८३

मूल्य : रु. ५०/-

मुद्रक :
नईदुनिया प्रिंटरी
बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग,
इन्दौर-४५२ ००९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, फरौंदी
वाराणसी-5

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अष्टछाप के संस्थापक, गीत-संगीत-सागर
परमकृपालु श्रीविट्ठलनाथ गुसांईजी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री गुसांईजी-परमदयालवे नमः ।

आम्नाय–ग्रन्थालय
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत् ।
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम् ।।

समर्पण

चरणचञ्चरीक

चम्पकलाल छ. नायक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

आमुख

'अष्टछापीय भक्ति संगीत, उद्‌भव और विकास' इस शीर्षक से संगीतप्रिय लोगों के समक्ष प्रकाशित स्वरूप में यहाँ रखकर हवेली संगीत के परम्परागत कीर्तनकार और उत्तर हिन्दुस्तान की संगीत पद्धति के भी गण्यकोटि के उस्ताद आचार्य श्री चम्पकलाल नायक, 'संगीत विशारद' ने श्री वल्लभ संप्रदाय के कीर्तनकारों एवं कीर्तन प्रिय महानुभावों पर तो बड़ी कृपा की ही है, उपरान्त संगीत के चाहक अन्यान्य सहृदय एतद्देशीय एवं इतरदेशीय सभी गुणज्ञों पर भी कृपा की है। श्री नायक ने सिर्फ साम्प्रदायिक कीर्तन प्रणाली का ही दर्शन करवाया इतना नहीं है, भारतवर्ष में संगीत विद्या का किस समय में कौन से माध्यम द्वारा उद्‌भव और विकास हुआ था वह बताने का भी प्रशस्य प्रयत्न किया हैं।

हम अब अच्छी तरह से जानते हैं कि सात स्वरों की बाईस श्रुतियों का सम्पूर्ण ज्ञान सामवेद के काल तक प्राचीन हैं। न केवल गान, वाद्य में भी इन बाईस श्रुतियों का पार्थक्य स्पष्ट होता था, जोकि वीणा जैसे सम्पूर्ण वाद्य से होता था। यह ध्यान में लेने जैसी बात है कि न प्राचीन समय में, न तो समय के व्याप में आगे बढ़ते-बढ़ते भी पृथ्वी पर के किसी भी देश में बाईस श्रुतियों का पार्थक्य न तो गान में, न तो स्वर वाद्य में कभी भी हुआ था और न आज भी है।

भारतवर्ष की पवित्र भूमि में जब लम्बे सत्रों के यज्ञयागादिक होते थे तब रात्रि के निवृत्ति के समय में थकावट दूर करने के लिए नाट्य, नृत्त-नृत्य और गान होते थे। आनन्द और आश्चर्य की बात तो यह है कि गान के लिए ऋग्वेद के सूक्तों में से जो सूक्त पसन्द किये जाते थे वे किसी लौकिकजन की प्रशस्ति के सर्वथा नहीं नहीं थे। प्रकृति के विभिन्न भावों को मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने जिस स्वरूप में लक्षित किया था, उनमें इन्द्र अग्नि, वायु, यम, नासत्य आदि देवों की संज्ञा देकर ऐसे देवों की प्रशस्ति की जाती थी। सामवेद के प्रायः सभी सूक्त ऋग्वेद में से ही लिए गए हैं और जाति रागों में ताल और लय से गाये जाते थे। आज हमारे वहाँ गायकों के घराने दीख पड़ते हैं। सामगान के समय में ऐसे घराने थे। सामान्य स्वरूप में तो सूक्त एक ही गान पद्धति से गाये जाते थे। किन्तु कितनेक सूक्त ऐसे भी जानने में आये हैं, जिनका गान दो से लेकर साठ तरह से होता था। ये सभी तरह हकीकत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में अलग-अलग गायक ऋषियों के घराने थे। सामवेद को 'सहस्रवर्त्मा' कहा है वह इसी अर्थ में। 'हजार शाखा' नहीं, 'हजार घराने' थे, जिनमें से एक मन्त्र साठ तरहों तक पहुँचा प्राप्त होता है। देखिये—कौथुमी शाखा की साम-मन्त्र-संहिता में १८७५ ऋचा हैं, किन्तु गान २७२२ हैं; जैमिनीय शाखा की मन्त्र-संहिता में १६९३ ऋचा हैं, किन्तु गान ३६३२ हैं। यों, ये दो शाखाएँ मिलकर ६४०३ गान प्रकार देती हैं। नष्ट हुई शाखाओं के गानों के विषय में आज कुछ बचा प्राप्त होता नहीं है।

सामगान किस प्रकार से होता था उसका खयाल हमें 'नारदीय शिक्षा' से मिलता है। बाद में तो शास्त्रीय गान के विषय में हमारे समक्ष ईसा की पहली दूसरी शती के भरत नाट्य शास्त्र से आता है। वहाँ किसी भी राग की संज्ञा दी गई नहीं है, गाये जाते राग 'जाति-राग' से उल्लिखित हैं। एक और विशिष्टता वहाँ मिलती है वह 'ध्रुवा' गानों की। वहाँ अनेक ध्रुवाएँ मिलती हैं, जोकि प्रत्येक गेय चीज की आरम्भ की मुखबन्ध प्रकार की रचना है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और 'मालविकाग्निमित्र' नाटकों में गेय गान मिलते हैं, तो 'विक्रमोर्वशीय' के चतुर्थ अंक में प्रक्षिप्त मानी गई संख्याबन्ध ध्रुवाएँ भी अपभ्रंश भाषा में दी गई मिलती हैं, जोकि सर्वथा गेय प्रकार की हैं।

श्री चम्पकलालजी ने भारतीय संगीत का इतिहास प्रस्तुत करते समय इस ग्रन्थ के आरम्भ के ४४ पृष्ठों में अच्छा प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

संगीत के मूल में सामगान से लेकर भक्ति ही रही है और जयदेव, विद्यापति आदि भक्त कवियों ने गेय पदों की रचना देकर भक्तिसंगीत को प्राधान्य दिया है। अष्टछापीय भक्त कवियों के पास यही परम्परा है। इन सबों ने संगीत शास्त्र के उत्तरकालीन मध्यकाल के ग्रन्थों में कहे गये रागों में अपनी रचनाएँ गाई हैं। अष्टछापीय कवियों के पूर्व गुजरात में भी जैन भक्त कवियों एवं नरसिंह मेहता जैसे भक्त कवियों ने नाम देकर रागों का गान किया है, जो सभी शास्त्रीय राग हैं।

श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुजी ने श्री गोवर्धन गिरि पर मथुरा प्रदेश में कृष्ण भक्ति के उपलक्ष्य में श्री गोवर्धनधरण श्री नाथजी का सेवाक्रम शुरू किया तब से उनके चार शिष्य कुम्भनदास सूरदास, परमानन्ददास और गुजराती कृष्णदासजी ने समय-समय का खयाल करके भगवान कृष्ण की विविध लीलाओं का गान अनेक रागों में और अनेक तानों में किया। श्रीवल्लभाचार्यजी के द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथ गुसांईजी ने उस प्रणाली को प्रबल बल दिया और उनके भी चार शिष्यों गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी और नन्ददास ने कीर्तन गान अविरत किया। इन आठ महानुभाव भक्त कवियों को ही 'अष्टछाप' संज्ञा दी गई है और समग्र पुष्टिमार्गीय कीर्तन सामग्री के पुरस्कारक ये आठ महानुभाव कहे हैं। श्री वल्लभाचार्यजी और श्री विट्ठलनाथजी के अन्य भी शिष्य थे, जिन्होंने भी नये-नये कीर्तनों की रचना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करके सैकड़ों की संख्या में भगवान की लीलाओं को उद्दिष्ट करके गान किया है, किन्तु पुरस्कारक तो वे अष्टछाप के आठ भक्त कवि होने के कारण इस संगीत को संज्ञा 'अष्टछापीय भक्ति संगीत' मिली है। उसको 'पुष्टिमार्गीय भक्ति संगीत' भी कहा जाता है और पुष्टिमार्गीय हवेलियों में प्रभु के समक्ष गाये जाने के कारण 'आकाशवाणी' पर उसकी संज्ञा 'हवेली का संगीत' मिलती है।

श्री चम्पकलालजी ने इस प्रौढ़ संगीत के विषय में यावत्प्राप्य वस्तुओं का परिचय सुलभ किया है। यह मात्र इतिहास नहीं है, शास्त्र भी है, यह दूसरे खण्ड से स्पष्ट होगा। और अलग प्रकाशित होने वाले तीसरे खण्ड में गेय पदों का रागवार स्वरांकन भी दिया गया है।

कहने में गौरव होता है कि आचार्य चम्पकलालजी अष्टछापीय भक्ति संगीत के तो आरूढ़ कीर्तनकार हैं ही, वे उत्तर हिन्दुस्तान की संगीत पद्धति के भी उच्च प्रकार के उस्ताद हैं। उन्होंने इस पिछली पद्धति के शिक्षण का आरम्भ तो बड़ौदा के 'रंगील घरना' में किया। वाद में संस्कृत भाषा और संगीत विद्या के मूर्धन्य विद्वान स्व. पं. भातखण्डेजी की अभिनव संस्कृत गान पद्धति की परम्परा का लाभ भी उनको मिला। पं. भातखण्डेजी के प्रधान शिष्य स्व. पं. वाड़ीलाल शिवराम नायक अहमदावाद में केलिको मिल्स वाले स्व. शेठ श्री अम्बालाल साराभाई की पुत्री श्रीमती गीता बहन को पढ़ाने के लिए आ बसे तब श्री चम्पकलालजी को उनके पास प्रत्यक्ष शिक्षण लेने का लाभ मिला। गुजरात में पं. भातखण्डेजी की विद्वत्परम्परा के विद्वानों में श्री चम्पकलालजी का स्थान आज मूर्धन्य है।

उनकी स्वरों की पकड़ इतनी प्रबल है कि गाने वाले गायक की तरज को वे लघुलिपि (Short Hand) की गति से अंकित कर लेते हैं। ऐसे विद्वान गायक मिलना आज तो दुःशक्य बन गया है।

संगीत प्रेमियों का यह सद्भाग्य है कि ऐसे आरूढ़ संगीताचार्य की कलम से से हमें यह ग्रन्थ प्राप्त हो रहा है।

यहाँ मैं मेरी विज्ञप्ति से इस ग्रन्थ के मुद्रण को प्रोत्साहन देने वाले महाभानुभावों को याद करना समुचित समझता हूँ।

१. गो. श्री नटवरगोपाल महाराज (द्वारका) रु. ५०००/-

२. श्री वल्लभ विश्वधर्म संस्था (अहमदाबाद) रु. ५०००/-

३. श्री अमितभाई अम्बालाल शाह (,,) रु. २५००/-

४. गो. श्री व्रजरायजी महाराज (,,) रु. २०००/-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५. श्री जयवदन अ. तख्तावाला (,,) रु. १०००/-

६. श्री प्रभुदास बा. पटवारी (,,) रु. १०००/-

इन सबों का कला केन्द्र, श्री चम्पकलाल छ. नायक और मेरी ओर से आभार व्यक्त करता हूँ।

मधुवन, एलिस ब्रिज,
अहमदाबाद-३८०००६

केशवराम का. शास्त्री

दिनांक २१-५-८३

आम्नाय-ग्रन्थालय,
जयतनिधि. करौंदी
वाराणसी-5

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अभिलाय–ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

अष्टछापीय भक्ति संगीत (हवेली संगीत) उद्भव और विकास

अनुक्रमणिका : प्रथम खंड

भारतीय संगीत प्राचीन युग : वेदकाल	**1–18**
संगीत की महत्ता	1
सप्तस्वरों का उद्भव	1–2
वाद्य	2–6
ताल	6
नृत्य	7
भक्ति तत्त्व	8
ब्राह्मण-आरण्यकों में संगीत	8–11
उपनिषदों में संगीत और भक्ति	11–12
सूत्रों में संगीत और भक्ति	15–18
भारतीय संगीत प्राचीन युग : महाकाव्य, पुराण, भरतनाट्यशास्त्र	**19–51**
महाभारत-रामायणकालीन संगीत	19–26
नारदीय शिक्षा	27–29
पौराणिक युग	30–34
बौद्ध-जैन-वाङ्मय में संगीत	34–38
तामिल ग्रंथ सिलाप्पविकरम्	38
भरतनाट्यशास्त्र	39–44
द्रविड़ देश का संगीत	45–51

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारतीय संगीत मध्ययुग : भक्ति क्षेत्र	**52–65**
जयदेव	52–56
विद्यापति	57–60
चंडीदास और नामदेव	60
नरसिंह	60–62
रामानंद	62
कबीर	63
गोपाल नायक	63
अमीर खुसरो	63–65
भारतीय संगीत : भक्ति के नवोत्थान के संदर्भ में	**66–105**
पुष्टिमार्गीय संगीत का प्रारंभ : श्रीमद्वल्लभाचार्य	72–77
स्वामी हरिदास	78–83
स्वामी हरिदास की शिष्य परम्परा	84–86
गोस्वामी हितहरिवंश	86–90
हितहरिवंश की शिष्य परम्परा	90–97
राधावल्लभीय समाजगान एवं सेवा	98–100
रास-परम्परा का आरम्भ	100–105
चैतन्य महाप्रभु	परिशिष्ट
पुष्टिमार्गीय संगीत : श्री विट्ठलेश युग	**106–196**
कुम्भनदासजी	131–138
सूरदासजी	139–145
कृष्णदासजी	146–154
परमानन्ददासजी	155–160
गोविन्द स्वामी	161–167
छीतस्वामी	168–171

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चतुर्भुजदासजी	172–177
नन्ददासजी	178–188
धोंधी	189–190
तानसेन	191–193
राजा आसकरण	194
गंगाबाई	195
अष्टछाप पदगान में वाद्य	196
पुष्टिमार्गीय संगीत : श्री गोकुलेश युग	**197–202**
पुष्टिमार्गीय संगीत : श्री हरिराय युग	**203–209**
द्रुपद	207–209
पुष्टिमार्गीय संगीत : श्री द्वारकेश युग	**210–223**
सदारंग	211
अदारंग	212
कीर्तन का नित्यक्रम	213–215
वर्षोत्सव प्रणाली	215–219
छाक़लीला	219–221
हिंडोरा के भेद	221
ऋतु अनुसार राग	221–223
पुष्टिमार्गीय संगीत और भारतीय संगीत-घराने	
भारतीय संगीत के घरानों में हवेली संगीत का प्रचार (द्वितीय खंड में)	33–84

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुक्रमणिका : द्वितीय खंड

रागाध्याय	**1–32**
राग और राग संख्या	1–23
राग, रस और नायक-नायिका-भेद	24–32
भारतीय संगीत के घरानों में हवेली संगीत का प्रचार	**33–84**
तालाध्याय	**85–106**
ताल विवरण	85–94
उत्तरभारतीय ताल	94–99
हिन्दुस्तानी पद्धति के प्रचलित तालों का विवरण	100–106
परिशिष्ट	
1. मृदंगाचार्यों का परिचय	107–110
2 हवेली संगीत	111–116
3. पुष्टि कीर्तन संगीत के अभ्यासियों को मार्गदर्शन	117–119
4. कीर्तन मर्मज्ञ गोस्वामी महाराजों का परिचय	120–129
5. भवाई और उसका स्वरूप	130–132
6. संगीतशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का भावार्थ	133–134
7. हवेली संगीत के वाद्यों का परिचय	135–137
7. षड्ऋतु के कीर्तन संगीत से भक्तों का लीला-संबंध	138–140

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

प्रास्ताविक

संगीतरत्नाकर में नादस्थान-स्वर प्रकरण के प्रारम्भ में ही कहा है:–

"चैतन्यं सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना ।
नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे ॥१॥

जो सर्व प्राणियों का चैतन्य है, जगद्रूप से विवृत हुआ है, जो आनन्दमय और एक है उस प्रसिद्ध नाद ब्रह्म की हम उपासना करते हैं ।

शास्त्रों में नाद को ब्रह्म कहा है । "नादो ब्रह्म न संशयः" । नाद के दो प्रकार हैं––

"आहतोऽनाहतोश्चेति द्विधा नादो निगद्यते"

अनाहत नाद की साधना ज्ञानगोचर है, जिसकी साधना और उपासना से ऋषिमुनि-योगीजनों को ब्रह्म की प्राप्ति होती थी ।

"शब्दब्रह्म व्यतिरेकेण परब्रह्मःप्रकाशनं न भवति । शब्दब्रह्मणैव परब्रह्म प्रकाश्यते स्वप्रकाशमपि ।"

शब्दब्रह्म के बिना परब्रह्म का प्रकाशन नहीं होता । परब्रह्म स्वप्रकाशित होते हुए भी शब्दब्रह्म बिना प्रकाशित नहीं होता ।

"नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः ॥

नादब्रह्म की उपासना से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की उपासना आप ही आप हो जाती है, क्योंकि ये नाद से भिन्न नहीं हैं ।

संगीत पारिजात में कहा है : "वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाऽप्रयासेन मोक्षमार्गं स गच्छति ॥"

वीणा वादन के तत्त्व को समझने वाला, श्रुति-स्वरों के जाति-भेद के ज्ञान में निपुण तथा ताल के मात्रा काल को जानने वाला पुरुष बिना ही योग-यागादि प्रयास के मोक्ष मार्ग में जाता है । इसके पूर्व की पंक्ति में कहा है कि "गायन सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्म्माणि च यानि लोके । गीतानि नामानि तदर्थिकानि गायत्यलज्जो विचरत्यसङ्गः ॥

चक्रपाणि भगवान ने इस लोक में जो अवतार धारण किये हैं और उन अवतारों में किये हुए कर्म अर्थात् चरित्रों के अनुकूल नामों को सार्थक करने वाले

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गीत अर्थात् वे गायन जिनमें किसी चरित्रानुकूल नामों का तदर्थात्मक गुणानुवाद किया गया हो ऐसे गीतों का जो मनुष्य गायन करता है, वह निःसंकोच भाव से असंग होकर चारों ओर घूमता है। भावार्थ स्पष्ट है कि भगवद् गुणानुवाद का गायन करने वाले को किसी का भय नहीं है। भगवान की कृपा से वह भगवद् गुणगान का प्रेमी निर्भय होकर प्रेमोन्मत्तावस्था अर्थात् पागल जैसा बन जाता है और धीरे-धीरे राग-द्वेषादि लौकिक वन्धन छूट जाने पर निःसंकोच वह सच्चा सुख भगवत्प्राप्ति का प्राप्त करता है।

संगीत शास्त्र ग्रंथों के अतिरिक्त हमारे वेद श्रुति पुराणादि धर्मशास्त्रों में भी इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण प्राप्त होते हैं।

प्राचीनकाल से संगीत का वास्तविक ध्येय आत्मकल्याण मोक्ष एवं भगवदुपासना ही है और उसीको सिद्ध करने के लिये संगीत से बढ़कर कोई सरल साधन नहीं है।

"पूजाकोटिगुणं स्तोत्रं स्तोत्रान्कोटिगुणो जपः :
जपात्कोटिगुणं गानं गानात्परतरं नहि ।।"

पूजा से स्तोत्र करोड़ गुना श्रेष्ठ है, स्तोत्र से जप करोड़ गुना श्रेष्ठ है और जप से करोड़ गुना श्रेष्ठ गान है, अतः गान से बढ़कर उपासना का कोई अन्य साधन नहीं है।

इस उद्देश्य की सिद्धि हमारे गौरवान्वित ऋषि मुनियों की जीवनी से स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि हमारा संगीत अति-प्राचीन, पवित्र और ब्रह्मस्वरूप होने के कारण अलौकिक है। यहां पर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे तो यही तत्त्व निकलता है कि अलौकिक संपत्ति का अलौकिक में ही विनियोग होना स्वाभाविक एवं वास्तविक है। यदि अलौकिक संपत्ति रूप हमारे संगीत को लौकिक में लगा लिया जायगा तो उसका अलौकिकत्व न रहकर केवल लौकिक अर्थात् दुन्यवी भौतिक स्वरूप ही रहेगा। हमारे शास्त्र-सिद्धान्तानुसार जगत की समस्त वस्तुओं में दैवी और आसुरी एवं आध्यात्मिक और भौतिक ऐसे दो प्रकार के स्वरूप-भेदों का विचार किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। अतः संगीत की परम्परा में भी यह दोनों स्वरूप भेद हमें प्राचीन काल से दिखाई देते हैं। स्वयं भगवान शंकर और ब्रह्मा से लेकर भरत, मतङ्ग, नारद, तुम्बरादि ऋषि-मुनि आदि ही नहीं, किन्तु प्राचीन काल में भारत के अधिकतर प्राचीन आर्यों ने अपने जीवन के सभी कार्यों में संगीत कला को अध्यात्म की सहयोगिनी बना रखा था। फलतः वे अपना मन अपने आराध्य देव में स्थिर व तल्लीन बनाकर ईश्वर प्राप्ति की आध्यात्मिक अलौकिक उपासना करते थे। दूसरी तरफ पुराणादि महाकाव्यों से यह भी ज्ञात होता है कि इन्द्रादि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देवता और राजा-महाराजाओं के दरबारों में गायन, वादन, नृत्य, नाट्यादि का जलसा दिन-रात जमा रहता था। इतना ही नहीं, किन्तु इन्द्रासन की रूपलावण्यमयी अप्सराओं को तपस्वियों के तपों को भंग करने के लिये भेजा जाता था। जैसे कि, विश्वामित्र जैसे महान् तपस्वी का तप भ्रष्ट करने में मेनका ने सफलता पायी और उन्हीके संयोग से शकुन्तला का जन्म हुआ था। संगीताचार्य अर्जुन को भी संगीत के दुन्यवी-भौतिक परिणाम से नपुंसक होने का शाप मिला था। इस प्रकार प्राचीन काल के स्मृति पुराणादि के प्राप्त उल्लेखों से हम संगीत को आध्यात्मिक और लौकिक ऐसी दो परम्पराओं में बाँट सकते हैं। एक है जीवन को पवित्र बनाकर आत्मोन्नति द्वारा मोक्ष मार्ग के प्रति ले जाने वाला आध्यत्मिक संगीत और दूसरा जीवन को भ्रष्ट बनाकर आत्मा को अध:पतन के प्रति ले जाने वाला भौतिक अर्थात् दुन्यवी संगीत। आध्यात्मिक संगीत में अपरिमेय जीवन का आनन्द है, प्रेम-भक्ति का वहता हुआ अविरल स्रोत है, आत्मोन्नति है, सदाचार की वृद्धि है। राष्ट्रीयता व जातीयता की स्फूर्ति है और जीवन का पवित्र मनोरंजन है। दूसरा भौतिक संगीत यानि दुन्यवी संगीत में वासनापोषक प्रवृत्ति है, अनैतिक मनोरंजन है, अश्लील श्रृंगार एवं असद् भावोत्पत्ति है, राष्ट्र और समाज घातकता है और जगत के माया प्रपंचादि में फँसाने वाला पंक है। इस प्रकार प्राचीनकाल के पश्चात् मध्ययुग और आधुनिक युग में भी उपरोक्त दोनों परम्पराओं का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इस युग में आध्यात्मिक संगीत का स्थान देवालय में और लौकिक-भौतिक संगीत का स्थान राज्यालयों में दृष्टिगोचर होता है। यहां हमारा आशय भक्ति-संगीत से सम्बन्धित है अत: दुन्यवी संगीत की चर्चा को छोड़कर भगवत्प्राप्ति के अलौकिक संगीत के सम्बन्ध में ही कहना चाहते हैं। विक्रम की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में संत, महंत, भक्तादि महानुभावों का और परम वंदनीय आचार्यचरण श्री वल्लभाचार्य महाप्रभुजी और बंगाल में श्री चैतन्य महाप्रभुजी तथा स्वामी हरिदासजी और हित-हरिवंशजी का प्राकट्य हुआ, जिन्होंने नादब्रह्मरूप संगीत द्वारा जन-समाज के हृदय में भगवान की शक्ति, कृपा और भक्ति के साथ आध्यात्मिक संगीत का अलौकिक स्रोत बढ़ाया।

यह समय सांस्कृतिक संघर्ष का युग होते हुए भी चार सम्प्रदायों के उपर्युक्त चार महापुरुषों ने श्रीकृष्ण-भक्ति का संगीत द्वारा जो अलौकिक स्रोत बहाया उसमें अनुग्रह मार्ग की पुष्टि भक्ति-प्रणाली में अष्टछापीय भक्ति-संगीत का स्थान है। भाषा-साहित्य और उत्तर भारतीय संगीत की दृष्टि से देखा जाय तो विपुल प्रमाण में सम्प्रदाय की सेवा में ओतप्रोत लगाने का सर्वश्रेष्ठ मान श्री वल्लभाचार्य महाप्रभुजी और आपके द्वितीय पुत्र, अष्टछाप के स्थापक श्रीमद् विट्ठलेशप्रभु की ओर नि:संकोच दिया जाता है।

सम्प्रदाय की संगीत-कीर्तन प्रणाली के मूल गायक अष्टछापादि भक्तों ने भगवल्लीला के प्रत्यक्ष दर्शन का स्वानुभावानुसार पदों में वर्णन किया है। यह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परम्परा प्राप्त मान्यता है। इस विषय में देखा जाय तो सूर की परीक्षा के लिये श्री गोविन्दरायजी, श्री बालकृष्णजी और श्री गोकुलनाथजी ने प्रभु को वस्त्र धरावे बिना सिंगार किया था और सूरदासजी को पद गाने की आज्ञा की तब सूर ने गान किया कि–

"देखे री हरि नंगमनंगा; जलसुतभूखन अंग बिराजत बसनहीन छबि उठत तरंगा।" इस तुक में "नंगमनंगा" और "बसनहीन छबि" इन दो शब्दों की ओर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि सूर को चर्मचक्षु नहीं थे अतः दिव्यचक्षु द्वारा ही यह वर्णन संभवित होता है। इस प्रकार जहाँ जिस प्रकार की लीला हो रही है वहाँ उस लीला के साक्षात् दर्शन करके उसी समय उसी भाव की लीला का गान करते हुए नन्ददासजी का एक पद निम्न प्रकार है–

"देखो देखोरी नागर नट × × × नन्ददास गावे तहाँ निपट निकट।।"

मुरली नाद द्वारा भगवान बालकृष्ण के ब्रह्मनाद को संगीत के स्वरों द्वारा अद्‌भुत रस की लीला का स्वानुभाव किया हुआ और पद भी देखेंगे "कान्ह कुंवर के करपल्लव पर, मानों गोवर्धन नृत्य करे।। ज्यों-ज्यों तान उठत मुरली की, त्यों त्यों लालन अधर धरें।।२।। मेघ मृदंगी मृदंग बजावत, दामिनी दमकि मानों दीप जरे।। ग्वाल तालदैंनी के गावत, गाइनके सुत सुर जू भरें।।२।। देत असीस सकल गोपीजन, वरखाको जल अमित झरे।। अति अदभुत अवसर गिरिधरकों' 'नंददास' के दुखजू हरे।।३।"

महानुभाव गोपालदासजी ने भी "माधव मासे भर वैसाखे" इस पद में कहा है कि "जिन जैसा देख्या तिनि तैसा पेख्या"–इस पंक्ति में उपर्युक्त मान्यता सिद्ध होती है।

पुष्टिभक्ति मार्ग में भगवत्सेवा का सभी कार्य ब्रह्मरूप संगीत द्वारा ही होता रहता है। अतः मार्ग की सेवा प्रणाली में राग अर्थात् संगीत को प्रथम स्थान दिया गया है। बाद में भोग (सामग्री) और शृंगार (शोभन) का स्थान माना जाता है। सेवाप्रणाली में प्रभु को जगाते ही शंखनाद, वेणुनाद के बाद वीणा (बीन) नाद के स्वरों का गुंजन होता है, पश्चात् भावानुसार पदगान का आरंभ होता है। इस संबंध में सम्प्रदाय के विद्वान नि. ली. गो. श्री दीक्षितजी महाराज का निम्न कथन आदरणीय है—

"सम्प्रदाय में श्रीमहाभगवदीय दिव्यवाणी संगीत गीत-साहित्य का स्थान सर्वाधिक है। हमारे प्रभु मन्त्रोपासना से किंवा मन्त्रोपयोग सेवा में उपयुक्त कर प्रसन्न नहीं होते हैं। किन्तु भगवद् गुणानुवादात्मक महद् भवदीय कृत कीर्तनों से ही जागते हैं, पौढ़ते हैं, आरोगते हैं। यह परम तथ्य है। स्वल्प सेवा भी आप कीर्तनों के विना अंगीकार नहीं करते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम्प्रदाय के गोलोकवासी अग्रगण्य विद्वान् श्री मग्नलाल ग. शास्त्री का भी निम्न अभिप्राय अत्र उपयोगी होगा—

"भाष्यप्रकाश के मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में श्री पुरुषोत्तमजी के 'संगीत-श्रुतिमूर्धभिः' इस ग्रथित पद से ज्ञात होता है कि भगवत्कीर्तन का भी परम विनियोग रसाविष्कार में है। यह रसाविष्कार तभी शक्य होता है जब भगवत्कीर्तन भी रसिकता से संगीत-पद्धति से किया जाय यह मान्यता बुद्धिग्राह्य है।"

"श्री महाप्रभुजी के और श्री गुसांईजी के समय के कीर्तनकारों को यादृश प्रभुदर्शन भगवत्कृपा से होते थे तादृश कीर्तन सत्वर ग्रथित करके उसका उद्गान प्रभुसंमुख करते थे। हम लोगों का तो मात्र उनकी प्रसादीरूप कीर्तन-गान करने का अधिकार है। अर्वाचीन कीर्तनकारों-रचित कीर्तन प्रभु समक्ष गाये नहीं जाते ऐसी स्वमार्ग मर्यादा है। यह मर्यादा सुयुक्त है।"

इस प्रकार सेवाप्रणाली की मर्यादाओं से सम्प्रदाय की कलाओं की सुरक्षा होती रही है। संगीतकला और कीर्तन-साहित्य की परम्परा भी इसी कारण से आज तक संमाननीय हो रही हैं।

यह निःशंक है कि भारतीय संगीत में द्रुपद-धमार की प्राचीन परम्परा को समृद्ध और सुरक्षित रखने में अष्टछापीय संगीत-परम्परा का महायोगदान है। पुराने कीर्तनिया, द्रुपद शैली के विविध लीलादि प्रकार के २००० से अधिक पदों का भाव और उत्साह के साथ गान किया करते थे। जब नाथद्वार में छप्पन-भोग के उत्सव पर ३२ कीर्तनिया उपस्थित होते थे तथा कहीं-कहीं प्रसंगोपात भी विभिन्न गानों की कीर्तनिया-मंडली जब एकत्र होती थी तब एक ही साथ सभी कीर्तनकार झांझ बाजकर गान करते थे तथापि स्वर-राग-ताल-लय और कीर्तन के शब्दों में संपूर्ण एकता रहती थी। इस परम्परानुसार विक्रम की गत शताब्दी में सैंकड़ों कीर्तनियाओं की संख्या मौजूद थी, जिनमें से मेरे परिचित कीर्तनकारों की नामावली परिशिष्ट में दी गई है।

परन्तु आज की परिस्थिति की ओर देखते हुए दुःख के साथ यहाँ कुछ कहना आवश्यक समझता हूँ। आजकल हम लोग अष्टछापीय हवेली-संगीत की गौरव से बड़ाई कर रहे हैं, परन्तु जैसे दीवाल पर बिल्ली का चित्र बनाया हो और इसके ऊपर 'जंगली शेर' लिखकर जाहिरात होती है ऐसी हमारी संगीत की दशा होने में अब क्या बाकी है? आजकल अपनी तैयारी के २५-५० पदों को छोड़कर विविध बंदिशों के अन्य पदों का गान करने वाले कुछ गिनती के कीर्तनकारों को छोड़कर आज के कीर्तनिया कहलाने वाले वैष्णवगण की संख्या भले अधिक बढ़ गई हो, किन्तु समूहगान और व्यक्तिगत गान में न एकता, न राग, न ताल की परम्परा। यही नहीं, स्वर और उच्चार भी आधुनिक ढंग से दिखाई देते हैं। मेरा अनुभव है कि इस प्रकार के कीर्तनिया को यदि व्यक्तिगत सुनना चाहेंगे तो प्रत्येक की स्वर-लिपि अलग रहेगी। तदुपरान्त स्थायी, अंतरा, संचारी इत्यादि पद-पंक्तियाँ एक दूसरे से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिली हुई दिखाई देंगी । इसके अतिरिक्त ऐसे भी कीर्तनिया दृष्टिगत होते हैं जो परम्परा के राग-ताल को परिवर्तित करके गान करते हैं । अधिकतर सौराष्ट्र में ऐसी एक प्रथा का आरंभ ठाठी लीला के माध्यम द्वारा हो रहा है । यह ठाठी-लीला तक सीमित हो वहाँ तक मुझे दुःख न होगा, किन्तु सेवाक्रम की प्रणाली के पदों में श्री संमुख में भी ऐसा परिवर्तन दिखाई देता हो तो यह मर्यादा भंग हमारी परम्परा की विशिष्टता को लांछनरूप समझता हूँ। इन्द्रभानभंग का सारंग राग का "अब न छांड़ो चरनकमल महिमां मैं जानी" यह पद मैंने सौराष्ट्र के प्रसिद्ध कीर्तनकार से राग भीमपलास और दादरा ताल में अन्नकूट के दर्शन संमुख गाते हुए जब सुना तब आश्चर्य हुआ था। यही नहीं, निधि स्वरूप की एक हवेली में संध्यारती में गौरी का पद कान्हरा राग में गाते हुए भी सुना है । इस प्रकार सम्प्रदाय के संगीत प्रचार का आगे कदम बढ़ता रहेगा तो परिणाम क्या होगा वह वाचकगण स्वयं समझ लें।

कीर्तन समाज की एक ओर यह परिस्थिति है तो दूसरी ओर अच्छे कीर्तन-कार कहलाने वाले आज अधिकतर ऐसे भी सुने हैं कि एक ही पद को दो-तीन बार सुनोगे तो प्रत्येक बार पद-पंक्ति के स्वर-स्थान विभिन्न दिखाई देंगे । ताल की मात्रा और शब्दों के लघु गुरु की स्थान की मात्रा का साम्य न रहने के कारण कई बार दो-तीन शब्दों को एक ही साथ जोड़ दिया हुआ हो तो कई बार शब्दों का और स्वरों का तोड़ना और भाषा और संगीत की दृष्टि से कम-ज्यादा विराम सुनाई पड़ता है, जिससे आवर्तन और उसके विभाग (खण्ड) समझने में बड़ी बाधा उत्पन्न होती है। ताल की दृष्टि से जिस पंक्ति में बारह अक्षर भी न हों ऐसे पद चौताल में गाये जाते सुने हैं । तदतिरिक्त कोई आरंभ से लेकर समाप्ति तक कीर्तन का उठाव और चलन टीप सप्तक में किया करते हैं । अतः चौताल, सूरताल, चर्चरी, धमार इत्यादि तालों में गाये जाने वाले पदों की मात्राओं की गिनती का हिसाब ध्यान में लेकर गाने वाले आज क्वचित् ही होंगे ।

कुछ पदों के गान में विवादी स्वर का अधिक प्रयोग और कभी वर्ज्य स्वर भी दिखाई देगा । आश्चर्य होता है कि प्रणाली के कीर्तन भी शुद्ध सारंग, आधुनिक श्यामकल्याण, भीमपलास, इत्यादि रागों में परिवर्तित करके गाये जाते हैं। तथा राम-कली, पूर्वी, नायकी, अड़ाना, वसंत, ललित इत्यादि रागों की परम्परा को छोड़कर आधुनिक प्रचारक एवं पं. भातखंडेजी के ग्रन्थों के आधार पर अनुकरण करना आरंभ हो चुका है ।

ऐसी उलझनयुक्त परिस्थिति में परम्परा, शास्त्र-प्रणाली, बंदिश, राग-तालादिके प्राचीन स्वरूप की मर्यादा में रहकर इस प्रकार का ग्रन्थ लेखन मेरी सामर्थ्य की बाहर मानता हूँ, किन्तु गुरुजनों की कृपा और आशीर्वाद से यह ग्रन्थ प्रकट करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष होता है । ऐसे गुरुजनों एवं संपर्क में आये हुए कीर्तनकारों की नामावली परिशिष्ट में दी गई है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यहाँ सर्वप्रथम मेरे जनकपिता का ऋण स्वीकार करता हूँ, जिन्होंने मुझे बाल्यावस्था से कीर्तन-संगीत का सिंचन किया था। बाद में मेरे दीक्षागुरु तृतीय पीठाधीश्वर नि.ली., गो. श्री व्रजभूषणलालजी महाराज का ऋण स्वीकारता हूँ। आपके मंदिरों में वर्षों तक हमारा पालन-पोषण हुआ था । यही नहीं, कांकरोली में ले जाकर लगभग तीन सालों तक द्वारकेश संगीत विद्यालय की स्थापना कर उसका भार मुझे सौंपा गया था। कीर्तन की सेवा में भी कुछ रोज कीर्तन के मुखिया की सेवा भी प्राप्त हुई थी । कीर्तन की प्राचीन परम्परा का और व्रजभाषा का अधिक ज्ञान भी आपकी कृपा की देन समझता हूँ ।

मार्गीय शास्त्र ज्ञान तथा संस्कृत का ज्ञान जिनसे प्राप्त हुआ है ऐसे गो. वा., प. भ., नागरदास बांभणिया का उपकार भी भूल नहीं सकता । संगीत के विद्या गुरु पं. भातखंडेजी के पट्टशिष्य पं. वाडीलालजी का ऋण स्वीकार भी कर्तव्य समझता हूँ प्रेमवश होकर उपकार मेरे वड़ील वंधु समान प. भ. अध्या. केशवराम का. शास्त्रीजी का मानता हूँ, जिनकी सहायता न होती तो यह ग्रन्थ प्रगट होना असंभव हो जाता। आपका उत्साहपूर्वक सूचन, प्रेरणा, मार्गदर्शन इत्यादि से दिया हुआ पीठवल जीवन भर भूल नहीं सकता । आपने इस ग्रन्थ का 'आमुख' लिखकर भी मुझे ऋणी वनाया है ।

यह ग्रन्थ मैंने प्रथम मेरी मातृभाषा में लिखा था, किन्तु स्नेहीजनों का हिन्दी भाषा में प्रगट करने का आग्रह होने के कारण मुझे हिन्दी में लिखना पड़ा। यहाँ हिन्दी छपाई की असुविधा के कारण मुझे बड़ी चिन्ता थी। किन्तु भगवत्कृपा से धार के डॉ. गजाननजी जैसे हिन्दी के और सम्प्रदाय के मर्मज्ञ अधिकारी विद्वान हमें सौभाग्य से मिल गये, जिन्होंने इन्दौर के प्रेस में छपवाने की हमारी विनंती को सहर्ष स्वीकार किया । आपके अत्यन्त परिश्रम विना यह ग्रन्थ समयसर प्रगट नहीं हो सकता था। आपके दिये हुए समय और श्रम ने मुझे आभारी बना दिया है। दृष्टि कुंठित होने के कारण मेरे शिष्य जनकभाई पटेल की पढ़ने-लिखने में की हुई सहाय भी भूलना नहीं चाहिये ।

गुर्जर भाषा-भाषी होने के कारण इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ रही हों तो इसलिये वाचक मुझे क्षमा करेंगे ।

मुझे हर्ष होता है कि आज लुप्त होती हुई ध्रुपद धमार-शैली को पुनः जीवित करने का आरंभ हमारी सरकार की ओर से संगीत अकादमी द्वारा यथाप्रयत्न हो रहा है । किन्तु सम्प्रदाय की ओर से किसी प्रकार का उत्तेजन न होने के कारण व्यवसायी कीर्तनकारों की परम्परा नष्ट होती जा रही है । अतः सम्प्रदाय के पू. पाद गो. वर्ग एवं वैष्णव समाज के धनिक वर्ग से प्रार्थना है कि आधुनिक लोक संगीत सिनेमा-संगीत, सुगम-संगीत, इत्यादि के परिवर्तनशील प्रवाह से बचाकर सम्प्रदाय की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

द्रुपद धमार की इस प्राचीन परम्परा को जीवित रखने का प्रयत्न करें। इतना हो तो मेरे श्रम की सफलता होगी।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन को बल देने के लिए जिन पू. पा. गोस्वामी आचार्यों ने एवं ट्रस्टी महाशयों तथा स्वयं भी सहायक रूप में अथवा बड़ी संख्या में खरीद करके सहाय की है उनके विषय में आमुख में प. भ. के. का. शास्त्रीजी ने लिखा है, अतः यहाँ पुनरुक्ति करता नहीं हूँ, किन्तु उन सबोंका मैं हृदय से उपकार स्मरण करता हूँ।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

कृपाकांक्षी
चम्पकलाल छ. नायक

६०, नायकनगर,
अमहदाबाद-३८००१४
दि. २०-५-१९८३

अम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अष्टछापीय-भक्ति संगीत

उद्भव और विकास

आम्नाय-ग्रन्थालय,
परतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-5

प्रथम खण्ड

चम्पकलाल छ. नायक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीकृष्णाय नमः

भारतीय इतिहास के कालखंडों के विभाजनार्थ ई. पू. ५००० से ई. पू. १००० तक के समय को पाश्चात्य तथा तदनुसार आधुनिक भारतीय इतिहासविद् "वेदकाल" मानते हैं। यह सुप्रसिद्ध है कि भारतवर्ष में आज तक वहती हुई संगीत-सरिता का मूल सामवेद है। भारतवर्ष की ललित कलाओं में संगीत का स्थान उन्नत और गौरवान्वित रहा है। भारतीय संस्कृति का मूल धर्म या अध्यात्म में हैं। संस्कृति और अध्यात्मविद्या में भारत जगद्गुरु रहा है। भारतीय संस्कृति को श्रेष्ठता के शिखर तक पहुँचाने में ललित कलाओं का योगदान भी कुछ कम नहीं है। ललित कलाओं में अग्रस्थान संगीत कला को दिया जाता है। क्योंकि संगीत का उत्पत्ति स्थान नादब्रह्म है। और 'ब्रह्म' पद भगवान् के व्यापक रूप का वाचक है। 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ के स्वर प्रकरण के प्रारंभ में ही कहा गया है—

चैतन्यं सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना ।
नादब्रह्म तदानंदमद्वितीयमुपास्महम् ।।

संगीत की उत्पत्ति नाद से है और नाद ब्रह्म है, भगवत् स्वरूप है—'नादो ब्रह्म न संशय : ।'

जो प्राणिमात्र में चैतन्य है और जो जगत् के रूप में विकसित हुआ है, जो आनंदमय और अद्वितीय है। उस नाद ब्रह्म की हम उपासना करते हैं—

गीतनादात्मकं वाद्यं नादव्यक्त्या प्रशम्यते ।
तद्द्वयानुगतं नृत्यं तदाधीनमतस्त्रयम् ।।

गीतगान का अवलंबन नाद है । नादकी अभिव्यक्ति के कारण ही वाद्यों को प्रशस्त माना गया है। नृत्य भी गीत और वाद्यों पर ही आधारित है। इस प्रकार गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों ही कलाएँ नादाधीन हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है कि 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' इस प्रकार सामवेद स्वयं भगवान् का स्वरूप है। संगीत की उत्पत्ति के (उद्गम के) बारे में कुछ किंवदंतियाँ हैं, किंतु भारतीय संस्कृति की अंगरूप संगीत कला का उद्गम हम अनादि मानते हैं अतः वेदग्रंथों तक ले जाते हैं। चार वेदों में सामवेद

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को संगीत का वेद कहा जाता है। उपवेदों में ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद और सामवेद का उपवेद गंधर्ववेद माना गया है।

ऋग्वेद की ऋचाओं के स्वराश्रित गान को सामगान कहते हैं। विद्वानों के मतानुसार सामवेद में ऋग्वेद के मंत्र होते हुए भी इन मंत्रों के गीति-गान से ओतप्रोत होने के कारण सामवेद को स्वतंत्रतया गेय माना जाता है।

सामगान की इन ऋचाओं में हमें भक्तिभावात्मिका वृत्ति के भी दर्शन होते हैं। ऋषियों ने अग्नि, वरुण, मित्र, इंद्र, यम, आदित्य, विष्णु, रुद्र, पूषण आदि देवताओं के प्रति जो भावनाएँ प्रकट की हैं उसमें भक्तिभाव स्पष्ट दिखलायी देता है। अनेक प्रसंगों में ऋषियों ने देवताओं की कृपा प्राप्ति की कामना की है। सामगान की संगीतमय ऋचाओं में हृदय के आर्द्रभाव एवं भक्तिभावपूर्ण उपासना के भी दर्शन होते हैं।

सामवेद के गेय होने के कारण इसे 'उद्गीथ' भी कहते हैं। सामगान करने वाले को 'सामगाथा' अथवा 'उद्गाता' भी कहते हैं। महर्षि पाणिनि और नारद के शिक्षाग्रंथों के 'उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः' इस उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि सामवेद में प्रथम तीन स्वरों का ही प्रयोग होता था। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये तीनों स्वर वाक्गत हैं। इन स्वरों का अभिप्राय वास्तव में सामगान के पाठ में स्वराघात होने से मुख्यतः गीतात्मक रूप वन जाता था।

पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुसार ऊंचे स्वर को उदात्त, नीचे स्वर को अनुदात्त तथा समाहार स्वर को स्वरित कहा गया है।* अर्थात् आरोहात्मक स्थिति उदात्त, अवरोहात्मक अनुदात्त और समांतर स्थिति में स्वरित होता है। स्वरित का अर्थ विभिन्न कालों में बदलता रहा है। कोई स्वरित को उदात्त और अनुदात्त के मध्य का स्वर कहते हैं। कोई उदात्त से ऊँचा स्वर और कोई अनुदात्त से भी नीचा स्वर कहते हैं। इस प्रकार के विभिन्न मंतव्यों का निष्कर्ष यह निकलता है कि सामगान के स्वर अवरोहात्मक स्थिति में थे। सामवेद सूक्त में प्रथम जो तीन स्वरों का स्वरूप बना हुआ था उस दृष्टि से कहा जाये तो एक स्वर में ऋक्, दो स्वरों में गाथा और तीन स्वरों में सामगान गाया जाता था।

तदुपरांत स्वरांतर के नाम से चार स्वरों का समूह भी प्राप्त होता है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन प्राचीन स्वरों को क्रमशः गांधार, ऋषभ और षड्ज के समकक्ष माना जाता था। इस प्रकार ग, रे, सा का समूह कुछ काल के बाद ग, रे, सा, नि यों चार स्वर बन गये। चतुर्थ स्वर में षड्ज–मध्यमभाव के कारण कुछ काल के बाद नीचे का एक और स्वर धैवत भी जुड़ गया। यहां

---

* *उच्चैरुदात्तः नीचैरनुदात्तः समाहारः स्वरितः।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक बात और ध्यान में रखना चाहिये कि प्रारंभिक गांधार होने के कारण ही गांधार ग्राम की कल्पना की गयी थी । पश्चात् गांधार के ऊपर का मध्यम स्वर जुड़ जाने से चार स्वरों का समूह बन गया । ऋक् प्रातिशाख्य ग्रंथ में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी इस तरह के नाम इन प्रथम चार स्वरों के प्राप्त होते हैं।

आधुनिक इतिहासविदों के मत में ई. पू. ४०० वर्ष प्राचीन माने जाने वाले तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में प्रथमा स्वर का 'कुष्टा' नाम कहा गया है। कुष्टा यानी ऊँचा स्वर. इस दृष्टि से कभी-कभी गांधार से ऊंचा स्वर मध्यम प्रयुक्त होने लगा । यह कुष्टा स्वर सबसे ऊँचा गाया जाता था। कुछ समय पश्चात् धैवत स्वर भी प्रयुक्त हुआ। और इस तरह वैदिक काल के स्वरों का औडव सप्तक सामने आया । जैसे—म, ग, रे, सा, ध ।

कहा जाता है कि दक्षिण में प्राचीन काल में आज के 'आभोगी' राग में सामवेद गाया जाता था। आधुनिक आभोगी राग के 'सा रे ग म ध' अथवा ग रे सा नि ध स्वरों के सदृश होने की मान्यता है।

अनंतर म ग रे सा ध इन औडव स्वरों के साथ पंचम और मध्यम स्वर प्रयुक्त होने पर कुल सात स्वरों का सप्तक अस्तित्व में आया । यह माना जाता है कि वैदिक सप्तक के स्वरों को हम निम्न-प्रकार से पहचान सकते हैं :—

(१) कुष्टा—मध्यम, (२) प्रथमा—गांधार, (३) द्वितीया—ऋषभ, (४) तृतीया—षड्ज (५) चतुर्थी—निषाद, (६) मंद्र—धैवत, (७) अतिस्वर—पंचम

सामगान में उपर्युक्त प्रकार से एक निश्चित रूप में सप्तक (सात स्वरों) का आयोजन दृष्टिगोचर होता है, जो अवरोह क्रम से बना हुआ है। जिस समय गांधार के ऊपर मध्यम स्वर की कल्पना हुई, उस समय से मध्यम ग्राम का आरंभ हुआ यह माना जाता है। नारदीय शिक्षा में वैदिक सात स्वरों का आरंभ मध्यम से ही माना गया है:—

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः ।
यो द्वितीयः सः गांधार तृतीय स ऋषभः स्मृतः ।।
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत् ।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः ।।

(कंडिका ५ श्लोक १–२)

इस प्रकार सामगान का स्वर प्रथम वेणु का मध्यम, द्वितीय गांधार, तृतीय ऋषभ, चतुर्थ षड्ज, पाँचवाँ धैवत, षष्ट निषाद, सप्तम स्वर पंचम है।

इस प्रकार सामगान में मध्यम से आरंभ कर के गांधार—ऋषभ—षड्ज से सीधे धैवत स्वर को लेकर निषाद तक जाकर दो स्वर नीचे पंचम स्वर पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

न्यास होता है। इस क्रमानुसार म, ग, रे, सा, ध, नि, प स्वर क्रम रहेगा। सामगान की प्राचीन संज्ञाओं के पश्चात् षड्ज, ऋषभादि संज्ञाओं का प्रचलन हुआ होगा, तथापि दोनों के स्वर-क्रम में भिन्नता है और यही सामगान की विशिष्टता थी।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के वैदिक सात स्वरों के नाम कुछ विद्वान् 'म ग रे, सा नि ध प' के क्रमानुसार स्वीकारते हैं,* किंतु अन्य कुछ विद्वानों के मतानुसार यह क्रम 'म ग रे सा ध नि प' है। जो भी हो** इन दोनों मतों के अनुसार आरंभ के चार स्वरों में कोई क्रमभेद नहीं हैं।

उपर्युक्त दोनों पक्षों में मतभेद हो या पाठभेद, किन्तु बहुसंख्य विद्वानों के अनुसार तथा प्रस्तुत लेखक के मतानुसार सामगान की स्वतंत्र परंपरा को दृष्टि-गत करने पर द्वितीय पक्ष अधिक संगत प्रतीत होता है। प्राचीन काल में सामगान के सप्तस्वरों का और स्वरसंवादित्व का महत्व पाणिनि तथा नारद की शिक्षा में स्पष्ट किया गया है——

उदात्ते निषादगांधारौ अनुदात्त ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवाः ह्येते षड्जमध्यमपंचमाः ॥८॥

अर्थात् उदात्त के अंतर्गत निषाद और गांधार, अनुदात्त के अंतर्गत ऋषभ और धैवत तथा स्वरित में षड्ज मध्यम और पंचम स्वरों का समावेश होता है। इन स्वरों को कोष्टक द्वारा और स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित	स्वरित	अनुदात्त	उदात्त
सा						
सा	रि					
सा	रि	ग				
सा	रि	ग	म			
सा	रि	ग	म	प		
सा	रि	ग	म	प	ध	
सा	रि	ग	म	प	ध	नि

उपर्युक्त सप्त स्वरों के उद्भवका रहस्य यह है कि एक से प्रारंभ कर सातों स्वरों में जो वेदगान किया जाता था उसे गान कहते थे। यहाँ गान और गीत

---

* चतुर्थं षड्ज इत्याहुर्निषाद : पंचमो भवेत्।
षष्ठस्तु धैवतो ज्ञेयः सप्तमः पंचम : स्मृतः ॥

** चतुर्थं षड्ज इत्याहु : पंचमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादः विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः ॥

(नारदीय शिक्षा प्र. १ कं. १ श्लो. ५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(गायन) का भेद समझना आवश्यक है, जो इस तरह है:—

गान :— (अ) एक स्वर से लेकर सातों स्वरों तक का गान होता है।

(आ) गान नियमित स्वरों में बद्ध होता है।

(इ) गायन की तरह गान में तालों का कोई वंधन नहीं है।

गायन–गीतः— (अ) गायन में कम से कम पाँच स्वरों की विद्यमानता अनिवार्य है अर्थात् पाँच से सात स्वरों का गायन होता है।

(आ) गायन में ग्रह, अंश, न्यास, वादी, संवादी इत्यादि वंधन होते हैं।

(इ) लय एवं ताल का वंधन रहता है।

एक से सात स्वर तक के विभिन्न सात गानों की प्राचीन संज्ञाएँ इस प्रकार हैं:—

गान-स्वर संख्या	संज्ञा	उदाहरण
एक स्वर गान	आर्चिक	सा, (ओम्)
द्वि स्वर गान	गाथिक	सा रे, रे सा, (हरे, हरे)
त्रि स्वर गान	सामिक	सा रे ग, सा रे ग, (हरिऊँ, हरिऊँ)
चतुः स्वर गान	स्वरांतर	सा, रे, ग, म; म, ग, रे, सा, (कोई भी भगवद् नाम प्रयुक्त किया जा सकता है जैसे—नारायण नारायण)
पंच स्वर गान	औडव	सा, रे, ग, म, प, प, म, ग, रे, सा,
षट् स्वर गान	षाडव	सा, रे, ग, म, प, ध, ध, प, म, ग, रे, सा,
सप्त स्वर गान	संपूर्ण	सा, रे, ग, म, प, ध, नि, नि, ध, प, म, ग, रे, सा,

निष्कर्ष यह है कि वैदिककाल में सातों स्वरों का आविर्भाव हो चुका था। इस तथ्य को माण्डूकी–शिक्षा की निम्नलिखित पंक्ति का भी समर्थन प्राप्त होता है:—

सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः

स्वरों के अतिरिक्त सामवेद के सूक्तों में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत नामक मात्राएँ भी दिखलाई देती हैं। स्वराघात के समय इन मात्राओं का भी स्वरों के साथ ध्यान रखना पड़ता है। यजुर्वेदादि में स्वर हाथ से दिखाये जाते हैं और सामवेद

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में अंगुलियों के पोरोंपर अंगुष्ठ से गिने जाते हैं। इसके विपरीत यानी मंत्रों का स्वरहीन गान करने से कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है।*

वैदिक साहित्य में संगीत और नृत्य

वैदिक साहित्य में वाद्यः—वैदिक काल की संगीत–साधना में भिन्न-भिन्न वाद्यों का भी उल्लेख मिलता है।

ततवाद्य—इनमें कर्करी–वीणा,** कांड–वीणा*** तथा वारण्य‡ अथवा वाण का उल्लेख प्राप्त होना हैं। वाणवाद्य को वीणा‡‡ भी कहते हैं। कुछ अन्य ग्रंथों में इस वीणा में तारों की संख्या एक सौ वताई गयी है। इस लक्षण के आधार पर आज के सुर मंडल जैसी वीणा के किसी प्रकार की संभावना होती है।

सुषिर वाद्य—इन वाद्यों में 'वाकुर' नामक वाद्य का उल्लेख प्राप्त होता है जो फूंक से वजाया जाता था। विद्वानों का विचार है कि यह संभवतः शंख होगा।‡‡‡

अवनद्ध वाद्य—इस प्रकार के वाद्यों में दुंदुभि का उल्लेख अधिकतर मिलता है।$

घनवाद्य—इन वाद्यों में आघाती या आघारी नामक वाद्य का उल्लेख मिलता है। 'आघारी' नाम घनवाद्य सूचक है, फिर भी कुछ विद्वान् इसे आनद्ध जाति का वाद्य भी कहते हैं। अथर्ववेद में भी उल्लेख मिलता है कि 'हे अप्सराओ! जहाँ नीला और सफेद हिंडोला है और जहाँ आघारी कर्करी के साथ बजती है, वहाँ जाओ।"$$

इस प्रकार अन्यत्र भी वेद में तत्कालीन वाद्यों के नामों में सुषिर जाति में तूणव नांदि, अवनद्ध वाद्यों में आडंबर भुमिदुंदुभि वानस्पति इत्यादि हैं।

---

* मंत्रोहीन स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। नारदीय शिक्षा १-१-५

** यदुत्पतन् वदसि कर्करियेथा वृहद् वदेम विदथे सुवीरा: (ऋग्. मं. २–४३–३)

*** काठकसंहिता –३४–५

‡ ऋग्. मं. ९–९७–८, १०–३२–४।

‡‡ सायणाचार्य ने वाण वाद्य को मरुद्वीणा कहा है।

‡‡‡ यवं वृकेणाश्विना वपंतेषं दुहंता मनुषाय दस्त्रा अभिदस्युं बकुरेणाधमन्तोरू ज्योनिश्च कथुरापयि। (ऋग्. मं. १०–१३५–७)

$ आमूरज प्रत्यावर्तेमाः केतुमदुंदुभिर्वा वदीति। समश्वपर्णाश्च रति नवे नरो अस्माकं रथिनो जयन्तु (ऋग्. मं. ६–४७–३१)

$$ आघाटयो घाटलिका कांडवीणा (काठक संहिता ३४–५)
यत्र वह प्रेहरिता अर्जुना उन यत्राघाटाः ककयः संवदंति तत् परेता अप्सरस। प्रतिवुद्धा अभूतन् (अथर्ववेद मं. ४–३७–५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वेद में वीणावादक का 'वीणागाथिन' और 'वीणाक्य' नाम उपलब्ध होता है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय लोगों में वीणावादन पर्याप्त प्रचलन में होगा।

संगीत के पारिभाषिक शब्दों में आज जो मंद्र, मध्य और तार शब्दों का प्रयोग होता है उनके लिये प्राचीन काल में मंद्र, मध्यम और उत्तम शब्द प्रयुक्त होते थे।

सप्तक के तीन प्रकार के अलावा आज जिन स्वरों को हम कोमल और तीव्र स्वर के नाम से पहचानते हैं उनके लिये 'मृदु' और 'तीक्ष्ण' शब्द उपलब्ध होते हैं।

ताल विषयक पारिभाषिक शब्द

ताल से संबंधित पारिभाषिक शब्दों में आज हम जिसे 'लय' और 'मात्रा' कहते हैं, इनकी वेदकालीन पारिभाषिक संज्ञा 'वृत्ति' और 'प्रतिवृत्ति' है।*

आज जो लय के तीन प्रकार माने जाते हैं (१) विलम्बित (२) मध्य तथा (३) द्रुत; वे प्राचीन ही हैं।**

मात्रा के निश्चित प्रमाण को दिखलाते हुए कहा गया है कि 'चाष' पक्षी एक मात्रा, कौआ दो, मोर तीन मात्रा और नेवला आधी मात्रा की आवाज निकालता है।‡

वेद में 'सवन' के तीन प्रकार

जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं वेदकाल में सातों स्वरों का उपयोग "यजुर्वेदेऽपि सप्तस्वराः भवंति" इस विधान से स्पष्ट हो जाता है। इन स्वरों के आधार पर तीन प्रकार के सवन गाये जाते थे: (१) प्रातः सवन (२) मध्याह्न

---

* *त्रीणी मंद्रं मध्यममुत्तं च स्थानान्याहुः सप्त यमाति वाचः सप्त स्वरा य यमास्ते (ऋक् प्रातिशाख्य पटल–१३)*
स्वरेभ्यः पृथग्भूता अन्ये यमा : स्वरेषु वर्तन्ते, एतेषां मृदुत्व तीक्ष्णत्वं च वेदितव्यम्।
मात्रा विशेष : प्रतिवृत्युपैति।

** *"त्रिस्त्रो वृत्तिरुपदिशंति वाचो विलंबितां मध्यमां च द्रुतां च" त्रिस्त्रो वृत्रीवर्चिं उपदिशंत्याचार्यः" (ऋक् प्रातिशाख्य १३–४६)*

‡ *चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रां वायसोऽब्रवीत शिखी त्रिमात्रो विज्ञेय एष मात्रा परिग्रह :" त्रिमात्रां तु शिखी ब्रूते नकुलस्त्वर्धमात्रिक (शुक्लयजु : प्रातिशाख्य ४६७–१६)*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सवन और (३) तार सवन । इन सवनों को किस वृत्ति में (लय में) किस समय गाना चाहिये, इस बारे में भी नियम हैं। अनुमानतः प्रातः गंभीर समय में विलंबित लय में गान करना अधिक उचित माना जाता होगा।*

वेदों में नृत्य

वेदों में नृत्य से संबंधित उल्लेख भी उपलब्ध होते हैं । उषा की स्तुति करते समय उसके रंग की शोभा को, नृत्यांगना के पैरों से उड़ती हुई धूल के समान वर्णित किया गया है। उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि उस समय खुले मैदानों में नृत्य करने का रिवाज होगा।**

वेदों में भक्तितत्त्व

भगवान् के स्नेह तथा प्रसाद की भावना से किये जाने वाले स्तुतिगान वादन तथा नृत्य रूप संगीत को भक्तितत्त्व से पृथक् नहीं किया जा सकता । भगवच्चरणों में समर्पित संगीत वस्तुतः भक्तिभाव का ही अन्यतम रूप है । संगीत के अंतर्गत परिगणित गान, वादन और नृत्य कलाएँ वेदकाल में थीं और भक्ति–भाव से ओत-प्रोत भी थीं ।

वैसे वेदों में 'भक्ति' शब्द का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता तथापि ऋषि-मुनियों का हृदय भक्तितत्त्व से अपरिचित नहीं था; ऐसा अनेक विद्वानों ने स्वीकारा है ।

वेद में इंद्र, अग्नि, मित्र, वरुण इत्यादि देवताओं की प्रशंसा अनेक स्थलों पर मिलती है। जिस देवता का स्तुति प्रसंग चल रहा हो उसकी अन्य देवताओं की अपेक्षा अधिक प्रशंसा की गयी है। यह माहात्म्य दर्शन रूप भक्ति की पहली सीढ़ी मानी जाती है। वैदिक सूक्तों के मंत्रद्रष्टा ऋषियों का हृदय देवता के माहात्म्य दर्शन के लिए द्रवित होता है। ऋषि देवता को प्रणाम करता है,*** वंदन करता है‡ और स्तुति करता है।‡‡

---

* *विलंबिता वालानामध्यपना दिषूपदिशंति । मध्यमां व्यनद्वारादिषूपदिशंति । द्रुतामध्ययमनस्य वहुरूपाभ्याम् उपदिशंति (ऋ. प्रा.)*

** *यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धामतिष्टत । अत्र वो नृत्यनामिव तीव्रो रेणुरजायता ।। (ऋग्. मं. १० अ ७२, क ६) ।*

*** *अभिनोनुमः (ऋ. मं. ४ म. ३. सू—१ ऋ. ४)*

‡ *तत्वायामि व्रह्मणा वन्दमान : (ऋ. मं. ३. अ—६ सू–२४)*

‡‡ *सुष्टुतिमीरयामि । (ऋ. मं. १. अ—४. सू—१—ऋ.—७)*
स्तवाय त्वा स्वाध्य : (ऋ. मं. १—अ. ४. सू—१६—ऋ. ८)
"भर्गो देवस्य धीमहि"—(गायत्री—मंत्र)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक पुत्र पर जैसे पिता का वात्सल्य प्रेम होता है वैसा ही ऋषि अपने देव से माँगता है।* एक अन्य मंत्र में ऋषि देव को सखा, पिता, और पितृतम भी कहता है।** इन सम्बोधनों में भक्तिवृत्ति स्पष्ट झलकती है। स्नेहभावार्द्र एक ऋषि की भावाभिव्यक्ति है कि सर्वज्ञ को चाहती हुई मेरी वृत्तियाँ उसी प्रकार प्रभु की ओर जाती हैं जैसे गाएँ अपने बछड़ों के पीछे जाती हैं।‡

इन मंत्रों में ऋषियों के हृदय की प्रेमलक्षणा भक्ति स्पष्ट रूप से दृष्टि-गोचर होती है। देवों की महत्ता देखते-देखते ऋषियों के हृदय में गाढ़ भक्ति का संचार होता रहा। ऋग्वेद में प्राप्त मंत्रों का भक्ति तत्त्व भक्ति संप्रदायों के समर्थन के लिए अत्युपयोगी माना जा सकता है।

यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथों में या वेद-संहिताओं में भक्ति शब्द का प्रयोग नहीं किया गया किन्तु उस समय की भक्तिपरक अभिव्यक्तियाँ नितांत दृष्टव्य हैं। जैसे ब्राह्मण ग्रंथों का अंतिम भाग ज्ञानकांड का प्रारंभ है वैसे ही ज्ञानकांड का पर्यवसान भक्ति कांड का प्रारंभ है। ऋचाओं के अध्ययन करने पर भक्तिपूर्ण सुमधुर भावों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता हैं।

नवधा भक्ति के अंगों का संकेत भी वदमंत्रों में दृष्टिगोचर होता है।

श्रवण भक्ति––"यो जातमस्य मह्नता म हिं ब्रवत्सेहु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्"
(ऋ. मं. १ अ–१५६–मं. २)

कीर्तन भक्तिः––"विष्णोर्नु कं वीर्याणि ब्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।"
(ऋ. क. १–१५४–१)

वैदिक देवता इंद्र के प्रति स्निग्ध और रागात्मक भावों के कारण इन्द्र को माता–पिता आदि संम्बोधन दिये है। यह भक्ति का ही एक प्रकार है।अधिकतर विद्वानों की मान्यता है कि वेदों में इंद्र, वरुण, अग्नि, मित्र आदि देवताओं की पूजा अर्चना का विधान एकार्थ में ईश्वर भक्ति का ही विधान है। भक्तिभावबद्ध भक्त के लिये यह स्वाभाविक है कि वह अनेक में से किसी एक को खोज निकाले। एक ही देवता में सर्वदेवमयीभावना का वर्णन अनेक मंत्रों में उपलब्ध होता है।‡‡

---

* *"स नः पितवे सूनवे." (ऋ. मं. १ अ. १––सु. १ ऋ––८)*

** *"सखा पिता पितृतम :" (ऋ. मं. ४. अ. १. सू. ७)*

‡ *"परो में यान्ति धीतयो गावो न गंव्यूतिरंनु इच्छन्ती––*
चक्षुसं" (ऋ. मं. १. अ. ६ सू. २ मं. ऋ.–१८)

‡‡ *इन्द्र मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्*
एकं सद् विप्राः बहुधा वदंत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ऋ. १. १६४. ४६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भक्तिसूत्रों में शाण्डिल्य ने "भक्तिः प्रमेया श्रुतिभ्यः" कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि शाण्डिल्य ऋषि के अनुसार भी भक्ति का मूल वेदों में है। "विष्णु" शब्द ऋग्वेद में अनेकार्थक है, विशेषता यह है कि विष्णु को सर्वत्र दिव्य महान् और व्यापक शक्ति का प्रतीक माना गया है। कहीं "ऋतस्य गर्भम्" तो कहीं "यज्ञो ह वै विष्णुः" कह कर यज्ञ को विष्णुरूप माना गया है। विष्णु को कहीं इंद्र के सहायक देवता के रूप में भी वर्णित किया गया है।

भगवान विष्णु के नामसंकीर्तन का उल्लेख ऋग्वेद में प्रसिद्ध मंत्र में मिलता है:

तमुस्तोतार: पूर्व्यं यथाविद् ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानंतो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे।

(ऋ. १–१५६–३)

हे स्तुतिकारो ! अनादिसिद्ध यज्ञस्वरूप विष्णु को जिस प्रकार जानते हो उसी प्रकार स्तोत्रादि द्वारा उसे प्रसन्न करो। विष्णु के अपार नामों की महिमा का कीर्तन करो। हे विष्णो ! आप महान् हैं। आपकी सुमति का हम सेवन करते हैं।

उपर्युक्त मंत्र की भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न व्याख्या की जाती है। तथापि इस मंत्र को संकीर्तनपरक सभी ने स्वीकारा है। भाष्यकार सायणाचार्य भी 'विवक्तन' का अर्थ "संकीर्तन' (संकीर्तन करो) करते हैं।

प्रतते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्
तं त्वा गृणामि तवसम तव्यात् क्षयन्तमस्य रजसः पराके

(ऋग्वेद ७. सूक्त १००-५)

"हे विष्णो ! आपके नाम के उन सामर्थ्यों को जानकर उस प्रसिद्ध —श्रेष्ठ नाम का कीर्तन करूँगा। मैं क्षुद्र होने पर भी इस ब्रह्माण्ड के उस पार स्थित महान् ऐश्वर्य से युक्त आपका मैं कीर्तन करूँगा।"

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं नोचेमानग्ये आरे अस्भे च शृण्वते

(शुक्ल यजुर्वेद ३-११)

"जो दूर रहते हुए भी पास रहकर हमारी वाणी सुनते हैं। ऐसे परमात्मा की प्रसन्नता के लिए यज्ञ में जाते हुए हम लोग उनके नाम मन्त्र का कीर्तन करें।"

ऋग्वेद के प्रथम मंडल सूक्त १५४ के प्रारंभ के मंत्र में जीव ने प्रभु के अनंत चरित्रों का वर्णन करने में अपनी असामर्थ्य बता कर हीनता प्रकट की है। "आपके चरित्रों का वर्णन कैसे करूँ ?" इस कथन में कीर्तन भक्ति प्रकट होती है, क्योंकि प्रभु के चरित्रों का गान ही कीर्तन भक्ति है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कमयादुत्तरं अधस्थ विचक्रमाणस्त्रेभोरुगाय।।

मंत्र में 'उरुगाय' पद से भी कीर्तन भक्ति का संकेत मिलता है। तथा विष्णु सूक्त के ध्रुवासो अस्य कीरयो जनासः (ऋग्वेद कां. ७-सू. १००-ऋक् ४) मंत्र में : अस्य-(विष्णु श्रीपुरुषोत्तम के) कीरय (कीर्तन करने वाले) जनासः (भक्तजन) ध्रुवासः (नित्य हैं) से स्पष्टतया 'कीरय' पद से कीर्तन भक्ति का स्वरूप ही सामने आता है। अथर्ववेद में भी "दोषोगाय वृहद्वाय द्युमद्धेहि अथर्वण स्तुहि देवं सवितारं" (अथर्ववेद कां. ६-सू. १-मं. १) वचन में कीर्तन भक्ति का उल्लेख मिलता है : हे अथर्वा के पुत्र दध्यङ ! द्युमत् (तेजोयुक्त) वृहत् (ब्रह्मका) दोषा (रात्रि में) उ (दिन में) गाय (गान कर) धेहि (उस ब्रह्म को हृदय में धारण कर) सवितारं (उस वस्तुमात्र के उत्पत्तिकर्ता) देवं (देव की) स्तुहि (स्तुति करो)।

ऋग्वेदीय श्रुति के "विपन्यवो जागृवांस" उल्लेखानुसार कीर्तन भक्ति का यथार्थ वोधन होता है। इसके अनंतर आते मंत्र "तमुष्टुहि यो अन्तःसिंघौसुतुः" (अथर्ववेद कां ६-सू. १-मं. २) अर्थ : तमु (उस देव की) ष्टुहि (स्तुति कर) यहाँ भी "स्तुति" पद से कीर्तन भक्ति प्रतीत होती है।

काठक संहिता में दुंदुभि, भूमिदुंदुभि, वीणा, कांडवीणा, नाडी तूणव, वाण, शततन्तु इत्यादि नाम मिलते हैं। मैत्रायणी संहिता में कर्करी, तूणव और वीणा ये तीन नाम वाद्यों के प्राप्त होते हैं (मैत्रायणी संहिता ४-२-९ और ३-६-८)।*

वैदिक कर्म में गीत और वाद्यों का महत्व समान है। भक्ति के विषय में भी यही कहा जा सकता है। वैशंपायन संहिता में कहा है कि "सारे अधर्माचरण और पापाचरण करने वाला पुरुष भी विष्णु भगवान् के नामों के संकीर्तन से सारे पापों से मुक्त हो सकता है।"‡

वेद के ब्राह्मण-आरण्यकों में संगीत

ब्राह्मण-आरण्यक ग्रंथों के अनुसार यज्ञयागादिक में गान करने की विधि, वीणादि वाद्यों का व्यवहार एवं संगीत संवंधी पारिभाषिक शब्द प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

---

* दुंदुभयो वदंति या दिक्षु वावतां तनावरुन्धते, भूमिदुंदुभिभवति यास्यावाक्तां तेनावरुंधते, वीणा वदंति या पशुपु वाक्तां तेनावरुंधते, कांडवीणा व दति यौषधिषु वाक्तां तेनाचरुंधते, वाणश्शतंतुर्भवति

‡ सर्वधर्म बहिर्भूतः सर्वपापरतस्तथा
मुच्यते नात्र संदेहो विष्णोर्नामानुकीर्तनात्

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'शतपथ ब्राह्मण' में 'उत्तरमंद्रा' का नाम प्राप्त होता है, जिसे प्राचीन ग्रंथों में मूर्च्छना के नाम से और आजकल 'मेल' या 'थाट' के नाम से हम पहचानते हैं। वीणा के तार के 'उत्तरमंद्रा' मूर्च्छना में मिलाने के विधान से (द्रष्टव्य : शतपथ ब्राह्मण १३-४-२-८ तथा ३-२-४-६) इस मूर्च्छना में शुद्ध स्वरों का प्रयोग संभावित है।

ग्रंथों में "षड्जे उतरमंद्रादौ रजनीचोत्तरायता' उल्लेख मिलता है। प्राचीन समय में षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना का 'उत्तरमंद्रा' नाम आज भी सुप्रसिद्ध है। षड्ज स्वर से इस मूर्च्छना का आरंभ होता है।

ब्राह्मण ग्रंथों में वाद्यों के नाम भी प्राप्त होते हैं :

> महते वीणावादनम्, क्रोशाय तूणवध्यम्, आक्रंदाय दुंदुभ्याघातम्,
> आपरपराय शङ्खध्यम्, ऋभुभ्यो जितसंधायम्, साध्येभ्यश्चर्मणम्
> (तै. ब्रा. ३-४-१)।

इस विधान में चारों प्रकार के वाद्यों के 'वीणा' 'तूणव' 'दुंदुभि' और 'शंख" नाम प्राप्त होते हैं। पूर्व में जिन वाण बाकुर भूमिदुंदुभि आदि वाद्यों के नामों का उल्लेख किया गया उनका वर्णन तैत्तिरीय ब्राह्मण में उपलब्ध होता है। "वाण: शततन्तु भवंति" (तै. ब्रा. ७-५-३-२) वाण वाद्य में १०० तार होते हैं। तथा "दुंदुभि: वाचमवरुंधते भूमिदुंदुभिमेव" भूमिदुंदुभि वाद्य यज्ञभूमि के स्थल पर गड्ढा खोदकर उसके मुख को चर्माच्छादित कर बनाया जाता था। यज्ञयाग के अवसर पर इस भूमिदुंदुभि वाद्य को बजाने की रीति थी। (तैत्तिरीय आरण्यक ४-१-५)। इसी परंपरा के अनुसार आज भी हमारे यहाँ मंगल कार्यों में ढोल, नगारे आदि बजाने का रिवाज है।

सुषिर जाति के अर्थात् फूंक से बजने वाले वाद्यों में 'बकुर' वाद्य का युद्ध के समय बजाने का उल्लेख भी प्राप्त होता है। (तैत्तिरीय ब्रा. ३-४-७-१ तथा शतपथ ब्रा. ४-९)।

पारिभाषिक नामों में वीणा बजाने वाले को 'वीणावाद' तथा संगीत वृंद के मुख्य नायक के लिये 'वीणागणगीत' शब्द का प्रयोग किया गया है।

नृत्य के साथ भी वीणा, तूणव आदि वाद्यों के उपयोग किये जाने का उल्लेख मिलता है।*

---

* *वीणावादं गणकं गीताय, यादसे शाबुल्याम्, नर्माय भद्रवतीम् तूणवध्मम् ग्रामण्याम्, पाणिसंघातं नृत्ताय, मोदयानुक्रोशकम्, आनंदाय तलवम्*
(तै. ब्रा. ३-४-१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपनिषदों में संगीत और भक्ति

पाश्चात्य इतिहासकार तथा उनका अनुसरण करने वाले भारतीय इतिहास-विद् भी उपनिषदों का समय ई. पू. ६०० से ८०० तक मानते हैं।

उपनिषद् साहित्य में भी संगीत संबंधी उल्लेख प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। छांदोग्य एवं बृहदारण्यक आदि उपनिषदों में सामगान की पद्धति का पर्याप्त वर्णन है।

छांदोग्योपनिषद् के प्रथमाध्याय के आठ खंडों में सामगान का वर्णन मिलता है। यहाँ स्वरगान को उद्गीथ तथा गान करने वाले का नाम 'उद्गाता' कहा गया है। उपनिषद् में यह भी कहा गया है कि "तद्य इमे वीणायां गायंत्येतं ते गायंति तस्मात्ते धनसनयः" अर्थात् वीणा द्वारा जो गान करते हैं वे परमात्मा का ही गान करते हैं और धनवान् होते हैं।

"यज्ञ के समय ब्राह्मण दो हाथ में वीणा धारण कर गायन कर रहे हैं। इस प्रकार का उल्लेख मिलता है,"* यज्ञ के समय ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर वीणा वजायें ऐसा भी विधान उपलब्ध होता है।** तदुपरान्त गान करने वालों को पुरस्कार भी दिया जाता था। "अनोयुक्ते च शतं ददाति"*** (सौ गाड़े भरें उतना द्रव्य दिया जाता है)।

बृहदारण्यकोपनिषद् में वीणा और वीणावाद यानि वीणावादक‡ के अलावा दुंदुभि और शंख वाद्यों का भी नामोल्लेख मिलता है।‡‡

हंसोपनिषद् में चारों जाति के वाद्यों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं।‡‡‡ (१) चिणी (२) चिंचीणी (३) घंटा (४) शंख (५) तंत्री (६) ताल (७) वेणु (८) मृदंग (९) भेरी (१०) मेघ।

इस प्रकार चारों जाति के वाद्यों का उपयोग जब अपने आराध्य अथवा इष्टदेव को प्रसन्न करने के हेतु किया जाता है तो उसे कीर्तन भक्ति से भिन्न नहीं माना जा सकता।

---

* *ब्राह्मणौ वीणागाथिनौ गायतः श्रिया वा उतद्रूपम् यद्वीणा श्रियमेवास्मिन् तद्वतः यदा खलु वै पुरुष : श्रियमश्नुते वीणास्मै वाद्यते तदाहुः यदुभौ गायेताम् ।।*

** *प्रभं शुकास्थाच्छ्थी स्यात् नवै ब्राह्मणे विरमत इति । ब्राह्मणोऽन्यो गायेत । राजन्योऽन्यः, ब्रह्म वै ब्राह्मणः ।।*

*** *(तै. ब्रा. ३-९-१४)* *(‡) वीणायै तु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः ।*
(‡‡) बृह उप. २-४-७-९ ।

‡‡‡ *चिणीति प्रथमः, चिचींणीति द्वितीयः, घंटानादस्तृतीयः, शंखनादश्चतुर्थी, पंचमस्तंत्रीनादः, षष्ठस्तालनादः, सप्तमो वेणुनादः, अष्टमोमृदंगः, नवमे भेरिनादः, दशमो मेघनादः ।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गर्भोपनिषद् में सप्तस्वरों के नाम—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद मिलते हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् में "रसो वै स: रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनंदी भवति" अर्थात् वह परमात्मा रसरूप है और इस रस को प्राप्त करके जीव आनंद युक्त होता है। भक्तिमार्गीय वैष्णव संप्रदायों के सिद्धांतों के अनुसार रस आनन्दरूप ही माना गया है।

बृहदारण्यक उपनिषद में भी "अद्वैत ब्रह्म को परमानंद रूप मान कर अन्य सभी प्राणी उसी आनंद की मात्रा–अंश का उपजीवन करते हैं"—यह कहा गया है।

भक्तिमार्ग के अनुग्रह के सिद्धांत का भी सूचन कठ और मुंडक उपनिषद् में मिलता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुधा श्रुतेन।
यमेवेष वृणुते तेन लभ्यतस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

(प्रवचन के द्वारा या मेधा से या वहुश्रुतता द्वारा इस आत्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता है परन्तु जिस पर वह स्वयं अनुग्रह करता है वही उसे पा सकता है)

मुंडक उपनिषद् की भी एक श्रुति में भक्ति की सूचना हमें इन शब्दों में मिलती है: "उपासते ये पुरुषं ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तते धीरा:" (जो निष्काम मनुष्य उस पुरुष की उपासना करते हैं, वे धीर व्यक्ति इस शुक्र के पार पहुंच जाते हैं। साक्षात् उपासना का यह एक उदाहरण पर्याप्त है।

'भक्ति' शब्द के संबंध में शास्त्री दुर्गाशंकरजी का मत दृष्टव्य है—

'भक्ति' शब्द का धात्वर्थ किसी का आश्रय लेना होता है। किंतु पाणिनि के व्याकरण सूत्र ४-३-९५ के अनुसार आश्रय के साथ–साथ स्नेह अर्थ भी भक्ति शब्द का होता है।

यास्क ने इंद्रभक्तीनि, अग्निभक्तीनि इत्यादि का अर्थ इन्द्र के आश्रय में और अग्नि के आश्रय में रहे हुए पदार्थ ऐसा अर्थ किया है। पाणिनि के टीकाकारों ने इस सूत्र की व्याख्या में 'भक्ति' शब्द का अर्थ यास्क के अनुसार स्नेह पात्र वाचक दिखलाया है। पाणिनि के मतानुसार 'ति' प्रत्यय क्रियावाचक है अत: 'भक्ति' शब्द का अर्थ क्रिया वाचक है जिसमें भाववाचकता भी है।

मूल 'भज्' धातु का अर्थ किसी का 'आश्रय लेना' और 'चाहना' तथा भक्ति शब्द का अर्थ आश्रयस्थान स्नेहपात्र के बारे में हमारी लगन या स्नेह होता है। कालांतर में 'भक्ति' शब्द का अर्थ स्नेह मात्र में रूढ़ हो गया। 'भक्ति' शब्द चाहे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिस प्रकार प्रचार में आया हो किंतु श्वेताश्वतर उपनिषद् के "श्रद्धाभक्तिध्यान-योगादयो" वाक्य में इस शब्द का ईश्वरानुरक्ति अर्थ स्पष्ट है।

गोपालतापनीय उपनिषद् के पूर्व भाग के दूसरे मंत्र को भी कीर्तन भक्ति का प्रतिपादक माना जा सकता है। "पंचपदी जपन्...ब्रह्म संपद्यते। कृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभाय...सदानंदाय आनये" पंचपदीका जप—कीर्तन करते हुएं पुरुष मोक्ष प्राप्त करता है। यहाँ 'पंचपदी जपन' पद से कीर्तन भक्ति प्रतीत होती है। इस श्रुति वाक्य के अनुसार कीर्तन के दृष्टांततया अणुभाष्यकार इस प्रकार कहते हैं: "ओम्कारेणान्तरितं ये जपंति गोविंदस्य पंचपदं मनुं तेषामसौ दर्शयेदात्मरूपं तस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यंशांत्यै*" भावार्थ: "ओम्कार युक्त गोविन्द के पंचपद मंत्र का जो कीर्तन करता है उसे गोपाल श्रीकृष्ण अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराते हैं।" अत: मुमुक्षुको उसी के नाम का कीर्तन करना चाहिये। अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि "तस्मादेनं नित्यमभ्यसेन्नित्यमभ्यसेत्।" (गो. ता. उप. पूर्व भाग मं. ३०) अर्थ: इसलिये इसका नित्य—सदा कीर्तन करते रहना चाहिये।

सूत्रों में संगीत और भक्ति

भारतेतिहास के पाश्चात्य तथा तदनुसारी भारतीय विद्वानों द्वारा सूत्रों का समय ई. पू. ४०० वर्ष माना जाता है। सूत्रों में कर्म के अंगभूत संगीत का वर्णन उपलब्ध होता है। सूत्रों में चूंकि कर्म संबंधी चर्चा सुविशद की गयी है अतएव प्रसंगोपात्त संगीत संबंधी सूचना भी कुछ अधिक विस्तार से उपलब्ध होती है।

लाध्यायन श्रोत सूत्र में सामगान के अवसर पर वाद्यों को कैसे बजाना और तदर्थ कैसे बैठना आदि के संबंध में सूचनाएं मिलती हैं:

"अलाबुवीणापि शीलवीणे च प्रतिमंत्रयेतालाबुवीणेऽपि शीली च यं मंत्र-मधिजग्मतुस्तेनेदमुपगायतां ते साममहयेष्वत।"†

अलाबु वीणा और शील वीणा के पश्चात् उसके स्वरों द्वारा सामगान करना चाहिए।

पश्चिमेनोपगातृन् द्वे द्वे एकैका पत्नी कांडवीणां पिच्छोरं च व्यात्यासं वादयेत।‡

उपगाता के पश्चिम की ओर स्त्रियों को एक-दूसरे के सामने बैठा कर एक के हाथ में कांडवीणा और दूसरी के हाथ में पिच्छोरा बजाने के लिये देना चाहिये।

** गो. पा. उपनिषद् पूर्वभाग मं. २५।*

† लाध्ययन श्रोत सूत्र ४-२-४ (‡) लाध्यायन श्रोत सूत्र ४-२-५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"उपमुखं पिच्छोरा वादनेन कांडमयीम्"*

पिच्छोरा मुख द्वारा और कांडवीणा नखी द्वारा बजायी जाती है।

"अपघाटिला इत्याचक्षते" इन दोनों वाद्यों की जोड़ी को अपघाटिला कहते हैं**

"ताः प्रतिमंत्रयेत यां पल्यपघाटिला मृदुलं वादयिष्यति"†

इस अपघाटिला (दोनों वाद्यों) को कोमलता से बजाना चाहिये।

"अलाबुवीणायां वक्राः कपिशीर्षयो च पूर्वस्यां द्वारि वहिसदसम्"††

अलाबुवीणा का शीर्ष भाग बंदर के मुख जैसा वक्राकार होता है।

इसी तरह महावीणा और शीलवीणा का उल्लेख भी इसी संदर्भ में उपलब्ध होता है।

ब्राह्मण ग्रंथों में वाणवाद्य का शततंत्री (१०० तार की वीणा आधुनिक सुरमंडल सदृश) वीणा के रूप में उल्लेख हुआ है।††† किन्तु शांख्यायन श्रोतसूत्र में इस प्रकार कहा गया है : "पलाश के दंड को बैल के चमड़े से मढ़कर दंड के मूल में दस छिद्रों में दस-दस तार लगाकर अग्रभाग में बांधे जाते हैं। और उसे वेतस (नेतर) या पलाश की दंडिका द्वारा बजाया जाता है।‡

लाध्यायन श्रोत सूत्र में भी शततंत्री वीणा का वर्णन उपर्युक्त शांख्यायन सूत्र के अनुसार ही है किन्तु अंतर इतना ही है कि शांडिल्य के मत में १० के स्थान पर तीन छिद्र और बीच के छिद्र में ३४ तथा अन्य दो छिद्रों में ३३-३३ तार बाँधे जाते हैं।‡‡

---

* लाध्यायन श्रौत सूत्र ४-२-६

** ,, ,, ,, ४-२-७

† ,, ,, ,, ४-२-८

†† ,, ,, ,, ४-२-१०

††† *वाणः शततंतुर्भवति (तैं. ब्रा. कां. ७-५-९-२)*

‡ *अथैतां वीणां शततंत्रीम् उपकल्पयति। तस्या पालाशी सूना भवति। औदुम्बरी सूना पालाशी दंड : तमानुडुहेन सवरोहितेन चर्म्मणा वाह्यतो लोम्नाभिषी व्यंति तस्यै मूले दंडं दशधाति विध्यति। ता दश-दश रज्जु प्रवयंति। अग्रे नाना वंधंति दंडसमासा वीणा शततंत्री भवति वेतसशाखा सपलाशां वादिन्यूपकप्ता भवति (शांख्यायन श्रो. सू. १७-१-३)*

‡‡ *त्रिष्यिति शाण्डिल्यशतु स्त्रिशन्मध्यमे त्रयस्त्रिंशता पा मित इति (ला, श्रो. सू. ३)*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इन तारों को क्रमश: 'भर्भुव: स्व:' स्वरों की तरह उत्तरोत्तर ऊँचे आवाज से मिला कर मंत्रोच्चार पूर्वक स्पर्श करने के बाद बजाना चाहिये। पश्चात् "प्राणायत्वे इति उध्वमुल्लिखेत् अपानायत्वेत्यवाचम्" अर्थात् प्राणायत्व मंत्र से उर्ध्व उल्लेखन (आरोहण) और "अपानायत्व' मंत्र से नीचे का उल्लेखन (अवरोह) करना चाहिये।

सूत्रकालीन संगीत के विषय में पं. ना. मो. खरेजी का मन्तव्य उल्लेखनीय है--

" 'संगीत-सूत्र' नामक सरस्वती विरचित ग्रंथ यद्यपि आज लुप्तप्राय है। तथापि इसके दो पृष्ठ स्व. तनसुखराम त्रिपाठी को प्राप्त हुए थे। त्रिपाठीजी ने वि. सं. १९६९ में 'गुजराती' के दीपोत्सवी अंक में ये दो पृष्ठ प्रकाशित करवाये थे। इस ग्रंथ की टीका 'जयगोपाल चिंतामणि' नामक विद्वान् ने की है। जय गोपाल तैलंग था और सुप्रसिद्ध गो. श्री विट्ठलनाथजी का शिष्य था। जयगोपाल वि. सं. १६३२ के लगभग विद्यमान था। इस टीका को देखने से मालूम पड़ता है कि यह ग्रंथ भरतनाट्य से प्राचीन है, कदाचित् सूत्रकाल का भी हो सकता है।"*

एक जयगोपाल अष्टछाप के स्थापक श्रीमद् विट्ठलनाथजी के पौत्र भी हुए हैं। किंतु विश्वसनीय सूत्र के अभाव में उपर्युक्त उल्लेख में पं. जयगोपाल का समय १६३२ लिखा होगा। वे गोस्वामीजी श्री विट्ठलनाथजी के पुत्र श्री रघुनाथजी के पुत्र हैं और इनका समय वि. सं. १६३७-१७१२ तक माना जाता है। अत: हमारा अनुमान है कि जब ये वि. सं. १६५७ में कोकण प्रदेश में पधारे तब देवी भक्त मावजी को आपने प्रभावित किया था और वह आपका सेवक भी बना। इसी समय 'संगीत सूत्र' की प्राप्ति की संभावना लगती है। पश्चात् जब वि. सं. १६६४ में आपका ग्वालियर आगमन हुआ संभवत: तभी आपने इस ग्रंथ पर टीका लिखी होगी।

सूत्रों में संगीत के विवेचन के बाद अब हमें सूत्रों में भक्ति तत्त्व के स्वरूप पर दृष्टिपात करना चाहिये। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है—

वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति।

"वीणा वादन के तत्त्व का जानकार श्रुति-जाति के ज्ञान में निपुण तथा तालज्ञ बिना किसी प्रयास के मोक्षमार्ग को पा जाता है।"

ब्रह्मसूत्र के चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद में व्यासजी के 'स्मरंति' उल्लेख में— 'भक्तजन सतत मेरा स्मरण करते हैं' साथ में जो 'च' और जोड़ा गया है उससे कीर्तन-श्रवण-भक्ति भी अभीष्ट है।

---

* *गुजरातमां संगीतनुं पुनरुज्जीवन पृ. १७८*

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5
Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भगवान् के नाम गुण और महिमा का गान करना ही कीर्तन भक्ति है। संगीत (राग, ताल और स्वर) में भगवद् गुणगान को हम कीर्तन-भक्ति के रूप में प्रस्तुत करना चाहेंगे। उपर्युक्त अर्थ के समर्थन में पद्मपुराणोक्त श्रीमद्भागवत माहात्म्य के षष्ठाध्याय का निम्नलिखित वचन उपयुक्त होगा—

"दृष्ट्वा प्रसन्न महदासने हरिं कृते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा।
भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमत्कीर्तनदर्शनाय।

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत।
इंद्रोऽवादीन्मृदंगं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमाराः"

नारद भक्तिसूत्र में कहा है:—

संकीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभवयति च भक्तान् ॥८०॥

भगवान् का प्रेमपूर्वक कीर्तन करने से भगवान् शीघ्र प्रकट होते हैं और अपने भक्तों को शीघ्र अनुभव (दर्शन) कराते हैं।

महर्षि शांडिल्यरचित भक्ति सूत्रों का वैष्णव भक्ति के निरूपण में महत्त्व पूर्ण स्थान माना जाता है। उनके सूत्र परंपरागत होते हुए भी कुछ नवीन तत्त्वों का निर्देश करते हैं। भावुकता की दृष्टि से नारद भक्ति सूत्रों में शांडिल्य की अपेक्षा अधिक व्यापक रूप से एवं अन्य साधना मार्गों की तुलना में उत्कृष्टतया भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि नारद भक्तिसूत्र परवर्ती रचना है। प्रेम के अनिर्वचनीय स्वरूप की परिभाषा देते हुए नारद भक्ति सूत्र प्रेम को भक्ति का अनिवार्य अंग मानते हैं। भगवत्प्राप्ति के साधनों में भगवान् के गुणों के श्रवण, स्मरण, कीर्तन आदि के विधान में प्रेमलक्षणा भक्ति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। स्वयं भगवान् का ही कथन है—

नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद।

यहाँ 'गायंति' पद से भगवद गुणों के गायन का महत्त्व स्पष्ट होता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

महाभारत-युग का संगीत और भक्ति तत्त्व

महाभारत में संगीत के पारिभाषिक शब्दों का विशेष प्रमाण तथा कोई विशिष्ट नवीन का निर्देश दृष्टिगत होता नहीं है तथापि संगीत का प्रसार और प्रचार उत्तरोत्तर आगे बढ़ता हुआ दिखाई देता है ।

महाभारत के आदि पर्व में कच और देवयानी दोनों को "संगीत कला में प्रवीण" कहा है । कच को गायन, वादन और नृत्य में प्रवीण बताया गया है ।* देवयानी का भी कच (विप्र) के सन्मुख गायन करने का उल्लेख किया गया है ।** नितन्तु राजा की कन्या के कंठ-गान की उपमा ऐसी वीणा के मधुर आलाप से दी गयी है, जिसमें गान्धर्व स्वर उत्पन्न होता है ।†

सभापर्व में इन्द्रसभा के वर्णन में गान करते हुए विद्याधर आदि गान्धर्वों तथा नृत्य-परायण मेनका, रंभा, उर्वशी इत्यादि अप्सराओं के नामोल्लेख प्राप्त होते हैं ।††

कुबेर की सभा वर्णन में विश्वावसु, हाहा, हुहू, पर्वत, शैलूष, गीतहा, चित्रसेन तथा चित्ररथ आदि अनेक गान्धर्वों के उल्लेख मिलते हैं ।‡

विराट् राजा के यहाँ अर्जुन षंढ रूप में स्त्री बनकर जाता है, तब अपने कार्य-ज्ञान का परिचय देते हुए कहता है—

नृत्यामि गायामि च वादयाम्यहं प्रानर्तने कौशल नैपुणं मम ।
तदुत्तरायाः परिधत्स्व नर्तने भवामि देव्या नरदेव नर्तकी ।।
(विराट पर्व श्लोक-१८-अ० ११)

विराट् पर्व में द्रौपदी के कंठ के वर्णन में "वीणेव मधुरालापा गांधारं साधु मूर्च्छनी" कहा गया है । "गांधारं साधु मूर्च्छनी" पद से वीणा के तार के सुर में से मूर्छना द्वारा गान्धार स्वर उत्पन्न होना कहा गया है ।‡‡ आज भी तानपुरे के मन्द्र खरज सुर के तार से गान्धार स्वर की सूक्ष्म ध्वनि निकलना प्रसिद्ध है ।

---

* गायन्नृत्यन्वादयंश्च देवयानीमतोषयत् ।

** देवयान्यपि तं विप्रं नियमव्रतधारिणम् ।
गायन्ती च ललन्ती च रहः पर्यचरत्तथा (आदिपर्व-अ-७०)

† वीणेव मधुरालापा गांधर्वस्वरमूर्छिता ।
उत्तमा सर्वनारीणां भौमाश्चीह्यभवत्तदा ।। (आदिपर्व० अ० २१४-४९)

†† सभापर्व अ० ७, श्लोक-२४-२५ । ‡ सभापर्व-अध्याय-१०

‡‡ विराट्पर्व—अ० २२ : श्लोक-१२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वाद्यों में मुख्यत: मृदंग, झांझ, भेरि, पणव, आनक, गोमुख, आडंबर, शंख और दुन्दुभी के नाम प्राप्त होते हैं । इन वाद्यों को वजाने वालों के कुशल और शिक्षित होने का उल्लेख भी किया गया है।* धर्मराज के राज्याभिषेक के समय गान्धर्वों तथा अप्सराओं का गायन, वादन-नर्तन एवं युधिष्ठिर तथा श्रीकृष्ण को जगाने के लिये गायकों द्वारा गान करने का भी वर्णन है ।†

दक्ष कृत स्तुति में महादेव को "गीतवाद्यपरायण", "मुखवादित्रवादिने (मुखवाद्य नाम के वाद्य वजाने वाले) तथा "नर्तनशीलाय" (नृत्य में निपुण) इत्यादि विशेषणों से संवोधित किया गया है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि महाभारत के समय में (१) राज्याभिषेक, विवाहादि एवं यज्ञयागादि जैसे शुभ सामाजिक तथा धार्मिक प्रसंगों में संगीत के कार्यक्रमादि आवश्यक माने जाते थे (२) रणभूमि में रणगान तथा रण-वाद्य जोर-शोर से वजाये जाते थे (३) गान, वाद्य और नृत्य में पारंगत लोग भी थे तथा (४) व्यावसायिक गायक-वादक लोग भी गायन-वादन और नर्तन करते थे (५) राजधानियों में गीत-नृत्य की शालायें थीं, जिनमें नगरजन शिक्षा प्राप्ति के लिये जाते थे। इस प्रकार इस समय संगीत के भौतिक (विलासमय) तथा आध्यात्मिक (पवित्र) दोनों स्वरूप दिखाई देते हैं ।

रामायण–कालीन संगीत

रामायण का समय भी ई.स. पूर्व तीसरी चौथी शती माना जाता है । वेद और उपनिषद् युग का संगीत प्रवाह इस समय में बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ दिखाई देता है । इनका अनुभव महर्षि वाल्मीकि के काव्यों में अनेक स्थलों पर होता है । बालकांड के छंदों में वीणा के साथ गान करने का उल्लेख एवं ताल में प्रवीण संगीतज्ञों का "तालापचरा:" नाम भी दृष्टिगोचर होता है । महर्षि वाल्मीकि के शिष्यों में "लव" और "कुश" अच्छे संगीतज्ञ थे । जिन्होंने "पाठ्य" और "गेय" दोनों प्रकारों से रामायण का पठन और गान किया था।‡ यही नहीं सातों

---

* मदंगाझर्झराभैर्यः पणवानगोमुखाः ।
आडंवराश्च शंखाश्च दुन्देभ्यश्च महास्वनाः ।।
वादयन्ति स्म संहृष्टा कुशलाः साधुशिक्षिताः ।। (द्रोणपर्व)

† शान्तिपर्व अ० ५२

‡ पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम् । (वालकांड, स० ४।८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकार की जाति से युक्त एवं वीणा के स्वर और लय से समन्वित होने का उल्लेख भी प्राप्त होता है ।*

मार्गी संगीत, जो अधिक प्राचीन माना जाता है, के गान का निर्देश "मार्ग विधान संपदा" पद में मिलता है ।‡

तदुपरान्त 'जातिभि:सप्तभिर्युक्तं' उल्लेख से (चार षाड्ज ग्रामिक और तीन माध्यम ग्रामिक) सात जातियाँ प्रयुक्त होने के विधान के अतिरिक्त विकृत या संसर्गज जातियों की कोई चर्चा रामायण में दिखाई देती नहीं है। किन्तु मालूम होता है कि उस समय जाति गान प्रचार में था, जिसे हम मार्गी-संगीत के रूप में पहिचान सकते हैं।

वाल्मीकि रामायण में निम्नलिखित अनेक पारिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं।

(१) स्थानमूर्छन, गान्धर्व, लय, गीत, मार्ग, जाति, नाटक (बालकांड-सर्ग ४६)

(२) अयोध्याकाण्ड में:—गान्धर्व, गीत, समाज, श्रुति

(३) किष्किंधा काण्ड में—संगीत

(४) सुन्दर काण्ड में—आनोद्य, स्थान, स्वर, नृत्य और अंगहार

(५) युद्धकाण्ड में—रंग

(६) उत्तरकाण्ड में—मात्रा, कला, करण, समताल गीति, मूर्छना, प्रमाण और कलामात्राविशेषज्ञ ।

वाद्यों के नामोल्लेख निम्न प्रकार प्राप्त होते हैं:—

तत्वाद्यों के नाम:—

१ वीणा, २ मत्तकोकिला, ३ विपंची

सुषिर-वाद्यों के नाम:—

१. वेणु, २ शंख ३ भेरी

अवनद्ध जाति के वाद्यों नाम:—

१ दुन्दुभी २ पटह, ३ मृदंग, ४ डिण्डिम, ४ पणव, ६ मुरज, ७ मडडुक, ८ आडम्बर, ९ चेलिका, १० कोण ।

---

* जातिभि: सप्तभिर्युक्तं तंत्रीलयसमन्वितम् ॥ (बालकांड, स० ४।८)

‡ ततस्तु तौ रामवचः प्रचोदितातगायनां मार्गविधानसंपदा ।
स चापि रामः परिषद्गतः शनैर्बभूषयासक्तमना बभूव ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घन-वाद्य में ताल

उपर्युक्त उल्लेखों में तत् वाद्य की प्राचीन वीणाओं में मत्तकोकिला और विपंची वीणा से भिन्न सारिकायुक्त किन्नरी वीणा का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में प्राप्त नहीं होता।

रामायणकाल के संगीत के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि (१) इस समय में संगीत के बहुत से पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग आरंभ हो चुका था।

(२) राज्यों में एवं जनसमाज में धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में संगीत का सार्वत्रिक प्रचार था।

(३) गायक, वादक और नर्तक लोग व्यावसायिक दृष्टि से लोक-रंजन करते थे तथा धार्मिक कार्यों में भी रस लेते थे।

(४) गायक-वादक-नर्तकों को पुरस्कार देने की प्रथा भी थी।

(५) संगीत शाला, नृत्य-शालाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

रामायण युग में भक्ति-तत्त्व का समावेश भी संगीत की व्यापकता के साथ दिखाई देता है। भगवान् रामचंद्र की गाथाओं का सुस्वर में गान करने के विधान में कीर्तन-भक्ति स्पष्ट दृष्टिगत होती है। तथा उत्तरकांड में रावण के द्वारा साम-स्तोत्रों से की गयी शंकर भगवान् की स्तुति एवं दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में पुरोहितों ने साम श्रुतियों से पद्धतियुक्त और मधुर गान किया था। इन उदाहरणों से रामायण युग में भक्ति का निर्देश स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है।

हरिवंश

हरिवंश को एक स्वतंत्र पुराण माना जाता है। परन्तु यह महाभारत का उत्तरकालीन एक विभाग होने से उसकी चर्चा इसी प्रकरण में करना हमने आवश्यक समझा है। हरिवंश के संगीत विषयक अनेक विधानों में से यहाँ उदाहरणार्थ कुछ पर विचार करेंगे।

"जिस समय यादव जलक्रीड़ार्थ समुद्र-तट पर गये, तब अपने साथ गायक वादकों और नटिओं को ले गये थे। जिनमें गन्धर्व और अप्सरायें भी थीं। जब श्रीकृष्ण ने 'छालिक्य' गान गाने की आज्ञा की, तदनुसार वे गाने लगे। नाना प्रकार के वाद्य भी बजाने लगे। जिनमें नारदीय (षड्जग्रामरागादि में प्रयुक्त होने वाली) वीणा की ध्वनि से चित्त आकर्षित होता था।‡

‡ 'आज्ञापयामास ततः स तस्यां निशि प्रहृष्टो भगवानुपेन्द्रः।
छालिक्यगेयं बहुसन्निधानं यदेव गान्धर्वमुदाहरन्ति ॥६७॥
जग्राह वीणामथ नारदस्तु षड्ग्रामरागादि समाधियुक्ताम्।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'छालिक्य' गान स्त्रियों और पुरुषों का समूह गान होता होगा। इस संबंध में 'छांदोग्योनिषद्' में कहा है कि अंगीरसमुनि ने जब भगवान् श्रीकृष्ण को वेदान्त की दीक्षा दी तब सामवेद के गायन का यह मर्म भी समझाया था। मालूम होता है इस मर्म द्वारा श्रीकृष्ण के छालिक्य नामक गेय प्रकार का आविष्कार हुआ होगा।

पश्चात् श्रीकृष्ण ने स्वयं हल्लीसक नृत्य हाथ में बंसी लेकर किया।* 'हल्लीसक' अर्थात् बहुभिः स्त्रीभिः सह नृत्यम्—बहुत सी स्त्रियों के साथ एक पुरुष का नृत्य करना होता है।†

श्लोक ७८ के अंतिम चरण में उल्लेख में 'ततः प्रवृत्ता च कुमारजातिः' का 'छालिक्य गान से गायन की अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई' इस प्रकार का अर्थ भी विद्वानों में माना जाता है।

पश्चात् कहा है कि 'छालिक्य गायन के गुण और फल हिमालय पर्वत ही जान सकता है। अन्य कोई समर्थ नहीं है।'

क्योंकि छालिक्य गान में ६ ग्रामरागों की मूर्च्छनाएँ उत्पन्न होती है। इन मूर्छनाओं को यथास्थान मिलाकर गान करने के लिये तपश्चर्या का सूचन किया गया है। इनमें 'षड्जग्राम रागेषु' पद से ज्ञात होता है कि उस समय ग्राम-रागों का प्रचार था। तदुपरान्त 'आगांधार ग्रामराग'—जिनमें गांधार ग्राम तक के रागों का समावेश हुआ हो इस प्रकार का गीत तदतिरिक्त लयताल समंश्रुत्या उल्लेख का अर्थ लय, ताल, सम इत्यादि से युक्त होता है।‡‡

उस समय के वाद्यों के कुछ उल्लेखों में से कतिपय निम्न लिखित उदाहरण देखिए

"वल्लकी वाद्यमाना हि सप्तस्वरविमूर्छिताम्" वल्लकी वीणा में मूर्छना द्वारा सात स्वर उत्पन्न होते थे। पर्व—१—अ.४८।

---

* हल्लीसकं तु स्वयमेवकृष्णः सवंशघोषम् नरदेवपार्थ :।।

† पाठांतर में, झल्लीसक' शब्द भी प्राप्त होता है किन्तु 'हल्लीसक' पाठ इस संदर्भ में हमें सुसंगत लगता है। 'झल्लीसक' नृत्य की व्याख्या इस प्रकार है—
निषादर्षभादिसप्तस्वरयुतं वाद्य विशेषम्"
अर्थात्—'निषाद और ऋषभादि स्वरों से युक्त वाद्यविशेष' होता है।

‡ ज्ञातुंसमर्थोहिमवान् गिरिवा फलाग्रतोवागुणतोथवापि।
शक्यं न छालिक्यमृते तपोभिःस्थाने विधानात्यथ मूछंनासु ।।८१।।
षड्ज ग्राम रागेषु च तत्र कार्यं .....।

‡‡ अध्याय-९२, श्लो. २४-२५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"नांदि च वादयामास प्रद्युम्नो गद एव च"—नांदि नामक वाद्य का प्रद्युम्न ने वादन किया । संगीतसार संग्रह, वाद्याध्याय—पृ. १७४ ।

हरिवंश में चारों प्रकार के वाद्यों का उल्लेख किया गया हैं।* चारों जातियों के वाद्यों के उपरान्त छलिक्य गान, ग्रामराग पद्धति, मूर्छना व्यवस्था, कथा प्रसंग आदि में संगीत की उपयोगिता विषयक वर्णन प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इस युग में भी धार्मिक एवं विलास व्यवहार में संगीत को आवश्यक मानने का प्रचार दिखाई देता है ।

महाभारत-युग का भक्ति प्रवाह

महाभारत के शान्तिपर्व और नारायणीय पर्व में भक्ति मार्ग के उद्भव की कल्पना स्पष्ट होती है। भीष्म पितामह ने जो पंचरात्र सम्प्रदाय की उत्पत्ति आदि का वर्णन किया है, उनमें भक्तिमार्ग की परंपरा अति प्राचीन होने की जानकारी है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस प्रकार अति प्राचीन साहित्य अंतर्धान भी हो गया है । नारायणीय पर्व से मालूम होता है कि उस समय का भक्ति धर्म भगवद्गीता में कहा गया हैं। भक्तिमार्ग की दृष्टि से गीता के समय से ही भक्ति मार्ग का निश्चित स्वरूप प्राप्त होना माना जाता है ।

शास्त्री दुर्गाशंकरजी ने लिखा है कि "भगवान वासुदेव ने वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग, आदि तत्कालीन साहित्य में से उत्तम तत्त्वों के निष्कर्ष निकाल कर अपनी असाधारण प्रतिभा से भिन्न-भिन्न विचारों का गीता द्वारा पूर्व प्राचीन युग के अपूर्ण अंशों में समावेश करते हुए सम्पूर्ण भक्तियोग का स्वरूप प्रकट किया। जिस समय त्याग, तपश्चर्या और याज्ञिक हिंसा से सांसरिक जनों के हृदय भग्न हो चुके थे, वे ईश्वर को मानते नहीं थे, केवल सम्पूर्ण नीति-पालन से ही निर्वाण प्राप्ति मानते थे, सामान्य प्रजा और समाज संरक्षण के लिये चिंतित रहते थे, उस समय भगवान् वासुदेव ने गीता-उपदेश द्वारा सांख्य, योग और कर्म एवं नीति से समन्वित निष्काम भक्तिमार्ग-धर्म प्रगट किया। कालक्रम परिवर्तनानुसार पूर्व के नारायण और विष्णु के समान गीताकार वासुदेव परमेश्वर रूप में पुजाने लगे। ‡

महाभारत में वासुदेव ही परमात्मा, परमपुरुष, नारायण, जगत्—सृष्टा और सर्वभूतों के आत्मा माने गये हैं। संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी उन्हीं की मूर्तियां कही गई हैं। नारायणीय पर्व में इस प्रकार भागवत और पांचरात्र धर्म के सिद्धांत दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकरण के अध्याय १९६ में भगवान् श्री कृष्ण

---

* "ततो घनं ससुषिरं मुरजानकभूषितम् ।
तंत्रीस्वरगणैर्विद्धानातोद्यानन्ववादयन् ।। (पर्व—२, अ. ९३, श्लो. २२)

‡ वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास—पृ. १३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ने कहा है कि मैं नारायण हूँ और मैं ही विष्णु हूँ। महाभारत में नर-नारायण की एकता में अर्जुन को 'नर' और श्री कृष्ण को 'नारायण' कहा गया।

इस समय वासुदेव के चार व्यूहों की मान्यता भी प्रचलित थी। किन्तु कुछ ग्रन्थों का मन्तव्य है कि पूर्व में चार में से दो व्यूह 'वासुदेव' और 'संकर्षण' की भक्ति प्रचार में थी। पश्चात् चार व्यूहों की मान्यता प्रचार में आई होगी। गीता में केवल वासुदेव का ही उल्लेख प्राप्त होता है। अतः गीता का समय ईसा की छठी उताब्दी से पूर्व का माना जाता है। पाणिनि ने वासुदेव और अर्जुन का संयुक्त उल्लेख* किया है, इस आधार पर विद्वान् गीता का ममय पाणिनि के पूर्व का होने का अनुमान करते हैं।

गीता केवल भक्ति मार्ग का साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं है। गीता अनन्य और अव्यभिचारिणी भक्ति के विचारों का प्राचीनतम एवं सर्वमान्य ग्रन्थ है। श्रीमद्-भगवद्गीता में अनेक स्थलों पर कीर्तन-भक्ति के विधान प्राप्त होते हैं।

अध्याय ९ श्लोक १४ में "सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः" में 'कीर्तयन्तःसततं' पद से कीर्तन-भक्ति स्पष्ट होती है। तथा दशम् अध्याय में 'कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च"–हमेशा मेरा कीर्तन करने वाले भक्त संतुष्ट होते हैं और आनंद प्राप्त करते हैं। इस श्लोक में 'कथयन्तः' पद से कीर्तन भक्ति का निर्देश प्राप्त होता है। अ. ७ के श्लोक २१ में "यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति' में अर्चन (पूजा) भक्ति तथा अ. ९, श्लो. १४ में वन्दन भक्ति (नमस्यन्तश्च मां भक्त्या) इसी अध्याय के २७ में श्लोक में निवेदन भक्ति, उपरान्त अ. १८ में 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' कथन से प्रपत्ति (शरण) के लिए कहा गया है। इन विधानों से श्रीमद् भागवत और भक्तिमार्गीय ग्रन्थोक्त नवधा भक्ति वर्णन के सभी प्रकार गीता में प्राप्त होते हैं।

गीताकार भगवान् श्रीकृष्ण सामवेद के 'उद्गाता' भी हैं। श्रीकृष्ण संगीत के महान् ज्ञाता थे। स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'वेदानां सामवेदोऽस्मि।' इस प्रकार भगवान् ने सामवेद रूप से साम-संगीत की स्वरलहरियों से स्वकीय जनों के अनेक प्रकार के कष्ट दूर किये थे जैसेः–जरासंध की गदा से जब भीमसेन के गात्र शिथिल बन चुके थे तब साम गान द्वारा अपना हस्तांवुज फैलाकर उसे स्वस्थ बना दिया था।

भीष्म के बाणों से अर्जुन को जब जलन होने लगी थी तब भी भगवान् श्रीकृष्ण ने साम की ऋचाओं के गान द्वारा अग्निदाह दूर किया था। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने साम-गान की परंपरा को आगे बढ़ाकर उस समय के प्राचीन एवं अति प्रचलित वीणा, वेणु और दुन्दुभी वाद्यों में से वेणु को पसंद कर गान-परंपरा

* वासुदेवार्जुनाभ्यांवुन् ।४-३-९८। पाणिनि अष्टाध्यायी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को वाद्य-वादन में भी प्रकट किया। 'वेणु' वाद्य पसंद करने का व्यावहारिक कारण यह भी संभावित है कि उस समय 'वीणा' का वादन अधिकतर स्त्रियाँ और 'वेणु' का वादन प्राय: पुरुष करते थे। दूसरे अपने भक्तों के कष्ट—निवारणार्थ तथा निजानंद का सुख पान कराने के लिये अहर्निश साथ रह सके इसलिए भी 'वेणु' वाद्य को पसंद किया था।

वेणु के मधुर-नाद द्वारा गोचारण के समय संकेत दिया जाता था। यही नहीं वेणु की संगीत-सुधा द्वारा गायें अधिकाधिक प्रमाण में दूध देने लगती थीं। तदुपरान्त वेणु द्वारा साम गान के स्वरों को सुनते ही गायें और व्रजवासियों को कोई बीमारी नहीं रहती थी। इन्द्र-कोप से प्रलय जैसी मेघ-वर्षा के समय गोवर्धन पर्वत को वेणु की संगीत लहरियों के साथ उठाकर गोवर्धन और व्रजवासियों की रक्षा की।*

महारास के समय चल वस्तु अचल तथा अचल चल में परिवर्तित हो जाने और वेणु की स्वर माधुरी द्वारा स्फुरायमान होने का वर्णन श्रीमद्भागवत में सुप्रसिद्ध है। आज भी वृक्षों की वृद्धि के लिये, गायों में दूध-वृद्धि एवं कुछ रोग-निवारणार्थ भी संगीत स्वरों की महत्ता के विषय में वैज्ञानिक संशोधन हो रहा है। इन प्रयत्न में कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है।

सामवेद की 'राणायणी' संहिता की शिष्ट परंपरा अनेक प्रशाखाओं में विभक्त हो चुकी हैं, किन्तु विषयात्मक दृष्टि से उनके दो विभाग दिखाई देते हैं—(१) पूर्वार्चिक और (२) उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक विभाग में जो ग्राम गीतों का समावेश किया हुआ है उन ग्रामगीतों का भगवान् श्रीकृष्ण गोकुलादि ग्रामों में तथा आरण्यक गीतों का जब वन में पधारते तब रसास्वादन कराते थे। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण साम के उद्गाता व संगीत—कला-पारंगत थे।

महाभारत के समय की भक्ति और संगीत का स्वरूप श्रीकृष्ण के जीवन समय में ही अधिक स्पष्ट होता है। महाभारत के शान्ति पर्व में भागवत धर्म के नारायणीय सम्प्रदाय के वर्णन बाद "श्वेतद्वीप में नारद को स्वयं भगवान् के दर्शन होते हैं और वासुदेव धर्म का स्वरूप भगवान् उन्हें समझाते हैं, ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत के नारायणीय पर्व में परमदेव वासुदेव के अतिरिक्त अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं, जिनमें नारायण मुख्य है। अत: कई विद्वानों का कहना है कि नारायण की परंपरा वासुदेव से प्राचीन है। वासुदेव की उपासना का प्राचीनतर मार्ग पंच-रात्र भागवत सम्प्रदाय है। विवाद को छोड़कर हम इस सिद्धांत का स्वीकार करते हैं कि विष्णुभक्ति के विकास में विष्णु, नारायण, वासुदेव और श्रीकृष्ण इस प्रकार क्रमिक विकास की परंपरा रही है क्योंकि नामभेद से परमदेवता में भेदबुद्धि रखना उचित नहीं है।

---

* *या वंसी की फूलं पे गरिवर लियो उठाय।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नारदीय-शिक्षा

'नारदीय शिक्षा' का समय सामान्यतः ई. स. ३०० वर्ष पूर्व का माना जाता है। क्योंकि उनमें वेदकालीन संगीत का उल्लेख किया गया है किन्तु इसके प्रथम-पाठक में जो श्रुति के उल्लेख प्राप्त होते हैं उन का गर्भित अर्थ जो स्वर-भाग किया गया है, ऐसा अर्थ ईसा की चतुर्थ शताव्दी तक के किसी ग्रन्थ में दिखाई देता नहीं है। "दत्तील' और 'भरत' ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में 'श्रुति' शब्द का प्रयोग किया है किन्तु उपर्युक्त अर्थ में नहीं । अतः विद्वान् उनका निश्चित समय कह नहीं सकते परन्तु ईसा की चतुर्थ शताब्दी पहिले का रचनकाल तो मानते ही हैं। इसे कुछ विद्वान् महर्षि नारद की नहीं किन्तु कोई अन्य नारद की रचना करते हैं। किन्तु हमें लगता है कि संगीत के प्राप्त ग्रन्थों में संगीताचार्य देवों की नामावली में महर्षि नारद का ही उल्लेख किया गया है। नारदीय वीणा भी महर्षि नारद की ही वीणा मानी जाती है। संगीत विषयक अनेक विधानों में महर्षि नारद ही माने गये हैं। अतः इस ग्रन्थ के कर्ता स्वयं महर्षि नारद होना अधिक वास्तविक कहा जायगा। रचना काल के संबंध में कुछ भी मत-भेद हो किन्तु हमारी दृष्टि से ईसा की शताब्दी के आरंभ के लगभग का समय माना जाना उचित होगा।

इस ग्रन्थ में सामवेद के स्वरों की चर्चा की गई है। स्वयं ग्रन्थकार ने कहा है कि 'नारदीय शिक्षा कोई वड़ा ग्रन्थ नहीं है किन्तु उत्तम वेदांग की चर्चा सुनने योग्य है।'*

नारद ऋषि ने इस ग्रन्थ में तान, राग, स्वर, ग्राम, मूर्छनादि के पवित्र, पावनकारी और पुण्य-लक्षण वताये हैं।**

(इनमें 'राग' शब्द का प्रयोग दिखाई देता है परन्तु इस ग्रंथ में राग-लक्षणों का उल्लेख किया नहीं है। क्योंकि राग शब्द वर्तमान अर्थ में उस समय अस्तित्व में ही नहीं था । यह १० वीं शतांब्दी के पश्चात् ही दृष्टिगोचर होता है।)

तीसरे श्लोक में सप्त स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छना तथा उनचास तानों का स्वर-मंडल वना हुआ कह कर सात स्वरों के नामों के स्पष्ट उल्लेख के साथ

---

* अल्पग्रंथ प्रभुतार्थं श्रव्यं वेदांगमुत्तमम् ॥ प्र. १-२-१।

** 'तान-राग-स्वर-ग्राम-मूर्छनानां तु लक्षणम् ।
पवित्रं पावनं पुण्यं नारदेन प्रकीर्तितम् ॥२॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

षड्ज ग्राम, मध्यम-ग्राम और गान्धार ग्राम का विधान भी* किया है।

स्वर-वर्ण के विधान में षड्ज का वर्ण कमल के समान, ऋषभ का शुक के रंग के समान, गान्धार का सुवर्ण जैसा, मध्यम का मोगरे के पुष्प जैसा, पंचम का श्याम, धैवत का पीत और निषाद का सर्ववर्ण** कहा है।

पंचम कंडिका में पशु-पक्षी की आवाज के साथ सात स्वरों की ध्वनि की तुलना निम्न प्रकार की है—"षड्ज स्वर मयूर, ऋषभ स्वर गाय, गान्धार स्वर भेड, मध्यम कौंच पक्षी, पंचम स्वर (वसंत के समय) कोकिल, धैवत स्वर अश्व और हाथी निषाद स्वर का उच्चारण‡ करता है।

षष्ठ कंडिका में साम गान के लिये 'दारवी' और 'गात्रवीणा' का उपयोग कहा है।' जिस वीणा पर सामवेद गायक गाते हैं उस स्वरों और व्यंजनयुक्त, करांगुलियों और अंगुष्ठ द्वारा रंजन करती हुई वीणा को 'गात्र-वीणा' कहते हैं।‡‡

---

* 'सप्तस्वरास्त्रयोग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।
ताना एकोनपञ्चाशदित्येतस्वरमंडलम् ॥४॥
षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा ।
पंचमो धैवतश्चैव निषाद सप्तम स्वराः ॥५॥
षड्जमध्यमगान्धारस्त्रयो ग्रामा प्रकीर्तिताः । (प्र. १, कं. २)

** 'पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभं शुकपिञ्जरः ।
कनकाभस्तु गान्धारः मध्यमः कुंदसंप्रभः ॥१॥
पञ्चमस्तुभवेत्कृष्णः पीतकं धैवतं विदुः ।
निषादः सर्ववर्णः साहित्येसा. स्वरवर्णिताः ॥२॥ (१.३–१.२)

‡ 'षड्ज वदति मयूरो गावो रम्भति चर्षभम् ।
अजाविके तु गान्धारं कौञ्चो वदति मध्यमम् ॥३॥
पुष्पसंधारणे काले कोकिला वक्ति पञ्चमम् ।
अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः ॥४॥

‡‡ 'दारवी गात्रवीणा च द्वे वीणे गानजातिषु ।
सामिकी गात्रवीणो तु तस्याः शृणुत लक्षणम् ॥१॥
गात्रवीणा तु सा प्रोक्ता यस्यां गायन्ति सामगाः ।
स्वर-व्यंजन-संयुक्ता-अङ्गुल्यङ्गुष्ठरञ्चिता ॥२॥ (कं ६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सामगान के आरंभ के पूर्व गायत्री मन्त्र का गान भी आवश्यक कहा है।* प्रथम ओं कार का उच्चारण करना, पश्चात् भूः भुवः स्वः ये तीन व्याहृती के वाद 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्' मंत्र का गान करना। पश्चात् सामगान का आरंभ करना।

तदुपरान्त गान्धर्व शब्द के अक्षरों के विषय में कहा है कि** 'ग कार से गेय, ध कार से कारु वहन और 'व' कार से वाद्य वादन लक्षित होता है। इस गान्धर्व गान से गान्धर्वों को आनंद होता है। तदतिरिक्त करांगुलियों का क्रम, मात्रा, मेल, स्वरांतर इत्यादि साम-गान विषयक माहिती का ठीक-ठीक वर्णन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है।

---

* 'प्रणवं प्राक्प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम् ।
सावित्रीं चातुवचनं ततो वृतान्तमारभेत्" ॥ (कं. ६–४)

** 'गेति गेयं विदुः प्राज्ञा धेति कारुप्रवाहनम् ।
वेति वाद्यस्य संज्ञेन गान्धर्वस्य विरोचनम् ॥१२॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पौराणिक युग

भक्तिधर्म के इतिहास में श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, नारायणी धर्म तथा पंचरात्र संहिताओं के उपरान्त भागवतादि पुराणों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। विद्वान् पुराणों का निर्माणकाल ईसा पूर्व दूसरी शती से ग्यारहवीं शती तक मानते हैं।

पुराणों में मुख्यतः श्रीमद्‌भागवत के अलावा गरुड़, अग्नि, मत्स्य, कूर्म, मार्कण्डेय, पद्म, विष्णु, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, नारदीय, वामन पुराण आदि हैं। इनमें विष्णु पुराण और भागवत को प्राधान्य दिया जाता है। पौराणिक युग में भक्ति तत्त्व के अनेक विधान उपलब्ध होने के कारण भक्ति मार्ग का स्वरूप और विकास स्पष्ट दिखाई देता है।

विष्णु पुराण में कहा है कि 'जिस प्रकार अग्नि से सुवर्णादि धातुओं का मल नाश होता है उस प्रकार भक्तिपूर्वक किया हुआ* भगवत्-कीर्तन सभी पातकों का नाश करने का उत्तम साधन है। कीर्तन भक्ति से केवल मल अर्थात् पापों का ही नाश होता है, यही नहीं इससे भी आगे बढ़कर महत्त्व का उल्लेख यह है कि 'सत्ययुग में ध्यानादि से, त्रेतायुग में यज्ञादि भजनों द्वारा तथा द्वापर में पूजनादि उपासना द्वारा जो फल प्राप्त होता है, यह फल कलियुग में केवल केशव भगवान् के कीर्तन (गुणगान) मात्र से प्राप्त होता है।**

गरुड पुराण के अनुसार यदि आत्मज्ञान तथा आत्मज्ञान से परमपद प्राप्त करने की इच्छा हो तो गोविंद भगवान् का कीर्तन (गुणगान) करो।†

वैष्णव पुराणों में भागवत पुराण का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। भागवत में भक्ति के विविध अंग प्रकार दृष्टिगत होते हैं। इनमें साधन भी भक्ति और साध्य भी भक्ति होने का सिद्धांत दिखाई देता है। नौ प्रकार की अर्थात् नवधा भक्ति और दसवीं प्रेमलक्षणा भक्ति को स्पष्ट करते हुए भक्ति के अनेक विधान प्राप्त होते हैं। इनमें भगवद्‌गुणानुवाद रूप कीर्तन भक्ति को ही कलियुग

---

* यन्नाम कीर्तनं भक्त्या विलापनमनुत्तमम् ।
मैत्रेयाशेष पापनां धातूनामिव पावकः ॥ वि. पु. ६।८।२०

** "ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥ वि. पु. ६।२।१७

† यदिच्छसि परं ज्ञानं ज्ञानाच्च परमं पदम् ।
तदा यत्नेन महता कुरु गोविंदकीर्तनम् ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में सरल, सुगम और सर्वश्रेष्ठ मार्ग कहा गया है। कीर्तन का आशय है भगवान् के नामों का, भगवद् चरित्रों का और भगवद् महिमा का गायन, वादन और नृत्य द्वारा प्रेम पूर्वक भगवान् में मनोवृत्ति को एकाग्र करना।

श्रीमद्भागवत में नवधा भक्ति का सांग उल्लेख है—

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥*

उपर्युक्त श्लोक में प्रारंभ में ही श्रवण और कीर्तन भक्ति को स्थान दिया गया है। श्रवण का फल कीर्तन ही सिद्ध होता है। प्रथम स्कंध में भी (श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च) दशविध लीलायुक्त प्रभुका श्रवण और कीर्तन करने का उल्लेख है।**

संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिः: इस विधान में भी कीर्तन-भक्ति की महत्ता स्पष्ट है।† 'यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्' इस वाक्य में उत्तमश्लोक प्रभु के गुणानुवाद के श्रवण और गान करने का स्पष्ट संकेत है।†† क्योंकि इस श्लोक में आश्रम, तप, वेदान्त-श्रवण, यज्ञादि सर्व धर्म का फल प्रभु के गुणों का गान (कीर्तन) करना ही कहा गया है।‡ तदुपरान्त 'तत्रान्वहं कृष्णकथाप्रगायतां' (कृष्णकथा चरित्रादिक जो गान करते हैं) तथा 'गृह्णन्ति गुणनामानि' (वार-वार भभु के नामों का कीर्तन गान करता है) इन वाक्यों में कीर्तन भक्ति का स्पष्ट दर्शन होता है।‡‡ एकादश स्कंध में भगवान् ने स्वयं कहा है—

विलज्ज ते उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥‡‡‡

जो लोक लज्जा को छोड़कर उच्च स्वरों से गान करता है, नृत्य करने लगता है, ऐसा भक्त समस्त लोकों को पवित्र करता है।

महाभारत में भागवत धर्म विषय में कथा आती है कि इस धर्म को नारद ने स्वयं नारायण से ग्रहण किया था। भागवत धर्म को प्रतिष्ठित करने के विषय में भागवत पुराण में कहा गया है कि जब व्यास जी ने देखा कि महाभारत और गीता में भक्ति का यथार्थ रूप नहीं निखर पाया और भक्ति पक्ष की स्थिति

---

* भा. स्कं. ७।५।२३

** भा. स्कं १ अ २ —श्लो. २४।

† स्कं. १।५।२८।

†† स्कं. १।५।१२

‡ इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य ----। यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्

‡‡ स्कं. १।५।३५।

‡‡‡स्कं. ११।१४।२४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संतोषजनक न होने से कोरा नैष्कर्म्य शोभा नहीं देता तब उन्होंने नारद के सम्मुख अपने मनका उद्वेग प्रकट किया और उसी की पूर्ति के लिए भक्ति-रस प्रधान भागवत पुराण की रचना की।* भक्ति मार्ग की प्रतिपादक शांडिल्य भक्तिसूत्र एवं नारदभक्तिसूत्रादि रचनाएं बाद की मानी जाती हैं। वासुदेव भक्ति का तात्त्विक निरूपण महाभारत काल से ही स्वीकृत किया है।**

भक्ति तत्त्व का ऐतिह्य-क्रम से विचार करने पर वैष्णव धर्म का प्रारंभिक रूप विष्णुपूजा के रूप में भागवत धर्म प्रतिपादक नारायणीय सात्वत याने पंचरात्र धर्म की शाखाओं द्वारा दृष्टिगत होता है। ये नारायण अथवा श्रीकृष्ण की उपासना के सम्प्रदाय माने जाते हैं। डॉ. बूलर के मतानुसार ये सम्प्रदाय जैन धर्म के पूर्व अर्थात् ईसा के पूर्व आठवीं शताब्दी के हैं।‡ पाली साहित्य के फ्रेंच विद्वान सेनार्ट ने कहा हैं कि विष्णुभक्ति के तत्त्वों तथा कथानकों को बौद्ध साहित्य में भी संग्रहीत किया गया है।‡‡

महाभारत युग में हम नारायणीय सम्प्रदाय का उल्लेख कर चुके हैं। ऐतिह्य दृष्टि से वासुदेव स्वयं श्रीकृष्ण और संकर्षण बलराम माने गये हैं। नारायणीय के पश्चात् द्वितीय धर्म सात्वत धर्म कहा जाता है। महाभारत में भी सात्वतों का उल्लेख हुआ है। श्रीमद्भागवत में भी सात्वत धर्मानुयायियों के अनुसार भगवान् वासुदेव की पूजा का वर्णन प्राप्त होता है।†

तंत्र-ग्रंथों में पद्मतंत्र में भागवत धर्म से ही ऐकान्तिक धर्म का प्रचलन बताया है।†† यह धर्म सात्वत धर्म का ही एक रूप कहा जाता है। सात्वत अथवा वासुदेव धर्म का सर्व प्रथम उपदेश अर्जुन को वासुदेव श्रीकृष्ण ने दिया था।†††
यहाँ वासुदेव और श्रीकृष्ण पृथक् नहीं, किन्तु एक ही सिद्ध होते हैं।

सात्वत धर्म में बाद में पंचरात्र का विकास होता है। महाभारत में कहा कहा गया है कि इस धर्म का नारायण ने श्रीमुख से गान किया था। चार वेद और सांख्ययोग के समन्वय से पंचरात्र नाम उपलब्ध होना माना जाता है। धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर ऐसा समझा जाता है कि बौद्धों

---

* भागवत स्कं. १ अ. ४—५

** सूरदास। भक्ति का विकास। पं. रामचन्द्र शुक्ल पृ.—१६—

‡ *B.C. Indian Antiquary* (*Vol. XXIII P.* 248 (1894)

‡‡ *Sanorta. The Indian Interpreter. Jan.* 1910 *P.* 177 *Octo.* 1909

† श्रीमद्भागवत स्कं. ९ अ. ९० श्लोक—४९।

†† सूरिः सुहृद् भागवतः सात्वतः पंचकालविदः।
एकान्तिकस्तन्मयश्च पंचरात्रिक इत्यपि ॥४।२।८८।

††† महाभारत शान्ति पर्व अ. ३४७।४८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और जैनों के निरीश्वरवादी प्रचार की प्रतिक्रिया के रूप में विविधविधानयुक्त वैष्णवमार्गीय पंचरात्र धर्म का विकास हुआ। पंचरात्र धर्म का मूल महाभारत में होते हुए भी यह धर्म ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी के लगभग अपनी पूर्ण शक्ति के साथ संगठित हो कर प्रचलित था। भगवद्गीता महाभारत का अंग होते हुए भी उसमें भक्ति का स्वतंत्र स्थान दृष्टिगोचर होता है। साम्प्रदायिक भक्तिमार्गों के प्रवर्तन के पूर्व गीता और पुराण साहित्य ही कृष्ण-भक्ति के आधार स्तंभ समझे जाते थे।

प्राचीनतर वेदकाल में ईश-तत्त्व के प्रति हृदय की कोमल वृत्तियों के विकास में सामगानादि संगीतमय ऋचाएं रची जा चुकी थीं। पश्चात् ब्राह्मण और उपनिषद् काल में संगीतवृत्ति और भक्तिवृत्ति के समन्वय का बीजारोपण हुआ। क्रमशः अस्फुट भक्तिवृत्ति स्फुट होती रही, साथ ही सामगान का संगीत भी विकसित होकर सामाजिक, धार्मिक कार्यों में सहभागी होने लगा। परवर्ती युग में महाभारत, गीता और पुराणों के समय भक्ति-बीज में से वृक्ष का दर्शन होने लगा और भक्ति अंग के साथ संगीत भी स्पष्ट होता रहा।

कुछ विद्वान् प्राचीन संगीत की दृष्टि से मुख्य तीन परंपराएँ फलित होना मानते है। इन तीनों परंपराओं में हम वैदिक काल की संगीतबद्ध ऋचाओं, उनका उपासनामय भक्ति-तत्त्व तत्पश्चात् ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्रकाल एवं महाभारत, गीता, रामायण तथा भागवतादि पुराणों के उद्धरणों से संगीत और भक्ति-तत्त्व की संक्षेप में चर्चा कर चुके हैं। आगम परंपरा में संगीत के आदिकर्ता देवाधिदेव महादेव को माना गया है। कहा जाता है कि शिव-पार्वती के संवाद रूप में ३६००० श्लोकों का एक गान्धर्व नामक ग्रन्थ (वेद) प्रचलित था। यद्यपि यह ग्रंथ अप्राप्य है तथापि इनकी विषय-सूची यामलाष्टक नामक ग्रन्थ में दी गई है। इन परंपरा के ग्रन्थों में नंदिकेश्वर कृत 'नंदिकेश्वर संहिता' ग्रन्थ भी आज प्राप्त नहीं है। परन्तु कहा जाता है कि संगीतरत्नाकार के टीकाकार सिंहभूपाल ने (ई. स. १५००) उनमें से कुछ श्लोकों के उद्धरण दिये हैं।

ऋषिकृत संहिता परंपरा में 'काश्यपीयम्' ग्रन्थ भी मुख्य माना जाता है। उनके भी कुछ उद्धरण परवर्ती कतिपय ग्रन्थों में होने का अनुमान है, परन्तु 'काश्यपीयम्' भी आज उपलब्ध नहीं है। तदतिरिक्त शैव और वैष्णव आगम ग्रन्थों में शिल्प तथा नाट्यादि विषयों के साथ संगीत विषय के विचारों का महत्वपूर्ण उल्लेख है।

कुछ विद्वानों का मत है कि ईसा की शती के आरंभ के आसपास वर्षों तक वैष्णव भक्ति प्रवाह मन्द-मन्द बहता रहा था। साथ में संगीतादि कक्षाएँ भी संकुचित दशा में दिखाई देने लगी थी। ईसा की चतुर्थ शताब्दी में प्रायः गुप्तों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के राज्य काल पश्चात् भागवतधर्म की भक्ति एवं संगीतादि कलाओं को सिंचन और वल प्राप्त होने पर पूर्ववत् प्रचार होने लगा।

बौद्ध और जैन वाङ्मय में संगीत

बौद्ध वाङ्मय में संगीत––

इस ग्रन्थ में पूर्व प्राचीन काल की अवधि वेदकाल से लेकर ईसा की शताब्दी के आरंभ के पूर्व तक मानी गयी है। बौद्ध और पाली ग्रन्थों का समय ईसा के ३०० वर्ष पूर्व का है। प्रस्तुत प्रकरण में प्रथम बौद्ध तत्पश्चात् जैन ग्रन्थों से प्राप्त संगीत विषयक विवरण पर विचार किया जाएगा।

जातकों के एक प्रसंग में कहा गया है कि–'गुत्तिल' नामक बोधि सत्व उत्तम गायक था और काशी के राजा ब्रह्मदत्त का नौकर था। उनके पास उज्जयिनी का मुशिल नामक गायक विशेष ज्ञान की जिज्ञासा से आया। उसने उत्तमज्ञान प्राप्त किया। राजा ने दोनों की स्पर्धा का निश्चय किया। गुत्तिल वृद्ध था। उसे अपनी विजय में शंका उत्पन्न हुई और वह इन्द्र की स्तुति के लिए जंगल में गया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर वर दिया कि 'स्पर्धा में वीणा का एक तार टूट जाने पर भी वीणा बजती रहेगी।'। गुत्तिल ने स्पर्धा में शिष्य को जीत लिया। इस प्रसंग में 'सप्त तंत्री' वीणा के उल्लेख से उस समय सात तारों की वीणा का भी प्रचार रहा होगा, यह अनुमान होता है।*

'महावग्ग विनय पिटक' में एक प्रसंग में बुद्ध अपने शिष्य सोम को उपदेश देते हैं। इस प्रसंग में वीणा का उल्लेख प्राप्त होता है:––

'एवं भद्दं तवाति खो पंचसिखो गंधव्वपुतो सक्कस्स देवानामिंदस्स पटिस्तुत्वा बेलुवपण्डुवीणं आदाय एकमंतं ठित्तो खो पंचसिखो गंधव्वपुत्तो बेलुवपण्डुवीणं अस्सावेसि"**

उपर्युक्त उल्लेख में 'पंचसिख' गांधर्व पुत्र हाथ में' पण्डुवीणा' लेकर इन्द्र की स्तुति करता है। तथा वेलुव यानी बीली के फल की बनी हुई वीणा के तुंबे बीली फल के कोठा के बने हुए दिखाई देते हैं।

स्वयं बुद्ध संगीत विद्या में कुशल थे और 'वीणा' भी बजाते थे।***

ईसा के १०० वर्ष पूर्व ग्रीक राजा मिलिंद विद्वान्, गायक और कलाओं का भी मर्मज्ञ था। बौद्ध भिक्षुक के साथ उस के संवाद में वीणा एवं वीणा के अंग-

---

* *जातक का अंग्रेजी अनुवाद भाग–२ गुत्तिल जातक पृ–१७२।१७६*

** *दीघनिकाय। पाली टेस्ट सोसायटी, वा. २, पृ.–२६४।*

****ललित विस्तर–पृ. १५६*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रत्यंग के नाम (घोड़ी, चमड़ा, चोकठा, तवकडी, खूंटी, तार, गज इत्यादि) भी प्राप्त होते हैं।‡ यह संवाद सिन्धु नदी के आसपास के प्रदेश में हुआ होगा।‡‡

बौद्ध धर्म की विधियों में संगीत का स्थान था। बौद्धमंदिरों में गायी जाने वाली स्तुतियाँ संगीतमय थीं। गायन-वादन-नर्तन का प्रचार भी था। केवल मनोविकार उद्दीपन करने वाले अश्लील संगीत से अलिप्त रहने की गौतमबुद्ध ने आज्ञा की है।‡‡‡

बौद्ध धर्म में 'सद्धर्मपुंडरिक' ग्रन्थ प्राचीन माना जाता है। इस ग्रन्थ में "पहिले के दस कल्प में धर्म विधि प्रसंग में विविध प्रकार के वाद्य जैसे शंख, ढोल, वीणा, तंबूर, वेणु, बंसरी इत्यादि नाम मिलते हैं।†

लंकावतार सूत्र में एक विधान है कि "राक्षसों के राजा रावण ने पुष्पक विमान में बैठें हुए भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् 'इन्द्रनीलमय' दंड से बजता हुआ 'तूर्य' वाद्य को षड्ज, गांधार, धैवत, निषाद, मध्यम और कौशिक इत्यादि स्वरों में ग्राम, मूर्च्छनादि संहित मिलाकर उस वाद्य की सुरावली के साथ अपना स्वर मिलाकर गाथा और गीत को गाने लगा।†† उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट होता है कि प्राचीन बौद्ध-वाङमय के समय में ग्राम-रागों का प्रचार था।

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में भत्ति (भक्ति) शब्द का उल्लेख मिलता है। गुत्तिल द्वारा की हुई इन्द्र की स्तुति, अश्वघोष गायक द्वारा रचित स्तुतियां, पंचशिख नामक गान्धर्व पुत्र के द्वारा वीणा के साथ की हुई इन्द्र की स्तुति तथा बौद्धमंदिरों में स्तुतियों के गायन आदि का जो अभी हम विचार कर चुके हैं, उससे देव के प्रति हृदय की आर्द्र-भावना और वृत्ति के गर्भ में भक्ति की स्फुरणा दिखाई देती है।

विद्वानों का मन्तव्य है कि बौद्ध धर्म की महायान शाखा पर भक्तिमार्गीय गीता का स्पष्ट प्रभाव है। हिंसामय यज्ञ की उपेक्षा, नीति, मनोनिग्रह, प्राणिमात्र पर दया-प्रीति इत्यादि बौद्ध और जैन मार्ग के उच्च तत्त्वों का गीता में समावेश है।†††

---

‡ *Questions of King Milinda*. 84.

‡‡ *Hindu India*—*P*. 100

‡‡‡ *Dialogues of Buddha Part*—*PP*. 6 *of Brahmjala Sutta*

† सद्धर्मपुंडरिक का भाषान्तर
(*Secred Books of East Vol. XXI. PP*, 51)

†† 'लंकावतार सूत्रम्–पृ.३

††† 'वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास–पृ.३१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जैन वाङ्मय में संगीत—

सज्जं खई भुअंगो, गामुहो सिसंह सरे ।
संखो खइ गंधारं, मज्झिमं पुण्ण झल्लरी ॥६॥

चउसरणपइट्ठाणा, गोहिआ पंचमं सरं ।
आडंवरो रेवइयं महाभेरी अ सत्तमं सरं. ॥७॥

भावार्थ—षड्ज स्वर मृदंग से, गोमुखी से ऋषभ, शंख से गंधार, झालरि से मध्यम, चार पांव वाला गोधा (चर्मवाद्य) से पंचम, आडंवर से धैवत और विषाद स्वर वड़ी 'भेरि' से निकलता है।

पश्चात् ८ से १४ वीं तुक तक स्वर के परिणाम—लक्षणों के उल्लेख* के वाद सात स्वरों के तीन ग्राम और मूर्च्छनाओं का उल्लेख भी इस प्रकार प्राप्त होता है। सत्तण्हं सरागं तओ गामा पणत्ता—सात स्वरों में तीन ग्राम होते हैं। सज्जगामे (षड्ग्राम), मज्झिम गामे (मध्यमग्राम) और गंधार गामे (गंधारग्राम) ।

सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पणत्ताओ—षड्ज ग्राम की सात मूर्च्छनायें हैं:—

१ मग्गी, २ कोरविआ, ३ हरिया, ४ रयणी, ५ सारकंता, ६ सारसी, ७ सुद्धसज्जा।

मध्यम ग्राम की सात मूर्च्छनाओं का उल्लेख इस प्रकार हैं:—

१ उत्तरमंद्रा, २ रयणी, ३ उत्तरा, ४. उत्तरासमा ५ समोक्कंता, ६ सोवीरा और ७ अभिरुवा ।

गान्धार ग्राम की मूर्च्छनाओं के नाम इस प्रकार बताये हैं—

१ नन्दी, २ खड्डिया, ३ पूरिमा, ४ सुद्धगंधारा, ५ उत्तर-गंधारा, ६ उत्तरभाया, ७ उत्तरायथाकोडिमा ॥१९॥

१. स्थानांग सूत्र के उपर्युक्त उल्लेखों में सात स्वरों के नाम में कोई भेद नहीं है।

---

* हमारी दृष्टि से यह अत्र अनुपयोगी होने के उदाहरण रूप में केवल एक तुक का उल्लेख करते हैं जैसे—

'सज्जेण लहई वित्ति कयं च सर्वाणस्सह ।
गावो पुत्ता च मित्ता च नारीणं होई वल्लहो ॥८॥

'षड्ज' से धन प्राप्त होता है, कार्य सफल होता है और गाय, पुत्र, मित्र एवं स्त्री को प्रिय होता है। इस प्रकार सातों स्वरों का फल-कहा गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२. जीवाश्रित स्वरोच्चारण में ऋषभ, गांधार, मध्यम, और धैवत स्वर के उच्चारण कर्ताओं के नामों में भेद है, षड्ज और निषाद के लिये संगीत के अन्य ग्रन्थों से भेद नहीं है।

३. अजीव आश्रित (वाद्यों से उत्पन्न होने वाले) स्वर तत्कालीन वाद्यों से उत्पन्न होने वाले स्वरों का स्थायी नाद किस प्रकार का था यह जानकारी अन्य संगीत शास्त्र के ग्रन्थों में बहुत कम होगी। केवल 'आडंबर' और 'जोघा ये दोनों वाद्य वेदकालीन थे। इन दोनों वाद्यों का प्रचार उस समय व्यवहार में होने का संकेत मिलता है।

४. ग्राम नामों में भेद नहीं है किन्तु मूर्च्छनाओं के कुछ नामों में भिन्नता दिखाई देती है।

५. स्थानांग सूत्र के श्लोक ८ से १४ तक का वर्णन अन्य किसी प्राचीन-संगीत के ग्रन्थों में दिखाई देता नहीं है। अनुमानतः उस समय के किसी संगीत शास्त्र ग्रन्थ से यह उल्लेख प्राप्त हुआ हो, जो बाद में अप्राप्य हो चुका हो।

६. स्थानांग सूत्र में संगीत के गुण दोषों का भी वर्णन किया है।

७. अनुयोगद्वार सूत्र में दिया हुआ संगीत विषयक विवेचन स्थानांग सूत्र के सदृश होने के कारण उस पर अलग विचार किया गया नहीं है।

'नन्दी-सूत्र' में निम्न १२ प्रकार के वाद्यों का नामोल्लेख प्राप्त होता है:—

१भंभा, २ मुकुंद, ३ मद्दल, ४ कडव, ५ झल्लरी, ६ हुडुवक, ७ कंसाला, ८ काहल, ९ तालिमा, १० वन्सो (संवंसी) ११ शंख, १२ पणव।

'अभिधानराजेन्द्र' नामक जैन कोष में 'आडज्जआनौद्य' शीर्षक के नीचे निम्न वाद्यों का उल्लेख किया है—

१ पणवं, २ पटह, ३ भम्भा, ४ होरम्भा, ५ भेरी, ६ झल्लरी, ७ दुन्दुभी, ८ मुरज, ९ मृदंग, १० नन्दीमृदंग, ११ आलिंग, १२ कस्तुम्ब, १३ गोमुखी, १४ मर्दल, १५ विपंची, १६ वल्लकी, १७ भ्रमरी—भ्रामरी, १८ परिवाहिनी, १९ चर्चसा, २० सुघोषा, २१ नन्दीघोषा, २२ महती, २३ कच्छपी, २४ चित्रवीणा, २५ आमोद, २६ मएमा, २७ मकुल, २८ तूण, २९ तुम्बवीणा, ३० मुकुन्द ३१ हुडुवकं, ३२ विचिकी, ३३ करटी, ३४ मिम्मिण, ३५ किणित, ३६ कण्डा, ३७ दर्दरक—दर्दरिका, ३८ कुसंवर, ३९ कलशिका, ४० तल-ताल, ४१ कास्यताल, ४२ रिगिसिका, ४३ मंगरिका, ४४ शुशुमरिका, ४५ वंश, ४६ वाली, ४७ वेणु, ४८ परिली, ४९ बद्धका:, ५० परशिता।

उपर्युक्त वाद्य नामों में बहुशः 'संगीत रत्नाकर' आदि ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं तथापि कुछ नवीन प्रकार के नाम भी दिखाई देते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस प्रकार जैन वाङ्मय तथा जैन आगमों के समय में संगीत विषयक एक निश्चित पद्धति का प्रचार हुआ। वैदिक काल की संगीत परंपरा भी विस्तृत हो चुकी थी।

तामिल ग्रन्थ सिलाप्पदिकरम्

ईसा की प्रथम शताब्दी के तामिल चर देश के राजा सेंगुत्तुवन के अनुज इलंकोवदिगल ने इस ग्रन्थ की रचना की जिस पर अद्यर्कुंनलरे में टीका और जायनकोन्दन कवि चक्रवर्ती ने एक टिप्पणी लिखी है। ये टीका और टिप्पणी ईसा की तीसरी शताब्दी में लिखित मानी जाती हैं। क्योंक ई. स. ३०० लगभग के एक बौद्ध नाटक में सिलाप्पदिकरम् का उल्लेख प्राप्त होता है। उपरान्त थाल-वीणा, अवनद्ध और सुषिर वाद्यों के वजाने का वर्णन किया गया है। तत्कालीन प्रचलित गान के कुछ उल्लेखों के अतिरिक्त सात स्वरों के नाम भिन्न भाषा में निम्न प्रकार प्राप्त होते हैं। (१) कुरल (सा), (२) थुथ्थम् (रे) (३) काइकिलाइ (ग) ४ उल.ई (म), ५ ली (प), ६ विलारी (ध) ७ थारम् (नि), तदुपरान्त थाटम् (थाट) इसाई (संगीत), ईयल (काव्य) याल (ग्राम) अथवा* वीणावाद्य, पलाई *(मूर्च्छना)* इत्यादि शब्दों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि उस समय राग, शब्द व्यवहार में नहीं था। उपर्युक्त कुछ संगीत विषयक उल्लेख प्राप्त होने मात्र से इसे संगीत-शास्त्र का ग्रन्थ कह नहीं सकते। अतः भरत नाट्य शास्त्र ग्रन्थ से चर्चा आरंभ करना उचित होगा।

---

* *दक्षिण के पारिपाडल नामक तामिल ग्रन्थ में याल नामक एक वीणा सदृश वाद्य का वर्णन प्राप्त होता है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भरतनाट्यशास्त्र

संगीत शास्त्र के प्राचीन प्राप्त ग्रन्थों में भरत रचित भरत नायट्-शास्त्र ग्रन्थ प्रथम और ऐतिह्य दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। इस ग्रन्थ का समय कोई विद्वान् तीसरी शताब्दी का मानते हैं किन्तु सामान्यत: इसे ईसा की चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्ध की कृति माना जाता है। प्रचीन समय की शास्त्र-पद्धति के अनुसार भारतीय संगीत की प्राप्त जानकारी के संस्कृत काल का आरंभ यहीं से होता है।

भरत नाट्य शास्त्र ग्रन्थ में उनके नामानुसार मुख्यत: नाट्य की स्थिति का अधिक प्रकाश प्राप्त होता है। तथापि अध्याय २८ से ३६ तक के विभाग में संगीत के अति उपयोगी विवरण का आलेखन किया गया है। इन विभागों में गीत और वाद्यों का उत्तम विवरण है। किन्तु इस ग्रन्थ में रागों के नाम का उल्लेख नहीं है क्योंकि इस समय जाति-गान प्रचार में था। राग शब्द का प्रचार नहीं था। कुछ विद्वानों का मन्तव्य है कि जाति गान वास्तव में मूल राग ही है। भरत मुनि ने एक स्थान पर राग शब्द का प्रयोग—'रागस्तु यस्मिन् वसित यस्माच्चैव प्रवर्तते" कह कर किया है, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। किन्तु विशेषज्ञों ने स्पष्ट किया है कि मात्र एक ही स्थल पर राग शब्द का किया हुआ प्रयोग उनके रूढार्थ में नहीं है किन्तु यौगिक अर्थ में है। उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ है–अंश स्वर वही है कि जिनमें जाति की रंजकता निवास करती है। इस मंतव्य से यह स्पष्ट होता है कि उस समय राग शब्द राग-रागिनियों के रूढार्थ में प्रयुक्त नहीं था, किन्तु उस समय के जाति गान को राग का पूर्व रूप अथवा आधार रूप माना जाना उचित है।

भरत ने केवल जाति-गायन का ही उल्लेख किया है, जो निम्न लिखित प्रकार से है। भरत ने जाति गायन में सात शुद्ध और ग्यारह विकृत जातियों का उल्लेख किया है। शुद्ध जातियाँ* :—

षड्ज–ग्राम की चार जातियाँ (१) षाड्जी, (२) आर्षभी, (३) धैवती और (४) मध्यमा तथा मध्यम-ग्राम की तीन जातियाँ—(१) गान्धारी, (२) मध्यमा और (३) पंचमी

उपर्युक्त शुद्ध जाति रागोत्पत्ति के लिये अपूर्ण होने के कारण अन्य ग्यारह संकीर्ण जातियों के वर्णन के उपरान्त जाति गान के दस लक्षणों का भी उल्लेख किया** है, जो कि इस प्रकार हैं:—

---

* *षाड्ज्यार्षभी च गान्धारी मध्यमा पंचमी तथा।*
धैवती चाथ नैषादी शुद्ध तालक्ष्य कथ्यते। रत्नाकर।

** *ग्रहांशौ तारमन्द्रौ च न्यासापन्यास एव च।*
अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौडुविते तथा॥ (नाट्य. २८।७४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१ ग्रह, २ अंश, ३ न्यास ४ अपन्यास, ५ अल्पत्व, ६ बहुत्व, ७ षाडवत्व ८ औडवत्व, ९ मन्द्र और १० तार—

भरत की सात शुद्ध जातियों में प्रत्येक के नामानुसार न्यास-स्वर नियत किया गया है। जैसे (१) षाड्जी जाति का न्यास षड्ज स्वर, (२) आर्षभी का ऋषभ स्वर, (३) गांधारी का गांधार, (४) मध्यमा में मध्यम, (५) पंचमी में पंचम, (६) धैवती से धैवत और (७) निषाद जाति में निषाद स्वर न्यास रहता था। तथा अन्य ग्यारह जातियाँ इन विकृत जातियों में से दो-दो, तीन तीन के संयोग से उत्पन्न हुई हैं। जैसे षाड्जी एवं गान्धारी के संयोग से षड्ज कौशिकी और षाड्जी एवं मध्यमा के संयोग से षड्जमध्यमा उत्पन्न होती है। इस प्रकार ग्यारह जातियों का उत्पत्ति क्रम दिया गया है। इस प्रकार ग्यारह विकृत और सात शुद्ध मिलाकर कुल अट्ठारह जातियों में षड्ज ग्राम की मूर्छनाओं से सात तथा मध्यम-ग्राम की मूर्छनाओं से ग्यारह जातियाँ उत्पन्न होती है, जिनका विवरण निम्नानुसार है:—

ग्राम		जाति	मूर्छना
षड्ज ग्राम	(१)	षाड्जी	............धैवतादि मूर्छना
	(२)	आर्षभी	............पंचमादि मूर्छना
मध्यम ग्राम	(३)	गान्धारी	............पंचमादि मूर्छना
	(४)	मध्यमा	............ऋषभादि मूर्छना
	(५)	पंचमी	.... ,,
षड्ज ग्राम	(६)	धैवती	............ऋषभादि मूर्छना
	(७)	षड्जकैशिकी	............षड्जादि मूर्छना
	(८)	नैषादी	............गान्धारादि मूर्छना
	(९)	षड्जोदीच्यवा	....
	(१०)	षड्जमध्यमा	............मध्यमादि मूर्छना
मध्यम ग्राम	(११)	गान्धारोदीच्यवा	..........धैवतादि मूर्छना
	(१२)	रक्तगांधारी	............ऋषभादि मूर्छना
	(१३)	कैशिकी	............गान्धारादि मूर्छना
	(१४)	मध्यमोदीच्यवा	............मध्यमादि मूर्छना
	(१५)	कार्मारवी	............षड्जादि मूर्छना
	(१६)	गांधार पंचमी	............गान्धारादि मूर्छना
	(१७)	आन्ध्री	............मध्यादि मूर्छना
	(१८)	नन्दयन्ती	............पंचमादि मूर्छना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मूर्छना:—महर्षि भरतने मूर्छना की व्याख्या इस प्रकार की है* —

'क्रमयुक्ता: स्वरा: सप्तमूर्छनास्त्वभिसंज्ञिता:'—सात स्वरों के क्रमयुक्त प्रयोग को मूर्छना कहते हैं। तीन ग्रामों की कुल इक्कीस मूर्छनाएँ हैं। प्रत्येक ग्राम की सात मूर्छनाओं में षड्ज-ग्राम की सात मूर्छनाओं के नाम इस प्रकार हैं।** (१) उत्तर-मन्द्रा, (२) रजनी, (३) उत्तरायता, (४) शुद्ध-षड्जा, (५) मत्सरीकृता, '(६) अश्वक्रान्ता और (७) अभिरुद्गता। मध्यमग्राम की सात मूर्छनाओं के नाम इस प्रकार हैं— (१) सौवीरी, (२) हारिणाश्वा, (३) कलोपनता, (४) शुद्धमध्यमा, (५) मार्गी, (६) पौरवी और (७) हृष्यका हैं।†

प्रथम षड्ज ग्रामिक मूर्च्छनाओं में षड्ज-ग्राम का आरंभिक स्वर का क्रम क्रमश: षड्ज, धैवत, पंचम, गंधार और ऋषभ स्वर होता है।††

यह क्रम इस प्रकार है:—

(१) उत्तरमन्द्रा:—	सा रे ग म प ध नि
(२) रजनी:—	नि सा रे ग म प ध
(३) उत्तरायता:—	ध नि सा रे ग म प
(४) शुद्धषड्जा:—	प ध नि सा रे ग म
(५) मत्सरीकृता:—	म प ध नि सा रे ग
(६) अश्वक्रान्ता:—	ग म प ध नि सा रे
(७) अभिरुद्गता:—	रे ग म प ध नि सा

---

* भरत. (मुं. सं.) अ. २८ पृ. ४३५

** आदावुत्तर मन्द्रास्याद्रजनी चोत्तरायता। चतुर्थी शुद्ध षड्जा पञ्चमी
मत्सरीकृता। अश्वक्रान्ता तथा षष्ठी सप्तमी चाभिरुद्गता
षड्जग्रामाश्रिता ह्येता विज्ञेया : सप्त मूर्च्छना:। भरत. (मु. सं.) पृ ४३४

† सौवीरी हारिणाश्वाथ स्यात्कलोपनता तथा।
शुद्धमध्या तथा चैव मार्गीस्यात् पौरवी तथा॥
हृष्यका चेति विज्ञेया सप्तमी द्विजसत्तमा:।
मध्यमग्रामजा ह्येता विज्ञेया: सप्त मूर्च्छना॥ वही पृ. ४३४-४३५

†† आसां षड्जनिषादधैवतपञ्चममध्यमगान्धारर्षभाद्या: स्वरा:। वही. पृ. ४३४
तत्र षड्जग्रामे षड्जेनोत्तरमन्द्रा, निषादेन रजनी, धैवतेनोत्तरायता, पञ्चमेन-शुद्धषड्जा मध्यमेन, मत्सरीकृता, गान्धारेणाश्वक्रान्ता, ऋषभेणाभिरुद्गता इति।
(भरत. पृ. ४३४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मध्यम-ग्राम के आरंभ के स्वर इस प्रकार बताये हैं:–

आसां मध्यमगान्धारर्षभषड्जनिषादधैवतपञ्चमा आनुपूर्वाद्या: स्वरा: ।* मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, निषाद, धैवत और पंचम इस क्रम से आरंभ होता है।** जो निम्न प्रकार से स्पष्ट समझ सकते हैं।

१.	सौवीरी	म प ध नि सा रे ग
२.	हारिणाश्वा	ग म प ध नि सा रे.
३.	कलोपनता	रे ग म प ध नि सा.
४.	शुद्ध मध्यमा	सा रे ग म प ध नि.
५.	मार्गी	नि सा रे ग म प ध.
६.	पौरवी	ध नि सा रे ग म प.
७.	हृष्यका	प ध नि सा रे ग म

भरत के मूर्छना विषयक मतानुसार ही शार्ङ्गदेव ने अपने संगीत–रत्नाकर में चर्चा की है। अत: अधिक विवेचन रत्नाकर ग्रन्थ की चर्चा में किया जाएगा।

भरत नाट्यशास्त्र में अधिकतर नाट्य की ही चर्चा है। जिनमें से नाट्य में संगीत का महत्व स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

गीते प्रयत्न: प्रथमं कार्यं शय्यां हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम्।
गीते च वाद्ये च सुप्रयुक्ते नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति।

भावार्थ—नाट्य-प्रयोक्ता को प्रथम गीत (गान) का प्रयत्न (अभ्यास) करना चाहिए। क्योंकि गीत नाट्य की शय्या है। यदि गीत और वाद्य को उत्तम प्रकार से प्रयुक्त किया जाय तो नाट्य-प्रयोगों में कोई कठिनाई या विपत्ति उपस्थित होती नहीं है।

भरत नाट्य की उपर्युक्त चर्चा का संक्षिप्त निष्कर्ष इस प्रकार है—

१. उस समय राग शब्द प्रचार में नहीं था किन्तु जाति गान प्रचलित था।
२. सात शुद्ध जातियों के नाम सात स्वरों के नाम पर आधारित है।
३. शुद्ध जातियों में कोई स्वर कम नहीं होता है, अर्थात् सातों स्वर हैं।
४. षड्ज ग्रामाश्रित सात जातियों और मध्यम ग्रामाश्रित ग्यारह जातियों में षड्ज ग्राम की चार–षड्जी, आर्षभी, धैवती और निषादवती जातियाँ शुद्ध हैं।

---

* वही. मु. संस्करण प. ४३५

** *अथ मध्यमग्रामे–मध्यमेन सौवीरी, गान्धारेण हरिणाश्वा, ऋषभेण कलोपनता षड्जेन शुद्धमध्यमा, निषादेन मार्गी, धैवतेन पौरवी, पञ्चमेन हृष्यका इति। (वही. पृ. ४३५)*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५. न्यास स्वर से अतिरिक्त एक दो या विशेष लक्षणों में विकार होने पर जातियाँ विकृत कहलाती हैं। अर्थात् जो शुद्ध हैं वही विकृत भी बनती हैं।

६. शुद्ध जातियों के नियमानुसार मन्द्र स्वर न्यास होता है।

७. सात शुद्ध जातियों के अतिरिक्त ग्यारह जातियाँ एक दो अथवा विशेष जातियों के संसर्ग से विकृत हो जाती है।

८. कुल अठारह जातियों में चार जाति सप्त स्वरा, दस जाति पंचस्वरा और चार जाति षट्स्वरा मानी जाती है।

९. इन जातियों में मध्यम के अतिरिक्त कोई भी स्वर का लोप संभावित है, क्योंकि सात स्वरों में मध्यम स्वर को अविनाशी कहा है।

१०. जाति गान के दस लक्षण बताये गये हैं इस प्रकार अंश, ग्रह, श्रुति इत्यादि के समूह से जातियों की उत्पत्ति होती है।

११. इन जातियों को मनुष्यों में ब्राह्मणत्वादि जातियों के समान माना गया है। रस निष्पत्ति में जातियाँ सहायक होती हैं।

भरत की शिष्य परम्परा

भरत के शिष्यों में दत्तिल, कोहल और विशाखिल इन तीनों पंडितों द्वारा जो ग्रंथ लिखे गये थे, उनमें दत्तिल कृत "दत्तिलम्" नामक ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। कोहल कृत "कोहलियम्" ग्रंथ लिखित रूप में ही प्राप्त होता है तथा विशाखिल कृत "विशाखिलम्" ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। परन्तु इस परम्परा का "मतंग" मुनि द्वारा लिखित "बृहद्देशी" नामक ग्रंथ मुद्रित हो चुका है। "बृहद्देशी" और "दत्तिलम्" ग्रंथ में रागों की उत्पत्ति, रागों के लक्षण एवं रागों के नामादि का विवरण प्राप्त होता है। ऐतिह्य दृष्टि से महत्वपूर्ण इस "बृहद्देशी" ग्रंथ का समय ईसा की षष्ठ शताब्दी का माना जाता है। (कुछ विद्वान् नवीं शताब्दी का मध्य भाग भी बताते हैं)

मतंग ने कश्यप, नन्दी, कोहल, दत्तिल, याष्टिक, वल्लभ, विश्वावसु, शार्दूल और विशाखिल इत्यादि आचार्यों के मत का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है। इस ग्रंथ में ताल और वाद्य विषयक चर्चा भी की गई है।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि मतंग के पूर्व "वीणा" के ऊपर सारिकाएँ नहीं थीं। सर्व प्रथम मतंग ने ही सारिकाओं (पर्दों) का निर्माण किया। इस किन्नरी वीणा के आविष्कारक मतंग माने जाते हैं। किन्नरी वीणा में तीन तार लगाये जाते थे। इनमें एक मुख्य बाज तार और दो चिकारी के तार रहते थे। बाजतार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

षड्ज में मिलाया जाता था। सारिकाओं की संख्या १४ या १८ मानी जाती है। किन्नरी वीणा के बृहती, मध्यमा और लघ्वी ये तीन भेद माने जाते हैं।

वीणा का बाज तार (मध्य) षड्ज में और चिकारी के दो तार क्रमशः पंचम और तार-षड्ज में मिलाये जाते थे। इस प्रकार की षड्ज-ग्रामिक वीणा के १८ पर्दों में क्रमशः छः पर्दों तक मन्द्र सप्तक, सात से तेरह पर्दों तक मध्य सप्तक और १४ से १८ वे पर्दों तक तार-सप्तक के पाँच स्वर मिले हुए रहते थे।

मध्यम ग्राम की किन्नरी वीणा में वाज का तार मध्यम में और चिकारी के तार क्रमशः षड्ज, मध्यम में मिलाये जाते थे। तथा मूर्छना-अनुसार जब बाज-तार की ध्वनि से सातों स्वरों की संज्ञा नियत की जाती थी तब तदनुसार श्रुति संख्या के आधार पर पर्दों को सरका कर अवशिष्ट स्वरों की स्थापना की जाती थी।

यहाँ पर भी ध्यान रहना आवश्यक है कि इस वीणा में मात्र एक ही बाज-तार रहता था, अर्थात् केवल इसी तार पर वादन का सभी कार्य किया जाता था। बाज तार एक स्वर में स्थिर रहकर अन्य (मन्द्र, मध्य और तार के) १८ स्वरों को १८ पर्दों पर प्राप्त किया जाता था। परन्तु १४ सारिकाओं की किन्नरी वीणा पर सम्पूर्ण मन्द्र सप्तक, सम्पूर्ण मध्य सप्तक और तार सप्तक का केवल एक ही स्वर प्राप्त होता था। १८ सारिकाओं की किन्नरी वीणा में तार सप्तक के पाँच स्वर उत्पन्न होते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

द्रविड देश का संगीत

लगभग इसी समय में द्रविड (तामिल) देश में भी एक प्राचीन पद्धति प्रचार में थी। जिनके प्रवर्तक शिव, स्कंद और अगस्त्य थे। उनके लिखे हुए ग्रंथ नष्टप्रायः हो गये हैं। इनके क्वचित् उद्धरण केवल प्राचीन काव्यों में और "निघण्टु" में दृष्टिगोचर होते हैं। इस पद्धति के रागों के नाम "पण" और "निरम" है। जिनका लक्ष्य आज 'देवार" नामक स्तोत्रों में वर्तमान है।

इसी अरसे में दक्षिण भारत में भक्ति का वैष्णव रूप उदित हुआ। "आलवार" भक्तों द्वारा तामिल भाषा में विपुल संख्या में भक्ति-गीतों की रचना हुई। यही नहीं उस समय समस्त दक्षिण भारत में उन भक्ति-गीतों का गान भी किया जाता था। उस समय दक्षिण भारत में इन भक्ति-गीतों द्वारा भक्ति-धारा प्रवाहित हो चुकी थी।

"भरतनाट्यशास्त्र" के पश्चात ईसा की षष्ठ शताब्दी से लेकर १० वीं शती तक के समय में दक्षिण भारत एवं बंगाल में वैष्णव भक्ति के प्रसार एवं प्रचार में उस समय के संगीत द्वारा भक्ति-गीतों के गान का ही प्रवाह मुख्यतः दिखाई देता है। इस भक्ति संगीत के आधार को लक्ष्य में रखकर ही "बृहद्देशी" और "दत्तिलम्" तथा दक्षिण के (तामिल देश के) नष्टप्रायः ग्रंथों की रचनाएँ की गई थी, ऐसी मान्यता है।

उपर्युक्त हकीकत से स्पष्ट होता है कि भरत के समय की जाति-गान-प्रणाली का मतंग के समय में परिवर्तन हो चुका था। "राग" शब्द को रूढ अर्थ में यदि देखा जाय तो सर्व प्रथम "राग" शब्द का प्रयोग "बृहद्देशी" ग्रंथ में ही दृष्ठिगत होता है।

छठी शताब्दी के पूर्व के संगीत ग्रंथों में "भरतनाट्यशास्त्र" ग्रंथ निर्विवाद सिद्ध होता है। किन्तु "बृहद्देशी" ग्रंथ के विषय में छठी या नौवीं शताब्दी का मतभेद स्पष्ट दिखाई देता है। छठी शती के पूर्व के पौराणिक समय को भक्ति के बाह्य रूप का विकास युग कहा जाता है। इस युग में साथ-साथ भारत में बौद्ध और जैन धर्म का प्रभाव भी बढ़ता रहा था। पौराणिक युग और बौद्ध धर्म का उत्थान युग एक ही समझा जाता है। परन्तु ईसा की तीसरी शताब्दी से छठी शताब्दी तक भारतवर्ष में गुप्तवंशी राजाओं के शासन युग में भागवत धर्म के प्रचार और प्रसार में सर्व प्रकार की सुविधा और अनुकूलता प्राप्त होती रही। फलतः बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव पीछे कम हो गया, किन्तु गुप्त साम्राज्य के पश्चात् सम्राट हर्षवर्धन (ई. स. ६३०) के समय में भागवत धर्म की उपेक्षा के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कारण बौद्ध, जैन और शैव धर्मावलंबियों को अपने सिद्धांतों और मंतव्यों के प्रचार का मौका प्राप्त होने पर उत्तर भारत में उन धर्मों का प्रसार हो गया। परन्तु ठीक इसी समय दक्षिण भारत में भक्ति का वैष्णव रूप उदित हुआ और आलवार भक्तों के रूप में तामिल भाषा के माध्यम से वैष्णव भक्ति विकासोन्मुख होने लगी। इन आलवार भक्तों ने विपुल संख्या में भक्ति-गीतों की रचनाओं के (संगीत) गान द्वारा समस्त दक्षिण देश में भक्ति धारा को प्रवाहित कर दिया। भक्ति के सन्दर्भ में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि "भक्ति द्राविडी उपजी, लाये रामानंद" तदतिरिक्त श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में भी द्रविड़ देश से भक्ति का उद्भव होने की कथा सुप्रसिद्ध है।‡

प्रसिद्ध विद्वान् चिन्तामणि वैद्य का कहना है कि वैष्णव धर्म का प्रवाह बंगाल से हुआ है। तथा ई. स. सात से १० शती तक की वैष्णव भक्ति के प्रवाह के कारण के सम्बन्ध में आप कहते हैं कि जैन और बौद्ध धर्म की अहिंसा को नवीन वैष्णव धर्म में स्वीकार किया गया। फलत: हिन्दुओं को जैन और बौद्ध धर्म से हट कर पुन: अपने प्राचीन विष्णु भगवान् का नवीन कृष्णावतार रूप स्वीकार करने का मार्ग सरल हुआ। बुद्ध को भी विष्णु का अवतार मान कर हिन्दुओं का देव बना दिया। इस नवीन भक्ति का सूत्रपात दक्षिण से नहीं किन्तु बंगाल से होने की उनकी मान्यता है, परन्तु‡‡ दक्षिण से भक्ति के उद्भव की हकीकत इतनी व्यापक और प्रचलित है कि उसका खंडन करना सरल नहीं है। तथापि बंगाल में उस समय वैष्णव धर्म के बीज की विद्यमानता को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हैं।

कुछ भी हो किन्तु उस समय हिन्दुओं में विष्णु भगवान् भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में उपास्य देव के रूप में मान्य थे और भक्ति मार्ग द्वारा ही विष्णु-श्रीकृष्ण भजनीय एवं प्राप्य माने जाते थे। इस मान्यता को स्वीकार करना होगा।

इसी समय में "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" के श्री शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत और निर्गुण ब्रह्म की मान्यता के मायावाद संबंधित विचारों का दक्षिण से उत्तर भारत तक उत्तम प्रभाव और व्यापक प्रचार हो चुका था। शांकर मत के इस प्रचार ने बौद्धों को निराश कर दिया। दूसरी और यह वैष्णव धर्म के लिए भी घातक हुआ। अद्वैत प्रचार से सगुणोपासना और सगुण के प्रति पूज्य बुद्धि का अभाव होने लगा। इस भाव को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिए भक्तिमार्गीय प्रचारकों ने प्रयत्न आरंभ किये। तथापि शांकर-भक्ति के तामिल संगीत पद्धति के प्रबन्ध

‡ *अध्याय–४८ श्लोक-५०*

‡‡ *It does not appear that this New Vaishnavism come from South or was due to the teaching of the Vaishava Bhagwat Puran.*

History of Mediaeval India, (Vol. III)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गान का ७ वीं और ८ वीं शताब्दी में समस्त प्रान्तों में प्रचार और प्रसार होता रहा। इन प्रबन्धों के प्राचीन तामिल राग 'फण' और 'तिरम्' कहे जाते थे। रचयिताओं में मुख्यत: ज्ञानसंबंधर, अप्पर (वागीशर) और सुंदरमूर्ति, ये तीनों शैव-आचार्य थे। इन प्रबंध गीतों को "देवार" कहते हैं। प्रचलित देवारों में २४ फण (राग) हैं। जिनके नाम प्राय: मतंग, दत्तिल और शार्ङ्गदेव के ग्रंथों में प्राप्त नामों से मिलते-जुलते हैं। आज भी शैव देवारों की गान पद्धति शैव मन्दिरों में प्रचलित है। इस प्रकार शांकर सम्प्रदाय में भी संगीतात्मक भक्ति का स्थान था।

भक्ति एवं कीर्तन भक्ति (भगवद्-गुणगान) के विषय में स्वयं श्रीमद् आद्यशंकराचार्य के कुछ उल्लेख निम्न प्रकार हैं:—

"मोक्षकारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी"*

मोक्ष प्राप्ति के समस्त साधनों में श्रेष्ठ साधन भक्ति है। विष्णुसहस्रनाम के शांकरभाष्य में भी कहा है कि** "श्रद्धा-भक्ति-रहित भी भगवान् का नाम-संकीर्तन समस्त पापों को नष्ट करता है। तो फिर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक संकीर्तन के लिये कहना ही क्या?

श्रीमद् आद्यशंकराचार्य रचित इस भाष्य में, स्तोत्र पाठादि अष्टकों में एवं अन्य टीकाओं में अनेक स्थलों पर भक्ति एवं भगवद् गुणगानादि संकीर्तन के समर्थन के उल्लेख दिखाई देते हैं। अत: कीर्तन संकीर्तन भक्ति का ही अंग होने से भगवान् के गुणों का गान करना स्पष्ट होता है।

दक्षिण में वैष्णव भक्ति संगीत

ईसा की ७वीं एवं ८ वीं शताब्दी में शैव सम्प्रदाय की देवार रचनाओं के गान का शैव मंदिरों में प्रचार हो रहा था। उसी समय दूसरी ओर लगभग उसी प्रकार का आलवार वैष्णव भक्तों द्वारा दिव्य प्रबन्धों की विपुल रचनाओं के संगीतबद्ध गान का प्रसार भी हो रहा था। इन प्रबन्धों के रचियता द्वादश विष्णुभक्तों के संस्कृत नाम इस प्रकार हैं:—

१ सरोयोगी, २ भूतयोगी, ३ महायोगी, ४ भक्तिसार, ५ शठकोप, ६ मधुरकवि, ७ कुलशेखर, ८ विष्णुचित्, ९ गोदा, १० भक्तांघ्रिरेणु, ११ योगिवाहन, १२ परकाल।

कहा जाता है कि इन आलवार भक्तों द्वारा रचे हुए चार हजार पदों को देवार के समान प्राचीन तामिल फणों (रागों) में गाया जाता था। परन्तु तत्पश्चात्

---

* *विवेकचूडामणि-३२*

** *"श्रद्धाभक्त्योरभावोऽपि भगवन्नामसंकीर्तनं समस्त दुरितं नाशयतीत्युक्तम्।" (विष्णुसहस्रनाम, शांकरभाष्य—१४)*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फणों का गान लुप्त होता गया और देवगंधारी एवं आरभी-मिश्रित राग शैली में गान आरंभ हुआ। आलवार भक्तों द्वारा रचित तामिल भाषा का यह प्रबन्ध-गान अति पवित्र माना जाता है। भक्ति रस और आर्द्रवृत्ति से परिपूर्ण इन प्रवन्धों को "द्राविडवेद" अथवा "वैष्णववेद" भी कहते हैं।

आलवारों की रचनाओं को शास्त्रीय रूप में आचार्य कोटि के आलवार भक्तों ने स्थापित करने की चेष्टा की है। जिनमें प्रथम आचार्य "नाथमुनि" (ई.स. ८२४) माने जाते हैं। नाथमुनि की परंपरा में "पुंडरीकाक्ष" "राममिश्र" और "यामुनाचार्य" के नाम प्राप्त होते हैं। कहा जाता है कि श्रीरामानुजाचार्य ने विशिष्ठाद्वैत की प्रेरणा यामुनाचार्य से प्राप्त की थी। रामानुजाचार्य के समय से चतुः सम्प्रदाय का आरंभ होता है। अतः इस विषय का अधिक अवलोकन मध्य-युग के विवरण में आगे किया जायेगा।

परन्तु तत्पूर्व तीसरी से १० वीं शताब्दी तक के प्राचीन युग में भक्ति-भाव, उपासना, संगीतात्मक भक्ति-गान, एवं सामाजिक व्यवहार द्वारा संगीत ने उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था, यह दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन नाटकों और महाकाव्यों का उद्‌भव भी इसी समय में हुआ। इन नाटकों और महाकाव्यों के साहित्य में संगीत विषयक उल्लेखों का उच्चस्थान स्पष्ट दिखाई देता है। महाकवि कालिदास, भतृहरि, दंडी और बाणभट्ट जैसे प्रखर विद्वान् इसी युग में उत्पन्न हुए थे। भतृहरि ने तो स्पष्ट कहा है कि "साहित्य-संगीत-कला-विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः"। उपर्युक्त उल्लेख आज तक सुविख्यात है। महाकवि कालिदास के "अभिज्ञान शांकुन्तलम्" नामक नाटक में "मध्यमादि सारंग" नामक राग नाम का निर्देश दृष्टिगत होता है। तदुपरान्त "मेघदूत" में मेघधनुष से शोभित मेघ को गोपवेषधारी विष्णु की समानता बताने में श्रीकृष्ण (गोपवेशधारी) का ही संकेत है।*

महाकाव्यों और नाटकों के अतिरिक्त इस युग में संगीत को समृद्ध बनाने में भक्ति-सम्प्रदायों का महत्वपूर्ण स्थान भूलना न चाहिए।

इस युग को संगीत का सुवर्ण युग माना जाता है। पं. भातखंडे जी का मत है—"भरत और मुसलमानों के आक्रमण बीच लगभग सात या आठ शती के समयान्तर को अपने संगीत का सुवर्ण युग माना जाता है।" इसके पश्चात् केप्टन डे का निम्न उद्धरण दिया है—"मुसलमानों की जीत के कुछ समय पूर्व तक देशी राज्यों के समय में भारतीय संगीत का समृद्धि युग था। मुसलमानों के आगमन के बाद उसकी दुर्दशा का आरंभ हुआ। वह आज तक टिक सका, यह सचमुच आश्चर्यजनक है।"

---

* *गापवेशस्य विष्णो : १. मेघदूत*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

केप्टन डे के उक्त मतव्य की चर्चा करते हुए पं. भातखंडे ने लिखा कि केप्टन डे की उपर्युक्त टीका केवल उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत से ही संवंधित है। किन्तु दक्षिण के संगील के विषय में उन्होंने कहा है कि दक्षिण हिन्द की स्थिति आंतरिक कलहों से कुछ कम अशान्त होने से तथा उत्तर प्रान्तों की अपेक्षा देशी राजाओं के अन्तर्गत का प्रमाण अधिक होने से उत्तर में संगीत नष्ट हो जाने के वाद भी दक्षिण में संगीत शास्त्र का अधिक समय तक निभाव और विकास हुआ दिखाई देता है।*

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट समझा जाता है कि ईसा की ४ से १० वीं शताब्दी तक का समय भारतीय संगीत का समृद्धि युग था। उत्तरीय प्रान्तों की अपेक्षा दक्षिण के प्रान्तों में संगीत का विशेष विकास हुआ और अधिक समय तक टिका सका। परन्तु इस हकीकत के संदर्भ में महत्व का यह कारण भूलना न चाहिए कि दक्षिण हिंद में वैष्णव (आलवार) भक्तों के भगवद्-भक्ति से युक्त पद संगीत-वद्ध होने के कारण संगीत पद्धति के अनुसार गाये जाते थे। जिनका प्रचार भक्तजनों द्वारा जनसमाज में मूल प्रकार से होने लगा और शनैः शनैः दक्षिण के सभी प्रान्तों में उनका प्रसार होता रहा।

यद्यपि इन प्रवन्धों का संगीत समझने के लिये उस समय का कोई भी संगीत ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। तथापि दो-चार उपलब्ध ग्रंथों की चर्चा पूर्व में की गई है। परन्तु उस समय का संगीत अर्थात् गान या वादन किस प्रकार किया जाता था? यह समझने लिये कोई विश्वसनीय विवरण प्राप्त नहीं है। इनका प्रचार श्रीकृष्णलीला, श्रीकृष्ण भक्ति के विविध वर्णनों के गान से होने लगा और वे लोगों में रुचिकर हो कर भक्तजनों के भवित-संगीत के पोषक हुए, यह स्पष्ट है। इस संवंध में सुप्रसिद्ध डॉ. विजयेन्द्र का मन्तव्य निम्न प्रकार है:—

"वैष्णव आलवार भक्तों का काल ईसा की पांचवीं शती से नवमी शती के मध्य का स्थित किया जाता है। इन आलवारों में श्रीकृष्ण को ही पुरुष स्वीकार करके पूज्य देवता माना जाता था। भक्तजन अपने को नायिका (स्त्री) मानते थे। इन भक्तों के चार हजार पद श्रीकृष्णलीला से सम्बद्ध पाये जाते हैं। इनमें श्रीकृष्ण तथा एक प्रमुख गोपी का वर्णन है। कल्पना की जाती है कि यह प्रमुख गोपी राधा ही है।"

"इसके अतिरिक्त 'कुरवैंकुडु' नामक तामिल नृत्यविशेष का भी लीला प्रसंग में उल्लेख है। यह नृत्य श्रीकृष्ण की रास-लीला का समकक्ष प्रतीत होता है। अतः यह अनुमान लगाया जाता है कि पाँचवीं-छठी शती में दक्षिण के आलवार

---

*. उ. हि. संगीत की संक्षिप्त ऐ. समालोचना। गुजराती पृ.५–६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैष्णवों में रास-लीला और राधा-कृष्ण युगल केलि का कोई न कोई रूप विद्यमान था, जो परवर्ती काल में और व्यक्त तथा स्पष्ट होता गया ।"

उपर्युक्त उल्लेख से भी इस धारणा को समर्थन प्राप्त होता है कि पांचवीं छठी शती से श्रीकृष्ण भक्ति के कीर्तन अर्थात् श्रीकृष्ण-लीला के प्रबन्धों का गान ही नहीं नृत्यों का भक्ति स्वरूप भी पाया जाता है। जिन का नवमी शताब्दी तक व्यापक प्रचार हो चुका था। ई. स. की प्रथम शताब्दी की रचना गाथा सप्तशती नामक प्राकृत के प्रसिद्ध ग्रंथ में भी तीन स्थानों पर श्रीकृष्ण की व्रज-लीला और गोपियों का वर्णन मिलता है।

चतुर्थ शती से दसवीं शती के प्राचीन युग में वैष्णव धर्म के मन्दिरों एवं इन मन्दिरों में संगीतमय प्रार्थना तथा भगवद् गुणगान युक्त प्रबन्धगानादि की दृष्टि से विचार करने के लिए निम्नलिखित उल्लेख पर्याप्त होंगे—

विक्रम सं ४६१ (ई. स. ४०५) में दशरूपा सहस्रशीर्षा पुरुष की स्तुति से आरंभ करते हुए नरवर्मा के शिलालेख में नरवर्मा ने वासुदेव को अपना शरण्य कहा है।*

ई. स. ४२४ में तीन वैश्य भाइयों ने विष्णु का मन्दिर बनवाया था आरंभ में विष्णु की स्तुति से युक्त शिलालेख नगरा के पास प्राप्त हुआ है।** तथा सौराष्ट्र में चन्द्रगुप्त के नियत किये हुये सूबेदार पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने ई. स. ४५७ में गिरनार की पास कारणमानुष चक्रभृत-विष्णु का मंदिर बनवाया था। लेख का आरम्भ विष्णु के वामन अवतार की स्तुति से किया गया है।‡ उपरान्त चालुक्य वंश के मंगलीश राजा ने वातापि-बदामी में एक गुफा खुदवाकर उसमें ई. स. ५७८ में विष्णु का मन्दिर बनवा कर विष्णु की मूर्ति पधराई थी।‡‡

झाँसी जिले के देवघर ग्राम के पुराने-जर्जरित मंदिर में विष्णु भगवान् की एक मूर्ति है, जिनके नाभिकमल पर ब्रह्मा विराजित हैं, और आसपास इन्द्र इत्यादि देवगण स्तुति कर रहे हैं । यह मूर्ति छठी या सातवीं शती की मानी जाती है।

ईसा की सातवीं शताब्दी में नरसिंह वर्मा (द्वितीय) ने कांची के कैलासनाथ स्वामी के मंदिर में विष्णु की मूर्ति पधरा कर मन्दिर बनवाया था।

---

* *Epigraphia Indica Vol. XIII. P.* 321.

** *Progress Report of the Archaeological Survey of India Western circle* 1916. *P.* 56.

‡ *Corpus Inscriptorum Indiearnum Vol. III.*

‡‡ *Indian Antiquary Vol. III. P. Vol. VI. P.* 363.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल के समय (ई. स. ९०८) में विष्णु के तीन मन्दिर बनाये गये थे। पश्चात् दशवीं शती में उदेपुर के पास चारणेश्वर महादेव के मन्दिर के शिलालेख (ई. स. ९५४) में मुरारि का मन्दिर वनवा कर हरि की मूर्ति पधराने का उल्लेख प्राप्त होता है। ई. स. ९५५ में खजुराहो के लेख में बुंदेलखंड के चंदेल राजा हर्षदेव के पुत्र यशोवर्मा ने एक वैकुंठ मन्दिर वनाया यह उल्लेख भी प्राप्त होता है। तदतिरिक्त भुवनेश्वर में अनन्त वासुदेव (वलराम और कृष्ण) का मन्दिर दशवीं शती के अन्त में वनवाया हुआ माना जाता है।*

दशवीं शताब्दी तक के प्राचीन युग में अनेक मन्दिरों का सर्जन हो चुका था। वैष्णव भक्ति मार्ग की प्रार्थना स्तुत्यादि एवं भगवद् गुणगान की महिमा का प्रचार तंत्र शिलालेखों में और मूर्तियों में श्रीकृष्ण की लीला के चरित्र अंकित किये हुए दृष्टिगत होते हैं। शिल्प एवं चित्रकला का भक्तिमय व्यापक रूप ईसा की पांचवीं शताब्दी का माना जाता है। जोधपुर के नजदीक मन्दोर के पास निकले हुए एक स्तंभ के ऊपर की मूर्तियों में शकटभंग, गोवर्धनधारण इत्यादि श्रीकृष्ण की बाललीलाओं के दर्शन होते हैं। उपरान्त बंगाल में पहाड़पुर के खोदकाम में एवं वादामी गुफाओं में श्रीकृष्ण के लीला-चरित्रों का अंकन व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होता है।

श्रीकृष्ण-भक्ति-विषय में आठवीं शताब्दी में कृष्ण-भक्ति का शृंगारमय साहित्य भट्टनारायण रचित 'वेणीसंहार' में प्राप्त होता है। एवं दशवीं शती में श्रीकृष्ण चरित्र का प्रेम संबंधित लीला वर्णन त्रिविक्रम भट्ट के 'नल चम्पू' में दृष्टिगोचर होता है। तदतिरिक्त' दशवीं शती के 'कवीन्द्र-वचन-समुच्चय' में राधा-कृष्ण से संवद्ध अनेक श्लोक हैं।

---

* वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मध्ययुगीन भक्ति क्षेत्र में संगीत

संगीताचार्य भक्त कवि जयदेव

पुष्टि सम्प्रदाय की गान–परंपरा में एक जबरदस्त मर्यादा यह है कि नियत किये हुए भक्त-कवियों एवं संगीताचार्यों के ही पदों का गान किया जाता है। इनमें अधिकतर सम्प्रदाय के ही अष्टछापादिक शिष्य-गण हैं। कभी कभी अन्य भक्तों के भगवत्लीला संबंधी गाये हुए कीर्तनों का भी समावेश हुआ है। इसी परिपाटी से हवेली संगीत की परंपरा का अविच्छिन्न रूप आज तक जारी रहा है। भविष्य में यदि इस परंपरागत प्रणालिका में अन्य परवर्ती कवियों के पद-गान समावेश करने की चेष्टा की जायगी तो सम्प्रदाय की भावात्मक, साहित्यात्मक और संगीतात्मक दृष्टि से यह कृत्य विघातक होगा।

सम्प्रदाय की कीर्तन-प्रणाली के कीर्तनकारों की संख्या के विषय में अन्य प्रकरण में चर्चा की जायगी । यहाँ केवल सम्प्रदाय में मान्य कीर्तनकारों का ऐतिहासिक क्रम की दृष्टि से विचार करेंगे। हवेली संगीत के पद गान की परंपरा में जिन-जिन भक्त संगीतकारों को स्थान दिया गया है, उनमें काल क्रम की दृष्टि से सर्व प्रथम 'भक्त कवि जयदेव' का स्थान उल्लेखनीय है।

यद्यपि जयदेव के पूर्वयुग में भी भक्ति और संगीत का प्रचार हो चुका था, तथापि भक्तिक्षेत्र एवं संगीत क्षेत्र के मुक्त वातावरण का आरम्भ जयदेव के समय से होता है। भक्तिमार्गीय आचार्य युग का आरंभ भी इसी समय से होता है। भक्ति-मार्गीय चतुः सम्प्रदाय के चार आचार्यों में सर्व प्रथम वैष्णवाचार्य रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव समय ई. स. १०१७ से ११३७ लेकर विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य और मध्वाचार्य का समय ११९७ से १२७६ तक का माना जाता है। मतांतर की दृष्टि से विष्णुस्वामी को प्रथम निम्वार्काचार्य को द्वितीय और रामानुजाचार्य को तृतीय तथा मध्वाचार्य को चतुर्थ क्रमानुसार माना जाता है।

जयदेव के पूर्व भी पुराण एवं भागवत के नृसिंह, वामन, वराह, रामावतारादि की कथा-पूजा का प्रचार दृष्टिगत होता है । वैष्णव भक्ति की दृष्टि से श्रीकृष्ण को पूर्णावतार और अन्य २४ अवतारों को अंशावतार, जिनमें १० अवतार प्रमुख हैं, माना गया है। श्रीकृष्णभक्ति और दशावतारों के गुण चरित्रों के कीर्तन, श्रवण, और स्मरण का प्रवाह ११ वीं शताब्दी तक वहता रहा था। इस तथ्य को जयदेव रचित प्रथम प्रवन्ध से ही समर्थन प्राप्त होता है। पं. भातखंडेजी ने जयदेव संबंधी निम्नलिखित अवतरण दिया है:—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"भक्त कवि जयदेव का जन्म बंग देश के वीरभूम जिले के केंदुविल्य (केन्डुला) नामक ग्राम में ईसा की ११ वीं शताब्दी में हुआ था। उन्होंने राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन कर संस्कृत भाषा में "गीत-गोविंद" नामक एक सुललित प्रीति काव्य लिखा था। स्थान-स्थान पर इस काव्य के भाव शुद्ध और उच्च हैं। परन्तु वहुत स्थान साधारण लोगों को कुरुचिपूर्ण और लज्जाजनक मालूम होते हैं। भक्तिमार्ग की साधना में जो अति प्रवीण हैं वे ही केवल इन सव स्थानों के गूढ रहस्यों को हृदयंगम कर सकते हैं। अन्यों के लिये ये विषवत् है। ऐसा क्वचित् कोई मनुष्य होगा जो जयदेव के मधुर गीतों की आवृत्ति सुनकर मोहित न होता हो।" (भा. सं. पं. मराठी आवृत्ति पृष्ठ—६६५।

जयदेव गौडेश्वर महाराज लक्ष्मणसेन के सभा कवि थे। लक्ष्मणसेन को ई. स. १११८-१९ में राज्याधिकार प्राप्त हुआ था। अतः जयदेव का जन्म ई. स. की ११ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है।* माता पिता के देहान्त के वाद किशोरावस्था में ही तीर्थं स्थानों में यात्रा करते हुए वैष्णव सम्प्रदाय के 'यशोदा-नंदन' नामक महात्मा का शिष्यत्व ग्रहण किया था। पश्चात् विवाह होने के वाद ही 'गीत गोविंद' की रचना की गई थी।

'गीतगोविंद' पदों का जर्मन, लेटिन और अंग्रेजी भाषा में भी भाषान्तर हो चुका है। उनके प्रत्येक पद में आठ-आठ चरण होने से इन्हें 'अष्टपदी' कहा जाता है। इस रचना को साम्प्रदायिक दृष्टि से देखा जाय तो निम्वार्क तथा अधिक-तर 'विष्णुस्वामी' की वैष्णवी भावना के साथ सुसंगत कही गयी जायगी। चतुः-सम्प्रदाय की दृष्टि से पुष्टि सम्प्रदाय की आचार्य परंपरा का 'विष्णुस्वामी' परंपरा में समावेश माना जाता है। इस दृष्टिकोण से हवेली-संगीत के गायकों की परंपरा जयदेव तक ले जा सकते हैं।

श्री जयदेवजी ने श्रीराधा-कृष्ण के प्रति भक्तिभाव को मधुर काव्य में संगीत-बद्ध किया है। जयदेवकृत वर्णन केवल काव्यानंद के लिये हुआ हो ऐसा नहीं है; हरिस्मरण के लिये भी किया गया है। इस प्रकार का उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है।** 'हवेली-संगीत' के भक्त-गायकों ने तो भगवल्लीलादि का हरिस्मरण के लिये ही गुणगान किया था।

प्रायः हमारे इतिहासकार आधुनिक संगीत का उद्गम ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रारंभकाल तक ले जाते हैं। किन्तु हमारे संगीत में जिस

---

* *अतो जयदेवकविजीवनसमयोऽपि ख्रिस्ति संवत्सर स्यैकादश शतकं आसीदिति फलितार्थः। गीतगोविंद काव्यम्।*

** *यदि हरिस्मरणे सरसं मनो, यदि विलासकलासुकुतूहलम्। जयदेव*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वस्तु को 'राग' कहते हैं और राग को संगीत का प्राण समझते हैं उन रागों का उगमकार भक्त जयदेव को मानना इतिहास-सिद्ध है।

आज कल जिस अर्थ में 'राग' शब्द का प्रयोग किया जाता है उस रूढार्थ में भरतादि के समय में 'राग' शब्द प्रचार में नहीं था। उस समय 'जाति' शब्द था। जातियों के प्रकार के उपरान्त श्रुति, ग्राम, मूर्च्छनादि का भी वर्णन 'भरत-नाट्यशास्त्र' में पाया जाता है, किन्तु जातियों से मूर्च्छना का उपयोग करने का का कोई विधान प्राप्त न होने के कारण अनुमान किया जाता है कि जातियों का संबंध मूर्च्छना से न होकर ग्राम के साथ होता होगा। जब धीरे-धीरे जाति गान का प्रचार मंद होता चला गया तब प्रत्येक ग्राम से मूर्च्छना नियत होने लगी और उसी में से रागविस्तार की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। भरतनाट्यशास्त्र के समय के बहुत बाद ग्राम-राग उत्पन्न होने लगे। फलतः ग्राम-राग मूर्च्छनादि को 'देशी संगीत' (देशीगान) कहना आरंभ हुआ। यह परिवर्तन किस समय से हुआ होगा, इसकी आधारपूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं होती। फिर भी यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि जयदेव के समय के आरंभ तक रागादि व्यवस्था में दक्षिण और बंगाल प्रान्त मुख्य थे। जयदेव रचित पदों से स्पष्ट होता है कि उस समय बंगाल में भक्तिमय काव्यों को राग और तालबद्ध गान करने का विशेष प्रचार था।

जयदेव के 'गीतगोविंद' में २४ अष्टपदियाँ प्राप्त होती है। इन प्राचीन प्रबन्धों (अष्टपदियों) के राग भी तत्कालीन हैं। जिनके स्वरूप अप्रचलित बन जाने के कारण गायक आजकल के प्रचलित ताल में बिठा कर गाते हैं। फलस्वरूप एक ही अष्टपदी को कोई भैरवी में, कोई केदारे में, कोई बागेश्री में, तो कोई वसंत या हिंडोल में भी गाते हैं।

यद्यपि गीतगोविंद के रागों का स्वरूप आज प्रचलित नहीं है, तथापि हमारे वैष्णवमन्दिरों में इन प्रबन्धों के गान की प्रथा पाई जाती है। हम पहिले कह चुके हैं कि 'हवेली संगीत' के कवियों एवं संगीतकारों में जयदेवजी को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम स्थान दिया जाता है। सम्प्रदाय में नियत ऋतु में, नियत दिन, नियत समय पर अष्टपदियाँ गाने की प्रणाली आज भी है। कुछ अष्टपदियाँ तो जयदेवजी के मूल राग में भी गाने की प्रथा दिखाई देती है। पुष्टि सम्प्रदाय की प्रणाली में वसंत-पंचमी को वसंतोत्सव के दर्शन में—उनके मूल राग 'वसंत' में ही निम्न अष्टपदियों का गान किया जाता है—

ललितलवंगलतापरिशीलन विहरति हरिरिह सरस वसन्ते (प्रबन्ध-३)*
स्मरसमरोचितविरचितवेशा। प्रबन्ध-१४।
विरचित चाटुवचनरचनं चरणे। प्रबन्ध-२०।

---

* *यह अष्टपदी प्रायः सम्प्रदाय के सभी पीठों में वसंतपंचमी के दिन राग वसंत में ही गाई जाती है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तदुपरान्त निम्न अष्टपदी भी उनके मूल राग 'मालव' में रामनवमी, नृसिंह जयंती तथा वामन जयन्ती के दिन भोग-संध्या आरती के दर्शन में गाने की प्रथा है। प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् (प्रबन्ध-१) तदतिरिक्त 'रतिसुखसारे धीरसमीरे' (प्रबन्ध-११) यह अष्टपदी तृतीय पीठ की प्रणाली में ज्येष्ठ सुदी दशमी के दिन शयन के दर्शन में तथा नवनीतलाल के गृह की प्रणाली में ज्येष्ठ शुक्ल १५ के रोज शयन दर्शन में विहाग (विहागडा) राग में तथा षष्ठम गृह (सूरत) की प्रणाली में ज्येष्ठ शुक्ल ११ के दिन राजभोग के दर्शन में 'सारंग' राग में गाई जाती है। कुछ समय पहिले उनके मूल राग 'गूर्जरी (टोड़ी में) गाने की प्रथा भी थी।*

चन्दनचर्चितनीलकलेवर पीतवसनवनमाली (प्रबन्ध-४)—इस अष्टपदी का अक्षयतृतीया से रथयात्रा तक, जब भगवान को चन्दन का लेपन किया जाता है तब, गान किया जाता है।

जयदेवजी कृत कहा जाने वाला गंगास्तव भी ज्येष्ठ शुक्ल दसमी के दिन शृंगार के ओसरा में 'सुरत' की प्रणाली में राग-भैरव में गाया जाता है।

रागः—

भक्तकवि जयदेव के गीतगोविंद के गान में निम्न रागों के उल्लेख पाये जाते हैं— (१) मालवा (२) गुर्जरी (३) वसन्त (४) रामकरी (५) गुनकरि (६) मालव-गौड़ ७) देशाख्य (८) भैरवी (९) विभास (१०) कर्णाट, (कान) अथवा केदार का भी कहीं उल्लेख किया है (११) देशीवराडी (देशवराडी) और (१२) वराडी।

तालः—

जयदेव में निम्नांकित तालों का उल्लेख है—

(१) यतिताल (२) रूपकताल (३) मठप्रतिमठ ताल (४) एकताल और (५) अष्टताल (अठताल)।

जयदेव कृत गीतागोविंद के राग और तालों के मूल स्वरूप में ही पुष्टि सम्प्रदाय में अष्टपदियां गाई जाती हैं, ऐसा हम कह नहीं सकते। तथापि गीत-गोविंद में छपी हुई तीन अष्टपदियाँ जो पुस्तक में 'वसन्त रागेण गीयते' कह कर राग 'वसन्त' कहा गया है, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। पुष्टि सम्प्रदाय में वसन्त पंचमी के रोज गाये जाने वाली अष्टपदियों का प्राचीन वसन्त राग का रूप आज के इतर गायकों में प्रचलित वसन्त से भिन्न अवश्य था। उसमें पंचम वर्ज्य, ऋषभ कोमल एवं शेष सब स्वर शुद्ध होते थे। वसन्त राग के इस प्राचीन स्वरूप में ही उपर्युक्त तीनों अष्टपदियां सम्प्रदाय में गाई जाती हैं। अतः 'हवेली-संगीत' में जयदेव के समय के वसन्त राग का प्राचीन स्वरूप आज भी दृष्टिगोचर

---

* देखिए—श्री नवनीतलाल के गृह की तथा सुरत के गृहादि की कीर्तनप्रणालिका।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होता है यह कहना अवास्तविक नहीं होगा। इस संबंध में पं. रातंजनकरजी का उल्लेख है कि–"यह वसंत जयदेव के पश्चात् लगभग ५०० वर्ष के ग्रन्थों में मिलता है। 'संगीत रत्नाकर' के शुद्ध विकृत स्वरों का संतोषजनक निश्चय अभी नहीं हुआ है। अतएव उसमें कहे हुए रागों के स्वरूप हम लोग निकाल नहीं सकते। तत्पश्चात् के ग्रन्थों में वसन्त का स्वरूप वही है जो कि ऊपर वताया गया है।* दाक्षिणात्य संगीत में तथा वंगाल के कीर्तनों में यह वसन्त अब भी प्रचलित है। जयदेव स्वयं बंगाली थे अतएव इसी वसन्त में इन अष्टपदियों को गाने में वस्तुस्थिति के निकट तो हम लोग अवश्य होंगे।'** वसन्त राग के अतिरिक्त अष्टपदियों के रागों की चर्चा 'राग-प्रकरण' में तथा तालों की चर्चा 'ताल-प्रकरण' में की जाएगी।

इस प्रकार गेय-काव्य का आरंभ कवि जयदेव से कहा जायगा। यद्यपि प्राचीनतम काल में सामगान अधिकतर गेय काव्य था। कहा जाता है कि महर्षि वाल्मीकि की अमर-रचना सर्व प्रथम लव-कुश द्वारा गाये जाने के लिये प्रस्तुत की गई थी, और उत्कृष्ट गेय काव्य के रूप में ही उसका प्रचार हुआ था। इस प्रकार वेदकाल से कालिदास के मेघदूत तक संस्कृत भाषा में अनेक गेय काव्य रचे गये हैं, जिन का संक्षिप्त विवरण 'पूर्वखंड' में किया गया है। परन्तु उस समय काव्य और गीत या कवि और गानकर्ता (गायक) में कोई विशेष भेद नहीं समझा जाता था। अतः कुछ आलोचकों के मतानुसार हमारा भी मन्यव्य है कि इन गेय काव्यों को वास्तविक अर्थ में गीत-काव्य नहीं कहा जा सकता। वर्तमान परिभाषा के अनुसार जयदेव के 'गीत-गोविंद से ही संस्कृत भाषा में गीति-काव्य की परंपरा का आरंभ मानना उचित है।

हिन्दी के नवनिर्माण काल में अपभ्रंश में भी सहजिया सम्प्रदाय के सिद्धों के काव्य तथा नाथपंथियों की कृतियों में भी गेय काव्य की प्रधानता है। ये राग-बद्ध हैं। अष्टछाप से पूर्व गेय पद-रचना करने वाले भक्त कवियों में हम विद्यापति, चंडीदास, नामदेव, भक्त नरसिंह तथा संत-कबीरादि का उल्लेख करना चाहते हैं। अष्टछाप के पूर्ववर्ती भाषा में गेयपद रचयिताओं में प्रथम विद्यापति का स्थान है। अतः संस्कृत गीतिकाव्य के मूल आरंभकर्ता जयदेव के पश्चात् विद्यापति और तत्पश्चात् क्रमशः उपर्युक्त उल्लेखानुसार कबीर तक का परिचय इसी प्रकरण में किया जायगा।

---

* पंचमवर्ज्य, ऋषभ कोमल एवं शेष स्वर शुद्ध

** 'लक्ष्य संगीत'–मार्च १९५८ : पृष्ठ–९७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीताचार्य कवि विद्यापति

संगीत के माध्यम द्वारा श्रीकृष्ण की लीलाभक्ति की एक विशेष साधना के उद्गमकर्ता महानुभाव भक्त-कवि जयदेव के पश्चात् विद्यापति को स्थान दिया जाता है। अष्टछाप (हवेली) घराने में जिन महानुभावों के पद गाये जाते हैं उनमें ऐतिह्य दृष्टि से प्रथम जयदेव का और दूसरा विद्यापति का नाम अंकित है।

विद्यापति का समय ईसा की १४ वीं शताब्दी का माना जाता है। ये विहार तिरहर के राजा शिवसिंह के दरवार में थे। इस संबंध में "विद्यापति : एक अध्ययन" पृष्ठ ८ पर निम्न लिखित उल्लेख प्राप्त होता :—"ऊपर की तिथियों के अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि विद्यापति का रचनाकाल १४०५ ई. के लगभग आरंभ होकर ई. १४३८ (या मृत्युपर्यंत) चलता है। "कीर्तिलता" लिखते समय विद्यापति १८-२० वर्ष के तरुण अवश्य होंगे। अतः उनकी जन्मतिथि ई. स. १३७५–१३७७ के आसपास होगी। इस विवेचन के आधार पर यह अनुमान कर सकते हैं कि विद्यापति का समय १३७५ ई. है"।*

कवि जयदेव के समान ही कवि विद्यापति भी रसिक कवि हैं। विद्यापति के अभिसारादि जयदेव से कुछ आगे भी बढ़ जाते हैं। तथापि जयदेव की "कोमल-कान्त पदावली" का प्रभाव विद्यापति पर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। जहाँ विद्यापति मौलिक रहे हैं वहाँ जयदेव अद्वितीय रहे हैं। ऐसा कुछ विद्वानों का मतंव्य है।

विद्यापति की प्रसिद्धि में उनका पांडित्य, व्यक्तित्व, प्रतिभा, कल्पना-शक्ति, संगीत का ज्ञान तथा रसिकतादि गुणों का आकर्षण मुख्य है। इन गुणों से प्रभावित होकर राजा शिवसिंह ने विद्यापति को "अभिनव जयदेव" की उपाधि प्रदान की थी।

"विद्यापति वैष्णव थे। उन्होंने स्वयं भागवत की अपने हाथ से नकल की थी। यह पुस्तक अभी दरभंगा पुस्तकालय में है। 'हिंदीभाषा और साहित्य' नामक पुस्तक में बाबू श्यामसुन्दरदास ने लिखा कि – "उन्हें यह रूप विष्णुस्वामी तथा निम्बार्क सम्प्रदायों में ही पहले पहल प्राप्त हुआ था। राधाकृष्ण की सम्मिलित उपासना इनकी भक्ति का नियम था। × × विद्यापति ने राधा और कृष्ण की प्रेमलीला का जो विशद वर्णन किया है उस पर विष्णुस्वामी तथा निम्वार्क मतों का प्रभाव प्रत्यक्ष है।"

विद्यापति की गेय रचनाएँ पर्याप्त संख्या में प्राप्त होती हैं। इन पदों में राधाकृष्ण की शृंगार लीला की भावना और भक्ति की साधना स्पष्ट दिखाई

---

* लेखक– रामरतन भटनागर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देती है। विद्यापति के पद सुंदर, स्निग्ध एवं भावपूर्ण होने से लोकगीतों की तरह लोगों के हृदयों को स्पर्श कर चुके थे। इन भक्तिमय पदों में प्रेम, मिलन, रूप-वर्णन, मान, अभिसार और रति-प्रसंगादि के वर्णन हैं। इस प्रकार के गीति-पदों में प्रेममय भक्ति की उत्कृष्ट भावना के कारण भक्तिमार्गीय वैष्णव सम्प्रदायों में उनके पद-गान को आदरणीय स्थान दिया गया है।

इनकी पद रचना की चर्चा पं. लोचन के "रंगतरंगिणी" नामक संगीत के ग्रन्थ में भी पाई जाती है। कुछ वर्षों पूर्व "विद्यापति" फिल्म बनी थी। उस समय इनके गीतों की एक पुस्तिका "न्यू थिएटर" की ओर से प्रकाशित की गई थी, जिसकी भूमिका में निम्नलिखित विवरण है—

"बंगाल मां एमना गीतो वधारे प्रचलित छे, तेथी घणाओनुं एम मानवुं छे के तेओ बंगाली हता। पण आजसुधी जे–जे पदो अने कविताओ तेमनी बनालेली मली छे, ते बधी ज ब्रजभाषा मां छे। विद्यापति रसना कवि हता अने आजे पण तेमनां गीतो वैष्णव धर्मावलंबी प्रेम उत्साहथी गाय छे।"

केवल उपर्युक्त उल्लेख के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि उनकी सभी कविताएँ ब्रजभाषा में ही हैं। संस्कृत और मैथिली भाषा में भी रचनाएँ है। विद्यापति वैष्णव-भक्तकवि एवं संगीतज्ञ होने के कारण तथा राधाकृष्ण की विविध लीलात्मक भावना और रहस्यमय गेय पद पुष्टि सम्प्रदाय की लीला भावना से संबंधित मान कर उनके पदों को अष्टछाप (हवेली) सम्प्रदाय की परिपाटी में उचित स्थान दिया जाना असंभव नहीं है। कुछ लोग कोई अन्य विद्यापति होने की कल्पना करते हैं, किन्तु अधिकतर इन्हीं विद्यापति को मान्य करते हैं। उनके जो पद पुष्टि सम्प्रदाय की कीर्तन प्रणाली में पाये जाते हैं, उनमें क्वचित् मैथिल शब्दों का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। अतः ये रचनाएँ १४ वीं शती के उत्तरार्ध और ई. १५ वीं शती के पूर्वार्ध के समय के विद्यापति की होना संभावित है।

पुष्टि सम्प्रदाय के कीर्तन-संग्रहों में जो विद्यापति के पद प्राप्त होते हैं उनमें से उदाहरणार्थ कुछ पदों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। खंडिता-नायिका के भाव का शृंगारात्मक निम्नलिखित पद का कीर्तन संग्रहों में "खंडिता के पद, राग-रामकली" शीर्षक में दिये गये पदों में समावेश किया गया है। जो मंगला के दर्शन में एवं तत्पश्चात् के ओसरा में भी गाया जाता है—

भली कीनी भोर भये आये मेरे अंगना।
रैन के उनींदे नैना, आलस बलित बैना,
कुमुदिनी चित चैना, चंद बस्यो गगना॥
अधरन रंग नीको, काजर कपोल पीक
जावक लिलाट लीक, कहत गोपंगना॥
भुजनु बंदन फलि, कच हार उर फबि,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पीठ गड्यो कंगना ।।२।।
वसन सुहात नीले चिकुर छबीले
चरन परत ढीले निस कियो जगना ।
"विद्यापति" श्रीगोपाल, सुरति समें अति निहाल,
ताहिपै सिधारो लाल, जहाँ मन लगना ।।३।।

निम्नलिखित पद में भक्त ने अपने श्रृंगार रस के मनोभावों को प्रेमासक्ति के रूप में प्रगट किया है । सम्प्रदाय में यह पद 'हिलग' के पदों में सुप्रसिद्ध है। आसक्ति को 'हिलग' कहते हैं। हिलग के पद सम्प्रदाय की कीर्तन प्रणाली में शीतकाल में प्रबोधिनी के पश्चात् गुर्जर पौष मास तक के समय में राज भोग के दर्शन में गाये जाते हैं । विद्यापति का यह पद उसी समय में राग-आसावरी में गाया जाता है। कोई जागिया—आसावरी में भी गाते हैं।

"नयना माई नाहिन करत कह्यो ।
कहा करूं कैसे नहिं छूटें जो हठ हरखि गह्यो ।।
आवत हुती सहज मग अपने, चपलनि उलट तह्यो ।
निगम सरूप धाय खन* अपने, लोभित चाहि लह्यो ।।२।।
जो व्रत लियो प्रथम ही निरखत, अंतहुसों निबह्यो ।।
"विद्यापति" श्रीगोपाल सदा इन अँखियन लागि रह्यो ।।३।।

वल्लभ सम्प्रदाय में वसन्त पंचमी से दस दिन तक प्रत्येक दर्शन में वसन्त राग ही गाया जाता है । इन वसन्त वर्णन के पदों में भी विद्यापति का निम्नलिखित पद देखिए—

"नव वृंदावन नव-नव तरुगन, नव-नव विकसत फूल ।
नवल वसंत नवल मलयानिल, मातल** नव अलि फूल ।।
†.....नवल रस माते, बिहरइ नवल किसोर ।
कालिंदी पुलिन कुंज बन सोभन, नव-नव प्रेम विभोर ।।२।।
नवल रसाल मुकुल मधु मातल, नव-नव कोकिल गाय ।
नव जुवतीगन चित उनभलई, नव रस कानन धाय ।।३।।
नव जुवराज नवलपर नागरि, मिलए नव-नव भाँति ।।
नित नित†† एसन नव-नव खेलत, विद्यापति मति माति ।।४।।

---

* "खन" शब्द मैथिली है। जिसका अर्थ "क्षण" होगा।
ब्रजभाषा में "छिन" शब्द का प्रयोग किया जाता है।

** "मातल" शब्द भी व्रज का नहीं है।

† जिस प्रति में हमें यह पद मिला है, उसमें इस स्थान पर एक दो शब्दों की त्रुटियां दिखाई देती है।

†† "एसन" शब्द को व्रजभाषा में "अेसेई" कहते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वसंत राग के पद-गान के पश्चात् होरी के दिनों में गाये जाने वाले होरी-धमार के पदों में भी विद्यापति का निम्नलिखित पद देखिए—

राग जेत श्री

"श्री राधा नवल किसोर डोलै गुजरी ।
संग लिये सकल व्रजवनिता, अति रस रंग भरी ।।१।।
कानन करन-फूल नक-बेसर, मोतिन मांग भरी ।
अधर कपोल नैन मृग खंजन, सब हिमतें अगरी ।।२।।
मुक्तामाल चोकि हमेल, खगवारी पर हुलरी ।।
अंगियां बनी रायकी, मानों जोबन रंग भरी ।।३।।
सुवन-पटा की ओढनी और ओढि ता पर इंडुरी ।
कनक मटुकियां सिर धरें, बाबानंद के द्वारा खरी ।।४।।
"विद्यापति" बरनें कहाँ लौं, अंग-अंग संथरी ।
कोकिला बचन संपुट खुले, मानों फूली कमल कली ।।५।।

उपर्युक्त पद पंचम-गृह की प्रणाली में फागुन शुक्ल ४ को गाये जाने का उल्लेख है।* "जेतश्री" अथवा "धनाश्री" राग में अधिकतर सुनने में आता है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पद भी पाये जाते हैं।

चंडीदास और नामदेव

भक्त कवि विद्यापति के समय के बंगाल के भक्त चंडीदास, एवं दक्षिण के भक्त नामदेव के नाम भी कीर्तन-गान पद्धति में उल्लेखनीय है। "नामदेवाची-गाथा" नामक कीर्तन संग्रह में श्रीकृष्ण की बाललीला के भी अभंग दिखाई देते हैं। चौवीस नामावतारों की स्तुतियों के उपरान्त राधा सहित श्रीकृष्ण नहीं किन्तु "रुक्मिणी—श्रीकृष्ण" की लीला का गान है। श्रीकृष्ण को विट्ठल तथा पांडुरंग नाम से संबोधित करते हुए लोक भाषा में उनका चरित्र-गान किया है। इसके चौबीस अवतारनाम भी भागवत-वर्णित अवतारों से भिन्न हैं। ईस्वी चौदहवीं शताब्दी के इन भक्तों के भक्ति गान अष्टछाप परंपरा की प्रणाली में नहीं होने से इनका उल्लेख ही पर्याप्त होगा।

भक्त नरसिंह

इसके अतिरिक्त गुर्जर भक्ति-कवि "नरसिंह" का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ। भक्त नरसिंह का समय भी ई. स. १४१६ से १४७५ तक माना

* देखिए—"अनुग्रह" वर्ष ३७, अंक २, पृष्ठ—२६ ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाता है। पुष्टिमार्गीय संगीत के पद-गान के आरंभ समय से लगभग ५० वर्ष पूर्व उन्होंने श्रीकृष्ण की लीला के भावात्मक पदों का संगीत की शास्त्रीय राग रागि-नियों में गान किया है। इस प्रकार के सैकड़ों पदों की उनकी रचना विविध रागों में सुप्रसिद्ध हो चुकी है। उनके पद विशेषतः निम्न रागों में पाये जाते हैं—

(१) प्रभाती, (२) वेलावल (विलावल), (३) टोडी, (४) आसावरी, (५) रामग्री, (६) सामेरी, (८) वसंत, (८) मल्लार, (९) मारू, (१०) श्री, (११) केदारो, (१२) मालव, (१३) कालेरो*

भक्त नरसिंह रचित कुछ पद पुष्टि सम्प्रदाय के कतिपय कीर्तन संग्रहों में मिलते हैं। किन्तु सम्प्रदाय की कीर्तन- प्रणाली में इन पदों का गान नहीं किया जाता है। संभव है गुजरात में पुष्टि भक्ति मार्ग का प्रचार होने पर गुजरात के मुख्य मंदिरों के आचार्यों ने सेवाक्रम की प्रणाली के पश्चात् अनवसर में जग-मोहन या चौक में इनका गान आरंभ किया हो और पसंदगी के पदों को अपने संग्रह में लिखवाया हो। ये पद सेवाक्रम के कीर्तनों के साथ में नहीं किन्तु संग्रह के पिछले या पहिले के कुछ पन्नों पर दृष्टिगोचर होते हैं। तथापि सम्प्रदाय की षष्ठ पीठ '(सुरत) की कीर्तन प्रणाली में आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को श्रीबालकृष्ण जी के पाटोत्सव के दिन राजभोग के दर्शन में बधाई और आसीस का "तिहारो घर सुवस वसो" यह कीर्तन पूर्ण होने के बाद नरसिंह मेहता के निम्नलिखित दो पद गाये जाते हैं।**

राग प्रभाती

"कुंका ने पगलें पधारो वहाला कुंकाने पगले ।
समसमता मोहनजी आव्या दडसडते डगलें ॥१॥

× × ×

दूधडो मेंह वरस्या "नरसैया" ने आंगणडे सघले ।
साकर केरा करा पड्या त्यारे रस बाव्यो ढगले ॥‡

राग प्रभाती

"दिवली अजवाली आज मारे दिवली अजवालो ।
घणारे दिवसनो ताप निवार्यो, हुं तो प्रेमे बोलावी लावी ॥१॥
"नरसैयो" ना स्वामी एटलुं मांगुं, मारा मंदिर थकी नव जइए ॥४॥

---

* "कालेरो" नामक राग का उल्लेख अन्यत्र कहीं प्राप्त होता नहीं है। हमारे ख्याल से "कान्हरो" राग का अपभ्रंश एवं परिवर्तित नाम होना संभावित है। अथवा स्थानिक कोई राग है।

** सुरत के घर की कीर्तन प्रणालिका—पृष्ठ २२,८०

‡ यह पद माधव पुर छेड़ में श्रीरुक्मिणी; कृष्णविवाह की बरात वापस लौटती है तब मंदिर के नजीक पदों के पूर्व गाया जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नरसिंह के भक्ति-प्रवाह के मूल में श्रीमद्भागवत पुराण और भक्ति-गान के प्रवाह में 'गीतगोविंद जैसे काव्य-गान की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। उन्होंने एक पद में जयदेव का उल्लेख भी किया है।* उनके अनेक पदों में प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रवाह स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। उन्होंने तत्कालीन संगीत के रागों में "कृष्ण जन्म के पद, वसंत के पद, शरदोत्सव के पद, हिंडोला के पद, मलार के पद इत्यादि लीला के पदों का गान किया है। उनके बहुत से पद अष्टछाप के पदों की भावना से मिलते हुए दिखाई देते हैं। तथापि अष्टछाप परंपरा की कीर्तन प्रणाली में उनका स्थान न होने के कारणों में मुख्यत: दो कारण हमारी दृष्टि से दिखाई देते हैं। (१) सम्प्रदाय में एक मर्यादा स्पष्ट दिखाई देती है कि सेवा-प्रणाली से संबंधित सभी पद कीर्तनों की मुख्य भाषा ब्रजभाषा तथा क्वचित् संस्कृत है। संस्कृत देव-भाषा मानी जाती है और भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म एवं उनकी लीलाओं का स्थल ब्रजमंडल है। अत: संस्कृत और ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के पदों को स्थान प्राप्त न होना संभावित है। (२) सम्प्रदाय में ऐसी भी एक मान्यता है कि नरसिंह ने विपत्ति आने पर भगवान् को बार-बार परिश्रम दिया है। भगवान् को किंचित् भी परिश्रम हो इस प्रकार की सेवा या प्रार्थना करना सम्प्रदाय के सिद्धांत के विरुद्ध होने से उनके पदों को पुष्टि-कीर्तन गान में स्थान दिया गया नहीं है। हमारी मान्यतानुसार पहिला कारण विशेष महत्व का है। पुष्टि-सम्प्रदाय-मान्य भागवत पुराणानुसार भगवान् की भावात्मक लीलाओं की झांकी नरसिंह की पद रचनाओं में तथा राग-रागिनियों में भी अष्टछाप के समान है। अष्टछाप परंपरा के पद-गान के आरंभ से पूर्व इस प्रकार के भक्ति गान की भूमिका नरसिंह में ही पाई जाती है, ऐसा कहना अनुचित न होगा।

रामानंद

ईसा की १४ वीं शताब्दी के मध्यभाग में विशिष्ठाद्वैतवादी रामानुजाचार्य के अनुयायी राघवानंद के शिष्य संत रामानंद का जन्म प्रयाग में हुआ था। वे कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे। उन्होंने रामानुज के नियमों से अलग हो कर सर्व वर्णों के लिए भक्ति के समान अधिकार का समर्थन किया और संस्कृत के स्थान पर जन भाषा में ही उपदेश दिया। आपने श्री राम की पूजा-अर्चना का पंथ चलाया। उनके शिष्यों में स्त्री शूद्रादि का भी समावेश है। जिनमें कबीर जुलाहा, पीपा राजपूत, धन्ना भगत (जाट) तथा रैदास चमारादि शिष्य सुप्रसिद्ध हैं।

---

* *एक जाणे छे व्रजनी गोपी के रस जयदेव पीधो रे।*
उगतो रस अवनी ढलता, "नरसैये" ताणीनें लीधो रे ॥ (न. काव्य संग्रह)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कबीर

रामानंद पंथ के अनुयायी संत कबीर ने अपनी वाणी में राम नाम महिमा, गुरुमहिमा, वैराग्य, जीव-शिव की एकता, माया इत्यादि विषयों का तत्कालीन प्रसिद्ध रागों में लोक भाषा में उपदेशात्मक रूप में खूब प्रचार किया। इनकी पद-रचना में मधुरता और प्रेममय भक्ति भी है। वे रामानंद के शिष्य थे किन्तु उनके काव्यों में सम्प्रदाय विशेष का स्पष्ट असर दिखाई देता नहीं है।

संगीताचार्य गोपाल नायक

गोपाल नायक जाति के ब्राह्मण थे। उनका समय ईसा की १३ वीं शती का अंत भाग और १४ वीं का प्रथम चतुर्थांश भाग माना जाता है। अमीर खुसरो के साथ उनकी संगीत प्रतियोगिता का उल्लेख मिलता है। विश्वसनीय प्रमाणों का अभाव होते हुए भी इस घटना को ऐतिह्य कहा जाता है। सुलतान अल्लाउद्दीन ने ई. स. १२९४ में दक्षिण पर चढ़ाई की थी। कुछ समय बाद उनके मोगल सरदार मलिक काफूर ने पुनः चढ़ाई कर दक्षिण का प्रदेश ई. स. १३१० में जीत लिया और देवगिरि (आज का दौलताबाद) के यादव-वंश का नाश किया। उस समय के राजा रामदेव यादव का आश्रित गोपाल नायक था। अल्लाउद्दीन के शाही लश्कर के साथ गोपाल नायक एवं अन्य गायक वर्ग तथा पंडितों को भी उत्तर में ले जाया गया।

उस समय दक्षिण में संगीत की स्थिति उत्तम प्रकार की थी और संगीत के विद्वानों में गोपाल नायक सम्मानित माने जाते थे। "रत्नाकर" के टीकाकार पं. कल्लीनाथ ने तालाध्याय की टीका में कुडुवक ताल की व्याख्या में गोपाल नायक का उल्लेख किया है।* जिससे प्रमाणित होता है कि संगीत के विद्वानों में गोपाल नायक ने अग्रस्थान प्राप्त किया था। दिल्ली में या अन्यत्र जाने का प्रसंग उपस्थित होता था, तब कहा जाता है कि उनकी गाड़ी के बैलों के गले में इस प्रकार की घंटिकाओं का हार पहिनाया जाता था जिनमें से समयानुसार राग-वाचक स्वरों की सुरावली उत्पन्न होती थी। गोपाल नायक के प्रति अमीर खुसरो के हृदय में अपूर्व मान था, क्योंकि वह अपने मन में समझता था कि छल-कापट्य से ही गोपाल नायक पराजित हुए थे। यह प्रसंग अमीर खुसरो के विवरण में दिया जाएगा।

संगीतकार अमीर खुसरो

ईसा की ११ और १२ वीं शती से उत्तर भारत में मुस्लिम बादशाहों के आक्रमण से हिन्दु राज्यों का पतन आरंभ हो चुका था। उस समय अमीर

---

* *कुडुवकतालस्तु गोपालनायकेन रागकदम्बेरेव गुप्तवद्प्रयुक्तः। सं. र. ठीका, आनन्दाश्रम आवृत्ति पृ. ४३३*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खुसरो के पूर्वज खुरासान से भारत में आकर एटा जिले के पटियाली कस्बा में रहते थे। खुसरो का जन्म ई. १२५३ में उसी स्थल में हुआ था। इनके पिता का नाम अमीर महम्मद सैफुद्दीन था। खुसरो प्रथम तत्कालीन गुलाम घराने के दिल्ली-पति गयासुद्दीन बलवन के आश्रय में रहा, पश्चात् बलवन के पुत्र शाहजादा मोह-म्मद सुलतान की नौकरी में रहा। चतुर और बुद्धिमान खुसरो साहित्यकारों, संगीत-कारों एवं कविजनों के संपर्क में आकर काव्य और संगीत की महफिलों में भाग लेने लगा और उसने शीघ्र ग्रहणशक्ति और बुद्धिमत्ता से उत्तम गायक की योग्यता प्राप्त कर ली। बाद में वह अल्लाउद्दीन खिलजी के दरबार में गायक रहा।

कहा जाता है कि खिलजी के दरबार में बारंबार संगत के जल्से होते रहते थे, और प्रत्येक जल्से में खुसरो एक नई गजल बनाकर सुनाता था। मुलतान से युद्ध-कैदियों के साथ आये हुए दरबारी संगीतज्ञ और कवि भी काव्य-संगीत के दरबारी जल्से में भाग लेते थे। अमीर खुसरो सर्वोच्च कोटि का संगीतज्ञ, कवि और गायक था। फारसी साहित्य में उन्हें उच्चकोटि का स्थान दिया गया है। कहते हैं कि उसने संगीत का एक ग्रन्थ भी लिखा था, किन्तु अभी तक वह अप्राप्य है।

खुसरो की श्रवण और स्मरण शक्ति की यह विशेषता थी कि भारतीय रागों को एक बार सुनकर उसी तरह का फारसी गान तैयार कर सुना सकता था। इसी शक्ति के आधार पर उन्होंने दक्षिण भारत के उच्चतम गायक गोपाल नायक को स्पर्धा में हरा दिया था। कहा जाता है कि खुसरो ने अल्लाउद्दीन को समझाकर उनके सिंहासन के नीचे छुप कर गोपाल नायक का गान सुनने का प्रपंच किया। इस प्रकार छः दिन तक गोपाल नायक ने दरबार में अपना संगीत सुनाया, और खुसरो ने सिंहासन के नीचे छुपकर बराबर सुना। पश्चात् खुसरो ने स्वयं उपस्थित हो कर गोपाल नायक को स्पर्धा के लिये आवाहन किया। दर-बार में स्पर्धा का आयोजन हुआ। उस दरबार में गोपाल नायक ने गाना आरंभ किया। जब उसका गायन जम रहा था उसी समय उसे रुक जाने का शाही आदेश प्राप्त हुआ और कहा गया कि आपके गायन में कोई नवीनता नहीं है। तब गोपाल नायक ने अपना गाया हुआ संगीत पुनः गाने का खुसरो को आव्हान दिया और खुसरो ने तुरंत ही उसी प्रकार भारतीय संगीत का फारसी में गान सुनाया। इस इस प्रकार दरबार में खुसरो की जीत छल-कपट की युक्ति द्वारा हुई और नायक गोपाल पराजित घोषित किये गये।

फारसी और भारतीय संगीत के आधार पर खुसरो ने साजगिरि एमन, जीलफ, शहाना, सरपरदा इत्यादि नये रागों की रचना भी की है। तदुपरान्त भारतीय वीणा के आधार पर "सहतार" की रचना की। जिसमें वीणा के चार के स्थान पर तीन तार लगाये और तारों का क्रम उल्टा दिया, तथा जो पर्दे अचल थे, उन्हें चल कर दिया। फारसी में "सह" का अर्थ "तीन" होने के कारण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस वाद्य का नाम "सहतार" रखा गया। इस वाद्य वीणा की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय होने लगा। आगे चलकर सितार का रूप कुछ बदलता रहा, आज हमारे समक्ष सात तार का सितार दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार उन्होंने पखवाज को भी बीच में से दो भाग (टुकड़े) कर उसको अलग-अलग बनाकर 'तबले' का आविष्कार किया।

लाहौरी के "बादशाहनामा" में खुसरो की भारतीय संगीत को देन विषय के उल्लेखों में लिखा है कि:—"मुसलमानों के उदय के पहले भारतीय संगीत में गीत, छंद, धुरू* और अस्तुत** होते थे। ये सब राग कर्णाटक की भाषा में होने के कारण उत्तर भारत के लोग उन्हें नहीं समझ सकते थे। और खुसरो ने गाने के चार नये तरीके निकाले (१) कौल (जिनमें फारसी और अरबी शब्द होते थे और गाने का ढंग भारतीय गीतों की तरह होता था) (२) तराना, (३) कव्वाली (परशियन और भारतीय शैली मिश्रित एक गान पद्धति) (४) ख्याल, (ये एक प्रकार के हिन्दुस्तानी भाषा के गीत होते थे।)

इस प्रकार तराना, ख्याल और कव्वाली के आविष्कर्ता होने का श्रेय खुसरो को है। सुलतान अल्लाउद्दीन खिलजी को संगीत का शौक था। उन्होंने इस कला को प्रोत्साहन दिया था। मुस्लिमों के आने के पश्चात् संगीत को राज्याश्रय देने वालों में इस सुल्तान का नाम प्रथम पंक्ति में माना जायगा। किन्तु दिल्ली दरबार अपने आतंक से भारतीय संगीत को जितना प्रभावित करना चाहता था उतना भारतीय संगीत के तत्त्वों से सुपरिचित होने के लिये उसका आग्रह नहीं था।

सूफी परंपरा में संगीत को अवश्य ग्रहण किया गया है किन्तु उनकी शैली में भी विदेशी आवरण छाया हुआ था। इस काल में भारतीय एवं अभारतीय रागों का संमिश्रण हुआ भावी पीढ़ियों के लिये यह प्रवृत्ति एक संक्रामक रोग बन गई।

---

* ध्रुव

** स्तुति

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भक्तिमार्गीय चतु : संप्रदायों का उद्‌भव और भक्ति-प्रचार

हवेली-संगीत में मान्य भक्त गायकों में जयदेव से लेकर विद्यापति के समय तक आचार्यों द्वारा भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार हो चुका था। इन भक्तिमार्गीय चतु:सम्प्रदाय के आचार्यों, इनके सिद्धान्तादि एवं भक्तिभावात्मक विचारों की ओर दृष्टि करना आवश्यक है।

कालक्रम की दृष्टि से इन चार आचार्यों में प्रथम, द्वितीयादि क्रम के विषय में मतभेद पाये जाते हैं। परन्तु यह स्पष्ट है कि ईसवी १० या ११ वीं शती से लेकर १३ वीं शताब्दी तक के समय में चारों आचार्यों द्वारा अपने-अपने सिद्धान्तानुसार चारों सम्प्रदायों की स्थापना की जा चुकी थी। यही नहीं भारत के कई प्रान्तों में इन सम्प्रदायों के प्रचार और प्रसार के कारण सैकड़ों अनुयायियों द्वारा भक्ति-मार्गीय प्रेम-प्रवाह की धाराएँ जन-समाज में प्रवाहित हो रही थीं।

डॉ. भांडारकर के मतानुसार निम्बाकाचार्य के पहिले रामानुज का प्राकट्य माना गया है। इस मतानुसार रामानुज का समय ई. स. १०१७ से प्रारंभ होता है। रामानुज के पूर्व इस सम्प्रदाय में यामुनमुनि, नाथमुनि और तत्पूर्व के बोधायनादि आचार्य भी हो गये हैं, ऐसी मान्यता है। इन आचार्यों के परंपरागत उपदेशों और ग्रन्थों के आधार पर रामानुज ने अपना मत स्थापित किया, यह कहा जाता है।

रामानुज द्वारा लिखा हुआ "श्रीभाष्य" है तदनुसार उनका मत विशिष्टाद्वैत कहा जाता है। उन्होंने तिरुपति में गोविंदराज का मंदिर बनवाया था। कहा जाता है कि श्री रामानुज ने ४००० प्रबन्धों का संग्रह भी करवाया था। रामानुज ने लक्ष्मीजी सहित भगवान् के पाँच रूप बताये हैं। जिनमें पहिला रूप भगवान नारायण-परब्रह्म जो वैकुंठ में शेष की शय्या पर शंख, चक्रादि धारण किए हुए चतुर्भुज स्वरूप हैं कर्म, ज्ञानादि मोक्ष के उपाय, भक्ति द्वारा ही उपयोगी होने के कारण उन्हें, गौण साधन माना गया है। उनका उपदेश मन्त्र "नमो नारायणाय" है। उनकी भक्ति का स्वरूप प्रेम की अपेक्षा ध्यान-उपासना से ज्यादा निकट है। तथापि इन ध्यानोपासना में प्रेम अन्तर्भूत माना गया है। उनके तिलक चिह्न में ललाट में श्वेत मिट्टी की दो लकीरें खींच कर नीचे की ओर उन लकीरों के संधान के लिए बीच में एक लकीर बनाई जाती है। श्री रामानुज ने गद्यात्मक भक्ति ग्रन्थों के अतिरिक्त न्यायतत्त्व श्रीभाष्य, दीपसार, वेदार्थसंग्रह, भाष्य-विवरण, न्यायसुदर्शन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तथा संगीत-माला इत्यादि ग्रन्थों की रचना की है। जिनमें "संगीत-माला" ग्रन्थ "भक्ति-संगीतमय" होना संभावित है।*

रामानुज के पश्चात् डॉ. भांडारकर के मतानुसार निम्बाकाचार्य का समय ई. स. ११६४ तक का माना गया है। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीमद्निम्बार्काचार्य का प्राकट्य बेलारी जिले के नीम्बपुर ग्राम में वै. शु. ३ के दिन हुआ था। उनका मत द्वैताद्वैत (भेदाभेद) है। रामानुज ने लक्ष्मी सहित नारायण की उपासना-ध्यानादि-भक्ति का उपदेश दिया और निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा सहित श्रीकृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति को वरेण्य कहा गया। श्रीकृष्ण की भक्ति के संबंध में कहा है कि "ब्रह्मा और शिव से वंदित श्रीकृष्ण के पदारविंद के सिवा अन्य कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। श्रीकृष्ण भक्त की इच्छानुसार ध्यान-गम्य रूप धारण करते हैं। इनकी शक्ति अचिन्त्य और तत्त्व दुर्ज्ञेय है। परब्रह्म श्रीकृष्ण के वाम अंग में विराजित आनंदमय देवी वृषभानुजा श्रीराधाजी का हम स्मरण करते हैं; जो श्रीकृष्ण के ही स्वरूप सौन्दर्य जैसी हैं और हजारों सखी-गणों के समूह से आवृत्त एवं सर्व प्रकार की इष्ट कामनाओं को परिपूर्ण करने वाली हैं।**

दशश्लोकी के श्लोक ९ में कहा है कि "जिनमें दैन्यादि गुण होते हैं उन्हीं पर श्रीकृष्ण परमात्मा की कृपा होती है। इस कृपा से अनन्य प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है। इस भक्ति के दो प्रकार हैं—१. साधनरूप और २. फलरूप। साधन रूप भक्ति अनेक जन्मों के पुण्य से उत्पन्न होती है और कर्म-योगादि भगवद् आज्ञा के पालन से भगवान् प्रसन्न होकर जिस भक्ति का दान करते हैं उसे फलरूप अथवा पराभक्ति कहते हैं।

इस सम्प्रदाय में यह भी कहा गया है कि देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि इत्यादि में आत्मबुद्धि तथा श्रुति स्मृति आदि भगवदाज्ञा की उपेक्षा, अन्य देवों का अर्चन-वन्दन और गुरु में अविश्वास भगत्प्राप्ति में प्रतिबंधक हैं। रामानुज और निम्बार्क की भक्ति में मुख्य भेद यह है कि रामानुज की भक्ति ध्यान रूप है और निम्बार्क की भक्ति प्रेमलक्षणा है।

निम्बार्क के अनुयायी दक्षिण, उत्तर भारत और बंगाल में अधिकतर दिखाई देते हैं। गृहस्थी और त्यागी दोनों प्रकार के अनुयायी हैं। इस सम्प्रदाय के तिलक में ललाट में गोपीचंदन की दो लकीरों के बीच में श्याम बिन्दी दी जाती है। गले में तुलसी की माला भी धारण करते हैं। इस सम्प्रदाय का मुख्य मंदिर "वृन्दावन" में है।

---

* लेखक को यह ग्रन्थ प्राप्त हुआ नहीं है। "श्री निवासदास कृत" यतीन्द्रमतदीपका" में और भी ग्रन्थों के नाम प्राप्त होते हैं।

** दशश्लोकी श्लोक ४, ५ और ८, (हरि व्यास की दशश्लोकी टीका)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मध्व सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री मध्वाचार्य का जन्म ई. स. ११९९ (संवत् १२५५) में दक्षिण के कर्नाटक प्रान्त में "उडीपी" तालुके में हुआ था। उन्होंने भक्तिमार्गीय द्वैतवाद पसंद किया और अद्वैतवाद को सर्वथा त्याज्य मान कर तिरस्कृत किया है। रामानुज और निम्बार्क ने "विष्णुपुराण" को प्राधान्य दिया है, किन्तु मध्वाचार्य ने भागवतपुराण को प्राधान्य दिया है। इनके भाष्य को "पूर्ण-प्रज्ञ" भाष्य कहते हैं। उन्होंने मोक्ष के साधन में दो प्रकार की उपासना का उल्लेख किया है—शास्त्राभ्यास रूप और ध्यान रूप। अन्य वस्तु मात्र का विचार दूर करके और भगवान् में अखंड स्मृति रखने को ध्यान एवं निदिध्यासन कहा है। ज्ञान, अज्ञान, वन्ध और मोक्ष परमात्माधीन माने गये हैं। प्रभु के प्रति प्रेम-प्रवाह से युक्त भक्ति परम-भक्ति है। इस भक्ति से भगवान् प्रसन्न होते हैं। भगवत्कृपा से प्रकृति, अविद्या इत्यादि बन्धनों से मोक्ष होता है। वैकुंठ में मुक्त-जीव सालोक्य सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य, ऐसे चार प्रकार के भोगों का उपभोग करते हैं किन्तु यह सर्व ईर्ष्यादि दोषरहित एवं अतिशय आनंदयुक्त होने से मुक्त जीव आनंदयुक्त हो कर वहाँ भी भगवान् के गुणगान किया करते हैं।

इस सम्प्रदाय के दक्षिण प्रदेश में आठ मठ हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायी विशेषतः कर्णाटक और मैसूर प्रान्त में, वृंदावन में और उत्तर भारत में भी दृष्टि-गोचर होते हैं। इस सम्प्रदाय के तिलक में नाक के ऊपर के से लेकर ललाट में दो लकीरें गोपीचंदन से की जाती हैं। जिनको आड़ी लकीर से नाक पर जोड़ देते हैं तथा बीच में आड़ी श्याम लकीर और लाल बिंदी भी करते हैं।

आचार्य विष्णुस्वामी का जन्म कोई विद्वान् १० वीं शताब्दी का कहते हैं। कोई विद्वान् नाभाजी कृत भक्तमाल के आधार पर १३ वीं शताब्दी स्वीकार करते हैं। विष्णुस्वामी सम्प्रदायान्तर्गत आचार्य परंपरा की दृष्टि से श्रीमद् वल्लभाचार्य माने जाते हैं। "फर्कुहर" ने विष्णुस्वामी के मठ-मंदिरों की चर्चा करते हुए "एक कांकरौली और दूसरा कामवन का उल्लेख किया है।‡

महाराष्ट्र में भागवत धर्म के प्रचार में वारकरी नाम से जो सम्प्रदाय प्रसिद्ध हुआ उसे विष्णुस्वामी मतावलंबी माना जाता था। उसके ही अनुयायियों में भक्त ज्ञानदेव, नामदेवादि भक्त गण भी विष्णुस्वामी—मतावलंबी माने जाते हैं। विष्णुस्वामी की भागवतादि धर्म भक्ति का उस समय प्रचार महाराष्ट्र की ओर अधिकतर दिखाई देता था। लोकभाषा में कीर्तन गान की प्रथा में महानुभाव संप्रदाय के स्थापक चक्रधर और वारकरी सम्प्रदाय के संत नामदेव का महाराष्ट्र में स्थान प्रथम है।

---

‡ *Farquaher, An outline of the Religious Literature of India-Page-304.*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ईसा की ११ वीं शती से १३ वीं शताब्दी तक उपर्युक्त चारों आचार्यों द्वारा चतुः साम्प्रदायिक भक्ति का भारत की चारों दिशाओं में प्रचार हो चुका था। आचार्यों ने शास्त्रों द्वारा अपने-अपने, सिद्धांतानुसार भक्तिमय उपदेश देकर उच्च-वर्णों में एवं संस्कृत समाज में भक्ति-मार्ग को जो सिंचन किया, वह सुप्रसिद्ध है। दूसरी ओर हिन्दू समाज की सामान्य जनता में भक्ति भावना का प्रसार भक्त-गायक जयदेव के पश्चात् भक्तों संतों ने लोकभाषा में कीर्तनादि भक्ति-गान द्वारा भारत के विविध प्रान्तों में भक्ति संदेश को पहुँचाया। जिसे लोगों ने भी अपनाया। फलतः अनेक भक्तों ने भाषा द्वारा भगवत्-कीर्तन–गान में मग्न होकर अपने जीवन को धन्य बनाया। इस प्रकार संगीत के माध्यम से भक्ति का प्रसार होने में बहुत कुछ सरलता एवं सहजता होने से भक्तों की परंपरा समृद्ध होने लगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भक्ति का नवोत्थान

ईसा की ११ वीं शताब्दी में मुस्लिम आक्रमणोंकारियों का उत्तर भारत पर आक्रमण हुआ। तब से हिन्दू राज्य-सत्ताओं का धीरे धीरे पतन होने लगा।

विभिन्न वंशों के मुस्लिम आक्रमणकारियों ने दिल्ली को राजधानी बनाया और देश पर शासन करने लगे। ईसा की १५ वीं शताब्दी में और उसके उत्तर काल में भारतवर्ष की दुर्दशाजनक परिस्थिति दृष्टिगोचर होती है। हिन्दुओं के लिए यह अशांति, असन्तोष और यातनामय समय था। लोदी वंश के शासनकाल के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उस समय हिन्दू जनता जाहिर में शान्तिपूर्वक धार्मिक उत्सवों एवं समारंभों को संपन्न नहीं कर सकती थी। यही नहीं हिन्दू मंदिरों और मूर्तियों का खंडन भी सामान्य हो गया था। बहलोल लोदी और सिकन्दर लोदी स्वयं कठोर और क्रूर व्यक्ति थे। उन्होंने हिन्दू जनता पर जजिया कर लगाया। उनकी धर्मान्धता प्रसिद्ध हो चुकी थी। हिन्दू बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाते थे।

बादशाह बहलोल लोदी और सिकन्दर लोदी का राज्यकाल ई. स. १४५१ (सं. १५०७) से १५०७ (वि. सं. १५७३) तक का माना गया है। तुगलक, सैयद, लोदी एवं मोगल खानदानों की धर्मान्धता नीति के कारण क्रूर और पक्षपातपूर्ण रही थी। शेरशाह सूरी और फिरोज तुगलक ने अपनी नीति में सामाजिक दृष्टि से जो कुछ परिवर्तन किये, उससे हिन्दू जनता पर स्वस्थ प्रभाव पड़ा था। किन्तु उनके पहिले बाबर और हुमायूँ ऐसा कोई कार्य नहीं करने के कारण हिन्दुओं में विश्वास, सद्भाव और निर्भयता उत्पन्न नहीं कर सके।*

श्रीमद् वल्लभाचार्य के समय के आसपास लगभग अर्धशताब्दी के दरम्यान कम से कम सात-आठ शासक दिल्ली पर शासन कर चुके थे। संघर्ष और युद्ध के उस घातक काल में भक्तिमार्ग के अभ्युत्थान के साथ भक्ति द्वारा मनन, चिंतन और प्रसार करना सामान्य और सहज कार्य नहीं था। राजनीति के विषादयुक्त वातावरण में भी साधुवृत्ति के चिन्तकों ने बाह्य संघर्ष से दूर रहने में ही अपना हित मानकर भगवान् की आराधना में ही अपना कल्याण समझा था। उनके ग्रन्थों में राजनीति का वर्णन नहीं के बराबर है। लेकिन श्रीमद् वल्लभाचार्यजी के "कृष्णाश्रय" ग्रन्थ में देश की पीड़ित अवस्था का संकेत प्राप्त होता है। जिनमें प्रतिकूल समय की भयानक परिस्थिति एवं† मुसलमानों के आक्रमण का भी संकेत किया है। इस अवस्था में श्रीकृष्ण का ही आश्रय और उनकी शरण में आने को ही कर्तव्य कहा है।

---

* *History of Medieval India, Dr. Ishwariprasad.*

† म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु (कृष्णाश्रय ग्रन्थ)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ब्राह्मण अर्थलोभी एव वैश्य कापट्य से धनसंचय में लगे हुए थे। राजा निरंकुश हो गये थे। धार्मिक प्रवृत्ति में मुख्यत: देहदमन युक्त क्रिय.एँ ही आदर्श मानी जाने लगी थीं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति केवल अतितामस प्रधान हो गई थी। फलत: मंदिरों एवं धर्मस्थानों का रक्षण, माँवहिनों की इज्जत, आचार-विचार का पालन आदि सात्विक कार्यों की परंपरा स्थगित सी हो गयी थी। इस समय में भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धार करने या धार्मिक प्रवृत्ति में नव उद्‌गम करने का अति विकट कार्य विक्रम की पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के आचार्यों, भक्तों एवं संत-महंतों ने किया। भक्तिधारा का प्रवाह वहाकर परमात्मा के निराकार-साकार तत्त्व के भजन-कीर्तन को महत्व देकर अखंड सुख की प्राप्ति का मार्ग दिखाकर उन्होंने समाज को जागृत किया।

हम देख चुके हैं कि पूर्वाचार्यों एवं उनके अनुयायियों के उपदेशों द्वारा तथा जयदेव, विद्यापति तथा चंडीदासादि भक्त-कवियों के भक्ति-गान द्वारा तीन-शतक पूर्व ही चतु: सम्प्रदायों की भक्ति का वीजारोपण एवं उद्‌भव हो चुका था किन्तु तत्पश्चात् विषादमय राजकारणों से उस भक्ति-वीज के अंकुर लुप्तप्राय होने की स्थिति वनने पर श्रीमद्‌वल्लभाचार्यजी, श्रीमद्‌हरिदास-स्वामी, श्रीकृष्ण-चैतन्यप्रभु, श्रीमद्‌हितहरिवंशादि आचार्यों का प्राकट्य हुआ। और उनके शिष्य-गण "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" इस भगवद्–वाक्य के आधार पर इन आचार्यों को भगवदावतार मानने लगे। इन आचार्यों के प्राकट्य से चतु:सम्प्रदाय की भक्ति के बीजांकुरों को भक्ति-पथ की भारतीय विचारधाराओं से पोषण-मिला और धीरे-धीरे भगवत्-भक्ति वृक्ष पल्लवित-पुष्पित-फलित हुआ।

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शती के भक्ति-संप्रदायों की भक्ति एवं संगीत के विषय में चर्चा करने का पूर्व इन संप्रदायों के प्रवर्तकों का ऐतिह्य क्रम से परिचय देना उचित होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीमद् वल्लभाचार्य

श्रीमद्वल्लभाचार्य का प्राकट्य विक्रम संवत् १५३५ (ई. स. १४७९) में हुआ था। (कोई वि. सं. १५२९ में प्राकट्य मानते हैं) श्रीमद्वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित मार्ग को पुष्टिमार्ग या संप्रदाय कहते हैं। जो वल्लभ सम्प्रदाय के नाम से भी प्रचार में है। इस सम्प्रदाय को विष्णुस्वामी सम्प्रदायांतर्गत कहा जाता है। किन्तु कुछ विद्वानों का मंतव्य है कि इस सम्प्रदाय में किन्हीं अन्य आचार्यों की विचार-परंपरा का प्रभाव नहीं है। वास्तव में आचार्य श्री वल्लभ स्वयं स्वतंत्र चिंतक थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा और मेधा द्वारा नवीन दृष्टिकोण से पुष्टि-सम्प्रदाय का निर्माण किया था। ऐसा भी कहा जाता है कि श्री वल्लभाचार्यजी के पिता लक्ष्मण भट्टजी विष्णुस्वामी मत के अनुयायी थे। इस परंपरानुसार पुत्र को भी पूर्वावस्था में उस मत का अनुयायी माना गया होगा। पश्चात् आपने स्वतंत्र विचार प्रणाली की पद्धति से पुष्टि-सम्प्रदाय की स्थापना की होगी। यहाँ हम इस चर्चा को अस्थानीय मानकर आपका संक्षिप्त परिचय ही देना चाहते हैं।

श्रीमद्वल्लभाचार्य का परिवार वैष्णवी दीक्षायुक्त, यजुर्वेदीय, तैतरीय शाखी भारद्वाज गोत्रीय था। तेलंग-ब्राह्मण ज्ञाति का यह कुटुंब वेलनाट अथवा वेल-नाडु नाम से प्रसिद्ध था। आन्ध्र देश के काकरवाड नामक नगर में यह कुटुंब रहता था किन्तु इस नगर के नाश होने के कारण श्रीलक्ष्मणभट्टजी ने अग्रहार में निवास किया, वहाँ विद्या नगर के राजा के पुरोहित सुशर्मा की कन्या यल्लमागारू से लग्न होने के बाद एक पुत्र और दो कन्याओं का उनके यहाँ जन्म हुआ। कुछ समय पश्चात् श्रीलक्ष्मणभट्ट सपत्नीक अपने शिष्य-साथियों के साथ काशी की यात्रा को चले। काशी में कुछ समय रहने के बाद मुस्लिम आक्रमण की अफवाह के कारण काशी से लौट चले। रास्ते में चोडा नगर के पास चम्पारण्य में शिवा (हरडे) के वृक्ष नीचे यल्लमागारु को संवत् १५३५ (ई.स. १४७९) में वैशाख (गुर्जर-चैत्र) कृष्ण एकादशी के दिन आठवें मास में प्रसव हुआ। इस बालक को मृत मानकर एक कपड़े में लपेटकर शमी वृक्ष के कोटर पर रख दिया। दूसरे दिन लौटते समय उस स्थल पर आश्चर्य के साथ देखा तो चारों ओर अग्नि की ज्वालाओं के बीच बालक किल्लोल कर रहा था। इस दृश्य को देखकर माता ने बालक को गोद में ले लिया; इसी कारण से श्रीवल्लभाचार्य जी अग्निअवतार या वैश्वा-नरावतार माने जाते हैं।

माता पिता ने इस चतुर्थ संतान का नामकरण वल्लभ किया। काशी पर आक्रमण की बात गलत होने के कारण उन्होंने पुनः काशी में निवास किया। पाँच वर्ष की वय में श्रीवल्लभ का उपनयन संस्कार होते ही विष्णुचित नामक गुरु से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अध्ययन का आरंभ कराया गया। पाँच-छः वर्ष के समय में ही आपने वेद-वेदांत, षड्शास्त्र, गीता, भागवंतपुराण, पंचरात्र आदि भागवतधर्म के सभी ग्रन्थों में पारंगतता प्राप्त कर ली। विक्रम सं. १५४६ में पिता के निधन के बाद आपने प्रथम भारत-परिक्रमा का आरंभ किया। अत: १५४७ से १५५३ तक का प्रथम परिक्रमा का समय माना जाता है।†–†† द्वितीय परिक्रमा का समय वि. सं. १५५४ से १५५८ और तृतीय परिक्रमा का समय १५६१ से १५६४ तक का माना गया है।

प्रथम यात्रा में आप जगन्नाथपुरी पधारे तव वहाँ वैष्णव एवं शांकर मत के पंडितों में शास्त्रार्थ हो रहा था। उसमें भाग लेकर आपने वैष्णव मत का समर्थन किया और उसमें आप विजयी हुए। तदनंतर आपने निराकार—मायावाद के विरुद्ध साकार एवं विशुद्ध ब्रह्मवाद के स्थापन का निश्चय किया। अपनी माता को विद्यानगर स्थित पितृ-गृह में पहुँचा दिया और आप ब्रह्मवाद के व्यापक प्रचार के लिए उज्जैन होकर समस्त भारत की यात्रा के लिए चल दिये। द्वितीय परिक्रमा सम्पूर्ण होने के बाद वि. सं. १५५८ में आपने लग्न किया। इन दोनों यात्राओं में आपने निर्गुण भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन करते हुए मायावाद का खंडन और ब्रह्मवाद का प्रचार किया। श्रीवल्लभभाचार्यजी का दार्शनिक मत "शुद्धाद्वैत" है।

तीसरी यात्रा में आप दक्षिण के सुप्रसिद्ध हिन्दू नरेश महाराजा नृसिंह वर्मा के सेनापति राजा कृष्णदेवराय‡ द्वारा आयोजित विद्वत् सभा में पधारे; जहाँ एक ओर चतुः सम्प्रदाय के वैष्णव विद्वान् थे और दूसरी ओर शांकरमतानुयायी अद्वैतवादी एवं शैव-शाक्त विद्वानों में प्रवल- वाद-विवाद हो रहा था। मध्व, निम्बार्क, विष्णुस्वामी और रामानुज सम्प्रदाय का वैष्णव पक्ष परास्त होने की स्थिति में था। तव श्रीवल्लभाचार्यजी ने वहाँ पधारकर वैष्णव पक्ष के समर्थन में प्रकांड पांडित्य दिखाया और परास्त होते वैष्णव-पक्ष को प्रबल कर दिया। फलतः अवैष्णवों की पराजय हुई। इस विजय के प्रभाव के कारण कृष्णदेव राजा ने उनका सत्कार-पूर्वक "कनकाभिषेक" किया। अन्य वैष्णवाचार्यों ने उन्हें विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य घोषित करते हुए—"आचार्यचक्रचूड़ामणि जगद्गुरु श्रीमदाचार्य महाप्रभु" की उपाधि से सम्मानित किया। तभी से श्रीवल्लभाचार्य "श्री आचार्यजी महाप्रभुजी" के नाम से विख्यात होते रहे। आपने कनकाभिषेक की मुद्राओं में से केवल सात मुद्राएँ लेकर अन्य सभी मुद्राएँ ब्राह्मणों एवं विद्वानों में वितरित कर दीं।

आपकी यात्राओं का सम्प्रदाय के ग्रन्थों में "पृथ्वी-परिक्रमा" नाम से उल्लेख किया गया है। प्रथम परिक्रमा में ही आप सं. १५५० में सर्वप्रथम व्रज में

---

†–†† देखिए-आचार्य महाप्रभुजी की प्रागट्य वार्ता (लेखक—श्री द्वारकादास परीख) "विट्ठलेश चरितामृत" में सं. १५५० का समय लिखा है (पृ. ५८)

‡ विट्ठलेश चरितामृत पृष्ठ ८५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पधारे, और समस्त ब्रज का यात्रा का निश्चय किया। प्रथम गोकुल के ठकुरानी घाट पर श्रीमद्भागवत का सप्ताह पारायण किया। सं. १५५० में श्रावण शुक्ल ११ को भगवदाज्ञा हुई, और उसी समय से अपने शिष्यों को ब्रह्मसंबंध मंत्र की दीक्षा देना आरंभ किया। गोकुल से मथुरा, वृन्दावन और गोवर्धन में निवास किया और वहाँ पर भी श्रीमद्भागवत का पारायण किया गया। उस समय गोवर्धन की गिरिराज की पहाड़ी पर एक भगवद्स्वरूप का प्राकट्य हुआ था। वृजवासी उन्हें "देवदमन" नाम से श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पूजते थे।

दूसरी यात्रा में आप पुनः गोवर्धन पधारे तव सं. १९५६ में श्रीवल्लभाचार्यजी ने उस स्वरूप का नाम (श्रीनाथजी) श्री गोवर्धननाथ रखा। छोटा सा कच्चा मंदिर बनवा कर श्री गोवर्धननाथ को उसमें विराजमान कर दिया। उस समय सदूपांडे, रामदास चौहान, कुम्भनदास आदि ब्रजवासी आपके सेवक हुए। सदूपांडे और और रामदास को पूजादि भोग सामग्री की सेवा और कुंभनदासजी को कीर्तन संगीत की सेवा में नियत किया। इसी समय से पुष्टिमार्गीय संगीत का उद्भव हुआ। अतः हम अष्टछाप (हवेली संगीत) की परंपरा उद्गम काल ई. स. १५०० (संवत् १५५६) तक ले जा सकते हैं। उनके प्रथम उद्गाता श्री कुंभनदासजी हैं। श्रीमद् वल्लभाचार्य जी संगीत के भी ज्ञाता थे। अतः उन्होंने श्री कुंभनदासजी जैसे संगीतज्ञ को परख लिया और श्रीनाथजी को मधुरकंठ से संगीतवद्ध लीला गान द्वारा रिझाने के लिये उन्हें नियुक्त किया।

श्री वल्लभाचार्यजी का लग्न सं. १५५८ की आषाढ़ शुक्ला पंचमी को हुआ। तत्पश्चात् तीसरी भारत यात्रा में आप द्वारिका पधारे। वहाँ भगवद् आज्ञानुसार आपश्री ने "लाडवा" ग्राम जाकर पृथ्वी में विराजित श्री द्वारिकाधीश को प्रकट किया और द्वारिका में उस स्वरूप को वि. सं. १५६० में स्थापित किया।‡

तीसरी यात्रा के अवसर पर अम्वाला के पूरनमल खत्री ने श्री वल्लभाचार्य की स्वीकृति प्राप्त कर सं. १५५९ की वैशाख शु. ३ को श्रीनाथजी के विशाल मंदिर का निर्माणारंभ किया था। इसी मंदिर में श्रीनाथजी को पधराया और फलफूल की सेवार्थ गोवर्धन में बगीचे का निर्माण करा कर आप आगरा एवं प्रयाग होते हुए काशी पधारे तदनंतर आप विद्या नगर पधारे और राजा कृष्णदेव द्वारा आयोजित शास्त्रार्थ सभा में विजयी होने के कारण श्रीवल्लभाचार्यजी का कनकाभिषेक किया गया और उन्हें विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य घोषित करते हुए "आचार्यचक्र चूड़ामणि जगद्-गुरू श्रीमदाचार्य महाप्रभु" की उपाधि से सम्मानित किया गया। यह प्रसंग (वि. सं. १५६५) ई. सं. १५०९ का है।

---

‡ देखिए:–१. *"द्वारकानो इतिहास" पृ. ३२० तथा*

२. *"निजवार्ता, बैठकचरितादि"*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पश्चात् आप काशी पधारे । वहाँ से अपनी धर्मपत्नी को लेकर व्रज की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में कन्नौज, आगरा, होकर गौघाट (आगरा मथुरा के मध्य में) आकर तीन दिन तक मुकाम किया। उसी समय भक्त-कविवर "सूरदास" जी को शरण लिया। पश्चात् गोकुल होकर आप (वि. सं. १५६७ में) गोवर्धन आये और सूरदासजी को कीर्तन की सेवा की आज्ञा दी।

सं. १५६७ भाद्र पद कृष्ण १२ को आपके प्रथम पुत्र श्री गोपीनाथजी का प्राकट्य हुआ। तदनंतर आपने पुनः व्रजयात्रा की। उस समय (वि. सं. १५६८ में) कृष्णदास (अधिकारी) को शरण लिया।

तत्पश्चात् आप जब चरणाद्रि (चरणाट) पधारे तब वि. सं. १५७२ मार्गशीर्ष (व्रज पौष) कृष्ण ८ के दिन वहाँ द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलेश का प्राकट्य हुआ। पश्चात् आप गोकुल आये । फिर अडेल होकर काशी जाकर श्रीगोपीनाथ जी का यज्ञोपवीत किया। वहाँ से आप जगदीश पधारे । इस प्रवास में कजलीवन के पास "कृष्णचैतन्य महाप्रभु'' से आपका मिलाप हुआ था। तत्पश्चात् बद्रिकाश्रम जाकर अडेल पधारते समय आप "कन्नौज" आये और महाकवि एवं गायक "परमानंददास" को (वि. सं. १५७७ में) शरण लिया। अनंतर आगरा होकर आप गोपालपुर पधारे।

वि. सं. १५८० में विट्ठलेश को काशी में यज्ञोपवीत दे कर वहाँ से जगदीश होकर अडेल पधारे । सं. १५८२ में आपने गोपीवल्लभ (ग्वाल) भोग की शुरूआत की। सं. १५८५ में आपने पुनः द्वारका की यात्रा की। पश्चात् अड़ेल पधारे कुछ समय पश्चात् आप विधिपूर्वक संन्यास ग्रहण कर काशी में रहने लगे। ४० दिन तक विप्रयोग दशा में अनशन करने के अनंतर सं. १५८७ की आषाढ़ शु. ३ को मध्याह्न समय काशी के हनुमान घाटपर गंगा की बीच धारा में आपने जलसमाधि प्राप्त की ।

आप उच्चकोटि के कवि और संगीतज्ञ भी थे। तैलंगी भाषा में आपके रचे हुए कुछ पद प्राप्त होते हैं। किन्तु व्रजभाषा और भारतीय काव्य-संगीत की उन्नति में भी श्रीवल्लभाचार्यजी का बहुत बड़ा योगदान है।

भारतीय संगीत की आज की परंपरा का उद्गम राज्याश्रय तथा देवाश्रय में हुआ है, किन्तु संगीत के विद्वानों का लक्ष्य राज्याश्रय की ओर ही दिखाई देता है। पं. भातखंडेजी इत्यादि पंडितों ने आधुनिक संगीत का उत्थान काल ग्वालियर के राजा मानसिंह तक ले जाकर राजा मान को इसका श्रेय दिया है। आईने अकबरी में भी कहा है कि राजा मानसिंह ने बक्षू, भानू और बैजू की सहायता से ध्रुपद शैली का प्रचार किया था। राजा मान का समय वि. सं. १५४३ से १५७५ (ई. सं. १४८६ से १५१८) तक का माना गया है।

किन्तु यह भूलना न चाहिए कि श्रीवल्लभाचार्यजी के देवालय (श्रीनाथजी का मंदिर) में संगीताचार्य कुंभन, सूर, परमानंद और कृष्णदास जैसे भक्त कविवरों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

द्वारा आज की (ध्रुपद) द्रुपदशैली का अधिकांश उद्भव हुआ है। जिसका श्रेय श्री वल्लभाचार्यजी को दिया जाएगा। उपर्युक्त चारों संगीत-कीर्तनकार आपके ही सेवक थे। अपने आराध्यदेव श्रीनाथजी के सम्मुख संगीतमय कीर्तन–गान की सेवा में श्री वल्लभाचार्य ने ही उनकी नियुक्ति की थी। उन्हीं की सहस्रावधि ध्रुपद-धमारादि की रचनाओं का सम्प्रदाय में आज भी गान किया जाता है, यही नहीं सम्प्रदायेतर गायकों में भी ये प्रचलित हो चुकी हैं। इन चार संगीतज्ञों ने सं. १५५६ से १५७७-७८ तक श्रीजी के सम्मुख सैकड़ों ध्रुपद धमार विविध ऋतुओं के अनुसार रागों में गान किया, यह सर्व विदित तथ्य है।

ऐतिह्य दृष्टि से हम विचार करेंगे तो राजा मान का समय ई. सं. १४८६ से आरंभ होता है और ई. सं. १५१८ में पूर्ण होता है। दूसरी ओर श्रीजी के सम्मुख ई. स. १५०० से संगीतमय ध्रुपद-धमार का प्रारंभ होता है और राजा मान के पश्चात् भी उसका विकास और प्रचार होता है।

इस प्रकार भारतीय संगीत का उद्गम राज्यालय और देवालय (श्रीजी का मंदिर) दोनों में लगभग समान समय में होता है। अतः उपर्युक्त दोनों स्थान भारतीय ध्रुपद संगीत के उद्गम मानना चाहिए।

वि. सं. १५५६ में संगीताचार्य कुंभनदास श्री वल्लभाचार्यजी की शरण आये और उसी समय से श्रीजी की कीर्तन-संगीत की सेवा में नियुक्त किये। पश्चात् वि. सं. १५६७ में संगीताचार्य सूर और १५६८ में समर्थ गायक और विचक्षण अधिकारी कृष्णदासजी के शरण में जाते ही उन्हें भी श्रीनाथजी की कीर्तन-संगीत की सेवा में सम्मिलित किया गया। संगीतज्ञ परमानंदजी को भी वि. सं. १५७७ में शरण लिया। कुंभनदासजी को पखावज बजाने का भी पूर्ण ज्ञान था अतः सूर के साथ उत्सवादि प्रसंगों में से वे पखावज की सेवा भी करते थे। कृष्णदासजी भेंट एवं व्यवस्था के कार्यों में रत होने के कारण अनियमित रूप में उपस्थित होते रहते थे। अतः परमानंदजी के शरण आने के पश्चात् इन तीनों महानुभावों का ओसरा बंदी से कीर्तन की सेवा में उपस्थित रहने का उल्लेख इस प्रकार होता है:— "सो इन सूरदासजी ने श्रीनाथजी की सेवा बहोत करी। सो बीच-बीच में जब कुंभनदासजी, परमानंदजी के कीर्तन के ओसरा आवते तव सूरदासजी श्रीगोकुल में श्री नवनीत-प्रियाजी के दर्शन कूं आवते। (सूरदासजी की वार्ता प्रसंग-५)

कहा जाता है कि इस समय तक कृष्णदासजी ने वीणा (बीन) बजाने का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और श्रीजी को जगाने के पूर्व और पौढ़ने के समयांतर में श्रीजी को वीणा-नाद सुनाने की सेवा स्थानिक उपस्थिति के समय अवश्य किया करते थे।

श्रीमद् वल्लभाचार्यजी के समय तंबूर, मृदंग, झांझ और वीणा, इन चार वाद्यों का कीर्तन सेवा में विनियोग हो चुका था। श्रीमद् भागवत महात्म्य में पद्म-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुराण के आधार पर जो भगवद्-कीर्तन का विधान प्राप्त होता है उसी के लक्ष्यानु-सार अपने यहाँ कीर्तनकार एवं वाद्यवादकों का श्रीजी के सम्मुख कीर्तन-गान में नियोजन किया।

श्रीमद्भागवत महात्म्य के षष्ठाध्याय में उल्लेख है कि भगवान् विष्णु के सन्मुख जब कीर्तन गान होने लगा तब शिव-पार्वती, ब्रह्मा-ब्रह्माणी भी कीर्तन सुनने के लिए सभा में उपस्थित हुए थे। उस समय प्रहलाद ताल तथा उद्धवजी "झांझ" बजाने लगे। नारदजी‡ वीणा और इन्द्र मृदंग बजाने लगे तथा अर्जुन मीठे कंठ से गान करने लगा। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नृत्य करने लगे थे। इस अलौकिक कीर्तन भक्ति से भगवान् अति प्रसन्न हुए और वर मांगने को कहा। यह प्रसंग प्रसिद्ध है।

इस प्रकार श्रीमद् वल्लभाचार्यजी का उद्भव काल साहित्यिक, धार्मिक एवं संगीतात्मक भक्ति के क्षेत्र में विशेष महत्व रखता है। धार्मिक क्षेत्र की विचार धाराएँ प्रवर्तित करने में साहित्य और संगीत को माध्यम बनाकर धार्मिक भावनाओं में मणिकांचन योग किया।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाय तो भी आपश्री ने सामाजिक मर्यादाओं की रक्षा एवं गृहस्थ धर्म को श्रेयस्कर बनाते हुए गृहस्थाश्रम में ही भक्ति-पथ के अनुगमन का उपदेश दिया। ग्राह्य वैराग्य और कठोर तपस्या के मार्ग से आपने जनता को हटाया। यदि गृहस्थ धर्म एवं भक्ति-पथ के उपदेश देकर जनता के लिए सरल पथ प्रदर्शन न किया होता तो अकर्मण्यता, निष्क्रियता और कुंठा से भारतीय संस्कृति की उच्च कलाओं का प्रवाह सुरक्षित न रहकर पतन की ओर चला जाता।

---

‡ "नारदीय वीणा" "तंबूर" को कहनेका व्यवहार है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

स्वामी हरिदासजी

पुष्टिमार्गीय अष्टछापादि संगीताचार्यों के अतिरिक्त भक्तिमार्ग की उत्कृष्ट पद-रचनायुक्त गान करने वालों में इनके समकालीन स्वामी हरिदाजी और "श्रीहित-हरिवंश" जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । ये कवि एवं संगीतज्ञ ही नहीं किन्तु भक्तिमार्गीय नवीन सम्प्रदाय के सृष्टा भी थे ।

श्री हरिदास स्वामी का जन्म वि. सं. १५३७ (सन् १४८१) में भाद्रपद शुक्ला अष्टमी (राधाष्टमी) को हुआ था । किन्तु एक अन्य (गोस्वामी) मतानुसार आपका जन्म वि. सं. १५६९ में माना जाता है । हमारे मतानुसार सं. १५६९ ठीक है । बाल्यावस्था से माता-पिता के भक्तिमय संस्कार एवं साधु संतों के समागम से प्रभाव से ये श्रीकृष्ण-भक्ति में वे तल्लीन रहते थे । २५ वर्ष की आयु में वृंदावन जाकर निधिवन के निकुंज में छोटी सी झोपड़ी बनाकर निवास करने लगे । भगवत्सेवा और भगवद्गुणगानरूपी अमूल्य धन के प्रताप से स्वामीजी के हृदय में छिपी हुई काव्य तथा संगीत-कला की अद्भुत शक्ति प्रगट होने लगी, इस शक्ति को प्रभुमय उपासना में जोड़कर अहर्निश श्री राधाकृष्ण की लीलाओं में ध्यान मग्न होकर सेवा के साथ संगीतमय पदगान से प्रभु को रिझाने लगे ।

इस प्रकार प्रभुमय जीवन बन जाने पर आपको श्रीकृष्ण की लीलाओं के प्रत्यक्ष दर्शन होने लगे । इन लीलाओं का तादृश वर्णन करते हुए पदों को शास्त्रवद्ध राग-ताल में अपने इष्ट देव के संमुख गान करते हुए वे भाव विभोर हो जाते थे । कुछ समय में ही अपने इष्ट प्रभु 'कुंज विहारी" की प्रत्यक्ष लीला का रसास्वाद इन्हें प्राप्त हो चुका था किन्तु भक्तिमार्ग की परमावस्था की प्राप्ति के लिए तथा अपने भक्तजनों के लिए भक्ति का रसास्वाद सहज और सुलभ बनाने के हेतु निधिवन (वृंदावन) मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को विहारीजी की दिव्य प्रतिमा का प्राकट्य हुआ । आज भी यात्री इन बिहारीजी के निधिवन में दर्शन करते हुए कृतार्थता का अनुभव करते हैं । श्री विहारीजी के संमुख नित्यप्रति उपासनामय संगीत-गान का क्रम सेवा के साथ ओतप्रोत हो गया था । असाधारण संगीत के आकर्षण से भक्तजन आने लगे । कुछ समय में व्रजमंडल के बाहर भी उनके पद-गान की कीर्ति गायक वर्ग तक पहुँच गयी । राजा-महाराजा भी इस निकुंज के द्वार पर उपस्थित होकर स्वामीजी का संगीत सुनने लगे । निपुण गायक भी आने लगे और स्वामीजी का संगीत सुनकर मुग्ध होकर उनके शिष्य भी बनने लगे । इन शिष्यों में संगीत-सम्राट् तानसेन भी थे । इनका उल्लेख किशनगढ़ नरेश भक्त नागरीदासजी द्वारा रचित "पदप्रसंगमाला" (सं. १८००) में निम्न प्रकार से प्राप्त होता है–"एक समें

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अकबर पातशाह तानसेन सों बूझी जु तैं कौनसो गाइबो सीख्यौ, कोऊ तोऊ तैं अधिक गावे है? तव वाने कही जु मैं कौन गिनती में हूँ । श्रीवृंदावन में हरिदासजी नाम के वैष्णव हैं, तिनको गाइबैको हों शिष्य हूँ । यह सुनि पातशाह तानसेन के संग जलघरी लै श्रीवृंदावन स्वामीजी पै आयौ । पहलैं तानसेन गायो । विनती करी महाराज, कछु आपुहू बोलिये । तब श्रीहरिदासजी आलापचारी करी मलार राग की । चैंत वैशाख को महिना हतौ । तव ताहिही बेर घटा घुमड़ि आई । मोर बोलनि लागे । तव नमो बनाइ विष्णपद गायौ । तव ताही बैर वर्षा होन लागी सो यह पदः—

ऐसी रितु सदा-सर्वदा जो रहे बोलत मोरनि ।।
नीके बादर नीके धनुष चहुँदिस नीको श्रीवृंदावन, आछी नीकी घोरनी ।।१।।
आछी भूमि हरी-हरी आछी नीकी बूंदन की रंगन काम करोनि ।।
हरिदास के स्वामी स्यामा के मिलि गावत मलार जम्योरी किसोर किसौरनि ।।२।।

अकबर हरिदास की भेंट का उल्लेख प्रथम नागरीदासजी कृत पद प्रसंग में और किशोरदासकृत 'निजमत सिद्धांत" में प्राप्त होता है । तदुपरान्त "संगीतकलाधर" नामक (गुजराती) वृहद् ग्रन्थ में निम्न प्रकार लिखा हुआ मिलता है–"स्वामी हरिदासजी पुष्टिमार्गीय अने श्रीकृष्णना भक्त हता, अकबर शाहने तेमनी प्रशंसा सांभली गायन सांभलवानी घणीज उत्कंठा थई, स्वामीजी महात्मा अने निःस्पृही होवाथी पोताना इष्ट सिवाय अन्यने गायन संभलावता न हता, आ वात अकबर शाह सारी रीते जाणतो हतो, तेथी तानसेनने साथै लई पोते कठियारा नो वैण लई लाकडां वैचवाना निमित्ते हरिदासजी ना मकान मां जई चढ्यो । ते वखते स्वामीजी पोताना इष्ट सन्मुख सांझनो समय होवाथी राग कल्याण गाई रह्या हता । बादशाह अने तानसेन ते गायन सांभलतां अत्यंत प्रसन्न थई गया अने बेडना मुखथी रोकी न शकाय तेवो "वाह-वाह" शब्द हर्षथी नीकल्यो । ते सांभली स्वामीजीअे बहार आवीने जोयुं तो हंमेश आवनार कठियारो नहीं पण आ बेउने नवा जोई क्रोधित थया । वादशाह तेमनी मनोवृत्ति जोइ विनयथी शांत करी कांई विशेष द्रव्य आपवानुं कहुं । स्वामीए द्रव्यना वदलामां ए माग्युं के तमो असुर छो माटे अहियां कोई दिवस पण तमारे आववुं नहीं । ते स्वामीनो गायेलौ राग जेने हाल यमन कल्याण कहे छे ते अद्यपि सुधी गवातो नथी ।"*

उपर्युक्त लेख में "स्वामी हरिदासजी पुष्टिमार्गीय भक्त थे" तथा "यमन-कल्याण" राग अभी तक गाया नहीं जाता ये दोनों विधान ग्रन्थ लेखक की साम्प्रदायिक अज्ञानता के सूचक हैं । "यमन-कल्याण" राग का सम्प्रदाय में निषेध नहीं है तथा स्वामीजी पुष्टिमार्गीय नहीं थे । किन्तु निम्बार्क सम्प्रदायांतर्गत सखी-

* संगीत कलाधर, पृष्ठ ६१ (प्रकाशन सन् १९०१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम्प्रदाय के स्थापक थे। सखी सम्प्रदाय का पुष्टि सम्प्रदाय से सीधा संबंध नहीं है। तथापि युगल स्वरूप की सेवा और आराधना दोनों में अभीष्ट है।

निम्बार्क सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत "द्वैताद्वैत" है। इसमें श्रीकृष्ण ही उपास्य, सेव्य और भजनीय माने गये हैं। श्रीकृष्ण के चरणारविंद के सिवाय अन्य कोई गति नहीं है।* इस सिद्धांतानुसार श्रीकृष्णभक्ति के सिवा किसी की सेवा-पूजा करना व्यर्थ समझा जाता है। किन्तु श्रीकृष्ण के साथ राधाजी का महत्व भी इष्ट-देवी के स्वरूप में स्वीकृत है।† श्रीराधा को स्वकीया रूप में माना जाता है। इस सम्प्रदाय में शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य इन पांच रसों का श्री हरिराम व्यासाचार्य ने समर्थन किया है। जिनमें माधुर्य की उत्कृष्टता समझाते हुए "प्रेमलक्षणा" (अनुरागात्मिका-पराभक्ति) को ही सर्वश्रेष्ठ कहा है। इस सम्प्रदाय के भक्तों ने हिंदी में रसमय वाणी (पदों) का गान किया है और माधुर्य भाव को परिपुष्ट वनाया है। इस माधुर्यभाव को पुष्ट वनाने में स्वामी हरिदासजी ने युगल स्वरूप की लीलाओं को जो प्राधान्य दिया है वह उल्लेखनीय है।‡ हरिदासजी के पश्चात् उनके शिष्यों द्वारा टट्टी संस्थान नाम से वृंदावन में अपनी महंत गद्दी की स्थापना की गई थी, किन्तु आज कल इस सम्प्रदाय के अनुयायी अपने को निम्बार्क मतानुयायी मानते हैं।

स्वामी हरिदासजी ने प्रत्येक पद में अपने नाम के साथ उनके इष्ट प्रभु श्री कुंजबिहारी' की छाप लगाई हुई है। स्वामीजी के संगीतज्ञ आठ शिष्यों के नाम "नादविनोद" ग्रन्थ में इस प्रकार हैं।" (१) वैजु (२) गोपाललाल, (३) मदनराय, (४) रामदास, (५) दिवाकर पंडित, (६) सोमनाथ पंडित, (७) तन्नामिश्र (तानसेन) और (८) राजा सौरसेन। इन शिष्यों में प्रथम चार दिल्ली गये, तथा सोमनाथ और राजा सौरसेन पंजाब की ओर चले गये। तानसेन रींवा दरबार में नियुक्त हुआ। स्वामीजी की सम्प्रदाय-विषयक शिष्य परंपरा में आठ शिष्य मुख्य थे। जो "हरिदासी अष्टाचार्यों" के नाम से प्रसिद्ध हैं– (१) श्री विट्ठल विपुल, (२) श्री बिहारी दास, (३) श्री नागरीदास, (४) सरसदास, (५) श्री नरहरिदास,

---

* *नान्या गति : कृष्णपदारविन्दात्।*

† *अंगेतु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।*
सखी सहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

(दशश्लोकी-श्लोक-५)

‡ *जुगल नाम सों नेम जवत नित कुंज बिहारी,*
अवलोकत रहे केलि, सखी मुख को अधिकारी

(भक्तमाल, नाभाजीकृत)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(६) श्री रसिकदास, (७) श्री ललित किशोरीदास तथा (८) श्री ललित मोहिनी-दास।

स्वामी हरिदासजी की रचनाएँ सिद्धांत के पद और केलिमाल के नाम से उपलब्ध है। सैद्धांतिक पदों में सिद्धांत हैं जिनमें कोई विशेष दार्शनिक सिद्धांत की स्थापना नहीं है, किन्तु ज्ञान, वैराग्य तथा भक्तिमय कथन है। केलिमाल के पदों में श्याम-श्याम (कुंजविहारी) की विहार-लीलाओं का वर्णन है। स्वामीजी की वाणी द्वादश रागों में हैं। जो निम्न प्रकार है:–(१) विभास, (२) बिलावल, (३) आसावरी, (४) सारंग (५) वसंत, (६) गौड, (७) मल्हार, (८) खट, (९) नट, (१०) कल्याण, (११) केदारो और (१२) कानरा। इन रागों में लगभग १३० पद प्राप्त होते हैं। स्वामीजी की शिष्य परंपरा के अष्टाचार्यों ने भी अपनी वाणी इन द्वादश रागों में ही प्रस्तुत की है।*

स्वामीजी-रचित वहुत से पदों का पुष्टिमार्गीय संगीत प्रणाली में समावेश हुआ है। जैसे (१) केदार राग में गाये हुए 'सुनि धुनि मुरली वन बाजे हरि रास रच्यों' तथा (२) "सरद उजियारी कैसी नीकी लागे" यह पद उसी राग में रासोत्सव के दिन गाया जाता है। तथा राग-कल्याण का "डोल झूलत बिहारी विहारिनि राग रमि रह्यो" डोलोत्सव के दिनों में शयन समय एवं "डोल झूलत विहारी बिहारिनि पुहुपवृष्टि होति" यह उनके मूल राग-सारंग में ही होरी-डोल के दिनों में राजभोग आरती के समय गाने की खास प्रणाली है। तुदुपरान्त नित्यक्रम की वाणी में भी "उष्णकाल की ऋतु में शयन के दर्शन में "चलो क्यों न देखेंरी खरे दोऊ कुंजन की परछांही" तथा "कुंजमहल के आँगन डोलें दोऊ बांह जोटी" और शयनांतर मानका पद "मानिनी मान निहोरे"† ये तीनों कुंज के भावात्मक पद गाये जाते हैं।

स्वामी हरिदासजी रचित एक "राग-माला" जो आज तक अप्रचलित है; जिनमें भावानुकूल काव्य और काव्यानुकूल राग प्रत्येक पंक्ति में संचलित होता है। उच्चतर कवि और प्रकांड संगीतकार के बिना इस प्रकार की राग-माला की रचना होना दुर्लभ है। यह रागमाला निम्न प्रकार प्राप्त हुई है।—

भोरऽब भयो जागे जाम लाल हो अब
रामकली उदे भयो भान ॥

---

* देखिए–स्वामी हरिदास–प्रकाशक संस्थान, मथुरा.,

† ये पद "स्वामी हरिदास की वाणी" मथुरा प्रकाशन में संदिग्ध बताये गए हैं किन्तु पुष्टि मार्ग के ग्रन्थों एवं परंपरा के आधार से स्पष्ट होता है कि ये असंदिग्ध हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गुन की कली गुन पूरन प्यारी
कहा अब होत देवगान ।।ध्रु.।।

भयो बिभास आभास सब देखियत,
चलि जाऊं तोरी सुनिले री कान ।।

आसानकरि तू अपने प्रीतमकी,
सोरठ समुझि ले मन ही मन जान ।।

सारंग नाम जाको ताके पास जाय आली,
सो नट भयो कहा करे अभिमान ।।

चितवत चित पूरब-मुख बैठी,
मधुमाघ मद भयो तौकूं आनि ।।

ये क्रोध भयो गौरी, कौन गुनत तें,
ई मन कहा करों कहा कहौं वानि ।।

कैदारुन दु:ख मिट गयो,
कान्हर तैरो जीवन प्रान ।।

रैन बिहाय गई प्यारी पिय पास गई,
मदनमोहन पिय अतिही सुजान ।।

चलत हिंडौल सोभा लसत
अंकमाल वन ठन गहि पानि ।।

हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी,
ललित चरन चित धरूं ध्यान ।।

उपर्युक्त रागमाला में क्रमश: (१) भैरव, (२) रामकली, (३) गुनकली, (४) देवगंधार, (५) विभास, (६) तोड़ी, (७) आसावरी, (८) सोरठ, (९) सारंग, (१०) नट, (११) पूरवी, (१२) मघमाघ, (१३) गौरी, (१४) ईमन, (१५) केदार, (१६) कानरो, (१७) विहाग, (१८) हिंडोल, (१९) मालव, (२०) ललित, गाये जाते हैं।

पुष्टिमार्ग में उपर्युक्त रागमाला तथा इस प्रकार की अन्य राग मालाएं प्रभु के सन्मुख गाई जाती हैं। इनका तृतीय गृह की कीर्तन प्रणालिका में स्पष्ट उल्लेख किया गया है। अन्य राग-मालाओं में दो अष्टछाप के नंददासजी की, एक व्रजाधीशजी की और एक श्रीद्वारकेशजी की रचना है। ये रागमालाएँ संबंधित महानुभावों के परिचय में पूर्ण रूप से दी गई हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वामी हरिदासजी का जन्म शिष्य-परंपरा के अनुसार सं. १५३७, वृंदावन-आगमन सं. १५६२, विहारीजी की प्राकट्य-तिथि सं. १५६७ और निकुंजगमन सं. १६३२ का कहा गया है किन्तु इनकी गोस्वामी परंपरा में जन्म-१५६९, वृन्दावन आगमन १५९४, विहारीजी का प्राकट्य सं. १६०० और निधन-काल सं. १६६४ का माना गया है।

वृन्दावन में स्वामीजी के सम्प्रदाय से सम्वन्धित मुख्य पाँच स्थान हैं–

१ श्री वांकेविहारीजी का मन्दिर, जिनमें गोस्वामी सेवा-पूजा करते हैं।

२. गोरेलालजी का मन्दिर –जिसमें स्वामीजी के शिष्यपरंपरा के नरहरि स्वामी के सेव्य ठाकुर विराजमान हैं।

३. रसिकबिहारीजी का मन्दिर–इनमें रसिकदेवजी सेव्य ठाकुर हैं।

४. टट्टी स्थान–जिसकी स्थापना स्वामी ललित मोहनदेवजी ने की हैं।

५. निधिवन–जहाँ स्वामी हरिदासजी की तथा उनके कतिपय शिष्यों की समाधियाँ हैं।

वर्तमान समय में टट्टी–स्थान का वड़ा महत्व है। जहाँ विरक्त साधु वड़ी संख्या में निवास करते हैं। उत्सव-त्योहार एवं जन्म जयन्तियों पर यहाँ समाज एकत्र होता है। समाज में स्वामीजी के तथा उनकी परंपरा के महानुभावों के पद (कीर्तन) गाये जाते हैं। स्वामीजी की जयन्ति पर कई दिनों तक समाज एकत्र होता है; जिसमें विरक्त साधुगण अपनी परम्परागत परिपाटी के पद-द्रुपद गाते हैं। इनकी परंपरागत गायकी से कोई असाधारण प्रतिभा प्राप्त नहीं होती। साधना और परिपाटी के अभ्यास से उस परम्परा को अक्षुण्ण अवश्य वनाए हुए हैं। इस प्रकार स्वामीजी के सम्प्रदाय में भी पद-गायन को उपासना का अंग माना जाता है। परन्तु स्वामी हरिदासजी की विशुद्ध गायकी का स्वरूप क्या था? यह जानने का आज कोई प्रामाणिक साधन नहीं है। इनके समाज में आज द्रुपद जिस प्रकार गाये जाते हैं वही स्वामीजी की गायकी होगी, यह कहना ठीक न होगा। संभव है स्वामीजी की गायकी के कुछ अंश विद्यमान हों। वर्तमान द्रुपदियों के घराने से ही नहीं किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय की अष्टछाप परंपरा की गायकी के द्रुपदों से तथा हरिवंशजी की परंपरा से भी वह भिन्न ज्ञात होती है। द्रुपद की जो चार वाणियाँ मानी जाती हैं, उनमें कुछ लोग डागुर वाणी के प्रवर्तक हरिदास स्वामी को वताते हैं। किन्तु ये हरिदास अन्य व्यक्ति थे; जिनका विवरण इसी प्रकरण में किया जायगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वामी हरिदास की शिष्य परंपरा

विट्ठल विपुनजी

स्वामीजी की शिष्य परंपरा के अष्टाचार्यों में एवं स्वामीजी के भक्तों में श्री विट्ठल विपुनजी अधिक योग्य शिष्य थे। 'हरिदासी' सम्प्रदाय में विपुनजी प्रथम आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने भी श्यामा-कुंजबिहारी के केलि-रस की लीलाओं की सुन्दर पद रचनाएं की हैं। आपने संगीत का ज्ञान भी स्वामीजी से प्राप्त किया था, ऐसा लगता है।

स्वामी हरिदास के अनुसार आपने भी द्वादश रागों में ही गान किया है। आपके ४० गेय पद प्राप्त होते हैं। इन पदों में स्वामीजी की छाया स्पष्ट दिखाई देती है।

पुष्टि-सम्प्रदाय के कीर्तन संग्रहों में 'श्री विट्ठल विपिन" छाप के कुछ पद दृष्टिगत होते हैं, जिन्हें हवेली संगीत में स्थान दिया गया है। उदाहरणरूप कुछ पद यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

(१) "आवत कुंजन तें पियप्यारी" नित्य-पद संग्रह में समावेश किया हुआ कुंज की भावना का यह पद उष्णकाल में मंगला के दर्शन में गाया जाता है।

(२) "आवत लाल लाडिली फूले" यह पद भी मंगला के समय हिन्डोला (झूला) के दिनों में प्राय: गाया जाता है।

श्री विट्ठल विपुनजी के पश्चात् उनके शिष्य श्री बिहारीदास उत्तराधिकारी (सं. १५६१ से १६५९). थे उन्होंने भी गेय पदों की रचना की है।

तत्पश्चात् क्रमश: नागरीदास, सरसदास, नरहरिदास तथा रसिकदास (सं १६९२ से १७५८) उत्तराधिकारी हुए। रसिकदासजी का वनवाया हुआ "रसिक-बिहारजी" का मन्दिर वृन्दावन में विद्यमान है।

रसिकदास के पश्चात् ललितकिशोरीदास उनके उत्तराधिकारी बनाये गये थे। उनके समय में हरिदास सम्प्रदाय के विरक्त सन्तों और गोस्वामियों में परस्पर झगड़ा हुआ जिसके फलस्वरूप श्री ललितकिशोरीजी को निधिवन से हटकर यमुना किनारे जाना पड़ा था। वह स्थान खुला हुआ अरक्षित होने के कारण चारों ओर बांस की टट्टियों से घेर दिया। उस घेरे में भक्तगण भजन, ध्यान, सेवा-पूजादि उत्सव करने लगे। कालान्तर में वह स्थान 'टट्टी संस्थान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो वृन्दावन हरिदासी सम्प्रदाय का प्रधान-केन्द्र बन गया। ललित-किशोरीजी की वाणी विहारिनदास के वाद के आचार्यों में सबसे अधिक प्रमाण में उपलब्ध होती है। गेय पद की रचना की अपेक्षा सोरठा, चौपाई, दोहा, छंदादि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का प्रमाण अधिक है। हरिदासी सम्प्रदाय में इनकी गेय वाणी का गान किया जाता है। उनका समय सं. १७३३ से १८२३ तक का माना जाता है।

तदुपरान्त ललितमोहिनीदास, किशोरीदास, कृष्णदास, नवलसखी, रूपसखी आदि ने १९ वीं शताब्दी तक पद रचनाएं कीं।

हरिदास–डागुर

कुछ संगीतज्ञों का मत है कि स्वामी हरिदास स्वामी और हरिदास डागुर दोनों व्यक्ति एक हैं। परन्तु यह मान्यता विवादास्पद है। हरिदास स्वामी की रचना में हरिदास के साथ 'स्वामी स्यामा कुंजविहारी' की छाप अवश्य दिखाई देती है। उन्होंने अपने उपास्य श्यामा और कुंजविहारी की लीलाओं का ही अधिकतर वर्णन किया है। वहाँ हरिदास डागुर की रचनाओं में नादगढ़ के विचित्र रूपक, विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति, और साधारण नायिकाओं का कथन मिलता है। दोनों की रचना शैली भी भिन्न प्रकार की है। अतः हरिदास डागुर को स्वामी हरिदास का परवर्ती मानना चाहिए।

"बाबा हरिदास (डागुर) की परंपरा में स्वामी ब्रह्मानंद, बाबा ब्रह्मानंद, बाबा सत्यदेव और बाबा गोपालदास हुए। बाबा गोपालदास का पुत्र मुसलमान बना दिया गया, जो बाद में "बैरमखां" के नाम से विख्यात गायक हुआ। उनके पुत्र महम्मदखां के पुत्र जाकिरूद्दीनखां और अलाबंदेखां थे।*

"आज कल द्रुपद की चार वाणियों में 'डागर' वाणी के आदि प्रवर्तक स्वामी हरिदासजी बताये जाते हैं। कुछ लोग इसी नाम का आधार लेकर स्वामीजी से अपना पारिवारिक या परम्परा का सम्बन्ध भी बताते हैं। परन्तु ये बातें भ्रमात्मक हैं।†

स्वामी हरिदासजी की पत्नी अल्पायु में ही परलोक गमन कर गयी थी। वे आजन्म ब्रह्मचारी एवं विरक्त ही रहे। इनकी शिष्य परम्परा भी विरक्त है। अतः इन चारों वाणियों का अलग-अलग घराने में कई वर्षों पश्चात् विकसित होना संभवित है। 'संगीत' के हरिदास अंक‡ में निगमजी ने जो द्रुपद उद्धृत किया है उसमें कुछ विख्यात संगीतज्ञों के नाम कालक्रमानुसार आते हैं। इस द्रुपद की संचारी और आभोग के शब्द इस प्रकार हैं—

भगवंत सुर भरन रामदास जसु पायो, तानसेन जगत गुरु कहायो घोंघू बानी रसाल।
सुरति विलास हरिदास डागुर, जगन्नाथ कविराय तिनके पग परसिवेको श्याम राम रंग लाल ।।२।।

---

* साप्ताहिक हिन्दुस्तान २२ सितम्बर प्रकाशित (श्री शिवहरित का लेख)
† 'संगीत' फरवरी अंक १९५९ (श्री गोपालदत्त का लेख)
‡ संगीत फरवरी (१९५९) अंक (श्री निगमजी का लेख)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रस्तुत द्रुपद में हरिदास डागुर का नाम तानसेन से ही नहीं घोंघू तक के पश्चात् आता है। इस द्रुपद के आधार पर यह सिद्ध होता है कि हरिदास डागुर, जगन्नाथ कविराय की प्रौढ़ावस्था में विद्यमान थे अतः हरिदास स्वामी की अपेक्षा परवर्ती हैं। इस प्रकार हरिदास डागुर का हरिदास स्वामी से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वे अच्छे संगीतज्ञ थे, इसमें कोई संदेह नहीं है। उनकी परंपरा ने संगीत की द्रुपद-शैली का हित किया है अतः हमारे लिए आदरणीय हैं। परन्तु वे संगीतजीवी प्रतीत होते हैं। अतः स्वामीजी के व्यक्तित्व के साथ उन्हें एकरूप नहीं किया जाना चाहिए।

गोस्वामी श्री हितहरिवंशजी

राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हितहरिवंशजी का जन्म सं. १५५९ वैशाख सुदी ११ को व्रजमंडल के "बाद" ग्राम में हुआ था। आपके माता पिता व्रजभूमि की यात्रा करते हुए जव मथुरा निकट 'बाद' ग्राम में पहुँचे। उस समय ताराजनी के गर्भ से सौन्दर्य युक्त वालक का जन्म हुआ। उसका नाम हरिवंश रखा गया। छः माह के पश्चात् व्यास मिश्र अपनी पत्नी और नवजात शिशु सहित अपने ग्राम देववन वापस गये। पुत्रोत्पत्ति के वाद व्यास मिश्र सेवा पूजा में ही लीन रहने लगे। कहा जाता है कि पांच वर्ष की अल्पायु में "ज्ञानचक्षुओं" के बल से एक रात्रि को स्वप्न मैं आपको प्रियाजी की ओर से प्रेरणा हुई कि देववन के घर के वाग के कूप में श्री रंगीलालजी का विग्रह विराजमान है। उसे प्रकट करके भक्ति-भाव प्रस्तुत करो। फलतः विग्रह को बाहर निकाल कर आपने घर के मन्दिर में प्रतिष्ठित किया।

तदुपरान्त छोटी वय में ही इष्ट देवी राधा के 'निज मंत्र' (द्वादशाक्षर दीक्षा मंत्र) को श्री राधा की प्रेरणा से पीपल के वृक्ष के अरुण वर्ण के पत्ते पर अंकित देखकर वृक्ष पर चढ़ कर मंत्र लिखे हुए पत्ते को ले आये। इसी मंत्र को दीक्षा मंत्र रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार की चमत्कारिक किंवदन्तियां प्रसिद्ध हैं। पीपल के पत्ते पर अंकित दीक्षा-मंत्र के संकेत के आधार पर श्री हरिवंशजी ने गुरु रूप में श्री राधाजी को ही स्वीकार किया है। आठ वर्ष की आयु में उपनयन संस्कार और सोलह वर्ष की आयु में आपका रूक्मणी देवी से विवाह सम्पन्न हुआ। आप की संतति में तीन पुत्र और एक पुत्री थी।

माता-पिता के निकुंज गमन के बाद किसी प्रेरणा से आप ब्रज भूमि की ओर निकल पड़े। यात्रा-पथ में 'चिरथावल' गाँव में पूर्व-दृष्ट स्वप्न में श्रीराधाजी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की हुई आज्ञा के अनुसार आपने आत्मदेव ब्राह्मण की कृष्णदासी और मनोहरदासी नामक दो कन्याओं का पाणिग्रहण किया। पश्चात् सं. १५९० में फाल्गुन की एकादशी को आप वृन्दावन पहुँचे और वृन्दावन वास करने का ही निश्चय किया। वहाँ 'सेवाकुंज' नामक स्थल में श्रीराधावल्लभजी के विग्रह की सं. १५९१ में प्रतिष्ठा की और पाटोत्सव मनाया गया। इस विग्रह को आधी शताब्दी के बाद दिल्ली वाले खजांची सुन्दरदास कायस्थ ने बनवाया। इस लाल पत्थर के मंदिर में विग्रह सं. १६४१ में पधराया। वे इस मंदिर में १७२६ तक विराजमान रहे। बाद में औरंगजेब के आक्रमण के कारण विग्रह को कामवन ले गये। वहाँ से ११५ वर्ष के पश्चात् पुनः सं. १८४२ में श्रीजी का पदार्पण हुआ और वहाँ एक नवीन मन्दिर का निर्माण कराया गया, जिसमें अद्यावधि श्री राधावल्लभजी की मूर्ति विराजमान है।

सेवा कुंज में मूर्ति स्थापित होने के बाद श्री राधावल्लभजी की अष्टयाम सेवा का श्री हरिवंशरायजी ने प्रचार किया। श्रीजी की सेवा में 'ब्याहुला' प्रथा का प्रवर्तन तथा रासलीला की स्थापना का श्रेय भी श्री हितहरिवंशजी को दिया जाता है। रास विषयक विवेचन 'रासलीला' प्रकरण में किया जायगा। तदुपरान्त सेवाविधि में खिचड़ी की प्रथा का भी आपने प्रचलन किया। राधावल्लभ सम्प्रदाय में खिचड़ी उत्सव अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह उत्सव पौष मास में श्री राधावल्लभजी को विभिन्न रूप की वेशभूषा पहनाकर प्रस्तुत किया जाता है।

कहा जाता है कि हितहरिवंशजी प्रथम मध्व और पश्चात् निम्बार्क मत की श्रीकृष्ण भक्ति का अनुसरण करने लगे थे। कर्मज्ञानादि अन्य साधनोपासना का खंडन कर प्रेमभक्ति मार्ग का उपदेश दिया और राधा कृष्ण दोनों की युगल सेवा-उपासना भक्ति का प्रचार किया। इसकी माध्व या गौडीय सम्प्रदाय से कोई खास समानता नहीं है। दोनों सम्प्रदायों में इष्टदेव एवं सेवा-पूजा में भिन्नता है। एकादशी व्रत आदि विधि-विधान का पालन इस सम्प्रदाय में नहीं है। द्वैताद्वैत सिद्धान्त की स्थापना करते समय निम्बार्काचार्य का दृष्टिकोण स्पष्ट था। परवर्ती उपासकों में इस सिद्धान्त को व्यवहृत बनाने के लिए राधा-कृष्ण की उपासना तथा किशोर कृष्ण का अवतरण करके उसको नवीन रूप दे कर एक मात्र राधा को ही इष्ट और उपास्य माना जाने लगा।

आप के दो प्रमुख ग्रन्थ हैं। 'राधा-सुधा-निधि" ग्रन्थ संस्कृत में राधा-स्तुति विषयक है, और दूसरी प्रसिद्ध रचना 'हित-चौरासी' है। चौरासी पदों के इस संग्रह संगीतबद्ध रागों में राधामूलक सेवा-भावना को विविध रूपों में अभिव्यक्त किया गया है। इन गेय पदों का रचना-काल निर्धारित करना कठिन है किन्तु हमारी दृष्टि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से तो सं. १६९१ में वृन्दावन में श्री राधावल्लभजी के विग्रह की स्थापना के पश्चात् से लेकर अष्टयाम सेवा भावना में अपनी साधना के चरमोत्कर्ष तक की अवधि में किया हुआ लीला-गान इन पदों में माना जाना चाहिए। इस प्रकार संवत् १९६१ के बाद विभिन्न समयों में रचे गये पदों का यह संग्रह है ।

'हितचौरासी' में चौदह रागों का प्रयोग हुआ है। किसी भक्त ने छंद गान में उसकी गणना स्पष्ट की है:—

छै पद विभास मांझ, सात हैं बिलावल में,
टोडी में चतुर, आसावरी में द्वै बनै ।
सप्त हैं धनाश्री में, जुगल बसंत केलि,
देवगंधार पंचदोय, रससौं सनै ।
सारंग में षोडश है चार ही मलार एक,
गौड में सुहायो नव गौरी रस में भनै ।
षट कल्यान निधि कानरे केदार वेद,
बानी हित जू की सब चौदह राग में गनै ।†

विभास के ६, बिलावल में ७, टोडी में ४, आसावरी २, धनाश्री ७ बसंत २, देवगंधार ७, सारंग १६, मल्हार ४ गौड-मल्हार १, गौरी ९, कल्याण ६, कानरो ९, केदार ४। इस प्रकार राग संख्या १४ में ८४ पदों का विभाजन हैं।

श्री हितहरिवंशजी के समय में ही कुछ नित्य सेवा और नैमित्तिक सेवा प्रणाली के उत्सवों का आरंभ हो चुका था, किन्तु ऐसा लगता है कि उसका प्रमाण मर्यादित था। उस समय दस उत्सवों का ही वर्णन पाया जाता है। जो इस प्रकार है—‡

फागु डोल चन्दन बसन, तीज हिंडौले झूल ।
शरद पाटोत्सव तहां गुरु पूजा रस मूल ।।
दीपमालिका प्रतिपदा बनविहार चितचाह ।
खीचरी और वसन्त ये अपने दस उत्साह ।।

तथापि 'श्री हित चौरासी' में जागरण, मंगला, मंगला आरती, शृंगार आरती, राजभोग आरती, उत्थापन, संध्या भोग, शयन, मान, कुंज, वन विहार,

---

† *श्री हितवाणीजी (गुजराती लिपि—पृष्ठ—६४)*

‡ *सुधर्म बोधिनी, श्री लाडिलीदास कृत—पृष्ठ—७२*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डोल के तथा वसन्त वर्षा मल्हार के तथा एक दान का पद भी प्राप्त होता है। अधिकतर केवल रास के पद ही दिखाई देते हैं। अन्य विषयक मात्र एक, दो या चार की संख्या में हैं। अतः अन्य नित्य सेवा एवं उत्सवों से संबंधित पदों की पूर्ति आपकी परवर्ती शिष्य परंपरा के भक्त कवियों द्वारा हुई है। 'हित-चौरासी में चन्दन, दीपमालिका एवं खीचरी का कोई पद नहीं है।

आप संगीत के उच्च कोटि के ज्ञाता थे। अष्टछाप के समान आप की वाणी शास्त्रीय संगीत से सुबद्ध है, किन्तु उसमें संगीतात्मक विधायक तत्त्वों के चमत्कारिक रूप की अपेक्षा काव्यात्मक संगीत का भावात्मक माधुर्य अधिक खिलता है। आपकी वाणी को अष्टछाप के स्थापक श्री विट्ठलेश्वर ने भी अपनी कीर्तन प्रणाली में उचित स्थान दिया है। कुछ पदों का समावेश किया गया है; उदाहरणार्थ—

(१) झूलत दोऊ नवल किशोर (राग-देवगंधार) ।*

(२) आज वन नीको रास बनायो ।†

(३) वेनु माई बाजे री बंशी वट ।† (राग-गौरी)

(४) देखो माई अवला के बल रास‡ (राग-मल्हार)

(५) देखो भाई सुन्दरता की सींवा (राग-मल्हार)

इत्यादि पद आज तक उसी राग में वल्लभ सम्प्रदाय में गाये जाते हैं। जिनकी संख्या लगभग १५ से कम नहीं होगी। इस प्रकार हितहरिवंशजी के पद पुष्टि मार्ग की पुरानी कीर्तनपोथियों के संग्रहों में प्राप्त होते हैं।

"हित चौरासी" के पदों में श्री हितहरिवंशजी ने संगीत के वाद्यों एवं कतिपय पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया है वे निम्न प्रकार हैं:—

मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग ।
बाजत उपंग वीण वर मुखचंग ।।
ताल भेद अवघर गति सुचित नूपुर किंकिणि बाज (४८)
ताल रवाब मुरज डफ बाजत, मधुर मृदंग‡
बांसुरी मुखचंग पद –संख्या–५८)

---

* *यह पद हवेली संगीत प्रणाली में 'डोल' के दर्शन में गाया जाता है।*

† *रास के दिनों में भोग संध्यार्ति समय क्रमशः राग नट तथा गौरी में गाये जाते हैं।*

‡ *इन दोनों पद का वर्षाऋतु में मल्हार के समय गान किया जाता है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लेत गति मान ततथई हस्तक भेद
स रि ग म प ध नि ये सप्तस्वर नन्दिनी
राग रागिनी तान मान संगीत गत (पद संख्या–७१)
विकट अवघर तान चर्चरी ताल सौं (पद संख्या–८१)

रास लीला अनुकरण का प्रचलन एवं उसके निमित्त रासमंडल की स्थापना का श्रेय भी आचार्य हरिवंशजी को दिया जाता है।

इनकी सेवा प्रणाली में श्री वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव देखा जा सकता है। वल्लभ सम्प्रदाय में अष्टसमय की सेवा, शृंगार, भोग एवं संगीत कीर्तन की परिपाटी जिस समय समृद्ध हो रही थी उसी समय के आसपास श्री हरिवंशजी के सम्प्रदाय में अष्टयाम सेवा, भोग, शृंगार तथा संगीत समाज का आरंभ होना देखा जा सकता है। वल्लभ सम्प्रदाय की नित्य-सेवा में चार आरती हैं, आपने पाँच आरती की स्थापना की। वल्लभ सम्प्रदाय में अष्ट समय की सेवा है, किन्तु राधावल्लभ सम्प्रदाय में सेवासमय सात माने जाते हैं—(१) मंगला, (२) शृंगार (३) राजभोग (४) उत्थापन, (५) संध्या (६) शयन (७) शैया समय की सेवा का क्रम है।

यद्यपि समाज (कीर्तन-पद-गान) का आरंभ आपके समय में हुआ, किन्तु समाज का निश्चित रूप श्री हरिवंशजी के पश्चात् हरिराम जी व्यास के समय में होना संभावित है। अष्टयाम सेवा के समय गाये जाने वाले पद 'हित चौरासी' में कम ही हैं। सेवकजी (दामोदरदासजी) को आपका समकालीन माना जाय तो भी उनकी रचना में इस प्रकार के पद बहुत कम हैं। श्री हरिवंशजी के समय में ही अष्टयाम सेवा, शृंगार एवं नित्यविहार लीला से सम्बद्ध पदों का राग-रागिनियों में समाज-गान सम्प्रदाय का अनिवार्य अंग रूप बन चुका था किन्तु इस परिपाटी को समृद्ध एवं प्रचलित बनाने का श्रेय आपके पश्चात् की परंपरा के शिष्यों को देना समुचित होगा।

श्री हितहरिवंशजी की शिष्य परंपरा

सेवकजी–दामोदरदासजी

श्री हितहरिवंशजी की गेय पद रचनाओं के बाद इस सम्प्रदाय के भक्त कोटि के गेय-पदों के वाणीकार श्री दामोदरदास सेवकजी का नाम उल्लेखनीय है। उनकी रचना में भी छंद, चौपाई, दोहा, सोरठा इत्यादि भी प्राप्त होते हैं; तथापि आपने कुछ रागों में पद-गान भी किया है। अतः वे संगीत कला के भी ज्ञाता थे। सेवकजी की वाणी का मुख्य स्वर निकुंज लीला, विषयक एवं नित्यविहार की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपेक्षा श्री हितहरिवंशजी का महिमा-गान है। 'हित मंगल' का पद उनकी अनन्यता का प्रतीक है।

'दामोदर हित' अथवा 'हित दामोदर' छाप के आपके कतिपय पद वल्लभ सम्प्रदाय में भी गाये जाते हैं। देखिए:—

(१) भादौं सुदि आठैं उजियारी ।

(२) नाचत प्रेम मगन नरनारी ।

उदाहरण में स्थल संकोच के कारण पदों की प्रथम पंक्ति का ही उल्लेख किया है। ये दोनों पद श्रीराधाष्टमी की वधाई के दिनों के है और हवेली-संगीत परंपरा में आज भी इनका गान किया जाता है।

हितहरिवंशजी के केवल ८४ पदों की मर्यादित संख्या में श्री सेवकजी ने अपने गेय पदों की रचना से कुछ अभिवृद्धि की जिसके कारण नित्य सेवा एवं उत्सवों पर समाज-गान में सरलता होने लगी। 'जै जै श्रीहरिवंश प्रशंसित दूनी' यह 'हित मंगल' जन्मोत्सव पर राधावल्लभीय मन्दिरों में खास गाया जाता है।*

श्री हरिराम-व्यास (व्यासजी)

व्यासजी का जन्म संवत् १५६७ का है। अन्य मतानुसार कोई १५४९ भी मानते हैं। आपका वृन्दावन आगमन संवत् १६१२ में हुआ था।

श्री वियोगी हरि एवं आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार संवत् १६२० के आसपास उनका कविता काल माना जाता है।‡ आप संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। श्रीमद्भागवत आदि पुराणों के वक्ता होने के कारण आप "व्यासजी' की उपाधि से प्रथम ही विभूषित हो चुके थे। आप पदों की रचनाएँ जीवन पर्यन्त करते रहे। गुरु परम्परा के लिए ऐसा कहा जाता है कि आप बाल्य-काल में माधव सम्प्रदाय में दीक्षित थे परन्तु हितहरिवंशजी द्वारा प्रचलित राधाभाव की माधुर्य भक्ति के प्रति विशेष आकर्षण होने पर उन्होंने राधावल्लभीय उपासना पद्धति स्वीकार कर ली। व्यासजी के वंशजों में आज तक माधव, राधावल्लभीय और हरिदासी तीनों सम्प्रदायों की दीक्षा प्रचलित है।

---

* *इस 'मंगल' को उत्सवों पर गाने का सौभाग्य इस लेखक को अहमदाबाद-खाडिया के राधावल्लभजी के मन्दिर में आज भी प्राप्त हो रहा है।*

‡ *भक्त कवि व्यासजी*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यासजी की वाणी के रसपूर्ण गेय पद इन तीनों सम्प्रदायों की उपासना प्रणाली में गाये जाते हैं। इन तीनों सम्प्रदायों में कीर्तन-गान की समाज पद्धति को व्यास-वाणी की पुष्टि प्राप्त होने पर ही उन्हीं के समय में समाज की रचना का रूप स्थिर बना। यही नहीं पुष्टि सम्प्रदाय के संग्रहों में भी आप के पद उचित प्रमाण में प्राप्त होते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय की कीर्तन-परंपरा में श्री व्यासजी के जिन पदों का गान किया जाता है उसमें से कुछ उदाहरण रूप में लिखित हैं--

(१) नागरी नटनारायण गायौ।

(२) स्याम सनेही गाइये

(३) आज बधाई बाजत रावलि

(४) नाचत गावत ढाढिन के संग ढाढी हुरक बजावै हो

उपर्युक्त पद क्रमशः रास, साँझी, राधाष्टमी की वधाई तथा ढाढी के पद हैं। वहुत से पद हवेली संगीत परंपरा में यथासमय गाये जाते हैं।

आप के गाये हुए गेय पदों में निम्न प्रकार के राग दृष्टिगोचर होते हैं:—

(१) भैरव, (२) विभास, (३) देवगंधार (४) खट, (५) बिलावल, (६) देव-गिरी, (७) टोडी, (८) आसावरी (९) जयंतश्री, (१०) गूर्जरी, (११) सूहा (१२) धनाश्री (१३) सारंग, (१४) नट, (१५) मालव, (१६) श्री (१७) पूर्वी, (१८) मारू, (१९) गौरी, (२०) कल्याण, (२१) केदारो (२२) कामोद,† (२३) भूपाली, (२४) कान्हरो, (२५) अडानो, (२६) विहागरो, (२७) मल्हार, (२८) गौड मल्हार, (२९) वसंत तथा (३०) गुर्जरी।

तदुपरान्त अठताल, मूलताल, एकताल, चौताल, रूपकताल, जय त्रिताल एवं चर्चरी तालों के नाम प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त राग-ताल के नाम 'भक्त कवि व्यासजी' (अग्रवाल प्रेस से छपा हुआ) ग्रन्थ के आधार पर निश्चिय किये हैं। इस ग्रन्थ के संपादन में जो परिचय दिया है, उनमें प्राचीन हस्तलिखित दो प्रतियों का लिपि काल संवत् १८९४ तथा १८९६ उल्लिखित है।

---

† : *कामोद तथा भूपाली राग आपने उत्तरावस्था में गाया होगा अथवा पदों की बंदिश के आधार पर अथवा स्वेच्छा से परवर्ती भक्त गायकों ने निश्चित किया होगा।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यासजी ने भक्ति-भाव में विभोर होकर राधा-कृष्ण की रसमय लीलाओं का संगीत के माध्यम द्वारा विभिन्न राग-ताल में जो उत्कृष्ट पद-गान किया है, वह आपके संगीत के उच्चतम ज्ञाता होने का स्पष्ट प्रमाण है। विविध रागों में लगभग ७५० से अधिक गेय पदों की विपुल रचना से आपने सम्प्रदाय की काव्य और संगीत कला को समृद्ध वना दिया ।

'राग-माला' नामक आपकी एक रचना का उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु अप्रकाशित होने के कारण उसे देखने का सौभाग्य लेखक को प्राप्त हुआ नहीं है। तथापि 'भक्त कवि-व्यासजी' ग्रन्थ के निम्नविधान से ज्ञात होता है कि दोहा-छंदों में सरस्वती मतानुसार राग रागिनियों का वर्णन इसमें किया गया है। आरंभिक भाग इस प्रकार है:—

जा सम देवन को सदा संकर परै सहाय ।
सदा अभय वरदायिनी "व्यास" चरन चित लाय ।।१।।
राग रागिनी आप ही रसना बुद्धि सरूप ।
ग्रन्थ राग निर्णय उदित, होवै परम अनूप ।।२।।
वह मत बूझ विचारि कैं, मत सरस्वती मानि ।
सब गुणदायक स्वामिनी, सब लायक जगरानि ।।३।।
राग रागिनी गान जुत होवै अंग समेत ।
सुर औ ताल प्रमान तें गावैं सुने सुनेति ।।४।।
भैरवादि षट राग हैं, रागनीय इकतीस ।
"व्यास" कहैं रागांग जुत, सोहै मोहै ईस ।।५।।
भैरव की तिय पांच हैं प्रथम भैरवी जानि ।
अरु बिभावरी गूजरी, गुनकरीय सुभ मानि ।।६।।
पुनि बिलावलि रागनी, भैरव की सुखदानि ।
"व्यास" कहत मत भारती, गायौ जाय सुमानि ।।७।।

अंतिम भाग में (मिती) ज्येष्ठ मासे शुक्ल पक्षे द्वादशी रविवासरे संवत् १८५५ मुकामु ठहरी लिखितं लक्ष्मणदास वैश्य

सरस्वती मत के सम्बन्ध में विचार

१. उपर्युक्त रागमाला को सम्प्रदाय के सभी लेखकों ने सरस्वती मत अनुसार कहा है। तीसरे दोहे की प्रथम पंक्ति के 'मत सरस्वती' मानि इस उल्लेख के आधार पर सरस्वती मत की मान्यता प्रचलित होना संभावित हैं। किन्तु

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमारी दृष्टि से प्राचीन चार मतों में सरस्वती मत का कोई विधान प्राप्त नहीं होता।

२. "मत सरस्वती" के स्थान पर मात सरस्वती होना सुसंगत होगा। क्योंकि प्रारंभ के तीन दोहे मात सरस्वती की स्तुति के संदर्भ में ही दिखाई देते हैं। जो अभय वरदायिनी, सब गुणदायक, स्वामिनी, सब लायक, जगरानी शब्द प्रयोग से स्पष्ट होता है। अतः "मात" के स्थान "मत" शब्द लिपिकार की दृष्टि-चूक संभावित है।

३. इस प्रकार पाँचवें दोहे की प्रथम पंक्ति में 'रागनीय इकतीस' में राग-नीय कहि तीस' होना चाहिए। इस प्रकार के लिपि-दोष प्राचीन अन्य संग्रहों में भी अनेक स्थानों पर दिखाई देते हैं।

४. संगीत शास्त्र ग्रन्थों में रागिनियों की ३१ संख्या का विधान प्राप्त नहीं होता है। भारतीय चारों मतों में—छह राग और ३० रागिनियाँ तथा छह राग और ३६ रागिनियों का ही वर्णन किया हुआ है। अतः "इकतीस' शब्द प्रयोग लिपिकार की भूल से होना संभावित है।

५. संगीत के शास्त्र ग्रन्थों में चार मतों में प्रथम के दो मतों के अनुसार रागिनियों की संख्या ३६ है किन्तु तीसरे 'भरत' मत में ३० की संख्या सुप्रसिद्ध है। श्री व्यासजी ने सातवें दोहे में स्पष्ट कहा है कि व्यास कहत मत भारती गायो जाय सुमानि ॥७॥

६. तदुपरान्त भरत मत में ही छह रागों में प्रथम भैरव राग का उल्लेख हुआ है। तदनुसार व्यासजी ने भी प्रथम भैरव राग से ही आरंभ किया है।

उपर्युक्त कारणों से हमारी मान्यता उचित प्रतीत होती है।

श्री व्यासजी उच्चकोटि के विद्वान्, संगीतज्ञ एवं गायक भी थे। उस समय की ध्रुपद-गान शैली की मान्यतानुसार ही आपने पद-गान किया है। ध्यान रहे कि आपने 'रागमाला' ग्रन्थ में जिन राग-रागिनियों का नामोल्लेख किया है उन सभी रागों में आपने पद-गान किया नहीं है। आपने अन्य रागों में गान क्यों नहीं किया; इस शंका का समाधान 'राग संख्या' प्रकरण में किया जायगा।

आपने पदों में वाद्य-यंत्रों के नामों का प्रयोग भी किया है। जैसेः—वीणा, रबाव, वेणु, सहनाई, मुखचंग, भेरि, मुरली, डफ, मृदंग, दुदुंभी, ढोल, रुंज, मुरज, आवज, दमामा, ताल, करताल इत्यादि तदुपरान्त संगीत के पारिभाषिक शब्द भी विविधि प्रसंगों के पदों में अनेक स्थान पर पाये जाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री चतुर्भुजदास

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में हितहरिवंशजी के पश्चात् उनकी शिष्य परंपरा के श्री सेवकजी और श्री व्यासजी के लगभग समकालीन चतुर्भुजदास भी हो गये हैं। ध्यान रहे कि ये चतुर्भुजदास अष्टछाप के चतुर्भुजदास से पृथक् हैं। इन चतुर्भुजदास-रचित द्वादश यश-गाथायें प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त रागों में गाये जाने वाले कुछ फुटकर पद भी उपलब्ध होते हैं। जिसकी संख्या विशेष नहीं है।

श्री ध्रुवदास

श्री ध्रुवदासजी का जन्म समय राधावल्लभीय भक्तमाल के अनुसार संवत् १६२२ का है। रचना-काल संवत् १६५० से १६९८ तक माना जाता है। वंश के विषय में प्रसिद्ध है कि:— विट्ठलदास (ध्रुवदास के पितामह) श्री हितहरिवंशजी के शिष्य थे। जूनागढ़ स्टेट में दीवान थे। ध्रुवदास के पिता श्यामदास भी भक्त पुरुष थे। उन्होंने हितजी के पुत्र गोपीनाथजी से दीक्षा ग्रहण की थी। विट्ठलदास के विषय में प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु जूनागढ़ में उसी दिन हुई जिस दिन वृन्दावन में हितहरिवंशजी का निकुंज-गमन हुआ। ध्रुवदास राधावल्लभीय परंपरा के जन्मगत संस्कारों के कारण १० वर्ष की आयु में ही वृन्दावन चले गये थे। आपने हितजी के तृतीय पुत्र गोस्वामी गोपीनाथजी से दीक्षा ग्रहण की थी।

इष्टाराध्या राधा से वरदान होने पर ध्रुवदासजी निरंतर पद-रचना में मग्न रहते थे। काव्य-रचना, छंदशास्त्रादि के प्रति आपकी नैसर्गिक अभिरुचि थी। इस परिपाटी के अनुसार शुद्ध रसात्मक काव्य-रचना ही आप का ध्येय रहा है। आपने अपने ग्रन्थों का नाम 'लीला' रक्खा है। इस प्रकार ४२ ग्रन्थों के संकलन युक्त ग्रन्थ का नाम 'ब्यालीस लीला' रखा गया है। इनमें स्मृति, पुराण आदि शास्त्रों का तत्वसार एवं लीलाओं का संकलन किया गया है।

नित्य विहार एवं निकुंज लीला-परक गेय पदों की रचना भी प्राप्त होती है। अधिकतर दोहे, कुंडलियां छंद इत्यादि में विपुल रचना की है। ब्यालीस(४२) लीला के उपरान्त "भक्त नामावली" भी आपकी एक रचना है। राधा-कृष्ण की रसमय-लीला-वर्णन के पद राग-रागिनियों में भी आपने गाये हैं। इन स्फुट पदों की संख्या १०३ मानी जाती है। जिनमें "ब्याहुलो", पियाजी की नामावली एवं अष्टयाम सेवा के उपयुक्त जैसे शृंगार समय के, स्नान समय के, उत्थापन समय के इत्यादि के पद। पूर्व के हितहरिवंशजी तथा व्यासजी की शैली में राग-विधान किया गया है। सूरदासादि अष्टछाप का प्रभाव भी दिखाई देता है।

नेही नागरीदास

राधावल्लभ सम्प्रदाय के नागरीदास "नेही" उपाधि के कारण अन्य नागरीदास से अलग हो जाते हैं। भागवत मुदित के पदों में आपका चरित लिखा है। स्वामी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चतुर्भुजदास के सत्संग से घरबार छोड़कर वृन्दावन चले आये और गोस्वामी वनचंद्रजी से दीक्षा ली । आपका समय चतुर्भुजदासजी और ध्रुवदासजी के कुछ समकालीन (संवत् १५९० से १७ वीं के मध्य तक) माना जाता है ।

आपकी रचनाओं में 'सिद्धान्त दोहावली' में भक्ति-सिद्धान्त के ९३५ दोहे हैं तथा "रस पदावली" में स्फुट पद सहित २३२ पद संख्या उपलब्ध होती है । नित्य-विहार एवं ऋतु-वर्णन के पदों में आपके पूर्ववर्तियों की परिपार्टी के अनुसार रागों में वर्णन किया गया है । पदावली में रास-सम्बन्धी पदों में संगीतात्मकता दिखाई देती है । आपके पदों की वाणी मधुर है ।

श्री अनन्य अली

,अनन्य अलीजी का पूर्व नाम भगवानदास था । जो गोविन्ददास से दीक्षा लेकर जीवन भर अविवाहित रहे । जन्म संवत् १७४० और वृन्दावन-आगमन का समय १७५९ माना जाता है । ध्रुवदास की कुटी के समीप वृन्दावन में रहकर आप पद-रचनाएँ करते रहे । पद-रचना काल संवत् १७५९ से १७९० तक है ।

आपकी वाणी का विस्तार विपुल है। अधिकतर रचनाएँ कवित्त, दोहे, सवैया, चौपाई, इत्यादि में पाई जाती है । यही नहीं अष्ट-याम सेवा-भावनानुसार नित्य-विहार के राग-बद्ध पद भी प्राप्त होते हैं । आपकी वाणी में माधुर्य एवं प्रसाद का सुन्दर योग दृष्टिगत होता है ।

श्री रसिकदासजी

श्री रसिकदासजी नामक महानुभाव राधावल्लभ सम्प्रदाय में चार-पांच हो गये हैं ।‡

(१) प्रथम रसिकदासजी का समय संवत् १६५० से १७०० तक के समीप कहा गया है ।

(२) मोरी सखीजी के साथी हैं । मोरी सखी का समय संवत् १७२० से १८०० के आसपास का माना गया है ।

(३) लाडलीलाल के साथी थे । लाडिलीलाल का समय १७८० से १८५० तक का कहा गया है ।

(४) चन्द्रसखी की गद्दी पर बैठने वाले महानुभाव हैं । चन्द्रसखी का मंदिर वृन्दावन में है । इनकी शिष्य परंपरा भी उपलब्ध होती है ।

---

‡ *अधिक विवरण देखिए—"राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य"* ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(५) इनके परिचय का छप्पय चाचा वृन्दावनदास ने लिखा है । वे गोस्वामी धीरीधरजी के शिष्य थे । धीरीधरजी का समय १६७० से १७६० का माना जाता है । अत: इन रसिकदासजी का रचना काल १७४३ से १७५३ तक का ठहरता है । इन्होंने रचनाओं का नाम "लता" रखा है जैसे—अद्‌भुत-लता, रहस्य-लता, विनोद-लता इत्यादि ।

उपर्युक्त सभी रसिकदास की रचनाओं में छंद, छप्पन, कवित्त, चौपाई इत्यादि की अपेक्षाकृत संगीतात्मक गेय-पदों का अधिक कम प्रमाण पाया जाता है ।

श्री वृन्दावनदासजी (चाचाजी)

श्री चाचाजी वृन्दावनदासजी का जन्म संवत् १७५० से १७६५* के बीच का माना जाता है। संवत् १८०० के लगभग आपकी काव्य-रचना का प्रारंभ हुआ यह कहा जाता है। संवत् १७९४ में आप वृन्दावन आ चुके थे, और इससे पूर्व गोस्वामी रूपलालजी से दीक्षा प्राप्त की थी। कहा जाता है कि तात्कालिक गोस्वामीजी के पिता के गुरु-भ्राता होने से गोस्वामीजी की देखादेखी सम्प्रदाय के लोग उन्हें भी चाचाजी कहने लगे थे। आपकी वाणी में आपकी छाप 'वृन्दावन हित' और 'वृन्दावन हित रूप' छाप में गुरु रूपलालजी का नाम जोड़ लिया गया है। तीसरी छाप केवल 'वृन्दावन' नाम से भी प्राप्त होती है किन्तु आपके अनेक पदों के संबंध में कुछ अन्य की रचना होने का भ्रम उत्पन्न हो सकता है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में चाचाजी की वाणी का जितना व्यापक विस्तार एवं विपुल परिमाण प्राप्त होता है उतना उनके पूर्व किसी का नहीं। संगीत से जहां तक संबंध है वहां कहना चाहिए कि आपकी वाणी में गेय पदों की सहस्रावधि संख्या कई रागों में निवद्ध की हुई है। तत्पूर्व के भक्तों की रचना में रागों की संख्या मर्यादित थी। आपने तत्कालीन अष्टछाप परंपरा में गाये जाने वाले रागों को दृष्टि में रखकर राधावल्लभ सम्प्रदाय की राग-संख्या को समृद्ध बना दिया। उसी प्रकार प्रत्येक दिन की अष्टयाम सेवा को दृष्टि में रखकर नित्य विहार तथा त्यौहारादि भावानुसार समय-समय के पदों की रचनाओं की जो अपूर्ति थी उसकी पूर्ति आपके द्वारा हुई। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के राग-बद्ध गेय पदों अर्थात् साहित्य-संगीत की भगीरथ गंगा वहाने का श्रेय चाचाजी को ही दिया जा सकता है। आपकी अधिकतर रचनाएं छंद, दोहे कवित्त इत्यादि में होते हुए भी वल्लभसम्प्रदाय को छोड़ पर अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की अपेक्षा राग-ताल वद्ध तथा ऋतु एवं समयानुसार के लगभग १२००

---

* श्री रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य के इतिहास" में १७६५ दिया गया है। 'लाड-सागर'-प्रकाशक लाला जुगलकिशोर-भूमिका पृष्ठ ४ में १७४४ के आसपास लिखा है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से अधिक पद लेखक को दृष्टिगोचर हुए हैं। जिनमें प्राचीन शैली के द्रुपद-धमार इत्यादि की स्पष्ट झाँकी होती है। हमारी मान्यतानुसार चाचाजी की पद-रचना शैली एवं राग-रागनियों के चित्र पट पर अष्टछाप परंपरा का प्रभाव होना उचित कहा जायगा।

आपके गाये हुए रागों की संख्या लगभग ४२ प्राप्त होती है; जिनका 'लाड सागर' में आपने प्रयोग किया है। शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से ये पद विभिन्न रागों में गाए जाते हैं। राधावल्लभीय समाज गान में आपकी संगीत-बद्ध वाणी के गेय पदों के गान की परिपाटी दिखाई देती है।

राधावल्लभीय-समाज-गान

समाज-गान के संबंध में डॉ. विजयेन्द्रजी ने लिखा है कि––जिस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के गुणानुवाद के लिए कीर्तन प्रणाली है उसी प्रकार यहां समाज की व्यवस्था है। वल्लभ सम्प्रदाय में पुजारी ही मुखिया कहलाता है* तथा जो कीर्तन करता है वह कीर्तनिया कहलाता है। किन्तु यहाँ समाज का प्रधान गायक मुखिया कहलाता है। प्रधान गायक का शेष समाजी अनुगमन करते हैं। अन्तरंग में प्रिय प्रियतम जो लीला करते हैं और सखियां उस समय जिस भाव का पद गान करती हैं, वहिरंग समाज में उसी भाव का पद समाजी गाते हैं

सम्प्रदाय के विभिन्न उत्सवों पर नाना प्रकार की राग रागनियों का विधान है। नित्य-विहार की जिस लीला से सम्बद्ध पदों का गान होता है और उसमें जिस वेश विन्यास का वर्णन होता है उसी के अनुकूल श्रीजी का शृंगार किया जाता है। समाज में गान करने के लिए समस्त उत्सवों के अनुसार पदों का चयन किया हुआ है। वे ही पद उत्सव के समय गेय समझे ज़ाते हैं जो प्राचीन परंपरा से चले आ रहे हैं। इसमें यथासमय सुन्दर पदों का समावेश होता रहता है। यह पद संग्रह वर्षोत्सव कहलाता है। ऋतुओं के अनुसार छह वर्षोत्सव सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है।‡

राधावल्लभीय-अष्टयाम सेवा

राधावल्लभीय सेवा प्रकार में पांच आरती और सात समय माने गये हैं। इनका सारांश निम्न प्रकार है––

---

* वल्लभ सम्प्रदाय में भी प्रधान कीर्तनकार को मुखिया ही कहा जाता है। यह ध्यान में रखना चाहिए।

‡ 'राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य' पृष्ठ-२५४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१. मंगला समय:—दो घड़ी रात्रि रहे से दो घड़ी दिन चढ़े तक का समय। इस समय में श्रीजी को जगावे, मुख प्रक्षालन करावे। अनन्तर प्रातःकाल का कलेवा (मंगल भोग) करे। इस समय की आरती को मंगला आरती कहते हैं।

२. शृंगार:—दो घड़ी दिन चढ़े से बारह घड़ी दिन चढ़े तब-तक शृंगार समय है। इस समय में स्नान-उबटन एवं आभूषण वस्त्रादि, मुकुट इत्यादि धारण करायें जायें। बाद में धूप आरती की जाय। शृंगार भोग उपरान्त आरती करें।

२. राजभोग:—बारह घड़ी दिन चढ़े पीछे छह घड़ी दिन रहे तक।* इस समय में दोपहर का भोजन राजभोग कहलाता है। कम से कम आध घंटा भोजन का थाल रख कर भोग उतार कर ताम्बूलादि रखा जाय। अनन्तर विश्राम (शयन) की बेला है। विश्राम के पूर्व राजभोग आरती की जाय।

४. उत्थापन:—छह घड़ी दिन पीछे से सायंकाल पर्यन्त।

५. संध्या:—उत्थापन में विश्राम से उठना होता है। जागने पर मुख-प्रक्षालन एवं मेवा-फल आदि सामग्री रखे, इस समय उत्थापन की धूप आरती होती है। अनन्तर वन-विहार को जावे। संध्या समय या विहार से लौटने पर संध्या भोग होता है। स्वल्प भोजन के बाद संध्या आरती होती है।

६. शयन:—यह समय रात्रि पीछे शयन समय घड़ी दो का है। इस समय में रात्रि भोजन प्रस्तुत किया जाता है। बाद में शयन आरती होती है।

७. शैया:—आठ घड़ी रात्रि गये पीछे घड़ी बीस का समय। इस समय शैया पर पधारने की भावना की जाती है। इसके बाद प्रभात तक निद्रामग्न रहें।। (शैया के निकट परिश्रान्त होने पर) शैया भोग की सामग्री ग्रहण करे।

राधावल्लभ सम्प्रदाय की समाज (भजन) प्रणाली में संगीत का शास्त्रीय रूप का आरंभ आद्याचार्य के समय से हुआ है परन्तु हितहरिवंशजी ने चौदह रागों में ही गान किया है। बाद में व्यासजी, ध्रुवदासजी, चर्तुभुजदासजी, अनन्य अली, रसिकदास आदि परवर्ती भक्तों ने रागों के अनुसार अष्टयाम सेवा की प्रणाली के अनुकूल पद रचना की है। इन भक्तों का परिचय हम पीछे दे चुके हैं। अष्टयाम सेवा में गाये जाने वाले पदों का पूर्ण रूप चाचा वृन्दावनदासजी के समय में ही पाया जाता है। रागों की संख्या भी इनके पूर्व सीमित रूप में ही पाई जाती है। इस सम्प्रदाय में गाये जाने वाले कुछ राग वल्लभ सम्प्रदाय की पद्धति से मिलते-जुलते होते हैं तथापि बंदिश की दृष्टि से कुछ रागों के स्वर-स्वरूप और गान-

---

* पक्का भोजन जैसे पूरी, मोहन भोग, कचौरी, हलुआ इत्यादि।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शैली की भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है। सम्प्रदाय के परंपरागत समाज गान के संगीत से पूर्ण परिचित गायक समाजी कम होते जा रहे हैं। फलत: आज गिनती के समाजी दृष्टिगत होते हैं। इनमें भी 'संगीत-की दृष्टि से ह्रास के लक्षण नजर आने लगे हैं।*

रास-परंपरा का आरंभ

श्रीमद्भागवत दशमस्कंध के (29 से 33) पाँच अध्यायों को 'रासपंचाध्यायी' भागवत का प्राण समझा जाता है। श्री कृष्ण के मन में रास करने की इच्छा हुई। समस्त-वन प्रदेश अनुरंजित हो उठा। श्रीकृष्ण ने वंशी नाद का प्रारंभ किया। गोपियाँ तन मन की सुध भूल श्रीकृष्ण के समीप उपस्थित हुईं। श्रीकृष्ण ने वापिस लौटने का उपदेश दिया किन्तु गोपियों ने किसी मर्यादा को स्वीकार नहीं किया। तव आनंदपुलकपरिपूर्ण होकर मंडलाकार होकर रास रचाया। इसमें भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि संयोग शृंगार के वर्णन से सामान्य पाठक को यह लीला कामप्रेम की शृंगारमयी होने का भ्रम हो सकता है, किन्तु विभिन्न भक्ति सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपनी निष्ठानुसार रासलीला को ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, योगमार्ग और भक्तिमार्ग की सरणि माना है। लौकिक शृंगार या काम चेष्टा का किंचित् आधार भी उसमें गृहीत नहीं हुआ। अत: भागवत-वर्णित रास-लीला को किसी ने लौकिक काम वासना प्रेरक नहीं माना। सुबोधिनी में रास प्रकरण के आरंभ की टीका में श्री वल्लभाचार्यजी ने कहा है:—

ब्रह्मानंदात्समुद्धृत्य भजनानन्द योजते।
लीलया युज्यते सम्यक् सातुर्ये विनिरूप्यते ।।

भगवान ने व्रज में लीलाएं इसलिए कीं कि मुक्त जीवों का, ब्रह्मानंद से उद्धार होकर उन्हें भजनानन्द मिले। इस प्रकार लौकिक विषयानन्द तथा काव्यरस से इतर रसरूप श्रीकृष्ण (रसो वै स:) के संसर्ग की लीलाओं में जो रस-समूह का मिलन है, वह रास है। रास क्रीड़ा द्वारा मानसिक अनुभव से रस की अभिव्यक्ति होती है, देह द्वारा प्राप्त अनुभव से नहीं।‡

श्रीकृष्ण की लीलाओं को आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनों प्रकार से भक्तजनों ने हृदयंगम किया है। इनमें रास लीला का स्थान भी आध्यात्मिक दृष्टि से मानने वाले कुछ विद्वानों का मत है कि वेद में भी शब्दार्थ के नित्य सम्बन्ध के रूप में रास लीला के स्वरूप का विचार प्राचीन काल से ही होता आया है।

---

* *राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य-पृष्ठ-५८७*

‡ *अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय से उद्धृत।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लीला के समस्त रूप भगवान् का ही प्रतिपादन करते हैं। इस सिद्धान्त को व्यक्त करने के लिए ही रास लीला का प्रसंग है। गोपियां* वेद की ऋचाएं हैं और जिस प्रकार शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है उसी प्रकार ऋचा रूपी गोपियों का और भगवान् का सम्बन्ध भी नित्य है। इसी का नाम 'नित्य रास लीला है।'

ब्रह्मवेत्ताओं की दृष्टि में भगवान श्रीकृष्ण 'तत्' हैं और गोपांगनाएँ "त्वं" पदार्थ हैं। यथार्थ में अन्तरंग दृष्टि से यह जीव और ब्रह्म का अद्भुत संयोग ही है।

योगशास्त्र के आधार पर चलने वाले कहते हैं कि "अनाहत' नाद ही भगवान् की वंशी-ध्वनि है, अनेक नाड़ियां ही गोपिकाएँ हैं, कुल-कुण्डिलिनी श्री राधा हैं, सहस्रदल कमल ही सुरम्य वृन्दावन है। जहाँ आत्मा और परमात्मा का सुखमय मिलन होता है तथा जहाँ पहुंच कर ईश्वरीय विभूति के साथ जीवात्मा की सम्पूर्ण शक्तियां सुरम्य रास रचती हुई नृत्य करती हैं।‡

आत्म शक्ति की विभिन्न लीलाओं का आध्यात्मिक अर्थ मानने वाले विद्वानों के अनुसार गो का अर्थ इंद्रिय अर्थात् गोप या गोपी का अर्थ इन्द्रियों की रक्षा करने वाला कृष्ण आत्मा के प्रतीक है जो वंशी ध्वनि से, संगीतादि स्वरों से गोपियों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। जैसे इन्द्रियां या वृत्तियां एकमन और एकप्राण होकर अन्तरात्मा में मग्न हो जाने की तैयारी करती हैं, वैसे ही गोपियां वंशी-ध्वनि से कृष्ण की ओर केवल गति करती हैं। पश्चात् रास लीला का नृत्य आता है, जो कृष्ण-सान्निध्य करा देता है—मनोवृत्तियां आत्मा में लीन हो जाती हैं।θ

श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार के रासपंचाध्यायी प्रकरण के संबंध में व्यक्त किये हुए मार्मिक विचारों में रास की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार प्राप्त होती है। जिस दिव्य क्रीड़ा में एक ही रस अनेक रसों के रूप में होकर अनन्त-अनन्त रस का समास्वादन करे, एक रस ही रस समूह के रूप में प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद्य आस्वादक, लीला, धाम और विभिन्न आलम्बन और उद्दीपन के रूप से क्रीड़ा करे—उसका नाम रास है। भगवान् की यह दिव्य लीला भगवान् के दिव्य धाम में दिव्य रूप से निरंतर हुआ करती है।θ

---

* *अष्टछाप के भक्त छीतरस्वामी के पद-गान में 'जे वे गोपवधू हीं व्रज में, सो अब वेद ऋचा भइ एह'कथन का यहीं भावार्थ है। (देखिये—'जे वसुदेव किये पूरन तप' सारंग राग की बधाई में।)*

‡ *कल्याण, अगस्त १९३१ (लेखक बलदेवप्रसाद मिश्र)*

θ *राधावल्लभ सम्प्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य से उद्धृत।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री सनातन गोस्वामी ने भी रास लीला को काम-विहीन माना है और आह्लादिनी शक्ति का अनादि विलास कहा है।

आह्लादिनी शक्ति के साथ विलास, सर्वशक्तिमान परिपूर्ण परतत्त्व का पराख्या शक्ति के साथ जो चिद्लास है उसी को रास कहते हैं। इस लीला में अपूर्व नृत्य, गीत, वाद्य आदि का आयोजन तथा विविध भावों का योग रहता है।θ

तत्त्व चिन्तकों ने इस प्रकार रास लीला का तात्त्विक दृष्टि से विचार किया है। रास लीला में अंतरंग और वहिरंग, दोनों रहस्य हैं। वहिरंग का अभिप्राय है कि जव तक काम को पूर्ण रूप से विजय न कर ले तव तक रास लीला देखने का अधिकारी नहीं होता। श्रीधरस्वामी ने भी रासपंचाध्यायी को निवृत्तिपरक वताते हुए लिखा है—

'शृंगाररसकथोपदेशेन विशेषतोनिवृत्तिपरेयं पंचाध्यायी।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में उपर्युक्त तत्त्व चिन्तकों के प्रतीकार्थों की स्वीकृति नहीं है। इस सम्प्रदाय की मुख्य मान्यता यह है कि राधा को प्रमुदित रखना ही उनका ध्येय है। राधिका की अंशभूता अन्यान्य गोपिकाओं को रास में एकत्र कर प्रकारान्तर से इष्टदेवी राधा को प्रमुदित करने का यह एक क्रीड़ा-कौतुक है। रास का निजधाम वृन्दावन है।

वल्लभ सम्प्रदाय में रास के तीन रूप माने जाते हैं:—

१. नित्य रास २. अवतरित या नैमित्तिक रास, ३. अनुकरणात्मक रास– यह दो प्रकार का होता है। (क) भावनात्मक या मानसिक (ख) देहात्मक। गोलोक में अथवा निजधाम वृन्दावन में भगवान श्रीकृष्ण अपने आनंद-विग्रह से अपनी आनंदप्रसारिणी शक्तियों के साथ नित्य रस-रास मग्न रहते हैं। उनकी क्रीड़ा अनादि और अनंत है यही भगवान् का नित्य रास है।*

चैतन्य सम्प्रदाय के अनुयायियों ने एवं वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप भक्तों ने अधिकांश भावनापरक रासलीला का ही वर्णन किया है। यही नहीं हितहरिवंशजी के भी हित चौरासी में भावनापरक लीला का ही वर्णन किया है। किन्तु वैष्णवाचार्यों ने जीवों को प्रेम पथ पर ले जाकर विषयानंद से हटा कर रस रूप लीला रूप भजनानंद भक्ति द्वारा सांसारिक जीवों के कल्याणार्थ भौतिक रूप में रास लीला का अनुकरण अभीष्ट मानकर अनुकरणात्मक रास लीला का आविष्कार किया।

θ राधावल्लभ सम्प्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य से उद्धृत।

* अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ-४९७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि सोलहवीं शताब्दी से पहले ही रास का अनुकरण भारत के अन्य भागों में आरंभ हो गया था किन्तु ब्रजमंडल में पंद्रहवीं शताब्दी के अंतिम दशाब्द के पहले का कोई ऐतिहासिक उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

निम्वार्क सम्प्रदाय के अनुयायी श्री घमंडदेवाचार्य को रास लीलानुकरण का आदि प्रवर्तक ठहराते हैं, किन्तु समालोचकों के मतानुसार उनका आविर्भाव संवत् १४५९ का माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका प्रवर्तकत्व सिद्ध नहीं हो सकता है।

केलिमाला पुस्तक के सम्पादक आचार्य छवीलेलालजी ने स्वामी हरिदासजी को रास लीला प्रवर्तक लिखा है। कहा जाता है कि रास लीला का प्रारंभ भी स्वामीजी ने ही किया था। श्री स्वामी हरिदासजी एवं वल्लभाचार्य महाप्रभु ने मंत्रणा करके माथुर चतुर्वेदियों के आठ वालक माँग कर मथुरा में विश्राम घाट पर रास लीला का सर्व प्रथम आयोजन किया। स्वामीजी ने श्री राजेश्वरी का श्रृंगार किया और वल्लभाचार्यजी ने श्री श्यामसुन्दर को सजाया। इस रास लीला का मुकुट श्री स्वामीजी ने घमंडदेव को प्रदान किया और करछला जाकर रास लीला का संगठन करने की उन्हें प्रेरणा दी। घमंडदेवजी द्वारा ही रास लीला का प्रचार हुआ।*

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के अनुयायियों के मतानुसार वृन्दावन में जो सवसे प्राचीन रास मंडल उपस्थित है वह गोस्वामी श्री हितहरिवंशजी द्वारा संवत् १५९१ में स्थापित किया गया है। इस स्थान में श्री हितजी के साथ स्वामी हरिदास तथा हरिराम व्यासजी सम्मिलित होकर इन लीलाओं में आनंद लाभ करते थे।

डॉ.** दशरथ ओझा अपने शोध ग्रन्थ में लिखते हैं कि उस समय वृन्दावन के लता कुंजों में स्थित साधुओं के पर्ण कुटीर साहित्य के उद्भट कृष्ण भक्त आचार्यों के आवास वन रहे थे। स्वामी वल्लभाचार्य और हितहरिवंशजी के पर्ण कुटीरों में भक्तों की भीड़ लगती थी। तानसेन के गुरु स्वामी हरिदासजी भी वहीं आकर वस गये थे। इन आचार्यों में एक आचार्य ऐसे थे जो राधाजी के परम उपासक थे यह थे महात्मा हितहरिवंश। इस सूक्ष्म तत्त्वदर्शी महात्मा को सेवा कुंज में नित्य राधा कृष्ण का रास विहार दृष्टिगोचर होता था।

एक दिन रास का प्रसंग छिड़ा। भक्तों में जिज्ञासा हुई कि आचार्य जी को वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण का रास विहार दिखाई पड़ता है वह किस प्रकार का है। आचार्य हरिवंशजी ने घमंडीलाल (घमंड देव) महात्मा को वुलाया उनको और स्वामी हरिदास को कुछ निर्देश किया। रास लीला में दृष्टिगोचर होने वाली

---

* *श्री केलिमाल पृष्ठ-१७ (आचार्य छवीलोवल्लभजी–सम्पादित)*

** *हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास-पृष्ठ-९९-१००*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

छबि के अनुरूप प्रसाधन हुआ। गोपियों का प्रसाधन स्वयं हितहरिवंशजी ने किया। रासमंडल की तैयारी हुई। श्री हितहरिवंशीजी का 'आज बन नीको रास बनायो' पद प्रस्तुत किया गया। स्वामी हरिदासजी एवं अन्य महात्माओं ने भी संगीत में योग दिया। हितहरिवंशजी के साथ श्री वल्लभाचार्य तथा गदाधर भट्ट भी थे। इस प्रकार १६ वीं शताब्दी में इन आचार्य महात्माओं ने सर्व प्रथम रास मंडल रचाया। जिसमें नृत्य, संगीत एवं नाट्य को स्थान मिला।

रास लीला से संबंधित उपर्युक्त विधानों से ज्ञात होता है कि रास लीलानुकरण-प्रवर्तन का समय १५९१ है तथा प्रवर्तक श्री हितहरिवंशजी के साथ स्वामी हरिदासजी तथा श्री वल्लभाचार्य एवं घमंडदेव स्वामी का सहयोग कहा गया है। किन्तु श्री वल्लभाचार्यजी का समय संवत् १५८७ तक का ही है। तथा घमंडदेव स्वामी की उपस्थिति के समय में भी मतभेद पाये जाते हैं। अतः परंपरागत अनुश्रुति के अतिरिक्त किसी ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव से स्वामी हरिदासजी या हित हरिवंशजी का रासलीला के संस्थापक होना लेखक को मान्य है। क्योंकि श्री वल्लभाचार्यजी की इस समय उपस्थिति ही नहीं थी। कदाचित् आप के पुत्र श्री विट्ठलेश्वर का सहयोग होना और आपको वल्लभाचार्य समझकर उल्लेख करना संभावित है। परन्तु वल्लभ सम्प्रदाय में रास का इतना महत्व नहीं है, जितना श्री हरिवंशजी के और श्री हरिदासजी के सम्प्रदाय में रास लीला का आग्रह पूर्ण महत्व पाया जाता है।

हमारी मान्यता यह है कि श्री हितहरिवंशजी को संस्थापक मानने में कोई बाधा नहीं है, परन्तु प्रवर्तकों का श्रेय श्री घमंडदेव स्वामी तथा श्री व्यासजी को ही दिया जायगा।

श्री हितहरिवंशजी ने और श्री हरिदास स्वामी ने रासानुसरण की आरंभिक स्थापना अवश्य की, किन्तु इन दोनों आचार्यों की वाणी में रासानुकरण की विविध लीलाओं के लिए पदों में पर्याप्त सामग्री दिखाई देती नहीं है।

आप दोनों आचार्यों की वाणी में रास लीलापरक पदों की संख्या रासानुकरण लीलाओं की प्रवृत्ति के लिए पर्याप्त नहीं हो सकती। अतः आपको अष्टछाप महानुभावों द्वारा रचित रास लीला के पदों का प्रयोग करना पड़ा हो अथवा सहयोग की दृष्टि से प्रयोजित किये हों। अन्यथा रास लीला की संस्थापना का स्वरूप ठीक रूप से कैसे हो पाता?

दूसरा यह भी है कि इन दोनों आचार्यों की वाणी में लीला प्रतीकरूप और शुद्ध भावनापरक आध्यात्मिक है। चैतन्य महाप्रभु एवं श्री वल्लभाचार्यजी के अष्टछापादि अनुयायियों ने भी भावनापरक रास लीला का ही अधिकांश वर्णन किया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। अतः अभिनयात्मक लीला के स्थूल अनुकरण पर किसी ने विशेष बल दिया नहीं है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार यह राधा-कृष्ण लीलानुकरण पहले से चला आ रहा था उसी को श्री हितहरिवंशजी ने पुनर्जीवित किया। यह मान्यता भी निर्मूल नहीं है। रासलीलानुकरण के संबंध में विवाद प्रचलित हो गये हैं। हमारी दृष्टि से ब्रजवृन्दावन की रास लीलानुकरण परंपरा की स्थापना श्री हरिदास स्वामी के एवं अन्य भक्तों के सहयोग से श्री हितहरिवंशजी ने की। इस प्रकार श्री हितहरिवंशजी को संस्थापक कहना ठीक होगा किन्तु उसका प्रवर्तन व्यासजी ने ही श्री घमंडदेव स्वामी एवं अन्य समकालीन भक्तों की सहायता से किया। व्यासजी के समय तक रासानुकरण लीला अपने स्थूल स्वरूप में स्थिर हुई। व्यासजी के अतिरिक्त नारायण भट्ट भी प्रवर्तक या पोषक समझे जाते हैं, जिन्होंने संवत् १६२६ के बाद प्रियाजी का वेष धारण करके ब्राह्मण बालकों को प्रवृत्त किया ऐसा कहा गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रभुचरण गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी

पुष्टिमार्ग के स्थापक श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के पश्चात् आपश्री के द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथजी पुष्टिमार्ग के द्वितीय आचार्य हुए। श्री विट्ठलनाथजी का जन्म संवत् १५७२ (ईसवी सन् १५१६) में (व्रज) पौष कृष्ण ९ को प्रयाग के निकट चरणाट में हुआ था। आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री गोपीनाथजी के नित्य लीला प्रवेश के पश्चात् आपको पुष्टिमार्ग का आचार्यत्व प्राप्त हुआ। संवत् १६०० (ईसवी सन् १५४४) में आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता की स्मृति में प्रथम व्रजयात्रा की।

श्री गोपीनाथजी के समय तक श्रीमद्वल्लभाचार्य जी द्वारा निर्मित श्रीनाथजी की सेवा-विधि, जो सामान्य रूप में होती रहती थी, चलती रही। श्री विट्ठलनाथजी ने सम्प्रदाय के विकासार्थ व्यापक रूप में सेवा बढ़ाने का विचार किया। आपको बाल्य-काल से ही कुंभनदास, परमानंददास और सूरदास जैसे महान् भक्त संगीताचार्यों द्वारा संगीत के राग-तालादि के संस्कार प्राप्त हो चुके थे। संगीत के प्रति अत्यंत अभिरुचि के कारण संगीत के शास्त्र-ग्रन्थों का भी आपने अध्ययन किया था, ऐसा दृष्टिगत होता है। सम्प्रदाय की सेवा के मुख्य अंग रूप राग (संगीत), भोग (सामग्री) और श्रृंगार कलाओं में से सर्वप्रथम राग के उत्कर्ष हेतु 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ के आधार पर आपने अष्ट संगीताचार्यों की संख्या नियत करने का विचार किया। उस समय संगीताचार्य की कोटि के श्री वल्लभाचार्यजी के चार सेवक* और आपके तीन** सेवक उपस्थित थे अतः अष्ट की पूर्ति के लिए विष्णुदास छीपा को आज्ञा की गई। इस प्रकार आपने श्रीजी के सम्मुख अष्ट कीर्तनकारों को नियत करके अष्ट-सखा की भावना प्रगट की। सम्प्रदाय में एक मान्यता प्रचलित है कि संवत् १६०२ में 'अष्टछाप' की स्थापना की गई, किन्तु हमारी मान्यतानुसार 'नंददासजी' के शरण आने के पश्चात् संवत् १६०७ में अष्टछाप की विधिवत् स्थापना होना अधिक संगत है।

संगीत के साथ भोग, श्रृंगारादि का भी वैभव बढ़ाने का आपने निश्चय किया था। इस परिवर्तन की योजना से अधिकारी कृष्णदासजी भी सहर्ष सहमत हो गये थे। इस कार्य में विपुल द्रव्य की आवश्यकता होने के कारण आपने प्रवास करने का निश्चय किया और संवत् १६०० के अन्त में लगभग अडेल होते हुए गुजरात पधारे। इस यात्रा में अनेक जन आपके सेवक हुए तथा धन भी प्राप्त हुआ। तदनन्तर

---

* १. श्री कुंभनदास ३. श्री सूरदास २. श्री परमानंददास और ४. कृष्णदासजी

** १. गोविंद स्वामी २. चतुर्भुजदास और ३. छीतस्वामी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आपने गोवर्धन आकर समस्त धन श्रीनाथजी की सेवा में भेंट किया और यथोचित व्यवस्था कर अडेल आये।

तत्पश्चात् एक दुःखद प्रसंग यह हुआ कि श्री गोपीनाथजी के पुत्र श्री पुरुषोत्तमजी की १८ वर्ष की आयु हो जाने से उनकी माता ने उन्हें आचार्य पद पर अधिष्ठित कराने का आंदोलन चलाया जिनमें कृष्णदासजी अधिकारी का सम्पूर्ण सहयोग था। उन्होंने श्री विट्ठलनाथजी को श्री नाथजी के मंदिर में आने-जाने की ड्योढ़ी वंद कर दी, परन्तु आपने अपने पिता के नियत किये हुए अधिकारी कृष्णदास की आज्ञा का पालन करना कर्त्तव्य समझ कर कुछ भी विरोध नहीं किया। विट्ठलनाथजी परासोली ग्राम में चंद्रसरोवर पर विप्रयोगपूर्वक अन्न का त्याग कर केवल दुग्धाहार करते हुए रहने लगे। इस प्रकार छह महीने व्यतीत हो गये, तब आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधरजी ने मथुरा के हाकिम द्वारा कृष्णदास को कैद करा दिया और विट्ठलनाथजी के मंदिर-प्रवेश का राजकीय आदेश प्राप्त कर परासोली जाकर पिताजी से मंदिर-प्रवेश के लिए प्रार्थना की। तव आपने कहा—"जब तक कृष्णदास वंधन मुक्त नहीं होंगे तब तक हम अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे।" इस प्रतिज्ञा को सुनकर गिरिधरजी ने हाकिम से मिलकर कृष्णदासजी को बंधन मुक्त करा दिया। इस अपूर्व क्षमावृत्ति से कृष्णदासजी को अपने कृत्य पर अति पश्चत्ताप हुआ, और उन्होंने गद्-गद् कंठ से क्षमा याचना की। यही नहीं उसी दिन से वे आपके अनन्य भक्त हो गये। तव श्री बिट्ठलनाथजी ने कृष्णदासजी को पूर्ववत् श्रीनाथजी के मंदिर का अधिकारी बना दिया।

इसी बीच दैवयोग से श्री पुरुषोत्तमजी का लीला-प्रवेश हो जाने से वह आन्दोलन स्वतः शान्त हो गया और विक्रम संवत् १६०६ की आषाढ़ शुक्ल ५ को श्री विट्ठलनाथजी ने मंदिर में पुनः प्रवेश किया। तत्पश्चात् संवत् १६०७ में आपको विधिपूर्वक पुष्टि सम्प्रदाय के द्वितीयाचार्य का पद प्राप्त हुआ। उसी समय श्री नंददासजी विट्ठलनाथजी की शरण आये। उनकी काव्य-संगीत-विषयक योग्यता देखकर आपने उन्हें 'अष्टछाप-मंडल' में सहर्ष स्थान दिया। विष्णुदास छीपा वृद्ध हो चुके थे अतः उन्हें द्वारपाल नियुक्त किया।

अष्टछाप की स्थापना के पूर्व श्री विट्ठलेश्वर संगीत के सैद्धांतिक और क्रियात्मक रूपों में पारंगत हो चुके थे। आप समर्थ वीणावादक एवं गायक भी थे। सम्प्रदाय के स्तोत्रों में आपश्री को 'गीत-संगीत-सागर' नाम से संबोधित किया गया है। भक्त कवि जयदेवजी के समकक्ष आपने भी राग-रागनियों में अष्टपदियों की संस्कृत में रचना की है। उदाहरण रूप 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूरदास की वार्ता प्रसंग ५ का निम्न उल्लेख देखिए:—

"एक दिन सूरदासजी गोकुल आये। बाल लीला के बहुत पद गाये। तब श्री गुंसाइंजी आप पलना को कीर्तन संस्कृत में करिकें सूरसदासजी कों सिखायो। ता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समय श्री नवनीतप्रियाजी पालने में विराजे, तब सूरदासने श्री गुंसाईंजी कृत यह पलना गायो। सो पदः—

राग— रामकली—

प्रेंख पर्यंकशयनं।
चिरविरहतापहरमतिरुचिरमीक्षणं; प्रकटप्रेमायनं ।।ध्रुव।।
तनुतरद्विजपंक्तिमतिललितानि हसितानि तव वीक्ष्य गायकीनाम् ।।
इयदवधि परमेतदाशया समभवज्जीवितं तावकीनाम् ।।1।।
तोकता वपुषि तव राजते दृशि तु मदमानिनीमानहरणम् ।।
अग्रिमे वयसि किमु भावि कामेपिनिजगोपिकाभावकरणम् ।।2।।
व्रजयुवतिहृद्यकनकाचलामारोढुमुत्सुकं तव चरणयुगलम् ।।
तेत्तुमुहुरुन्नमनमभ्यासमिव नाथ ! सपदि कुरुते मृदुलमृदुलम् ।।3।।
अधिगोरोचनातिलकमलकोद्ग्रथितविविधमणिमुक्ताफलविरचितम् ।।
भूषणं राजते मुग्धतामृतभरस्यंदिवदनेन्दुरसितम् ।।44।।
भ्रूतटे मातृरचितांजनबिंदुरतिशयितशोभया दृग्दोषमपनयन् ।।
स्मरधनुषि मधुपिबन्नलिराज इव राजते प्रणयिसुखमुपनयन् ।।5।।
वचनरचनोदारहास सहजस्मितामृतचयैर्रतिभरमपनयन् ।।
पालय सदास्मानस्मदीय 'विट्ठले' निजदास्यमुपयनन् ।।6।।

उपर्युक्त रचना में पलना में पौढ़े हुए बालकृष्ण प्रभु का सुन्दर वर्णन हुआ है। इस पद को पलना के दर्शन समय गाने की आज भी प्रथा है। तदतिरिक्त आपकी द्वितीय संस्कृत पद रचना को सम्प्रदाय में नितप्रति मंगल भोग सरे तब गाना आरंभ किया जाता है और अंतिम तुक का मंगला दर्शन खुलने पर गान किया जाता है। जो निम्न प्रकार हैः—

मंगल मंगलं व्रजभुवि मंगलम् ।।
मंगलमिह श्रीनंदयशोदानामसुकीर्तनमेतद्रुचिरोत्संगसुलालितपालितरूपम ।।1।।
श्रीश्रीकृष्ण इतिश्रुतिसारं, नाम स्वार्तजनाशयतापापहमिति मंगलरावम् ।।
व्रजसुंदरीवयस्यसुरभीवृन्दमृगीगणनिरुपमभावा मंगलसिन्धुचयाय ।।2।।
मंगलमीषत्स्मितयुतवीक्षणभाषणमुन्नतनासापुटगतमुक्ताफलचलतम् ।।
कोमलचलदंगुलिदलसंयुतवेणुनिनादविमोहितवृन्दावनभुवि जाताः ।।3।।
मंगलमखिलं गोपीशितुरिति मंथरगतिविभ्रम-मोहितरासस्थितगानम् ।।
त्वं जय सततं गोवर्धनधर, पालय निजदासान् ।।4।।

इनके अतिरिक्त आपकी एक संस्कृत अष्टपदी महाकवि जयदेवजी की वसंत वर्णन की अष्टपदियों के समान वसंत राग में और वसंत खेल के भावानुकूल वर्णन में प्राप्त होती है। सम्प्रदाय में आज भी इस अष्टपदी का वसंत पंचमी से लेकर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

[stamp:] ...नाथ-ग्रन्थालय, भारतनिधि, करौंदी वाराणसी-5

फाल्गुन सुदी दसमी तक खेल (राजभोग) के दर्शन में वसंत राग में सर्वप्रथम गान किया जाता है, तत्पश्चात् अन्य कीर्तन गाये जाते हैं। यह निम्न प्रकार है:—

राग—बसन्त

हरिरिह व्रजयुवतीशतसंगे ।।
विलसति करिणीगणावृतवारणवर इव रतिपतिमानभंगे ।।ध्रुव ।।
विभ्रमसंभ्रमलोलविलोचनसूचितसंचितभावं ।।
कापि दृगंचलकुवलयनिकरैरंचति तं कलरावं ।। 1।।
स्मितरुचिररुचिरतराननकमलमुदीक्ष्य हरे रतिकंदं ।
चुंबति कापि नितंबवती करतलधृतचिबुकममंदं ।। 2।।
उद्भटभावविभावितचापलमोहननिधुवनशाली ।।
रमयति कामपि पीनघनस्तनविलुलितनववनमाली ।। 3।।
निजपरिरंभकृतेनुद्रुतमभिवीक्ष्य हरिं सविलासं ।।
कामपि कापि बलादकरोदग्रे कुतुकेन सहासं ।। 4।।
कामपि नीवीबंधविमोक्षसंभ्रमलज्जितनयनां ।।
रमयति संप्रति सुमुखि बलादपि करतलधृतनिजवसनां ।। 5।।
प्रियपरिरंभविपुलपुलकावलिद्विगुणितसुभगशरीरा ।।
उद्गायति सखि कापि समं हरिणा रतिरसरणधीरा ।। 6।।
विभ्रमसंभ्रमगलदृंगचलमलयांचितमंगमुदारं ।।
पश्यति सस्मितमति विस्मितमनसा सुदृशः सविकारं ।। 77।।
चलति कयापि समं सकरग्रहमलसतरं सविलासं ।।
राधे तव पूरयतु मनोरथमुदितमिदं हरिरासं ।। 8।।

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि आप काव्य एवं गायन कला में निपुण थे। यही नहीं श्री विट्ठलेश्वर ने वीणा-वादन में भी प्रभुत्व प्राप्त किया था। इस संबंध में कहा जाता है कि आप पूर्व जीवन में श्रीजी को एवं श्री नवनीत-प्रियजी को जगाने तथा पौढ़ाने के समय वीणा बजाते थे किन्तु उत्तर जीवन में आपने वीणावादन का सर्वथा त्याग कर दिया था इस संबंध में निम्नलिखित कारण पाए जाते हैं:—

१. वीणा में संगीत के मार्मिक भेद बजाने के लिए आपने अपनी करांगुली का नख बढ़ाया था। एक दिन श्रीनाथजी का श्रृंगार करते समय श्रीजी के श्रीअंग में वह चुभ जाने से आपको पश्चात्ताप हुआ और तभी से आपने बीणा बजाना बंद कर दिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२. ऐसा भी कहा जाता है कि आपने नख वढ़ाया नहीं था, किन्तु नखी (निजराफ) को अंगुली में लगाकर बीन बजाते थे तथापि बीन बजाने में कुछ करांगुलियों के अग्रभाग कठोर हो जाते हैं। श्रीजी को स्पर्श करने में इस प्रकार की कठोर अंगुलियां अपराध रूप समझ कर आपने वीणा-वादन त्याग दिया।

३. कुछ अनुभवियों का कहना है कि कृष्णदास अधिकारी के प्रसंग से जब आपकी सेवा छूट गई थी तब विरहावस्था में वीणा-वादन स्वतः छूट गया।

४. इस लेखक के पिता (कीर्तनकार छबीलदासजी) के कथनानुसार आपश्री ने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री यदुनाथजी को वीणा वादन सिखाया था। वे युवावस्था के आरम्भ से ही बीन बजाने लगे थे। तब उनको बीन की सेवा सौंप कर आपश्री ने बीन बजाना छोड़ दिया।

श्री* यदुनाथजी संगीत-कला में निपुण थे यह कीर्तन साहित्य से ज्ञात होता है। (यही परंपरा श्री यदुनाथजी के वंश षष्ठ गृह में आज तक कुछ न कुछ रूप में दृष्टिगत होती है।)

उपर्युक्त कारणों में से तृतीय एवं चतुर्थ कारण अधिक संभावित हैं। श्रीजी को नख चुभने की संभावना और करांगुलियों का कठिन होना, क्या ये बातें आप पहले से नहीं जानते थे।** क्या वर्षों तक बढ़े हुए नाखून वाली एक या दो अंगुली को वर्ज्य करके आप शृंगार करते होंगे? इत्यादि कारणों से प्रथम और द्वितीय अनुमान संशयात्मक हैं।

वीणा अति प्राचीन और पवित्र वाद्य है। शास्त्र में वीणा के मुख्य चार प्रकार बताए हैं। इसमें सम्प्रदाय की वीणा के प्रकार के संबंध में 'वाद्य-प्रकरण' में चर्चा की जायगी। अभी इतना ही कहना है कि तंत वाद्य में से प्राचीन वीणा (बीन) वाद्य का भगवद्-सेवा में प्रथम विनियोग किया। यह श्री विट्ठलेश्वर का प्रिय वाद्य था।

गायन कला में आपश्री ने जो पद रचना की है उनमें से संस्कृत भाषा के प्रबन्धों में से कुछ उदाहरण अभी बता चुके हैं। किन्तु तदतिरिक्त आपकी रचनाएँ 'ललितादि' छाप से भी प्राप्त होती हैं।

---

* *गोरी राग की 'प्रथम सीस चरनन धर वंदौं' धमार (पद) में 'महाराज श्री यदुनाथ जु करत मधुर सुर गान' का उल्लेख श्री गुसांईजी के अनन्य सेवक माणिकचंदजी ने किया है।*

** *कीर्तनों के पाठान्तर में एवं इस प्रकार की जनश्रुतियों में मुझे जब संशय हुआ तब स्थानीय बड़े मंदिर के पूज्यपाद सेवारसिक एवं कीर्तनमर्मज्ञ गोस्वामी श्री रणछोड़लालजी महाराज के पास जाकर प्रार्थना करने पर आपने तीसरा और चौथा कारण होना संभावित कहा था।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री विट्ठलनाथजी ने अष्टछाप की स्थापना में अष्ट की संख्या नियत करने में जिस प्रकार शास्त्रोक्त विचार किया है, उसी प्रकार वाद्यों के विनियोग में भी संगीत शास्त्र को दृष्टि में रखा होगा, यह प्रतीत होता है।

सम्प्रदाय की सेवा प्रणाली के मुख्यत: तीन स्तंभ माने जाते हैं—राग, भोग और शृंगार। कोई 'भोग' को प्रथम मान कर 'भोग, राग और शृंगार' भी कहते हैं। किन्तु हमें लगता है कि प्रथम 'राग' मानना उचित है। क्योंकि श्रीजी को जगाने के पूर्व ही शंख-नाद, घंटा-नाद और वीणा के मधुर नाद (संगीत) का आरंभ हो जाता है। यही नहीं नित्यक्रम में ऋतु-अनुसार रागों में प्रातः स्मरणीय श्री वल्लभाचार्यजी तथा श्री विट्ठलनाथजी की विनती के पद-गान के वाद श्रीजी को जगाने के भाव का जव कीर्तन गान गाया जाता है तब श्रीजी को जगाया जाता है। तत्पश्चात् श्रीजी को मंगल-भोग धराया जाता है। अत: 'भोग' (सामग्री) के पहिले राग (संगीत) का क्रम-बंधान श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के समय से दिखाई देता है। श्री विट्ठलनाथजी ने शास्त्रोक्त दृष्टि से परिपूर्ण और व्यवस्थायुक्त सेवा रीति में राग (गीत-वाद्य) को जैसा क्रमवद्ध स्थान दिया है, ऐसा किसी भी अन्य आचार्य ने नहीं किया।

संगीत में गायन, वादन और नर्तन का समावेश होता है।* इनमें से गायन और वाद्य को नित्यक्रम की सेवाविधि में सदा के लिए भोग (सामग्री) के पहले ही स्थान दिया हुआ है। शास्त्र के प्राचीन उल्लेखानुसार चार प्रकार के वाद्य कहे गये हैं। इन चारों प्रकारों में से प्रत्येक प्रकार के एक-एक वाद्य का वादन प्रातः सेवा के आरंभ से ही नियमवद्ध किया गया है। वाद्य-वादन का क्रम पुष्टिमार्ग में निम्नानुसार है–

१. सर्व प्रथम तंतु (तत) वाद्य का, प्राचीन वाद्य वीणा (बीन) का वादन होता है, जिसमें ऋतु–अनुसार के प्रात:कालीन राग में से किसी एक राग के मंद-मंद और मधुर आलाप लिए जाते हैं।

२. 'सुषिर' प्रकार के शंख वाद्य द्वारा तीन वार शंख ध्वनि की जाती है।

४. 'घन-वाद्य' प्रकार की घंटा से तीन वार घंटा-नाद किया जाता है।

३. घंटा-नाद के पश्चात् तुरन्त ही कीर्तन-गान (गायन) का आरंभ होता है और श्रीजी को जगाया जाता है। फिर मंगल भोग लगाया जाता है।

---

*. *गीतवादित्यनृत्यानां त्रयं संगीतमुच्यते।*

१. तंतुं चेवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।
(भरतनाट्यशास्त्र अ० २८ श्लो. १)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५. मंगल-भोग-सरने पर, मंगला दर्शन की तैयारी में 'अवनद्ध' प्रकार के वाद्य में नौवत बजने लगती हैं, साथ में 'सुषिर' वाद्य की शहनाई भी ऋतु-अनुसार राग में बजती है।

श्री विट्ठलेश्वर (श्री गुसांईजी) ने अष्टछाप की स्थापना-समय से उपर्युक्त प्रकार से नियमित क्रम से गीत-वाद्य का जो क्रम स्थापित किया वह आज तक श्रीजी के (नाथद्वार) मंदिर में दिखाई देता है।

उपर्युक्त विधान से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि मंगल भोग (प्रातः काल का कलेऊ) के पहले ही संगीत के मुख्य अंग गीत (कीर्तन) और वाद्यों का वादन शुरू हो जाता है। अतः सम्प्रदाय की प्रणाली के मुख्य स्तंभों में प्रथम 'राग' (संगीत) का स्थान स्पष्ट होता है। इस प्रकार क्रमशः राग, भोग और श्रृंगार की प्रणाली श्रीजी की सेवा के आरंभ काल से नियत की हुई है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि सम्प्रदायेतर भक्त कवि नाभाजी ने भी प्रथम राग का उल्लेख किया है।*

श्रीमद् वल्लभाचार्य ने जब श्रीजी की सेवा का क्रम प्रारंभ किया था उस समय ब्रजवासियों द्वारा जो कुछ सामग्री आया करती थी उसी का भोग लगाया जाता था और श्रृंगार में 'पाग', चंद्रिका और मुकुट ही धराया जाता था। उस समय भी कुंभनदास और सूरदास जी जैसे महान् संगीत कीर्तनकारों का कीर्तन-गान होता रहता था। पश्चात् कृष्णदासजी और परमानंददासजी भी सम्मिलित हुए। यद्यपि श्री वल्लभाचार्य जी के समय में भोग-श्रृंगारादि का क्रम सूक्ष्म प्रमाण में था, तथापि उस समय भी आपके चार महान् संगीताचार्य सेवकों के द्वारा श्रीजी की सेवा में गायन होता था जिनकी गान कला की ख्याति राजा-महाराजाओं तक पहुंच चुकी थी। इस सन्दर्भ में सूरदासजी और कुंभनदासजी की वार्ताओं में पर्याप्त प्रमाण हैं।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के तिरोधान (विक्रम संवत् १५८७) के पश्चात् संवत् १५९२ में प्रभुचरण गुसांईजी विट्ठलनाथजी** जब गोकुल पधारे तब भरतपुर राज्यान्तर्गत आंतरी ग्राम के महान् गवैया और महाकवि गोविन्द स्वामी तथा मथुरा के 'छीतु' चौबे प्रभावित होकर शरण में आये और उन्हें श्रीजी की कीर्तन-गान-सेवा के लिए आज्ञा हुई।

तत्पश्चात् संवत् १५९७ में कार्तिक शुक्ल १२ को आपके प्रथम पुत्र श्री गिरिधरजी का प्राकट्य हुआ। उस समय आपने श्री नवनीतप्रियजी के सम्मुख बड़े समारोह से नन्दमहोत्सव किया था तदनन्तर आपने सकुटुम्ब गोवर्धन आकर नवजात

---

* *राग भोग नित विविध रहत परिचर्या तत्पर (भक्तमाल)*

** *श्री विट्ठलेश्वर का प्रभुचरण अभिधान सम्प्रदाय में अति प्रसिद्ध है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिशु को श्रीजी के चरणस्पर्श कराये और श्रीजी के सम्मुख नंदमहोत्सव किया। इसी अरसे में आपके निवासार्थ मंदिर और श्रीजी की लगभग २००० गायों के रक्षणार्थ वड़ी खीडक भी तैयार हो चुकी थी।* स्वमंदिर में श्री नवनीत प्रभु को पधराकर आपने मनोरथ किये गये। उसी समय सं. १५९८ ई., सन् १५४२ में 'अष्टछाप' के मूल पुरुष श्री कुंभनदासजी के पुत्र श्री कृष्णदास और सातवें पुत्र चतुर्भुजदास को शरण लिया। कृष्णदास को गायों की सेवार्थ चार मुख्य ग्वालों में सम्मिलित किया** और चतुर्भुजदास, जो अपने पिता से काव्य और संगीत कला का यथेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर चुके थे, को श्रीजी की कीर्तन-सेवा में नियुक्त किया। कहा जाता है कि संवत् १५९९ में प्रभुचरण के द्वितीय पुत्र श्री गोविन्दरायजी का प्राकट्य हुआ। तदुपरान्त विक्रम संवत् १६०० में आपने प्रथम ब्रजयात्रा की। कुछ समय बाद एक दिन उत्थापन-समय श्री प्रभुचरण को चिन्तित देख कर श्री गोवर्धनधरण (श्री नाथजी) ने निम्न प्रकार की प्रत्यक्ष आज्ञा की:— 'आप चिन्तित न हों। जीव मात्र जिससे अलिप्त नहीं रह सकता ऐसे राग, भोग और शृंगार को मेरे में पूर्ण रूप से नियोजित कर उसका विस्तार करो।' ††

श्रीजी की इच्छानुसार श्री विट्ठलेश्वर ने राग, भोग और शृंगार की सेवा-भावना को वृहद् रूप देकर वि. सं. १९०२ के लगभग स्वसिद्धान्तानुसार क्रियात्मक प्रणालिका निम्न प्रकार नियत की।

१. 'राग' संगीत प्रणाली के उत्कर्षार्थ अष्टसखा की मंडली वनाई गई। जिनमें कुंभनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदास ये चार संगीताचार्य पितृचरण के और गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास और विष्णुदास छीपा ये चार स्वयं प्रभुचरण के सेवक थे। इन्हें मिलाकर अष्टसखाओं की भावना प्रगट की और तत्कालीन राग-रागिनियों में कीर्तन गान का समयानुसार नियोजन किया।

२. 'भोग' (सामग्री) में नंदालय की भावनानुसार प्रातः कलेवा (मंगल-भोग) में माखन, मिश्री, दूध, दही, मलाई, लड़ुवा की सामग्री नियत की गई। तत्पश्चात् शृंगार करते समय भी थाल में सजावट और शृंगार के वाद ग्वाल रूप श्रीकृष्ण गायों की खीडक में पधारकर घैया††† आरोगने के भाव के अनुसार घैया आरोगने का क्रम चालू किया। राजभोग में शीत ऋतु में यशोदाजी बालकृष्ण

---

* यह मंदिर आजकल जतीपुरा में श्री मथुरेशजी के मंदिर से प्रसिद्ध है।

** १. गंग ग्वाल २. गोपाल ३. गोपीनाथ और ४. कृष्णदास

†† स्वयं श्रीजी की आज्ञा में भी यहां प्रथम 'राग' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। देखिए—श्री विट्ठलेश्वर चरितामृत (गुजराती पृ.११९)

††† दूध को मंथन करने से जो झाग प्रगट होते हैं, उन्हें घैया कहते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को नंदालय में गरम-गरम भोजन कराती थीं, उसी भावनानुसार सखड़ी, अनसखड़ी की सामग्री धराने का प्रबंध किया और उष्णकाल में गरमी होने के कारण यशोदाजी गोपीजनों द्वारा वन में विविध सामग्री पहुँचाती थीं, उसी भावनानुसार ऋतु के अनुसार सामग्री का राजभोग धरने का क्रम बनाया।

सायंकालीन सेवा-क्रम में भी सामग्री का योग्य प्रवन्ध किया गया।

३. 'शृंगार' धराने में भी अष्ट प्रकार के शृंगार निश्चित किये गये जो निम्न प्रकार हैं:—

अ. श्री मस्तक के शृंगार—१. पाग, २. फेंटा, ३. दुमाला, ४. पगा, ५. कुल्हे, ६. सेहरा, ७. टीपारा, ८. मुकुट।

ब. श्री अंग के वस्त्र—१. वागो, २. पिछौरा, ३. परदनी, ४. धोती उपरना, ५. मल्लकाछ, ६. काछनी, ७. सूथन पटका, ८. तनिया।

स. आभूषण:—

१. अलकावली, ठाडी-लड़, २. तिलक, त्रिरेखा ३. नकवेसर-चिवुक, ४. कुंडल, कर्णफूल, ५. कंडसरी, विविध प्रकार की कंठ मालाएं, हांस, हमेल, हार, क्षुद्रघंटिका, ६. मुद्रिका, पहोंची, हस्त के कडा-सांकला, वाजूवंद, ७. हस्त और चरण के नख-भूषण, ८. नूपुर, पायल, जेहर, अणवट, विछिया, पगपान

अन्य समस्त प्रकार की सेवा के लिए कोठा (खंड या कक्ष) बनवाए और उनके संकेतरूप नाम १. दूध घर, २. पान घर, ३. फूल घर, ४. गुलाव घर, ५. आरती घर, ६. जलघरा, ७. साग घर, ८. रसोई घर इत्यादि।

इस प्रकार श्री वल्लभाचार्यजी द्वारा प्रवर्तित सेवा के विस्तार की श्रीजी की आज्ञा को श्री विट्ठलेश्वर ने परिपूर्ण किया।

श्री विट्ठलेश्वरजी की द्वारिका की यात्रा का समय विक्रम संवत् १६०० का माना जाता है, द्वारकादास परिख के मतानुसार संवत् १६०३ है।*

संगीत की सेवा में भी संवत् १६०२ में अष्टसखा के भावात्मक स्वरूप की दृष्टि से जो मंडली रची गई थी उसी को नंददासजी के शरण आने के पश्चात् संगीत शास्त्रीय आधार पर समारोह के साथ अष्टछाप के नाम से सम्मानित किया गया।†† अष्टछाप की स्थापना का समय संवत् १६०७ या संवत् १६०८ का प्रारंभ

* *विट्ठलेश चरितामृत पृष्ठ १३०*

†† *'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ में गायक-वादक के वृन्द की चर्चा में सामान्य (कनिष्ट) वृंद की संख्या में आठ का उल्लेख किया गया है, जिसका अधिक विवरण इसी ग्रन्थ में अन्यत्र किया गया है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

काल माना जाता है। इस अष्ट कीर्तनाचार्यों के नाम, शरणागति समय और लीला-स्थित नाम निम्न प्रकार हैं:—

नाम	लीलास्थितनाम	शरणागति समय
१. श्री कुंभनदासजी	अर्जुन सखा	सं. १५५६ (ई०स० १५००)
२. श्री सूरदासजी	कृष्ण सखा	सं. १५६७ (ई०स० १५११)
३. श्री कृष्णदासजी	ऋषभ सखा	सं. १५६८ (ई०स० १५१२)
४. श्री परमानंददासजी	तोक सखा	सं. १५७७ (ई०स० १५२१)
५. श्री गोविन्दस्वामी	श्रीदामा सखा	सं. १५९२ (ई०स० १५३६)
६. श्री छीतस्वामी	सुवल सखा	सं. १५९२ (ई०स० १५३६)
७. श्री चतुर्भुजदास	विशाल सखा	सं. १५९८ (ई०स० १५४२)
८. श्री नंददासजी	भोज सखा	सं. १६०७ (ई०स० १५५१)

उपर्युक्त अष्टछाप भक्तों में प्रथम चार श्री वल्लभाचार्यजी के सेवक थे और पाँच से आठ क्रम के महानुभाव श्री विट्ठलेश्वर प्रभुचरण के सेवक थे।

इस प्रकार अष्टछाप की स्थापना के समय से श्रीजी के सम्मुख कीर्तन-गान की सेवा व्यवस्थित और शास्त्रीय प्रणाली के अनुसार होने लगी। ६ मुख्य राग तथा ३० रागनियों एवं ६ राग और ३६ रागनियों की उस समय की शास्त्रीय मान्यता के अनुसार गान होने लगा, किन्तु अष्टछाप के संगीताचार्यों के ३६ और ४२ राग-रागनियों के नाम ग्रन्थोक्त नामों से भिन्न हैं। क्योंकि उन्होंने उत्तम, मध्यम और अधम रागों का शास्त्रीय विचार किया है। इसकी विस्तारपूर्वक चर्चा 'राग और राग संख्या' प्रकरण में की गई है। अष्टछाप के उपरान्त और भी उप कीर्तनकार श्री विट्ठलेश्वर के समय में पाए जाते हैं। वे कीर्तन में सहायक रूप होते थे और कीर्तनों को लिख लेते थे। संवत् १६०५ में आप के यहां तृतीय पुत्र श्री बालकृष्णजी का तथा संवत् १६०८ में चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलेश का प्राकट्य हुआ। तत्पश्चात् संवत् १६११ में पंचम पुत्र श्री रघुनाथजी का प्राकट्य होने के अनंतर संवत् १६१३ में पुन: द्वारिका-यात्रा के लिए पधारे। इस समय मार्ग में राजनगर (अहमदाबाद) में असारवा भाईला कोठारी के घर आप १५ दिन तक विराजे थे।

संवत् १६१५ के कार्तिक शुक्ल में श्री प्रभुचरण ने षड्ऋतु का भावात्मक मनोरथ किया। अनुरागात्मक ऋतु 'वर्षा' से इसका आरंभ किया। तत्पश्चात् क्रमश: शरद, हेमंत, शिशिर, वसंत और ग्रीष्म ऋतु के मनोरथों को स्वयं श्रीजी की इच्छा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से सम्पन्न किया गया था। इस संवंध में 'खट ऋतु की वार्ता' के प्रारंभ में इस प्रकार कहा गया है:—"श्री ठाकुरजी, श्री स्वामीजी, श्री यमुनाजी तथा अष्टसखी आदि व्रज भक्तन को संग लैकें स्याम ढांक से विलछू कुंड पधारे, वहां बिलछू की शोभा देखि कें श्री ठाकुरजी श्री स्वामीजी सों आज्ञा किये जो—या समें कछु गान कीजें। तव स्वामिनीजी ने कहें, जो-पहले आपु कछु गाइए। तव श्री ठाकुरजी ने वेणु गीत* को एक श्लोक को अद्‌भुत गान कियो। पाछें स्वामिनीजी सो आज्ञा कीनी आपहू कछु गाइए। तव श्री स्वामीनीजी और श्री यमुनाजी, दोउ स्वरूप मिलि के युगल गीत** (दोय श्लोक) के अद्‌भुत अलौकिक गान किये। तव जितनेक व्रज भक्त हैं सो सव गान सुनि कें चित्र कैसे लिखे रहि गये। ता पाछें श्री स्वामीनीजी ने आज्ञा कीनी जो प्यारे, एक मेरो मनोर्थं है जो खट ऋतुन के विभाग सहित अष्ट-याम की लीला करें। एक दिन रात्र में छेओं ऋतुन की छेओं निकुंजन में पधारि हमारे छेओं स्वरूपन के मनोरथ सिद्ध होय।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और स्वामिनीजी की इच्छानुसार उस समय अपने ऐश्वर्य रूप से षटऋतुएँ उपस्थित हो गईं। प्रत्येक ऋतु की निकुंज में सखियों द्वारा भोग, राग और श्रृंगारादि की सजावट हो चुकी। (१) प्रथम श्री स्वामिनीजी के मनोरथ की निकुंज में सूर्योदय से १० घड़ी तक (६ से १० वजे तक) वसन्त ऋतु के मनोरथ किये। (२) श्री ललिताजी की निकुंज में ग्रीष्म ऋतु की लीला दस घड़ी (१० से २ वजे तक) मध्य दिन की १० घड़ी तक विराजे (३) श्री विशाखाजी की तृतीय निकुंज के दिनांत की १० घड़ी (२ से ६ वजे) में वर्षा ऋतु के तथा (४) श्री चंद्रावलीजी की चतुर्थ निकुंज में रात्रि के आरंभ १० घड़ी (६ से १०) के समय में शरद ऋतु के। (५) पश्चात् की १० घड़ी (१० से २ में श्री यमुनाजी की पांचवी निकुंज में हेमंत ऋतु के भाव के और (६) श्री ठाकुरजी के मनोरथ की शिशिर ऋतु के भाव की रात्रि की अंतिम १० घड़ी (२ से ६) तक मनोरथ कियें। तदुपरान्त 'खट ऋतु वार्ता' के अनुसार श्री ठाकुरजी ने ३६ राग-रागनियों वुला कर ३६ वाजे सहित उपस्थित होकर एक एक ऋतु की निकुंज में छ:छ: समय के अनुसार नृत्य, गान तथा बाजे सावधानी से वजाने की आज्ञा की। इन छत्तीसों राग-रागिनियों तथा ३६ वाजों के नाम इस प्रकार है।*

राग-रागनियों के नामः—

१. मल्हार २. ललित ३. पंचम ४. आसावरी ५. भैरव ६. मालव ७. टोडी ८. कल्याण ९. गुर्जरी १०. मालवी ११. गौडी १२. विलावल १३.

---

* *वर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारम्....।*
** *वामवाहुकृतवामकपोलो....।*
† खट ऋतु की वार्ता-पृष्ठ-४,५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

धनाश्री १४. रंगीली १५. खमाज १६. देसावर १७. कानरो १८. गौड मल्हार १९. केदारो २०. षट-मंजरी २१. रामकली २२. गंधार २३. वराडी २४. कुंकुम २५. कामोद २६. नट २७. गुनकली २८. माधवी २९. देस ३०. विभास ३१. हास ३२. काफी ३३. सोरठ ३४. ईमन ३५. जै जै वंती ३६. सारंग।*

वाद्यों के नामः—

१. वीना (वीन) २. मुरली ३. अमृत कुंडली ४. जलतरंग ५. मदन भेरि ६. धोसा ७. दुदुंभी ८. निसान ९. नगारा १०. शंख ११. घंटा १२. मुहचंग १३. सींगी १४. खंजरी १५. ताल १६. खट्ताल १७. मंजीरा १८. महुवरि १८. यारी २०. झालर २१. ढोल २२. डफ २३. डिमडिम २४. झांझ २५. मृदंग २६. गिडगिडि २७. पिनाक २८. रवाव २९. जंत्र ३०. सहनाई ३१. श्री मंडल ३२. सारंगी ३३. दूवारी ३४. करताल ३५. तुरई ३६. किन्नरी**

षट्ऋतु के इस महोत्सव में प्रत्येक ऋतु के मुख्य त्योंहार के मनोरथ मनाये गये। जैसे वसन्त ऋतु का डोल, ग्रीष्म ऋतु का जलविहार और फूल-मडली, वर्षा ऋतु के हिंडोरा (झूला), शरद ऋतु की निकुंज में रासोत्सव, हेमंत ऋतु की निकुंज में नित्य लीला के भाव में कुनवारो और (प्रवोधिनी) जागरण तथा शिशिर ऋतु की निकुंज में वसंत-होरी के मनोरथ किये। इस प्रकार प्रत्येक ऋतु के मनोरथ अनुसार सामग्री, शृंगार तथा संगीत का आयोजन किया गया। प्रथम रात्रि की अंतिम १० घड़ी (२ से ६ वजे तक) शिशिर ऋतु की कुंज में मंगला से उत्सव प्रारंभ होता है। ललित रागिनी वीन वजाकर सखियों को जगाती हैं और सखियां प्रिया-प्रियतम के पास जाकर ऋतु अनुसार भोग, राग, शृंगारादि से मनोरथ सिद्ध करती हैं।

उपर्युक्त भावनानुसार श्री विट्ठलेश्वर ने षटऋतु के मनोरथ का श्री गिरिधर-जी की भावनात्मक सूचनानुसार संवत् १५१५ कार्तिक शुक्ल ६ प्रथम वर्षा ऋतु के आगम रूप 'कसुंवा छट' और हिंडोरा का मनोरथ किया। श्री नवनीतप्रियादि सातों

---

* नं. १०,१४,२०,२२,३१ इत्यादि नामों के संवंध में 'हमारे राग और राग-संख्या प्रकरण देखिए।

१. वाद्यों का विवरण 'वाद्य प्रकरण' में किया जायगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वरूपों के अनुकूल शृंगार किये, विविध सामग्रियाँ राजभोग में निवेदन की गईं। पश्चात् अष्टछाप कीर्तनकारों को भावानुसार पद-गान गाने की आज्ञा की गयी।*

मनोरथों के इस महान् उत्सव पर राधावल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक श्री हितहरिवंशजी तथा संगीताचार्य श्री हरिदास स्वामी प्रभृति अन्य सम्प्रदाय के महानुभाव, भक्त, कवि एवं संगीतकार भी दर्शनार्थ उपस्थित हुए थे। उस समय उन्होंने प्रसन्न होकर श्रीजी के सान्निध्य में अनुकूल पद-गान-निवेदन की इच्छा प्रगट की। फलतः श्री विट्ठलेश्वर ने प्रत्येक मनोरथ के भाव समझाये और तदनुरूप गान करने के लिए संहमति दी। तदनुसार श्री हरिदास स्वामी ने तथा श्री हितहरिवंशजी इत्यादि ने तन्मयतापूर्वक श्री जी के सम्मुख षड्ऋतु मनोरथ में पद-गान किया।**

इस प्रकार चतुः सम्प्रदाय के सर्वोच्च भक्त-कवि एवं संगीताचार्यों के संगठन का प्रारंभ हुआ। इन महानुभावों के पद-गान से श्री विट्ठलेश्वर अत्यंत प्रसन्न हुए और श्रीजी के सान्निध्य में अष्टछाप की वाणी के साथ इनकी वाणी को भी सम्प्रदाय में स्थान दिया गया। इस प्रकार साम्प्रदायिक एकता द्वारा चारों सम्प्रदायों के अग्रगण्यों के मन आकर्षित हो गये जिनके फलस्वरूप पुष्टि-सम्प्रदाय की सेवा-भावना-पद्धति का उन सम्प्रदायों में गहरा प्रभाव दिखाई देने लगा।

चतुः सम्प्रदाय के इन महानुभावों के भावात्मक पद-गान को श्रीजी के सन्मुख गान करने की श्री प्रभुचरण की आज्ञा से श्री गिरिधरजी को जब आश्चर्य हुआ, तब प्रभुचरण ने कहा—"इनमें संशय जैसा कुछ नहीं है। सर्वांश परिपूर्ण अपने पुष्टिस्थ प्रभु को किसी भी प्रकार के पूर्णांश से उपभोग कराकर प्रसन्न करना यह पुष्टिस्थ का सहज कर्त्तव्य है। अतः जिन भक्त-गायकों को ईश्वर की लीला का एवं ईश्वरोप-

---

* *खट-ऋतु की वार्तानुसार-हिंडोरा के मनोरथ के समय राग मल्हार में —'राधा मोहन झूलत सुरंग हिंडोरे' पद गोविंद स्वामी ने गाया। डोल के मनोरथ के समय राग-सारंग. में निम्न पद का कृष्णदासजी ने गान किया 'डोल झूलत हैं पिय प्यारी, नंदनंदन वृषभान दुलारी' रासोत्सव के मनोरथ में परमानन्ददासजी ने राग-मालव में 'व्रजवनिता मधि रसिक राधिका वनी सरद की राति हो' पद का गान किया। इत्यादि।*

** *अ. अनुमानतः श्री हरिदास स्वामी ने डोल के दर्शन में राग-सारंग 'पुहुप वृष्टि हो होति, डोल झूलत बिहारि बिहारिन' इस पद का गान किया था।*

ब. तथा श्री हितहरिवंशजी ने तदनंतर रासोत्सव तथा वसंत के मनोरथ में कीर्तन गान में भाग लिया था।

१. *लगभग उसी समय से आज तक अन्य मार्गों के देवालयों में भी पुष्टिमार्ग के अष्ट दर्शन, अष्ट भोग, अन्नकूट, होरी इत्यादि की प्रथा दिखाई देती है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

योगी राग-रागिनियों का साक्षात्कार हुआ हो ऐसे महानुभावों की वाणी में पूर्णता का गुण सर्वांश सिद्ध होने के कारण उनकी वाणी भगवद्-भोग्य है।" (श्री विट्ठलेश्वर चरितामृत पृष्ठ १५२)

ऐसा उल्लेख है कि 'हिंडोरा' के मनोरथ में अष्टछापादि महानुभावों ने अपने यूथ में सुदर स्वरों से राग-हिंडोला का गान आलाप किया। (श्री विट्ठलेश्वर चरितामृत-पृष्ठ १५३)

इस प्रकार चतुर्मास के वर्षाऋतु के भाव में कसुंभीषष्ठी और हिंडोला तथा जन्माष्टमी के मनोरथ सिद्ध किये। पश्चात् दान का मनोरथ (संवत् १६१५ कार्तिक शुक्ल ११) को विविध प्रकार की सजावट द्वारा सम्पन्न किया। उस समय श्री आचार्यजी के सेवक कुंभनदासजी को कीर्तन-गान की आज्ञा की गई। तब कुंभनदास जी ने गोकुल की 'व्रजनारि दह्यौं नित वेचन आवै'* यह वड़ी दान-लीला गाकर माहात्म्य-ज्ञान और स्नेह-रूप भक्तिभाव प्रदर्शित किया। श्री सूरदासजी ने 'गढ़ तें ग्वालिन उतरी सीस मही को माट' 'इस दान लीला के गान में वरसाने की लीला का स्मरण कराया।

तत्पश्चात् कार्तिक शुक्ल १५ को शरद का मनोरथ उज्ज्वल सामग्री तथा तदनुरूप सजावट की रचना द्वारा सिद्ध किया गया और श्री आचार्यजी के सेवक कृष्णदास को कीर्तन गाने की आज्ञा की। उस समय श्री हितहरिवंशादि अन्य साम्प्रदायिक महानुभावों ने भी पद-गान किया था। हेमंत ऋतु के उपलक्ष्य में व्रज मार्गशीर्ष वदी १ को 'व्रतचर्या' का मनोरथ किया अनंतर शिशिर ऋतु के मनोरथ में श्रीजी की प्रेरणा से श्री विट्ठलेश्वर ने अपने जन्म दिवस का उत्सव मनाया। वसंत ऋतु में मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को वसंत-पंचमी का मनोरथ किया और छठ के रोज डोलोत्सव का मनोरथ किया। वसन्त पंचमी के उत्सव में श्री हितहरिवंशजी ने श्री जी के सन्मुख 'वेनु माई वाजत री वंसीवट' पद सुनाया था।

शयन के दर्शन में 'श्री गोवर्धनराय लाला' धमार का कल्याण राग में गोविन्द स्वामी ने गान किया। डोल के मनोरथ में कृष्णदासजी ने 'डोल झूलत है पिय प्यारी' तथा श्री हरिदास स्वामी ने 'डोल झूलत विहारी विहारिन पुहुप वृष्टि हो होति' इस पद का गान किया था।

तदनंतर ग्रीष्म ऋतु के मनोरथ में अक्षयतृतीया का मनोरथ किया। इस मनोरथ की सजावट में मानों खट-ऋतु एक ही साथ विराजमान हो रही हों ऐसा

---

* इनमें ऐसे वलवंत' हो से लेकर 'अव को गयो न आवहूं हो फिर देखो नहि मोहि' तक की दो तुकों में कर्ण-कटु शब्द श्री विट्ठलेश्वर को अनुकूल नहीं लगे थे। अतः यह दान लीला का पद आज भी श्रीजी के सम्मुख नहीं गाया जाता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुभव होने लगा। फलतः श्री चतुर्भुजदास के निम्नलिखित पद-गान से षट् ऋतु का महामनोरथ सम्पन्न हुआ--

ललित ब्रजदेश गिरिराज राजें।
घोख सीमंतिनी संग गिरिवरधरन,
करत नित केलि तहां काम लाजे ।।
त्रिविध पवन संचरे सुखद झरना झरे,
अमित सौरभ तहां मधुप गाजे।
ललित तरु फूल फलित षट ऋतु सदा
'चत्रभुजदास' गिरिधर समाजे ।।

उपर्युक्त प्रकार षट्-ऋतु के मनोरथ द्वारा प्रत्येक ऋतु का राग, भोग एवं शृंगार सहित प्रभु को विनियोग किया गया। तदनंतर छप्पन भोग महायज्ञ द्वारा प्रभु को प्रसन्न कराने का निश्चय किया गया। आठ दिन पूर्व इनकी तैयारियां होने लगीं, और माघ शीर्ष शुक्ल १५ को छप्पन भोग यथाविधि सम्पन्न किया।*

छप्पन भोग को पुष्टिमार्गीय आधिदैविक यज्ञ माना जाता है। यज्ञ में यजमान, अध्वर्यु, उद्गाता और ऋत्विज को नियत किया जाता है, पुष्टिमार्ग में क्रमशः करयिता, परचारग, मुखिया और भीतरिया उसी मर्यादानुसार उनके स्थानापन्न माने जाते हैं। नैवेद्य में खट-रसों की ५६ प्रकार की विविध सामग्रियों का भोग लगाया जाता है। उस समय महानुभावों के हृदय में राजभोग 'निकुंज' तथा 'श्री वृषभान सदन' के निमंत्रण रूप में विविध भावनाओं की उत्पत्ति हुई, जो कि सूर, परमानंद, कुंभनदास तथा माणिकचंद, गदाधर आदि भक्त-कवियों के कीर्तनों द्वारा प्रगट होकर प्रसिद्ध हो चुकी है।

षड्-ऋतु और छप्पन भोग के मनोरथ में जिस प्रकार भोग (सामग्री) के प्रकार वढ़ाये गये उसी प्रकार अष्टछाप में राग (संगीत) गान में भी अन्य प्रकार एवं रागों का क्रम बढ़ाया, यह माना जाता है।**

---

* इसकी स्मृति में आज तक माघ शीर्ष शुक्ल १५ को छप्पन भोग का उत्सव श्रीजी के सम्मुख मनाया जाता है।

** जैसे श्री कुंभनदासजी ने खट ऋतु में दान के मनोरथ समय 'गोकुल की ब्रजनार दह्यो नित वेचन आवै' यह दान लीला गाकर 'नट बिलावल' को अंगीकार कराया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के समय तक तत्समय की शास्त्रीय मान्यतानुसार ३६ या ४२ राग ही श्री जी को अंगीकार कराये गये थे किन्तु तत्पश्चात् षट्-ऋतु के मनोरथ और छप्पन भोग के महोत्सव के समय से ५६ प्रकार की सामग्री के साथ संगीत के अन्य राजस प्रकृति के राग भी श्री जी को अंगीकार कराये गये और कीर्तन-गान के रागों की संख्या ५६ की गई। इस प्रकार श्री गुसांईजी के समय में अष्टछापादि महानुभावों का कीर्तन-गान छप्पन प्रकार के रागों में होने लगा।*

छप्पन भोग महोत्सव के पश्चात् रथयात्रा के समय पर प्रभुचरण जगन्नाथजी की यात्रार्थ पधारे। उस समय पीपली ग्राम के माधवदास ने आज्ञा प्राप्त कर जगदीश जी के सम्मुख 'जय श्री जगन्नाथ हरि देवा' इस पद का गान किया। तत्पश्चात् पुष्टिमार्ग में रथोत्सव को नियमित उत्सवों में स्थान दिया गया।

संवत् १६१६ में गुसांईजी के षष्ठ पुत्र श्री यदुनाथजी का प्राकट्य हुआ। तदनन्तर आप गौड़ देश पधारे। वहां एक मास तक विराजे। इस समय वहां के 'दाउद बादशाह' से मिलन हुआ। आपके साथ हुई धार्मिक चर्चा से प्रभावित होकर दाउद ने आपका सम्मान किया। तत्पश्चात् आप अडेल पधारे। वहां आपकी रुक्मिणी बहुजी का लीला प्रवेश होने से श्री विट्ठलेश्वर का चित्त व्यग्र हुआ। आपने तथा श्री गोपीनाथजी ने जगदीश की ओर प्रयाण किया। मार्ग में बान्धोगढ़ के वाघेला वंश के राजा रामचन्द्र ने आपका स्वागत किया। आपके साथ आपके बड़े पुत्र श्री गिरिधरजी भी बहुजी सहित पधारे थे। वहां के निवास-काल में श्री गिरिधरजी का राजा रामचंद्र से घनिष्ठ संबंध हो गया था। इसी समय में संवत् १६१८ आश्विन शुक्ल १० को श्री गिरिधरजी के प्रथम पुत्र श्री मुरलीधरजी का प्राकट्य हुआ।*** कहा जाता है कि जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में राजा रामचन्द्र ने अपने राजगायक 'तानसेन' तथा अन्य गायकों-वादकों के गायन-वादन का जलसा करने का उत्साह-पूर्वक निश्चय किया था। किन्तु दैवयोग से प्रभुचरण श्री विट्ठलेश्वर के बड़े भ्राता श्री गोपीनाथजी के लीला-प्रवेश का दुःखद समाचार प्राप्त होने से कार्यक्रम स्थगित हो गया। तथापि 'तानसेन' ने आपके सम्पर्क में आकर आपके आशीर्वाद प्राप्त कर लिए थे। कुछ समय बाद संवत् १६१९-२० में तानसेन का सम्राट् अकबर के दरबार में प्रवेश होना कहा जाता है। संवत् १६२३ में श्री विट्ठलेश्वर मथुरा

---

* *इन रागों की नामावली 'राग और राग संख्या' प्रकरण में देखिए।*

** *इस पद को सुन कर श्री विट्ठलेश्वरजी प्रसन्न हुए और सम्प्रदाय में भी रथ के प्राथमिक पद रूप में इसेअग्रस्थान दिया। यह पद आज भी पुष्टि सम्प्रदाय में मल्हार राग में रथ के दर्शन समय में गाया जाता है।*

*** *'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' में श्री मुरलीधरजी का प्राकट्य संवत् १६३० श्रावण शुक्ला १० लिखा हुआ है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से द्वारिका यात्रा के लिए पधारे थे। उसी समय आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधरजी ने श्री नाथजी को कुछ महीनों तक मथुरा पधराया।* उस समय दर्शनार्थ आये हुए आगरा के धनाढ्य सेवक माणकपुर खत्री ने विपुल भेंट-सामग्री अर्पण की। इस भेंट के द्वारा आपने श्रीजी को विविध प्रकार से लाड़ लड़ाये। कहा जाता है कि उस समय फागुन के दिनों में श्री नाथजी बहु-बेटियों के साथ होरी खेले थे। होरी खेल के इन दिनों में स्वयं श्री नाथजी ने मथुरा के रंजनात्मक खेल देखने की इच्छा प्रगट की। भक्तवत्सल प्रभु की आज्ञानुसार श्री गिरिधरजी ने होरी के निकट के दिनों में शयन के दर्शन के समय मथुरा के विविध खेलों के दृश्य उपस्थित किये। उसी समय से अनेक प्रकार के स्वांगों का प्रचलन हुआ। जो अ.ज पर्यन्त चालू है। इन स्वांगों में विविध देश के नृत्य, गान एवं भावात्मक चेष्टाओं द्वारा होली का आनंद व्यक्त किया जाता है। तदुपरान्त ब्रह्मा, महेश, महादेव, इन्द्र आदि देवताओं के मुखौटे पहिन कर नृत्य करते हुए तत्-तत् स्वरूपों का परब्रह्म श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आगमन का स्मरण कराया जाता है। जिस समय श्री गिरिधरजी ने श्रीजी को मथुरा के सतघरा भवन में पधराया था तभी मथुरा में सूरदासजी भी आये थे। उसी समय बादशाह अकबर से आपकी भेंट हुई थी। श्री विट्ठलेश्वरजी के गुजरात से मथुरा पधारने के समाचार प्राप्त होने पर श्रीजी की इच्छानुसार श्री गिरिधरजी ने श्रीजी को गोवर्धन के मंदिर में पूर्ववत् पधराया।

गुसांईजी प्रभचरण ने गोकुल में स्थायी निवास का निश्चय किया। इस समय के लगभग बादशाह अकबर आपके धार्मिक जीवन एवं विद्वत्ता से प्रभावित हो चुके थे। उन्होंने गोकुल की भूमि श्री गुसांईजी को भेंट कर दी थी। इसी स्थान पर आज का गोकुल वसाया गया और वहां श्री नवनीत प्रभु का मंदिर बनवा कर आपने अपने कुटुम्ब तथा सेवकों सहित स्थायी निवास किया। आपके सप्तम पुत्र श्री घनश्यामजी का संवत् १६२८ में पद्मावती बहुजी से यहीं प्राकट्य हुआ।

तद्नन्तर संवत् १६२१ में आप गोवर्धन से पुनः द्वारिका की यात्रा हेतु गुजरात पधारे। फिर गौड़ प्रदेश की यात्रा पर गये। इस प्रकार आपने चार बार ब्रजमंडल की और छः बार द्वारिका की यात्रा की।

आपश्री अकवर वादशाह के निमंत्रण से दो बार आगरा पधारे थे। प्रथम संवत् १६३४ में पधारे तव आपने साहूकार की पुत्रवधू का वड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक न्याय किया था। जिससे प्रसन्न होकर वादशाह अकवर ने आपको 'श्रीगुसांईजी' की उपाधि और न्यायाधीश के अधिकार प्रदान किये थे। आपके वंशज भी गुसांई (गोस्वामी) नाम से प्रसिद्ध होने लगे। दूसरी वार अकवर ने आगरा में तत्त्ववादियों की परिषद् में आपको संवत् १९३८ में आमंत्रित किया। उस समय आपसे

* *दो महीना और इक्कीस दिन तक।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रभावित होकर वादशाह ने गोकुल में निर्भय निवास का तथा गायों के चरने के लिए खालिसा की भूमि का फरमान जारी किया था।

सम्राट् अकवर के अतिरिक्त मुस्लिम राजा दाउद तथा बाज वहादुर भी आपका सम्मान करते थे। हिन्दू राजाओं में राजा मानसिंह, राजा जोधसिंह, राजा भीमसिंह, राजा आशकरण, राजा लाखा, राय पुंजाजी, राजा नारायणदास इत्यादि आपके आज्ञाधीन रहते थे एवं अन्य राजपुरुषों में राजा बीरवल, राजा टोडरमल, राय वृन्दावनदास आदि आपके सेवक थे।

श्री गुसांईजी ने संस्कृत भाषा में अनेक ग्रंथों की रचना की हैं किन्तु आप समझते थे कि सम्प्रदाय का अधिक प्रचार लोक भाषा द्वारा ही होगा। तदतिरिक्त स्वयं श्रीनाथजी ने भी व्रजभाषा के लिए ही इच्छा प्रकट की थी। अतः आपने अपने सभी सेवकों को सेवा में एवं गद्य-पद्य रचना में व्रजभाषा का प्रयोग करने का आदेश दिया था। फलतः अष्टछापादि वाग्गेयकारों के अतिरिक्त वहुत से शिष्य-सेवकों की उत्तम काव्य-रचनाएं व्रजभाषा में प्राप्त होती हैं। जिनका उन महानुभाव कवियों ने सेवा और समयानुसार पदों का शास्त्रीय राग-रागनियों में गान किया, यह सम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध है। यही नहीं सम्प्रदाय की सेवा-कीर्तन-प्रणाली में आज तक उन्हीं के पद गाये जाते हैं, जिनमें से कुछ भक्तों के नाम उल्लेखनीय हैं:–

१. गदाधर मिश्र २. पद्मनाभदास ३. कटहरिया ४. कान्हदास कृष्णजीवन ६. हृषिकेश ७. गोपालदास (वल्लभाख्यान-कर्ता) ८. लघु गोपाल ९. गंगावाई ("श्री विट्ठलगिरिधरन" की छाप) १०. चतुर विहारी ११. जगजीवन १२. जगन्नाथ कविराय (श्री गुसांईजी के दौहित्र) १३. तुलसीदास जलघरिया ('लालदास' छाप) १४. थिरदास १५. तानसेन १६. घौंघी १७. पर्वतसेन (राजा) १८. माणिकचंद १९. माधवदास २०. मुरारीदास २१. मेहा २२. रामदास २३. वृन्दावन २४. व्यास २५. श्यामदास २६. सगुणदास २७. हरजीवन २८. त्रिलोक २९. रामराय ३०. भगवानहित ३१. यादवेन्द्र ३२. आशकरण ३३. कृष्णा ३४. गरीबदास ३५. हरिनारायण श्यामदास ३६. अग्रस्वामी ३७. खेम कवि ३८. धीरज ३९. श्रीपति ४०. विचित्र विहारी।

इनके अलावा श्री गुसांईजी के चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथजी, पंचम पुत्र श्री रघुनाथजी, सप्तम पुत्र श्री घनश्यामजी, श्री हरिरायजी ('रसिक' छाप), द्वारकेशजी श्री कल्याणरायजी, श्री व्रजभूषणजी आदि गोस्वामी महानुभावों ने उत्कृष्ट काव्य रचना की है।

अकबर बादशाह का शाही गवैया तानसेन एक बार श्री गुसांईजी को अपना गायन सुनाने के लिए गया था। उसने श्री गुसांई जी की आज्ञा लेकर राग-लच्छा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साख में गान सुनाया। शाही गवैये तानसेन को आपने रु. ५००-०० पुरस्कार दिया और साथ में एक कौड़ी भी दी। तानसेन द्वारा कौड़ी देने का कारण पूछने पर आपने कहा कि बादशाह के गवैया होने के कारण पांच सौ दिया है किन्तु कौड़ी तुम्हारी वानी सुनके दीन्हीं है। तव तानसेन ने इससे समृद्ध वानी सुनाने की प्रार्थना की। उस समय आपने गोविंद स्वामी को सुनाने की आज्ञा की। गोविंद-स्वामी ने दो पद गाये। जिन्हें सुनकर तानसेन चकित हो गये और गोविंदस्वामी से सीखने की इच्छा प्रकट की, किन्तु सम्प्रदाय के सेवक वने विना वे किसी को सिखाते नहीं थे। अत: तानसेन श्री गुसांईजी के सेवक हुए और श्री गुसांईजी को एक सहस्र मुद्रा भेंट की। फिर गोविंदस्वामी से सीखना प्रारम्भ किया।

इस प्रकार श्री गुसांईजी प्रखर संगीत-ज्ञाता और गायक थे तथा गुणीजनों का सम्मान किया करते थे। अकवर का समय संगीत के इतिहास में स्वर्णयुग कहा गया हैं। इस स्थिति तक पहुंचाने में अष्टछाप एवं अष्टछाप के संस्थापक श्री गुसांईजी का वास्तविक महत्व आँकने में इतिहासज्ञों ने उपेक्षावृत्ति ही दिखाई है। केवल संगीत कला और काव्य कला ही नहीं अपितु अन्य ललित कलाओं जिनका अकवर के समय में विकास हुआ था, इन सभी का श्री गुसांई जी ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की सेवा में विनियोग कराया। संगीत कला को तो श्रीजी को जगाने से पौढ़ाने तक की सेवा में ओतप्रोत कर दिया।

श्री गुसांईजी ने गीत, वाद्य ही नहीं किन्तु नृत्य को भी सेवा में स्थान देकर संगीत की शास्त्रोक्त तीनो कलाओं का समन्वय किया। २५२ वैष्णवन की वार्ता में (वार्ता-३३) नृत्यकार गोविंददास की वार्ता में निम्न लिखित विवरण उपलब्ध होता है—

गोविंददास वेस्या और भवैया से नृत्य-गान सीखे थे। जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे। एक समय श्री गुसांईजी मथुरा विराजे थे तव किसी ने कहा कि श्री गुसांईजी को नृत्य-गान-संगीत अति प्रिय है। यह सुनि के गोविंददास दरशन कों आये। तव आज्ञा किये, जो गोविंददास तुम अपनो नृत्य श्री नवनीतप्रियजी को दिखाओ। ताही समै सिंगार के दर्शन खुले। सो गोविंददास श्री नवनीतिप्रियजी के सम्मुख नृत्य करन लागे। नृत्य करत रस में तदाकार होई गये। वा समै श्री नवनीतप्रियजी ने अलौकिक रीति सों दरसन दिये। (भाव-प्रकाश)

तत्पश्चात् गोविंददास श्री गुसांईजी के सेवक हुए और आपकी खवासी करते तथा गुसांईजी जव श्री नवनीतप्रियजी के शृंगार करते तव घुंघरू वाँध के नित्य श्री नवनीतप्रियजी के आगे नृत्य करते।

एक समय राधाष्टमी के दिन राजभोग के वाद श्री गुसांईजी सपरिवार रावल पधारे थे। तव वहां उत्थापन की झारी भरने के वाद भोग के समय गोविंददास

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री नवनीतप्रिय प्रभु सम्मुख नृत्य करने लगे, तब रस मग्न हो गये। कुछ सुधि न रही उस समय उनके एक पग का घुंघरू टूट गया। तब श्री नवनीत प्रभु ने स्वयं अपने चरन के नूपुर का घुंघरू बांध दिया।*

लगभग संवत् १६३८ में गुसांईजी ने अपने सातों पुत्रों में अपनी संपत्ति एवं सातों भगवद् स्वरूपों को विभाजित कर दिया। सातों भाइयों को समान अधिकार देते हुए बड़े पुत्र गिरिधरजी को श्री नाथजी और श्री नवनीतप्रियजी के स्वरूप का विशेष अधिकार सौंपा गया अन्य सातों स्वरूपों का विभाजन निम्नलिखित कोष्टक से ज्ञात होगा।

पुत्रों के नाम	स्वरूपों के नाम	वर्तमान में कहाँ विराजते हैं
१. श्री गिरिधरजी	श्री मथुरेशजी	कोटा
२. श्री गोविंदरायजी	श्री विट्ठलनाथजी	नाथद्वारा
३. श्री बालकृष्णजी	श्री द्वारिकाधीशजी	कांकरोली
४. श्री गोकुलनाथजी	श्री गोकुलनाथजी	गोकुल
५. श्री रघुनाथजी	श्री गोकुलचंद्रमाजी	कामवन
६. श्री यदुनाथजी	श्री बालकृष्णजी	सूरत
७. श्री घनश्यामजी	श्री मदनमोहनजी	कामवन

साथ ही अष्टछाप के अष्ट कीर्तनकारों को भी प्रत्येक स्वरूप की मुख्य कीर्तन सेवा में विभाजित किया गया। जो निम्न प्रकार के उल्लेख से ज्ञात होता है—**

१. श्रीनाथजी के यहां कुंभनदासजी
२. श्री नवनीतप्रियजी के यहां परमानंददासजी
३. श्री मथुरेशजी के यहां सूरदासजी
४. श्री विट्ठलेश्वररायजी के यहां छीतस्वामी
५. श्री द्वारिकानाथजी के यहां गोविंदस्वामी
६. श्री गोकुलनाथजी के यहां चतुर्भुजदासजी
७. श्री मदनमोहनजी के यहां कृष्णदासजी

* वार्ता ३३ प्रसंग-१

** षट ऋतु की वार्ता-पृष्ठ-५३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस प्रकार सातों स्वरूपों का वंटवारा करने के पश्चात् भी सातों वालकों की इच्छानुसार गोकुल में सातों स्वरूपों को एक ही साथ पधराकर राजभोग के भावात्मक प्रकार के रूप में छप्पन भोग की सामग्री आरोगाने का मनोरथ किया था। उस समय अष्टसखा आदि कीर्तनकारों के एकत्रित होकर समूह कीर्तन-गान से श्री गुसांईजी एवं सातों वालक अति प्रसन्न हुए।

श्री गुसांईजी ने 'विद्वन्मंडन' आदि ५० ग्रन्थों की रचना की और टीकाएं लिखीं जिनमें अपूर्व पांडित्य प्रदर्शित किया है। आपकी २८ वैठकें सुप्रसिद्ध हैं। पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त के प्रचार में आप जाति-पांति के भेद-भाव के कट्टर समर्थक नहीं थे। उन्होंने तानसेन, रसखान, अलीखान, ताज प्रभृति मुसलमान और मोहन अछूत को भी भक्तिमार्ग का उपदेश देकर सेवक बनाया था। संवत् १६४२ फाल्गुन कृ. ७ को श्रीकृष्ण-भक्ति द्वारा समस्त कलाओं के पोषक, प्रकाण्ड विद्वान्, कलाकार श्री विट्ठलनाथजी जतीपुरा में गिरिराज की एक कंदरा में प्रवेश कर गोवर्धननाथ में सदेह लीन हो गये।

संगीत के इस स्वर्णयुग में संगीत कला का व्यवस्थित रूप में पुनरुद्धार करने का श्रेय राजकीय क्षेत्र में सम्राट् अकवर को और धार्मिक क्षेत्र में श्री विट्ठलनाथजी को ही दिया जा सकता है।

अष्टछाप के संस्थापक एवं भारतीय शास्त्रीय संगीत के पुनरुद्धारक तथा भक्ति-संगीत के प्रणेता गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी के तिरोधान समय तक अष्टछाप के पांच कीर्तनकारों का लीला-प्रवेश हो चुका था।

कृष्णदास अधिकारी का संवत् १६३६-३७ में, श्री कुंभनदासजी का संवत् १६४० में, श्री सूरदासजी का संवत् १६४० में, श्री परमानंददासजी का संवत् १६४१ में तथा श्री नंददासजी का संवत् १६४० में गोलोक वास हुआ।

पश्चात् श्री विट्ठलेश्वर के तिरोधान से संतप्त होकर आपके विरह में आपके सेवक संगीताचार्य गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास ने लगभग उसी समय संवत् १६४२ में ही भगवद् लीला में प्रवेश किया। इस प्रकार आपके तिरोधान के साथ अष्टछाप के आठों महानुभाव भक्तों का भी तिरोधान हो गया। इनमें से प्रत्येक ने अपना समस्त जीवन श्रीनाथजी की एकनिष्ठ भाव-भक्ति पूर्वक कीर्तन-सेवा करने में व्यतीत किया था। भारतीय संगीत की प्राचीन कला के द्रुपद, धमार आदि प्रवन्ध गान की हजारों चीजों की रचना और उसकी बंदिशों से भारतीय संगीत को समृद्ध वनाने का श्रेय अष्टछाप के संस्थापक गोस्वामी विट्ठलनाथजी प्रभुचरण एवं अष्टछाप के वाग्गेयकार वैष्णव महानुभावों को है। भारतीय संगीत के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय एवं स्वर्णाक्षिरों अंकित किये जाने योग्य है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अष्टछाप का संक्षिप्त परिचय-कोष्टक

	नाम	जन्म संवत्	जाति	दीक्षा-गुरु	शरणागतिकाल	स्थायी निवास
१.	कुंभनदास	१५२५	गौरवा क्षत्रिय	श्री वल्लभाचार्यजी	सं. १५५६	जमुनावतो
२.	सूरदास	१५३५	सारस्वत ब्राह्मण	,,	१५६७	परासौली
३.	कृष्णदास	१५५३	कुनबी पटेल	,,	१५६८	बिलछूकुंड
४.	परमानन्ददास	१५५०	कान्यकुब्ज ब्राह्मण	,,	१५७७	सुरभीकुंड
५.	गोविन्दस्वामी	१५६२	सनाढ्य ब्राह्मण	श्री विट्ठलनाथजी	१५९२	कदमखंडी
६.	छीतस्वामी	१५७३	मथुरिया चौबे	,,	१५९२	पूछरी
७.	चतुर्भुजदास	१५८७	गौरवा क्षत्रिय	,,	१५९८	जमुनावती
८.	नंददास	१५९०	सनाढ्य ब्राह्मण	,,	१६०७	मानसीगंगा

	नाम	लीलात्मक नाम	स्वरूपासक्ति	कीर्तन समयासक्ति	शृंगारासक्ति	तिरोधान समय
१.	कुंभनदास	अर्जुन सखा	श्री गोवर्धननाथजी	राज भोग समय	कुल्हे	संवत् १६४०
२.	सूरदास	कृष्ण सखा	श्री मथुरेशजी	उत्थापन	पाग	संवत् १६४०
३.	परमानन्ददास	तोक सखा	श्री नवनीतप्रियाजी	मंगला समय	ग्वाल पगा	संवत् १९४१
४.	कृष्णदास	ऋषभ सखा	श्री मदनमोहनजी	शयन समय	मुकुट	संवत् १६३६
५.	गोविन्द स्वामी	श्रीदामा सखा	श्री द्वारिकाधीश	ग्वाल समय	टिपारा	संवत् १९४२
६.	छीत स्वामी	सुबल सखा	श्री विट्ठलनाथजी	संध्यार्ति	सेहरा	संवत् १९४२
७.	चतुर्भुजदास	विशाल सखा	श्री गोकुलनाथजी	भोग समय	दुमाला	संवत् १९४२
८.	नन्ददास	भोज सखा	श्री गोकुलचंद्रमाजी	शृंगार समय	फेंटा	संवत् १६४०

इन सातों स्वरूपों के मन्दिर श्री गुंसाईजी के कुछ समय बाद तक जतीपुरा में और गोकुल में विद्यमान थे, ये औरंगजेब के समय में मूर्तियों को नष्ट करने का उपद्रव होने पर गुप्त रूप से हिन्दु राजाओं के राज्य में पधराये गये ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुष्टिमार्गीय संगीत

पुष्टिमार्गीय संगीत का विषयारंभ करने के पूर्व प्रथम-भाग में भक्ति एवं संगीत का अति-प्राचीन काल से ई. स. की चौदहवीं शताब्दी तक का हम संक्षिप्त ऐतिहासिक अवलोकन कर चुके हैं। अतः द्वितीय-खंड में पुष्टिमार्गीय हवेली-संगीत के उद्गम काल से लेकर आधुनिक काल तक की चर्चा करने से पूर्व सर्व-प्रथम पुष्टि-मार्ग-संस्थापक श्रीमद्वल्लभाचार्यजी को सहस्रावधि वंदन करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

पुष्टिमार्गीय संगीत के उद्गम एवं परम्परा के शास्त्रीय तथा ऐतिहासिक अवलोकन की सरलता के लिये सम्प्रदाय के ४५० वर्ष को निम्नलिखित तीन विभागों में बाँटना उचित होगा—

१. प्रारंभिककाल—१५० वर्ष (संवत्-१५५६ से १७०६) ई.स. १५०० से १६५०।
२. मध्यकाल—१५० वर्ष (संवत्-१७०७ से १८५६) ई.स. १६५१ से १८००।
३. उत्तरकाल—१५० वर्ष (संवत्-१८५७ से २००६) ई.स. १८०१ से १९५०।

प्रारंभिक काल की चर्चा को भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार से तीन युगों में विभाजन करना उपयुक्त होगा—

(१) प्रथम-चरण (श्री वल्लभ-युग) ई. स. १५०० से १५३० (वर्ष-३०)।
(२) द्वितीय-चरण (श्री विट्ठलेश-युग) ई. स. १५३१ से १५९० (वर्ष-६०)।
(३) तृतीय-चरण (श्री गोकुलेश-युग) ई. स. १५९१ से १६५० (वर्ष-६०)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुष्टिमार्गीय कीर्तन-संगीत का आरम्भ-काल

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी की प्रथम भारत यात्रा के समय गोवर्धन गिरिराज पर भगवद्स्वरूप का प्राकट्य हो चुका था और ब्रजवासी "देवदमन" के नाम से श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा-दर्शन करते थे। लगभग छः वर्षों के बाद श्रीवल्लभाचार्यजी जब पुनः गोवर्धन पधारे तब आपने उस स्वरूप का नाम श्रीनाथजी या गोवर्धननाथजी रखा। वहाँ छोटा-सा कच्चा मंदिर बनवाकर उसमें श्रीनाथजी को पधराया। (सं. १५५६ ई. स. १५००) उसी समय सद्दु पांडे, रामदास चौहान तथा कुंभनदास आदि ब्रजवासी श्रीवल्लभाचार्यजी के सेवक हुए। सद्दू पांडे तथा रामदास चौहान को श्रीनाथजी का भोग (सामग्री) श्रृंगारादि दैनिक सेवा का कार्य सौंपा गया और कुंभनदासजी को श्रीनाथजी के सन्मुख कीर्तन (संगीत) की सेवा में नियुक्त कर दिया गया। इस प्रकार पुष्टिमार्गीय सेवा के मुख्य भोग, राग और श्रृंगार (सामग्री, संगीत और सिंगार) तीन अंगों का प्रकार प्रारंभ से ही नियत किया गया। सम्प्रदाय की सेवा प्रणाली के इन तीनों प्रकारों में हमारा विषय पुष्टिमार्गीय संगीत (कीर्तन) प्रकार होने से सम्प्रदाय के सर्व प्रथम कीर्तनकार ही नहीं वाग्गेयकार एवं संगीताचार्य श्रीकुंभनदासजी की जीवन-चर्चा पुष्टिमार्गीय संगीत (कीर्तन) कला की दृष्टि से करना उचित होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीताचार्य श्रीकुम्भनदासजी

श्री कुंभनदासजी का जन्म स. १५२५ (ई.स. १४६९) में "जमुनावता" ग्राम में हुआ था। वे गौरवा-क्षत्रिय जाति के थे। बाल्यकाल से ही सत्संग, अध्ययन, कथा-कीर्तनादि के श्रवण का अवसर उन्हें उनके धर्मशील काका "धर्मदास" द्वारा प्राप्त होता रहता था। उनका मधुर कंठ था। रचना और गायन-कला का सामान्य ज्ञान भी उन्हें प्राप्त हो चुका था। किन्तु श्रीवल्लभाचार्यजी जैसे समर्थ गुरु की कृपा प्राप्त होने और श्री भगवान्-गोवर्धनधरण के सन्मुख होते ही उनके पूर्वज्ञान की धारा सरिता के रूप में बहने लगी। वे कुटुंब का निर्वाह कृषि द्वारा करते थे और सीधे-साधे सामान्य व्रजवासी की रीति से रहते थे। पुष्टिमार्गीय संगीत के अष्ट आद्य कीर्तनकारों में सर्वप्रथम कीर्तनकार का सम्मान श्री कुंभनदासजी को प्राप्त है। उन्हें काव्य एवं संगीत का ज्ञान किस प्रकार हुआ, इसका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। किन्तु अनुमानतः फकीरुल्ला के कथनानुसार राजा मान के गायक-वादक गंगा किनारे कुरुक्षेत्र से स्नान करने के लिए आया करते थे। इन अवसरों पर संभवतः बालक कुंभनदास भी उनके चाचा के साथ जाते थे। किन्तु दीक्षा-गुरु के सिद्धान्तोपदेश से भक्ति-भाव का उन्मेष होना एवं भगवान् श्रीनाथजी के दर्शन से काव्य और संगीत की दिव्य अनुभूतियों का हृदय में प्रकाशित होना असंभव नहीं है।* विशुद्ध प्रेम-भक्ति का दिव्य प्रभाव आपके सात्विक हृदय तक पहुँच चुका था। नित्य नई पद-रचना और गान द्वारा अपने सुमधुर कंठ से प्रभु को रिझाने में ही उन्हें परमानंद-प्राप्ति का अनुभव होने लगा।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने जब कुंभनदासजी को भगवल्लीलात्मक कीर्तन गाने का आदेश दिया, तब श्री कुंभनदासजी ने श्री गोवर्धननाथजी को दंडवत् प्रणाम करके निम्नलिखित पद का राग-बिलावल ताल-धमार में गान किया।**

स्थायी – "सांझके साँचे बोल तिहारे ॥

अंतरा – "रजनी अनत जागे नंदनंदन, आये निपट सवारे ॥१॥

संचारी– "आतुर भये नील पट ओढ़ें, पीरे बसन बिसारे।

आभोग– "कुंभनदास प्रभु गोवर्धनधर, भलेजु बचन प्रतिपारे ॥२॥

---

* "सो यह कीर्तन सुनिके श्रीआचार्यजी आपु कहे जो –कुंभनदास निकुंज लीला संबंधी रसको अनुभव भयो तब कुंभनदासने दंडवत् कीनी और कह्यो जो महाराज "आपुकी कृपासे" प्राचीन वार्ता रहस्य–भाग-२ पृ १०८

** यह पद आजतक प्रायः उष्णकाल में खंडिता के पद-गान के समय गाया जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक समय श्री गोवर्धनधरण "टोंड के घने" में पधारे थे। तब श्री कुंभनदासजी ने राग-मालकोंस के द्रुपद गान से श्रीनाथजी को अति प्रसन्न किया था। * ताल-सूलताल** अथवा चोताल–

स्थायी.–"बोलत स्याम मनोहर बैठे कमल खंड कदंब की छहियाँ।"

अंतरा.– "कुसुमित द्रुम अलि-कुल गुंजत सखि कोकिल-कल कूजत तहियाँ।

सं.–सुनत दूतिका की वचन माधुरी, भयो उल्लास जाके मन महियाँ।"

आ.–"कुंभनदास" ब्रज-कुंवरि मिलन चली, रसिक कुंवर गिरिधर बहियाँ।

शीघ्र ही म्लेच्छ का उपद्रव शान्त होने के बाद श्री गोवर्धननाथजी को "टोंड के घने" (वृक्षों की घटा-दार निकुंज) से श्री गिरिराज पर अपने मंदिर में यथास्थान विराजमान किया। *** तब कुंभनदास ने श्रीनाथजी के सम्मुख राग "श्री" में प्रथम गिरिराजजी, श्रीनाथजी तथा ब्रजभूमि का महात्म्य-गान और दूसरा "रास" लीला का पद-गान किया। ताल-चर्चरी की बंदिश के दोनों पद आज भी सम्प्रदाय की प्रणाली में गाये जाते हैं। जो निम्न प्रकार है:—

स्थायी.–"जयति जयति श्री हरिदासवर्यधरणे।

अं. "वारि वृष्टि निवारि धोख-आरति टारि, देव-पत्ति अभिमानभंगकरणे।"

सं. "जयति पट पोत दामिनि रुचिर वर मृदुल, अंग सांवल सजल जलद-वरणे।"

आ. "कर अधर बेनु धरि गान कलरव शब्द, सहज ब्रजयुवतिजन चित्तहरणे।"

सं "जयति वृंन्दाविपिन भूमि डोलनि अखिल लोक वंदनि अंबुरुहचरणे।"

आ. "तरनि-तनया बिहार नंदगोप कुमार, दास "कुंभन" नवत तवश्री सरने।"

---

* तृतीय गृह (कांकरोली) की प्रणाली में यह कीर्तन चैत्र सुदी ३ (गनगौर-त्योहार) के रोज सिंगार के ओसरा के समय राग-मालकौंस में ही गाया जाता है। (तृतीय गृह कीर्तन प्रणालिका पृ. २५।)

** लेखक की परंपरानुसार यह पद सूलताल में गाया जाता है।

*** "टोंडके घने" का स्थान जतीपुर से गुलाल कुण्ड होकर नहर की पटली-पटली सात फर्लांग दूर है। वहाँ श्रीनाथजी की बैठक, छोटा सा कुंड और श्यामतमाल, कदम आदि प्राचीन वृक्षों की घनी छटा दर्शनीय है।

† "श्री" राग संध्या समय गाया जाता है अतः श्रीनाथजी का टोंडके घने से आकर गिरिराज पर पधारने का समय संध्या काल का होना स्पष्ट होता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(२)

स्थायी "(कृष्ण) तरनि-तनया तीर रास मंडल रच्यौ
अधर * कर मधुर ** सुर बेजु बाजे"
अंतरा–"जुवतिजन जूथ संग, नृत्यत अनेक रंग,
निरखि अभिमान तजि काम लाजै" ॥१॥
संचारी–"स्याम तन पीत कौसेय पद नख रुचिर,
चंद्रिका सकल भुवि तिमिर भाजै"
आभोग–"ललित अवतंस भ्रुव धनुष लोचन चपल,
चितवनि जनु मदन-बान साजे ॥२॥
संचारी–"मुखर मंजीर कटि किंकिनी क्वनित रव,
वचन गंभीर मानों मेघ गाजै"
आभोग–"दास "कुंभन" नाथ हरिदासवर्यधर,
नखसिख सुरूप अद्भुत बिराजे" ॥३॥

कुंभनदासजी की किशोर-लीला-भाव की पद-रचना एवं गायन-कला की ख्याति सुनकर राधावल्लभ सम्प्रदाय के आद्यस्थापक, संगीतज्ञ एवं कवि श्रीहितहरिवंशजी ने एक बार कुंभनदासजी के पास आ कर कहा–"तुम्हारे जुगल स्वरूप के कीर्तन वहुत सुने, परि कृपा करिकें कोई पद श्रीस्वामिनीजी को सुनावो।" तब कुंभनदासजी ने प्रातः काल के समयानुसार राग-रामकली, ताल-चर्चरी में निम्नलिखित पद सुनाया–

"कुंवरि राधिका तुव सकल-सौभाग्य सींव,
बदन पर कोटि-सत चंद्र वारों ॥
"खंजन कुरंग सत-कोटि नैनन ऊपर, वारनें करत जियमें न विचारों ॥१॥
"कदली सत कोटि जंघनि ऊपर वारनें, सिंह सत-कोटि कटि पर उतारों ॥
"मत्त गज कोटि सत चाल पर कुंभ सत कोटि इनि कुचनि पर वारि डारों ।
"कीर सत-कोटि नासा ऊपर कुंद सत कोटि दसननि ऊपर कहि न पारों ॥
"पक्व किंदूर बंधूक सत-कोटि अधरनि ऊपर वारि रुचि गर्व टारों ॥३॥
"नाग सत-कोटि बेनी ऊपर कपोत सत कोटि ग्रीवा पर वारि दूरि सारों ॥
"कमल सत कोटि कर जुगल पर वारने, नाहिन कोऊ कोक उपमाजु धारों ॥४॥
"दास "कुंभन" स्वामिनी सुनख-सिख अंग अद्भुत सुहान कहां लगी संभारों ॥
"लाल गिरिवरधरन कहत मोहि तौलों सुख, जोलों वह रूप छिनु-छिनु-निहारों ॥५॥

संगीत-कला और साहित्यिक पद-रचना के उत्कर्षार्थ श्री गुसांईजी ने सं. १६०२ में अष्टछाप की स्थापना की तब कुंभनदासजी को इसमें आदर पूर्वक सम्मिलित किया गया था। कुंभनदासजी के उच्च साहित्यिक एवं संगीतमय पद-रचना

पाठांतर। * कल ** धनि.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के लालित्य की प्रसिद्धि दूर-दूर तक पहुँच गई थी। संत महात्माओं से लेकर राजा महाराजा भी इनकी संगीत–बद्ध पद-रचना से मुग्ध होकर इनके दर्शनों की इच्छा रखते थे।

कुंभनदासजी के विशाल कुटुंब के निर्वाह का साधन मात्र थोड़ी सी खेती ही थी। निर्धन दशा होते हुए भी किसी के सामने हाथ पसारना तो क्या, सम्मान-पूर्वक दिए हुए द्रव्यादि को भी इन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया था। उनकी प्रसिद्धि निर्लोभता एवं श्रीगोवर्धनधरण के प्रति तन्मयता की घटनाओं में राजा मानसिंह और सम्राट् अकबर से मिलने की घटना तथा श्रीगुसांईजी के द्वारा अपने साथ यात्रा में ले जाने की आज्ञा का प्रसंग विशेष महत्वपूर्ण है।

सं. १६२० (ई.स. १५६४) के लगभग सम्राट अकबर का सेनापति राजा मान-सिंह मथुरा वृन्दावन की यात्रा करते हुए गोवर्धन में श्रीहरदेवजी के दर्शन करके श्रीनाथजी के दर्शनार्थ जतीपुरा आया। भोग के दर्शन का समय था। उस समय कुंभनदासजी भक्तिभावपूर्वक श्रीनाथजी के सम्मुख मृदंग के साथ तुंबूर (वीणा) पर राग-नट में निम्नलिखित पद गा रहे थे।

स्थायी–"रूप देखि नैना पलक लागे नहीं।

अंतरा–"गोवर्धनधर के अंगअंग प्रति, दृष्टि परत चित रहत तहीं तहीं

संचारी–"कहा कहूँ कछु कहत न आवै, मन मांगि वे दहीं ।।

आभोग–"कुंभनदास" प्रभुके मिलावेकी, सुंदर बात सखियनुसों कही ।।२।।

पश्चात् संध्याआरती के दर्शन समय राग-गौरी में निम्नलिखित पद-गान किया—

स्थायी–"आवत मोहन मनजु हर्यो

अंतरा–"हौं अपने गृह सँचुसों बैठी, निरखि बदन अचरा बिसर्यो ।।१।।

संचारी–"रूपनिधान रसिक नंदनंदन, देखि नयन धीरज न धर्यो ।।

आभोग–"कुंभनदास" प्रभु गोवर्धनधर, अंग-अंग प्रेम पियूष भर्यो ।।२।।

समयानुसार रागों में इनका सुमधुर गान सुनकर राजा मानसिंह इतने प्रभावित हुए कि दूसरे दिन प्रातःकाल ही उनसे मिलने के लिए "जमुनावता" गया। कवि के घर जा कर अभिवादन के साथ कहा कि कल मंदिर में आपका अमृतमय संगीत सुनकर अति प्रसन्न हो कर आज महानुभाव के दर्शनार्थ और परिचयार्थ यहाँ आया हूँ। उस समय कुंभनदासजी अपनी भतीजी से आसन और आरसी लाने के लिए कह रहे थे। भतीजी ने घास के पूले का आसन बिछा दिया और आरसी के अभाव में दोने में पानी भरकर रख दिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस प्रकार कुंभनदासजी की गरीबी देखकर मानसिंह को आश्चर्य के साथ ही इस भक्त गायक के प्रति विशेष आदरभाव उत्पन्न हुआ। उसने कुंभनदासजी से अपनी सुवर्ण जटित आरसी स्वीकार करने का आग्रह किया। यही नहीं, एक सहस्र मुद्राओं की थैली तथा जमुनावता ग्राम का पट्टा और आर्थिक व्यय चलाने के लिये साहूकार के यहाँ भुगतान का स्थायी प्रवन्ध करने का आदेश भी दिया, किन्तु त्यागमूर्ति और निस्पृह गायक भक्त श्री कुंभनदासजी ने कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं की। राजा मानसिंह कई सन्तों के तथा गृहस्थ और विरक्त संगीतकारों के सम्पर्क में आया था। पर जीवन में पहली वार ऐसे भक्त-संगीतकार एवं परम त्यागी गृहस्थ को देख कर राजा दंग हो गया और प्रणाम कर वहाँ से विदा हुआ। उसने कहा–"मैंने विरक्त त्यागी तो वहुत देखे किन्तु ऐसा गृहस्थ त्यागी पहली वार देखा है।"

एक समय श्रीविट्ठलनाथजी (गुसाईजी) ने वैष्णव-भक्तों के सहयोग से इनके आर्थिक कष्ट दूर कराने के उद्देश्य से कुंभनदासजी को अपने साथ द्वारिकापुरी की यात्रा में चलने का आदेश दिया। पूज्य गुसांईजी की आज्ञा-पालन को कर्तव्य समझ कर उनके साथ ये चल तो दिये, किन्तु इनका मन श्रीनाथजी में लगा हुआ था। अप्सरा-कुंड पर यात्रा का पहला पड़ाव हुआ। उत्थापन का समय होने पर कुंभनदासजी श्रीजी की कीर्तन-सेवा और दर्शन के विरह में विह्वल हो गये। ये आँसू भरे नेत्रों से राग-सारंग अठताल में गाने लगे–

"किते दिन व्है जु गये बिनु देखे।
"तरुन किसोर रसिक नंदनंदन, कछुक उठति मुख रेखें ॥१॥
"वह सोभा वह कांति बदन की कोटिक चंद विसेखें ॥
"वह चितवन वह हास्य मनोहर, वह नटवर वपु भेखें ॥२॥
"स्याम सुंदर संग मिल खेलन की, आवत जिये अमेखें ॥
"कुंभनदास" लाल गिरिधर विन, जीवन जनम अलेखें ॥३॥

कुंभनदास की यह दशा देख कर श्रीविट्ठलनाथजी ने कहा– "कुंभनदास! तुम्हारी यात्रा हो चुकी। मंदिर में जाओ और श्रीजी के दर्शन और कीर्तन की सेवा करो।"

एक समय किसी कलावंत ने फतहपुर सीकरी में कुंभनदासजी से सीखा हुआ धनाश्री राग का निम्नांकित पद सम्राट अकवर को सुनाया—

"देखरी आवती मदनगोपालकी।
"सक्र–वाहन मत्त निरखि लाजत जिय, गति अनूप लटक चालकी
"स्याम तन कटि बसन मन हरत, सुंदरता उरसि भालकी ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"भौंह धनु साजि मानों मदन-सर चितवनि लोचन विसालकी
"रेनु मंडित कुटिल अलक सोभा तिलक–कस्तूरी भालकी ।।
"दास "कुंभन" चारु हास मोहै जगत, गोवर्धनधर कुंवर लालकी

इस पद की रचना-माधुरी से अकबर अति प्रसन्न हुआ और उसके मन में पद के रचयिता से मिलने की तीव्र इच्छा हुई। दूसरे दिन कुंभनदासजी को बुलाने के लिए घोड़ा और पालकी सहित कुछ सैनिकों को परासौली रवाना किया। खेत पर गये हुए कुंभनदासजी को खोजते हुए सैनिक वहीं पर पहुँच गये और बादशाह के पास चलने की प्रार्थना की। इस निमंत्रण से उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने कहा—"मैं श्रीनाथजी के पद-गान की सेवा छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता"।

सैनिकों ने पुनः कहा कि "सम्राट अकबर गुणग्राही हैं। राज वैभवों के प्रखर ठाठ-बाठ में भी संगीत-साधक गुणीजनों की बहुत कद्र करते हैं। आपका भक्तिमय संगीत सुनने के लिए वे बड़े उत्सुक हो रहे हैं। आपके लिए घोड़ा पालकी तैयार हैं। आपको चलना ही पड़ेगा।" कुंभनदासजी ने सोचा कि सैनिकों को तो राजाज्ञा का पालन करना ही होगा और अतः मुझे अनिच्छा होते हुए भी जाना ही पड़ेगा। यही सोचकर आपने कहा "मैं मूक पशुओं और पालकी वाहक मानवों को कोई कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता मैं तुमारे साथ पैदल ही चलूंगा।"

बादशाह से मिलने के लिए लोग सजधज कर ठाठ से जाते हैं। किन्तु यह निस्पृह भक्त-गायक फटी पाग, सामान्य सी अंगरखी, ऊंची धोती, पुरानी अंगोछी, टूटी पन्हैया और टेढ़ी लकुटी लिये ऐसे ही स्वरूप में भगवन्नाम गुनगुनाते हुए पैदल ही फतहपुर सीकरी पहुँचे। रावटी में मोतियों की झालरों, मखमली गलीचों, विविध प्रकार के इत्रों की सुगंधित लपटों तथा सोने चाँदी के सिंहासनों को देख कर उनका वैराग्य उद्दीप्त हो गया और श्रीगोवंर्धनधरण के बिना सारा राजकीय वैभव उन्हें झूठी माया का बिलासी धाम जैसा भासने लगा।

बादशाह ने आदर-सत्कार करके कहा –"आप महागायक हैं, मैंने आपकी प्रशंसा सुनी है। यही नहीं आपकी संगीतमय पद-रचना अन्य कलावंतों से सुनकर बड़ी ही प्रसन्नता का अनुभव किया है। आज आप इस दरबार में नवीन पद-रचना के साथ आपकी संगीत प्रसादी का अमूल्य रस पान कराइये"। संगीत सुनाने का निर्देश पाकर कुंभनदासजी द्विविधा में पड़ गये। उन्हें श्री नाथजी की संगीत सेवा का स्मरण हो आया। विवशता के साथ तानपूरा हाथ में लिया, तार झन-झनाये और आपने अपने कंठ माधुर्य की स्वरलहरियों से सारे दरबार को विमुग्ध कर दिया। पद-गान की स्थायी और अंतरा की धुन सुनते ही दरबारी सब झूमने लगे। पद-रचना के शब्द इस प्रकार थे—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"भक्तको कहा सीकरी सों काम"
"आवत जात पन्हैयां टूटी, बिसर गयो हरिनाम ॥१॥
"जाको मुख देखे दुख उपजै, ताकों करनी परी प्रमाण ।
"कुंभनदास" लाल गिरिधर–बिनु, यह सब झूठौ धाम ॥२॥

संगीत के प्रभाव से अकबर सहित समस्त श्रोतृवृन्द अत्यन्त प्रभावित हो चुका था, किन्तु पद-रचना की संचारी और आभोग (तीसरी तथा चतुर्थ पंक्ति) के शब्द सुन कर दरबारी चकित हो गये। संचारी-गान (तीसरी पंक्ति) के शब्द सम्राट के लिए अत्यधिक अपमान-जनक थे। सभी सोचते थे कि इनको भारी दंड मिलेगा, किन्तु गुणग्राही बादशाह अकबर ने उस निर्लोभी, निर्भीक और त्यागी संत महानुभाव का आदर ही किया। लौटकर श्रीनाथजी के दर्शन करते ही कुंभनदासजी का क्लेश दूर हो गया और उन्होंने श्रीगोवर्धनधरण के सम्मुख धनाश्री राग में (१) नैन भरि देखे नन्दकुमार तथा (२) हिलगन कठिन है या मन की। ये दोनों पद गाकर अपनी विरह व्यथा शान्त की। यह घटना अनुमानतः संवत १६३८ के लगभग हुई थी।

वि. सं. १५५६ में कुंभनदासजी ने श्रीनाथजी के सम्मुख कीर्तन-गान आरंभ किया और अपने जीवन के अन्त (सं. १६४०) तक श्रीगोवर्धनधरण को संगीत सुनाते रहे। उन्होंने नित्यसेवा क्रम, वर्षोत्सवादि प्रायः सभी प्रकार के कीर्तनों की रचना की है, किन्तु खंडिता, सुरतांत, मान, आसक्ति, विरह के पदों में जुगल-स्वरूप की भावनासक्ति प्रीति अनुराग विशेष दिखाई देता है। आप भावमग्न होकर विशुद्ध रागों में गाते गये और उनकी स्वर-रचना और काव्य-रचना बनती गयी।

राग-रागिनी :

श्रीकुंभनदासजी के गाए हुए रागों के निम्न प्रकार पाये जाते हैं:—

(१) भैरव, (२) रामकली, (३) रामग्री, (४) देवगंधार, (५) ललित, (६) विभास, (७) विलावल, (८) टोडी, (९) आसावरी, (१०) धनाश्री, (११) जैतश्री, (१२) सामेश्री, (१३) वसंत, (१४) पंचम, (१५) मालकौस, (१६) सारंग, (१७) सोरठ, (१८) मल्लार, (१९) मेघमलार, (२०) सोरठ-मलार, (२१) नट, (२२) नटनारायण, (२३) गौरी, (२४) मालवगौरी, (२५) श्री, (२६) मालव, (२७) पूर्वी, (२८) हमीर, (२९) ईमन, (३०) कल्याण, (३१) केदारा, (३२) कानरा, (३३) बिहागरो,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ताल

पद में गाए हुए प्राचीन तालों के नाम भी इस प्रकार प्राप्त होते हैं:—

१. इकताल, २. चर्चरीताल, ३. अठताल, ४. वनिनारू, ५. ध्रुवताल, ६. त्रिवद (त्रिपद)।

पारिभाषिक शब्द :

श्री कुंभनदासजी के पद-गान में संगीत शास्त्र के निम्नलिखित पारिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं:—

१. नाद, २. संगीत, ३. स्वर, ४. सप्तक, ५. राग, ६. सप्तसुर, ७. तान, ८. मान, ९. ताल, १०. कालगति, ११. जाति, १२. सरगमपद्धति, १३ झालप सुल्लप, १५. उरप, १६. तिरप, १७. लाग, १८. हार, १९. अनीत. २०. २१. अवध, २२. अकाव-लाग, २३. धुनि (ध्वनि), २४. अलाप. २५. संचगति, २६. नृत्य, २७. नृत्त, २८. हस्तकभाव, २९. तांडव, ३०. णिह-गिड तत-थुंग-थुंग, ३१. ताता तत थेई इत्यादि, ३२. ततकारि।

वाद्य-नाम

श्रीकुंभनदासजी के पद-गान में वाद्यों के नाम इस प्रकार मिलते हैं:—(१) सुरवीन, (तंबूर) (२) वीना (वीणा), (३) ढोल, (४) मृदंग, (५) डफ, (६) आवज, (७) उपंग, (८) चंग, (९) पखावज, (१०) अघौरी, (११) किन्नरी, (१२) झांझ, (१३) ताल, (१४) वेनु, (१५) मुरली, (१६) वांसुरी, (१७) शंख, (१८) वंस इत्यादि इत्यादि।

इस प्रकार संवत १५५६ (ई.स. १५००) से लेकर १६४० तक के अपने जीवन-पर्यंत ऋतु और समयानुसार श्री गोवर्धनधरण की कीर्तन सेवा में राग, ताल सहित अनेक भावात्मक पदों का गान किया। आप के लगभग ४०० पद आज प्रचलित हैं। आप संगीत विद्या में निष्णात थे। आप पुष्टिमार्ग के आद्य संगीतकार कहे जा सकते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीताचार्य भक्त कविवर सूरदासजी

अष्टछाप संगीताचार्यों में श्री सूरदासजी सुप्रसिद्ध हैं। "सूर सूर तुलसी ससी" इस के उक्ति अनुसार "सूर" को सूर्य समान तेजस्वी महाकवि माना गया है। वे साहित्य और संगीत क्षेत्र में अद्वितीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। सूरदास के चार-पाँच उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनमें मुख्यत: तीन सूरदास सुप्रसिद्ध हैं—(१) बिल्वमंगल सूरदास, (२) सूरदास मदनमोहन और (३) अष्टछाप के सूरदास ।

इन तीनों में हमारे चरित्र नायक सूरदास अष्टछाप के मुख्य नायक तथा श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे। इनका जन्म सं. १५३५ (ई. स. १४७९) के वैशाख शुक्ल-पंचमी को दिल्ली के पास मथुरा रोड़ पर वल्लभगढ़ से दो मील दूर सीहीं नामक गाम में सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम रामदास माना जाता है किन्तु "आईने अकबरी" में अकबर के दरबारी गवैयों की सूची में ग्वालियर निवासी जिन रामदास और उनके पुत्र सूरदास का नामोल्लेख मिलता है, उसका हमारे सूरदास से कोई संबंध सिद्ध होता नहीं है।

अष्टछाप के सूरदास जन्म से ही अंध थे। उनके माता पिता निर्धन स्थिति के थे। छ: वर्ष की वय में पिता के आघातजनक अति कटु वचनों से संत्रस्त हो कर "सूर" ने घर का त्याग किया और चार कोस दूर एक गाँव के तालाब के किनारे पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगे। ईश्वर प्रदत्त मधुर कंठ, काव्य-रचनाशक्ति, भविष्यज्ञान, शुकन भविष्यादि ज्ञान के कारण आसपास के लोगों में उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने लगी। जलपान एवं भोजनादि का प्रबन्ध भी हो गया। तदुपरान्त श्रद्धालुओं द्वारा झांझ, मृदंग, तंबूरादि सरंजाम भी एकत्र कर दिये जाने से अहर्निश भगवद्-भजनादि गुणगान-गान में मग्न हो कर प्रभुमय जीवन व्यतीत करने लगे। कहा जाता है कि वृक्ष के नीचे मुकाम करने के बाद वृक्षों से जो ज्ञान हुआ उसी को लक्ष्य बनाकर प्रथम निम्नलिखित पद का गान भक्त-मंडली को सुनाया—

मनरे वृक्षनको मत ले ।
काटे ता पर क्रोध करे नहिं, औरन छाया दे ॥१॥
जो कोई वा पर पथर चलावे, ताहि को फल दे ।
आप सिर पर धूप सहत है, औरन छाया दे ॥२॥

इस प्रकार के वैराग्यादि के पद-गान से सभी प्रसन्न होते थे। किन्तु संगीत शास्त्र की राग-रागनियों का गुरु-ज्ञान सूर को १८ वर्ष की आयु में भक्त नारदजी से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्राप्त हुआ। स्वप्न में नारदजी ने भगवद्-यशोगान का कीर्तन श्रवण कराया। यही नहीं साक्षात् भगवद्-दर्शन होने का वर दे कर वे अंतर्धान हो गये। भक्त नारद की देव कोटि के संगीताचार्यों में गणना की गई है।* अतः नारदजी से स्वप्न द्वारा गुरु-ज्ञान प्राप्त होने से "सूर" को उसी क्षण से राग-रागिनीमय संगीत कला का सम्पूर्ण ज्ञान स्फुरित हुआ। तदतिरिक्त पूर्ण वैराग्य भी उत्पन्न हुआ। अंग पर एक ही वस्त्र धारण कर हाथ में लकुटी और जलपात्र ले कर भवगद्-दर्शन की आकांक्षा में उन्होंने श्रीकृष्ण के जन्मधाम मथुरा की ओर प्रयाण किया। मथुरा में कुछ दिन रह कर आगरा के पास "गौघाट" पर श्रीयमुनाजी के पवित्र तट पर पर्ण-कुटी वनाकर शिष्य-मंडली के साथ रहने लगे। यहाँ उनके वहुत शिष्य हुए और "सूर" "सूरस्वामी" के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इनके विनय, विवेक, विरह, दीनता, वैराग्य एवं माहात्म्य-ज्ञान के पदों एवं असाधारण संगीत-साधना से आकर्षित होकर कवि, गायक तथा गुणीजनादि संपर्क साधने लगे और अपने-अपने अनुकूल ज्ञान प्राप्त करते हुए स्वयं को धन्य मानने लगे।

एक दिन सूर आनंदावेश में मग्न होकर भगवन्नाम गुनगुनाते हुए चलने लगे। तव एक कूएँ में गिरते हुए सूर की भगवान् श्री कृष्ण ने हाथ पकड़ कर रक्षा की। सूर ने प्रभु का हस्त परख लिया और जोरसे पकड़ने लगे तब क्षणमात्र दर्शन देकर अंतर्धान होते हुए प्रभु ने कहा कि कुछ दिनों में ही तुम्हें मेरी लीलाओं का दर्शन होगा।

प्रभ के अंतर्धान होते ही सूर ने निम्न पद गान किया—

"सन्मुख आवत बोलत बैन। ना जानूं तिहि समेंजु मेरे सब तन श्रवन कि बैन।
सुनहु "सूर" सह सत्य किंधौं सुपनो जु भयो दिन रैन॥

उस समय "सूर" ने कहा था—

"बांह छुड़ाये जात हो निबल जानिकें मोहि।
हिरदें तें जब जाउगे, मर्द बदौं मैं तोहि॥

इस प्रसंग के बाद ज्ञानांजन शलाका द्वारा प्रकाश देकर भगवल्लीला का साक्षात्कार कराने वाले गुरु का मिलन कब होगा? इसी चिन्ता में बारह वर्ष वीत गये। तत्पश्चात् सूर के हृदय का तीव्र आर्तनाद प्रभु ने सुना। फलतः वि. सं. १५६६ (ई. स. १५१०) में श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु विद्यानगर से कनका-भिषेक एव आचार्यत्व का सम्मान प्राप्त करके परिक्रमा करते हुए व्रज में पधारे तव आपने गौघाट पर मुकाम किया। यह खबर सूरस्वामी को मिलते ही वे शिष्यों सहित आपके पास पहुँचे और प्रणाम किया।

** संगीतरत्नाकर अ. १ श्लोक १६*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तत्पश्चात् श्रीमद्वल्लभाचार्यजी की आज्ञा होते ही सूर ने दीनता और विनय के दो पदों का "धनाश्री" राग में गान किया *

(१) प्रभु हौं सब पतितनको नायक ।

(२) प्रभु हौं सब पतितन को टीको ।

ये पद सुनकर श्री वल्लभाचार्यजी प्रसन्न हुए और आपने भगवल्लीला का यशोगान गाने की आज्ञा की । † तब सूर ने कहा कि भगवल्लीला तो मैं कुछ भी समझता नहीं हूँ। तत्पश्चात् सूर की इच्छानुसार आपने साम्प्रदायिक समर्पण दीक्षा दी और श्रीमद्भागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाकर श्रीसुबोधिनीजी का ज्ञान सूर के हृदय में स्थापित किया। तब सूर में भगवल्लीला यश वर्णन करने का सामर्थ्य आया। ‡ और सूर को नवधाभक्ति और प्रेमलक्षणा भक्ति सिद्ध हुई।

श्री वल्लभाचार्यजी ने सूर को समय-समय पर श्रीनाथजी की कीर्तन-संगीत-सेवा करने की आज्ञा दी और पास के "पारासोली" ग्राम में रहने का प्रबन्ध भी करवा दिया । सूर नित्य प्रातः पारासोली से आकर मंगला से शयनपर्यंत की सेवा में ऋतु एवं समयानुसार रागों में कीर्तनों का गान करते हुए श्रीगोवर्धनधरण प्रभु को रिझाने लगे।

श्रीवल्लभाचार्यजी की शरण में आते ही सूर ने सर्वप्रथम मांगलिक राग "धनाश्री" के पश्चात् 'बिलावल' राग तथा अन्य मांगलिक राग 'देवगंधार' में पद-गान किया । पश्चात् श्रीनाथजी के दर्शन करते ही पुनः 'धनाश्री' राग ही प्रभु के सम्मुख गाया था । बाद में संध्या-दर्शन में समय के उपयुक्त राग "गोरी" में कीर्तन-गान सुनाया। पश्चात् सायं सेवा के पूर्ण होने पर पौढ़ने के समय "बिहागरा" राग में कीर्तन सुनाकर कीर्तन-सेवा की। यद्यपि श्रीनाथजी का मंदिर पूर्णतया सं. १५७६ में ही बन कर तैयार हुआ था किन्तु श्रीवल्लभाचार्यजी ने सूरदास को अपनी शरण आते ही श्रीनाथजी के मंदिर में संवत् १५७७ (ई. स. १५२१) में कीर्तनकार की सेवा के स्थान पर नियुक्त किया । सम्प्रदाय के इतिहास में यह भी बतलाया है कि उस मंदिर का अधिकांश भाग संवत् १५६४ में ही बन

---

* *उस समय धनाश्री राग गाने का समय होने से सूरने धनाश्री राग में ही दोनों पदों का गान किया। दूसरा हेतु यह भी है कि धनाश्री राग मांगलिक प्रसंग में ही प्रायः गाया जाता है। सूर के लिए गुरु-मिलन जैसा प्रथम मांगलिक प्रसंग अन्य कौनसा था ?*

† "जीव भगवान सो बिछुर्यो, सो तबसे पतित तो भयो है; ताको बहुत कहा-कहनो, तासों भगवल्लीला गावो, जासों सुद्ध होय"

‡ वही पृष्ठ १३ प्राचीन वार्तारहस्य पृ. १२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गया था। द्रव्याभाव से आगे का काम रुक गया होगा किन्तु श्रीजी को पधराकर सेवा का कार्य आरंभ हो सके इस दृष्टि से श्रीवल्लभाचार्य ने १५६८ में श्रीनाथजी को उक्त मंदिर में विराजमान कर दिया था। अतः सं. १५६७ में सूरदास शरण आये तव उन्हें श्रीनाथजी के कीर्तन-गान की सेवा में नियुक्त किया गया। श्री श्रीवल्लभाचार्यजी के द्वितीय पुत्र श्रीमद्विट्ठलनाथजी का जन्म सं. १५७२ में हुआ था। उस समय सूरदास ने जन्मोत्सव की वधाई का पद-गान किया यह सुप्रसिद्ध है। अतः सूरदास का शरण संवत् १५६७ ही स्पष्ट होता है। *

सूरदासजी ने ऋतु-ऋतु के, उत्सवों के, त्यौहारों के और नित्य क्रम के समय-समय के, तथा विनय, दीनता, विरहादि भक्ति गान को समयानुकूल रागों में एवं विभिन्न तालों में सहस्रावधि पदों के गान द्वारा भगवान् को रिझाकर अपना जीवन धन्य वनाया।

सूर सूरस्वामी से अव सूरदास वन चुके थे। श्रीमदाचार्यचरण जैसे महान् गुरु की कृपा से सूर के हृदय में श्रीमद्भागवत एवं सुबोधिनीजी की समस्त लीला का अनुभव होने लगा। सुबोधिनीजी में मंगलाचरण की प्रथम कारिका "**नमामि हृदये शेषे लीलीक्षीराब्धिशायिनं लक्ष्मीसहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्**" है। इस मंगलाचरण को सुनते ही तदभावानुसार सूर ने "**राग-बिलावल**" में "**चकवीरी चलु चरनसरोवर × × × जहाँ श्री सहस्त्र सहित नित क्रीड़त सोभित "सूरजदास"** यह पद सुनाया। यह सुनकर श्री आचार्यजी वहुत प्रसन्न हुए। सुबोधिनीजी की लीला का ज्ञान सूर के मन में स्फुरित हो चुका है, ऐसा जानकर श्री आचार्यजी ने नन्दालय की लीला के कीर्तन गाने की आज्ञा की। तब सूर ने राग-देवगंधार में "**व्रज भयो महरि कें पूत**" इस वड़ी बधाई का गान किया। यही वड़ी बधाई आज भी पुष्टि-सम्प्रदाय के प्रत्येक मंदिर एवं हवेली में जन्माष्टमी के दिन प्रातः पंचामृत के समय तथा रात्रि को जन्म-समय राग देवगंधार में ही गाने की प्रणाली है।

तत्पश्चात् श्रीमदाचार्य प्रभु गोकुल होकर सर्व सेवकों सहित श्री गोवर्धन पधारे। श्रीनाथजी के दर्शन किये। तव सूरदासजी को भी दर्शन करके कीर्तन गाने की आज्ञा दीं। तव सूर ने **राग–धनाश्री** में "**अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल**"
सूरदास की सबै अविद्या दूर करहु नंदलाल ॥

यह पद सुन कर श्री आचार्यजी ने कहा कि "**सूरदास! तिहारी अविद्या तो प्रथम ही श्रीनाथजी ने दूरि कीनी है। तासों अब तुम भगवल्लीला गावो जामें माहात्म्यपूर्वक स्नेह होय।**" †

---

* *श्रीनाथजी की प्रागट्य वार्ता में सूरदास का शरण-समय सं १५७७ माना है।*

† *प्राचीन वार्ता रहस्य–द्वितीय भाग पृष्ठ–१७*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सायं सेवा का समय था। अतः संध्या समय के मुख्य राग "गोरी" में आदेशानुसार सूर ने भाव-युक्त पद-गान किया—

"कौन सुकृत इन व्रजदासिन को वदत विरंचि शिव शेष"

पुष्टिमार्ग के भावानुसार यह पद सुनकें श्रीमदाचार्यप्रभु अति प्रसन्न भये और ताहि समय आज्ञा करी जो "सूर तुमकों पुष्टि मार्ग को सिद्धांत फलित भयो है, तासों अब तुम श्रीगोवर्धनधर के यहाँ समय-समय के कीर्तन करो।"*

तत्पश्चात् सूर ने शयनान्तर राग—"विहागरा" में मान एवं पौढ़ने के कीर्तन किये।

ऐसी मान्यता है कि सूरदासजी ने सवालक्ष पदों का गान किया था। इनके सवालक्ष पदों के संग्रह का नाम "सूरसागर" था। परन्तु इन सवालक्ष पदों में से बहुत सा पद-साहित्य विधर्मियों के शासन काल में नष्ट हो जाने की मान्यता सुप्रसिद्ध है। फिर भी आज लगभग दश-सहस्र पदों का विपुल साहित्य प्राप्त है। जिनमें से अधिकतर पद "सूर-सागर" ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुके हैं। सूर के भक्ति पद इतने व्यापक हो चुके हैं कि द्रुपद-गायक द्रुपद शैली में, ख्याल-गायक ख्यालों के ढंग में, भजनिक भजन की धुनों में, यही नहीं, ठुमरी-गायक ठुमरी की बंदिश में भी उनके पदों को अपनी पसंद के अनुसार गायन करते हैं। वास्तव में सूर की पद-रचनाएं द्रुपद शैली की है जो अष्टछाप परंपरा में दिखाई देती है।

सूर-सारावली में सूरदास ने ६ राग और ३६ रगिनियों का उल्लेख किया है। उन्हीं के मतानुसार मुख्य ६ राग निम्न प्रकार प्राप्त होते हैं—

१. श्री, २. वसंत, ३. भैरव, ४. पंचम, ५. मेघ, ६. नट। रागिनियों का विवरण राग-संख्या प्रकरण में किया जायेगा।

श्रीवल्लभाचार्यजी की शरण आने के पूर्व सूर की विशेष पसंद के मुख्य १. धनाश्री, २. बिलावल, ३. देवगंधार, ४. गौरी और ५. बिहागरा, पाँच राग थे। उन्होंने शरण आते ही इन पाँचों रागों में श्री वल्लभाचार्यजी को पद-गान सुनाया था। यह हम पहिले देख चुके हैं सूरदासजी के गाये हुए रागों की संख्या का ठीक निर्णय अभी नहीं हो सका है किन्तु सम्प्रदाय के प्राचीन संग्रहों में एवं प्रकाशित संग्रहों में अधिक से अधिक ८४ रागों की संख्या का उल्लेख प्राप्त होता है। "सूर-मल्हार" राग सूरदासजी ने स्वयं संयोजित किया है। तालों में—आदिताल, त्रिताल, सूलताल, मत्तताल, यतिताल, अठताल, चौताल, धमार, झप इत्यादि द्रुपद अंग के तालों का ही विशेषतः प्रयोग किया है तथापि आजकल लोक-समाज में और ग्रामजीवन में उनके पद-भजन को

---

* प्राचीन वार्ता रहस्य—द्वितीय भाग पृष्ठ—१९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दादरा, कहरवा, हींच इत्यादि तालों में और मनमाने रागों की धुनों में गा कर सूर की लोकप्रियता और गौरव की याद दिलाते रहते हैं।

सूर और अकबर बादशाह के मिलाप के प्रसंग में लिखा है कि तानसेन ने **"यह सब जानों भक्त के लच्छन"** यह पद **"नट"** राग में बादशाह को सुनाया और इस पद के रचयिता कवि-गायक सूरदासजी व्रज में रहते हैं, यह परिचय भी दिया। देशाधिपति ने सूर से मिलने की इच्छा प्रकट की। उस समय सूर का मुकाम मथुरा में ही था। सम्मानपूर्वक सूर को बुलाया और विष्णु पद सुनाने को कहा। उस समय सूर ने **"मनारे कर माधो सों प्रीत"** यह पद बिलावल राग में सुनाया। बादशाह प्रसन्न हुआ किन्तु परीक्षा के हेतु उसने सूर से अपना यशोगान सुनाकर इच्छानुसार द्रव्यादि मांगने को कहा। सूर ने शीघ्र ही **"नाहिन रह्यो–मन में ठौर"** यह पद सुनाया। पश्चात् बादशाह ने दो चार ग्राम और द्रव्य देने का हुकुम किया किन्तु लोभ-लालच से परे निस्पृह भक्त सूर ने कुछ भी लेने से इन्कार कर निडरता से कह दिया कि भविष्य में मुझे बुलवाने का कष्ट न करें।

सूर की काव्य-रचना पर बादशाह मुग्ध था। अतः सूर की पद-रचना को प्राप्त करने के लिए हुकुम दिया कि सूरदास के एक पद लाने पर एक मोहर दी जायेगी। मोहर के लालच से अन्य कवि भी "सूर" की छाप लगाकर पद रचकर लाने लगे। बादशाह बुद्धिमान था। सूर के पद-रचना के मर्म की उसे पहिचान थी। एक दिन पं. कवीश्वर को बादशाह ने कहा कि यह सूर का पद नहीं है। कवीश्वर ने कहा कि सूर का ही पद है। उसी समय बादशाह ने सूरदासजी की मूल रचना का एक पद कागज पर लिखा हुआ मंगवाया और कवीश्वर जो लिख लाया था वह भी ले लिया और दोनों कागजों को ले कर जल में डालकर कहा, —"ओ खुदा! जिसमें सांच हो उसका सच्चा न्याय करो!" पंडित का काग़ज जल में डूब गया और जिसमें सूर का पद था वह काग़ज तैरने लगा। तत्पश्चात् नकली पद लाने वाले लज्जित होकर चल दिये।

सूर की पद रचना के संबंध में कहा जाता है कि संगीत सम्राट तानसेन ने एक मनुष्य को तड़फते हुए देख कर ठीक ही कहा था—

"किधों सूर को सर लग्यो, किधों सूर की पीर।
किधों सूर को पद लग्यो, तातें धुनत सरीर॥"

सूरदास के पदों में प्रायः सभी रसों की झाँकी है किन्तु प्रधान शृंगार, शांत, अद्‌भुत, हास्य रस हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साम्प्रदायिक दृष्टि से माना जाता है कि मर्यादा की दृष्टि से नवधा भक्ति में कीर्तन भक्ति जो नारदजी को और श्रीशुक मुनि को सिद्ध हुई थी वह पुष्टि-दृष्टि से सूरदासजी को सिद्ध हुई। सारस्वत कल्प में श्री कृष्ण भगवान के अष्ट सखाओं में "सूर" "कृष्ण" नामक सखा थे। सम्प्रदाय के मुख्य अष्ट स्वरूपों में "श्रीमथुरानाथजी" के स्वरूप में तथा अष्ट दर्शन में "उत्थापन" के दर्शन में, एवं श्रृंगार में "पाग" के श्रृंगार और वर्ण में चंपाई रंग में सूर की आसक्ति मानी जाती है। श्रीअंग के स्थान में "मुखारविंद" कुंज निकुंजों में" नीलम कुंज" लीला में "मानलीला", मनोरथ में "सघनकंदरा" तथा ऋतुओं में "वर्षाऋतु" के प्रति सूर को अधिक अनुराग था।

सूरदास के पद-संगीत की छाया निम्नलिखित महानुभावों के पद-संगीत में महदंश में दिखाई देती है फिर भी यह मान्यता अनुसंधान की दृष्टि से विचारणीय है:—

१. तानसेन, २. जगन्नाथ कविराय, ३. हरिनारायणजी, ४. मुरारीदासजी, ५. मुकुन्ददासजी, ६. जनभगवान, ७. कृष्णजीवन लच्छीरामजी, ८. अलीखान।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भक्त संगीताचार्य-कीर्तनकार

श्री कृष्णदासजी

श्री कृष्णदासजी का जन्म सं. १५५३ (ई.स० १४९७) में गुजरात के (अहमदाबाद जिले के) चिलोतरा (चलोडा) नामक ग्राम में कुनवी (पटेल) जाति में हुआ था। इनके पिता ग्राम के मुखी (मुखिया) थे। ये बाल्यकाल से ही सत्य, सत्संग और कथा वार्ता के प्रेमी थे। उनके पिता धनलोलुप होने से असत्याचरण और अन्याय से धनोपार्जनकर्ता होने के कारण पिता से अरुचि, वैमनस्य और क्लेश बढ़ जाने पर १३ वर्ष की अल्प आयु में ही गृह त्याग कर निकल पड़े और तीर्थयात्रा करते हुए व्रज में आये। १५६७ के लगभग श्री वल्लभाचार्य से मथुरा के विश्राम घाट पर दीक्षा ग्रहण की।* आरंभिक शिक्षा अपने जन्म स्थान में प्राप्त की होगी किन्तु व्रजभाषा, काव्य एवं संगीत का ज्ञान श्री कुंभनदासजी, श्री सूरदास जी, श्री परमानंददासजी एवं पुष्टिमार्ग के अन्य विद्वानों के सत्संग से हुआ होगा तदुपरान्त हिसाब-किताब और कार्य-व्यवहार में कुशल होने के कारण श्री वल्लभाचार्यजी ने पहले उन्हें श्रीनाथजी की भेंट एकत्रित करने के लिए भेंटिया का कार्य सौंप दिया। इन कार्यों के लिये अन्य प्रदेशों में उनका प्रवास बार-बार होता रहता था। उस समय उन प्रदेशों के भक्त, कवि, संगीतज्ञ और विद्वानों के भी सम्पर्क में आप आया करते थे। अतः सम्प्रदाय के एवं सम्प्रदायेतर कलाकारों तथा विद्वानों से काफी परिचय होने के कारण काव्य-संगीत में निपुणता प्राप्त कर ली। धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन, अभ्यास एवं सत्संग से साम्प्रदायिक सिद्धान्त तथा सेवाविधि के पूर्ण ज्ञाता भी बन चुके थे। यही नहीं अष्टछाप के कवियों एवं विद्वानों के प्रेरक होने की योग्यता भी इन्हें प्राप्त हो चुकी थी।

नाभाजी कृत भक्तमाल में कृष्णदास नाम के अन्य कवियों का भी उल्लेख है किन्तु छप्पय संख्या ८१ में दिये हुये वृतान्त से ज्ञात होता है कि वह अष्टछाप के कृष्णदास का ही है। 'कृष्णदास की वार्ता' प्रसंग से ज्ञात होता है कि भेंट लेने के लिये कृष्णदास द्वारिका तक गये थे। वहाँ से लौटते समय मार्ग में मीराबाई का ग्राम आया। मीराबाई के घर गये, वहाँ संत, महंत आदि अनेक स्वामी-साधुओं का मिलाप हुआ। मीराबाई ११ मोहरें श्रीनाथजी को भेंट में देने लगीं परन्तु कृष्णदास ने अस्वीकार किया। इस प्रकार मीराबाई से भेंट का उल्लेख प्राप्त होता

** श्री हरिरायजी कृत भावप्रकाश के अनुसार गोवर्धन में श्रीजी के सम्मुख दीक्षा दी गई थी।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। 'वार्ता-प्रसंग' में श्री आचार्यजी के द्वारा कृष्णदास को श्रीगोवर्धननाथजी के मंदिर के अधिकारी बनाने का उल्लेख किया गया है।* तथापि बंगाली पुजारी उनका अनुशासन न मान कर मनमानी करते थे। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी और गोपीनाथजी के समय तक व्यवस्था इसी प्रकार चलती रही। श्री विट्ठलनाथजी से मिलकर कृष्णदास ने बंगालियों को श्रीनाथजी की सेवा से हटा दिया। किन्तु इस कार्य के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। राजा टोडरमल और बीरबल की सहायता लेनी पड़ी। इस घटना से कृष्णदास का प्रभाव बहुत बढ़ गया और वे मंदिर की सुव्यवस्था में लग गये फलत: श्रीनाथजी की सेवा राजसी ठाठ से होने लगी।

कृष्णदास जी की काव्य, भक्ति और संगीत की पारंगतता से प्रसन्न होकर श्री विट्ठलनाथजी (श्री गुसाँईजी) ने अष्टछाप मंडली में श्रीकृष्णदास को चतुर्थ स्थान देकर सम्मानित किया। "पाछे कृष्णदास श्री गुसाँईजी और श्री गोवर्धननाथजी को साष्टांग दंडवत् करिके अधिकार की सारी सेवा करन लागे। ता दिन तें श्रीनाथजी के अधिकार की गादी बिछवे लगी। श्री गुसाँईजी की आज्ञा लें कृष्णदास गादी ऊपर बैठते।" (वार्ता रहस्य भा. २ पृ. १९७) आज भी इस गादी पर बैठने का सौभाग्य महाराज श्री तिलकायत की आज्ञा से ही प्राप्त होता है। उन्हीं के नाम से 'श्री कृष्ण भंडार' चला आ रहा है, यही नहीं नामा इत्यादि में भी गुजराती भाषा का प्रयोग किया जाता है।

"या भाँति सों कृष्णदास को वैभवभारी और हुकमभारी । सो जहाँ चलें तहाँ रथ, घोड़ा, ऊँट, गाड़ी, सौ-पचास मनुष्य संग। सो कृष्णदास अधिकारी सब देसन में प्रसिद्ध भये"

"सो कृष्णदास नित्य नये पद करिके श्री गोवर्धनधरको सुनावते" (वार्ता रहस्य. पृ: २०२)

कृष्णदासजी ठाठ-बाट और रिसाला के साथ प्रदेश जाया करते थे और जब निज-स्थान पर रहते तब श्रीजी को नित्य नये नये पदों का गान सुनाते थे। मंदिर के कार्यार्थ वे एक बार आगरा गये थे। वहाँ एक नर्तकी को गायन और नृत्य करते हुए देखा। वे उसकी कला पर मुग्ध हो गये और उसको श्रीनाथजी के सम्मुख नृत्य-गान के लिए अपने साथ गोवर्धन लाये। इस घटना का वार्ताप्रसंग में निम्न प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है:—

"सो गान नृत्य सुनि के मन में विचारे जो यह तो अति उत्तम है, और दैवी जीव है, सो श्री गोवर्धनधर के लायक है"

---

* *आज भी श्रीनाथजी के मंदिर के भंडार का नाम इन्हीं के नाम पर 'श्रीकृष्ण भंडार' और पत्र व्यवहारादि मंदिर की व्यवस्था-व्यवहार आज तक 'अधिकारी कृष्णदास' के नाम से चल रहा है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"सो कृष्णदास वहोत प्रसन्न भये तव वाकों रुपैया १००) सौ दिये। और कहे जो तेरो रूप, गान, नृत्य सब आछे हैं। सकारे हम श्रीगोवर्धन जायगें, हमारो सेठ नो उहां है, तेरो मन होय तो चलियो। तव वानें कही जो हमको तो यही चहिए। मन में प्रसन्न भई जो ये इतने रुपैया दिये तो सेठ न जाने कहा देयगो?" "तव वानें घर आयकें गायबे को साज सब आछे वनाय गाड़ी ऊपर धरि राख्यो। सवारे कृष्णदास के पास आई। पाछें कृष्णदास वा वेश्या (नर्तकी) को ले चले। दूसरे दिन मध्यान्ह समय 'गोपालपुर' में आये। पाछें वा वेश्या को न्हवाय के नवीन वस्त्र पहरवे को दियो। तव कृष्णदास अपने मन में विचारे, जो यह ख्याल-टप्पा गायगी सो श्रीगोवर्धनधर सुनेंगे। तासों मैं याकों एक पद सिखाऊँ। तव वाको एक पद सिखायो और कह्यो जो ये पद तू 'पूरवी" राग में गाइयो। पाछें भोग के दर्शन के समय वाको परवत ऊपर ले गये, भोग के दर्शन के किवाड़ खुले। तव वा वेस्या ने पहले नृत्य कियो, पाछें गान करन लागी, कृष्णदास ने पद सिखायो हतो सो गायो—

"मेरो मन गिरिधर छबि पर अटक्यौ।
ललित त्रिभंगी अंगनि ऊपर चलि, गयौ तहाँई ठठक्यौ॥
सजल स्यामघन नील बरन है फिरि चित अनत न भटक्यौ।
'कृष्णदास' कियो प्रान न्यौछावर यह तन जग सिर पटक्यौ॥

सो गावत-गावत छेली तुक आई तव वा नर्तकी की देह छूटि गई, सो दिव्य देह होय लीला में प्राप्त भई।

(प्राचीन वार्ता रहस्य भा.२. पृ. २११-१२)

"पुष्टि सम्प्रदाय के सिद्धांतानुसार आदर्श भक्त वही है जो अपना सर्वस्व भगवान के चरणों में समर्पित कर दे। कृष्णदास जैसे अनन्य सेवक के पास तो कोई भी ऐसी वस्तु नहीं हो सकती जो श्रीनाथजी को समर्पित न हो। उन्होंने सरल भाव से उस वेश्या को भी श्रीनाथजी को अर्पित कर दिया, ताकि वह सदैव उनकी नृत्य-गान की सेवा करती रहे।" (अष्टछाप परिचय पृ. २२४)

उपर्युक्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि कृष्णदासजी केवल गायनाचार्य ही नहीं किन्तु वाद्य और नृत्य के भी ज्ञाता और मर्मज्ञ थे। संगीत के तीनों अंग-गायन, वादन और नर्तन में उनका अनुराग था इसीलिए उनके अधिकतर पदों में रासलीला की भावना दिखाई देती है। इनके पदों में गायन के वाद्यों के एवं नृत्य के पारिभाषिक शब्दों के उल्लेख प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं।

ख्याल, टप्पा तथा द्रुपद, धमारादि प्रवन्ध गान के विविध भेदों के मर्मज्ञ होने के कारण उन्होंने ख्याल-टप्पा के गान में प्रवीण नर्तकी को राग पूर्वी (धमार) में नवीन पद बना कर कर सिखाया और उसी को श्रीजी के सम्मुख गाने के लिए कहा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गया। इस घटना से स्पष्ट होता है कि सम्प्रदाय में श्रीजी के सम्मुख ध्रुपद धमारादि प्रबन्ध-गान के अतिरिक्त ख्याल–टप्पादि का गायन करना उस समय से प्रतिबंधित माना जाता है। इस मर्यादानुसार पुष्टिमार्गीय संगीत में कीर्तनों की गान-शैली ध्रुपद-धमार पद्धति की अभी तक प्रचलित है। यदि आज का कोई कलाकार या कीर्तनकार सम्प्रदाय के पदों को आधुनिक ख्याल -ठुमरी पद्धति में गायन करता हुआ दिखाई देता हो तो यह कृत्य सम्प्रदाय की परंपरा शैली के विरुद्ध मानना चाहिए।

कृष्णदासजी के अधिकार-समय में ही श्री विट्ठलनाथजी ने श्रीनाथजी की सेवा का वैभव बढ़ाया और सेवा राजसी ठाठ से होने लगी। मंदिर के विभिन्न कार्यों के लिए बहुत से कर्मचारी नियत किये गये। मंदिर के भीतर की नित्य सेवा के मुखिया, भीतरिया, कीर्तनिया, पखावजी इत्यादि तथा बाहर की सेवा में रोकड़िया, भंडारी, भेंटिया, समाधानी, दरजी, सुनार तथा गायों की सेवा में ग्वालादि सेवक नियुक्त किये गये। उनके नेग-बंधान का प्रवन्ध भी किया गया, जिनमें पखावजी की नियुक्ति के संबंध में वार्ता प्रसंग ३ में निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होता है–

"जब श्री गोवर्धननाथजी को वैभव बढ़्यो तब कृष्णदास के मन में आई जो मृदंगी चाहिए। तब श्री गोवर्धनधर कहे जो गोकुल में स्याम कुम्हार है सो मृदंग आछौ बजावत है। ताको श्री गुसांइजी को कहिकै यहाँ राखो। कृष्णदास ने श्री गुसांईजीसों कह्यो जो प्रभुन की यह इच्छा है। तब श्री गुसांईजी आपु स्यामकुंहार को गोकुल तें बुलाय कें श्रीनाथजी की सेवा में राखे"। (भावप्रकाश)

"तब कृष्णदास जी ने स्यामकुम्हार को बुलाय के कह्यो जो श्री गोवर्धननाथजी की इच्छा आजु परासोली में रास करबेकी है, सो मृदंग ले आवो। तब स्यामकुम्हार ने कह्यो जो मोहू को भी आज्ञा दीनी है, तासों मृदंग ले के आया हूँ। सो जब सेन आरती होय चुकी तब वे परासोली में चंद्र सरोवर है तहां आये। देखें तो श्रीगोवरधनधर और स्वामिनी जी सगरी सखीन सहित विराजे हैं। तव श्री गोवर्धनधर ने श्यामकुम्हार सों कही जो–तू तो मृदंग बजाव और कृष्णदास सों कह्यो जो-तू कीर्तन गाव। सो चैत्र सुद पून्यो के दिन रात्रि प्रहर डेढ़ गई, उजियारी फैल गई, अलौकिक रात्रि भई। तब श्यामकुम्हार ने मृदंग बजाओ।* श्री गोवर्धनधर श्री स्वामिनीजी सहित नृत्य करन लागे। ता समय कृष्णदास ने यह पद गायो सो पद राग केदारो––

१. 'श्रीवृषभानु-नंदिनी नाचति लाल गिरिधर संग,
लाग डाट उरप तिरप रास रंग राच्यो।
झपतालहिं मिल्यौ राग केदारो सप्त सुरनि,
अवघर वर सुघर तान, गान, रंग राच्यो ॥१॥

---

* वार्ता रहस्य प्रसंग ३ पृष्ठ २०३ से २०५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पाई सुख सुरति सिद्धि, भरत काव्य विविध रिद्धि,
अभिनय दर्शित सुहाग हुलास रंग-राच्यौ ।।

वनिता सतयूथप पिय, निरखि थक्यौ सघन चंद,
वलिहारी 'कृष्णदास' सुजस--रंग--राच्यौ ।।२।।

"यह पद सुनि के श्रीगोवर्धनधर प्रसन्न होय के अपने श्री कंठ की प्रसादी कुंद-कुसुमन की माला दीनी। कृष्णदास अपनो परम भाग्य माने, सो रोम रोम में आनंद भरि गयो, तव इसमें मगन होयके यह पद गायो। राग-मालव–

२. "अलाग लागनि उरप तिरप गति, नटवत ब्रजललना रासे ।।
उघटत शब्द ततथेई ताथेई, मृगनैनी ईषद् हासे ।।१।।
चापल (चाली) छंद जानावति गावति वांधति मदन भौंह पासे ।।
अवघर तान मान बंधान सों, मोहति विस्व चरन-न्यासे ।।२।।

नूपुर रुनित क्वनित मनि-मेखला, कटि-तट काछनी नील सुवासे
चलत उरज-पट किंकिनी कुंडल, श्रमजंल-कन सोभित आसे ।।
मोहनलाल गोवर्धनधारी, रिझवत छैल सुघर लासे ।।
अपने कंठ की श्रमजल-दल की, माला देति 'कृष्णदासे' ।।४।।

३. 'ततथेई रास मंडल बनि नाचत, पियके संग प्रीतम प्यारी ।।"

४. चंद गोविंद गोपी तारागन, वन्यो है रास में बनवारी ।।"

इस प्रकार कृष्णदासजी ने रास के पद-गान द्वारा स्वयं श्रीनाथजी एवं श्री स्वामिनीजी को रास-लीला में निमग्न किया। सूर, कुंभन और परमानंद के समान श्री कृष्णदासजी की वाणी भी भावप्रधान है, किन्तु संगीत विषयक प्रधानता सूर में अधिक दिखाई देती है। प्राचीन-रागिनी परिवार व्यवस्था की ६ राग और ३० रागिनियों तथा ६ राग और ३६ रागिनियों की शास्त्रीय मान्यता में अष्टछाप के सूर, परमानन्द और कृष्णदास के अतिरिक्त ५ सखाओं ने ६ राग और ३०, रागिनियों को तथा सूर, परमानन्द और कृष्णदास ने ६ राग और ३६ रागिनियों को प्राधान्य दिया है। सूर और कृष्णदास ने अपने उत्तर काल में इनसे अधिक रागों में भी गान किया है।

कृष्णदासजी के पदों में इन रागों का उल्लेख प्राप्त होता है–(१) भैरव, (२) रामकली, (३) ललित, (४) मालकौंस, (५) खट, (६) रामग्री, (७) देवगंधार, (८) विभास, (९) हिंडोल, (१०) वसंत, (११) पंचम, (१२) विलावल, (१३) सूहा (१४) गुर्जरी, (१५) टोडी, (१६) धनाश्री, (१७) आसावरी, (१८)सारंग, (१९),

---

१, २, ३, ४ सम्प्रदाय की प्रणाली में ये सभी पद शरद् पूर्णिमा को रास के दर्शन समय गाये जाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सोरठ, (२०) मेघमलार, (२१) मलार, (२२) नट नारायण, (२३) मालव गौड, (२४) नट, (२५) गौरी, (२६) मालव, (२७) पूर्वी, (२८) श्री, (२९) मारू, (३०) काफी, (३१) ईमन, (३२) कल्याण, (३३) हमीर, (३४) केदारो, (३५) कान्हरो, (३६) सुघराई, (३७) नायकी (३८) अड़ाना, (३९) जैजैवंती, (४०) रायसा, (४१) विहाग, (४२) विहागरो ।†

तदुपरांत–खमाच, चैती-गौरी सोरठ-मलार ईमन-कल्याण, स्याम-कल्याण के भी उल्लेख पाये जाते हैं; जो इनके उत्तरकाल में गाये हुए होंगे।

संगीत की शास्त्रीय व्याख्यानुसार कृष्णदास जी ने गायन, वादन और नर्तन, इन तीनों कलाओं का विनियोग भगवल्लीलामय कीर्तन गान में किया है उसके कुछ उदाहरणों का उल्लेख यहाँ उपयुक्त होगा–

(१) गायन के अंतर्गत गान और राग–गान के वड़ी संख्या में पद प्राप्त होते हैं। जैसे (अ) गान–संवंधी:—

(१) कमलनयन मिलि गावति राधा सारंग नैनी। (राग–कल्याण)

(२) नव किसोरी नवकिसोर संग मिलि गावै। (राग–कानरो)

(३) राधा प्यारी गावति गोविंदहि रिझावति। (राग–टोडी)

(४) सुधर राधिका मृदु मधुर गावै (राग–सारंग)

(व) राग–गान

(१) कमलनयन कमनीय मुरलिका, जवहिं, अलापि प्यारी राग सारंग।

(२) नेंकु सुनावहु राग कानरौ, वलि वलि वलि मुरली कल गायक,।

(३) कान, लाग्यौ गिरधर गावै।
ततथेई ततथेई ततथेई, ततथेई भैरो राग मिलि मुरली वजावै ॥

(४) तू गिरिधर नवरंगी ॥
रगमगी गौरी–राग अलापति, मिलत मधुर सुर तान तरंगी ॥

(५) सरिगमपधनि स्वर सप्त अलंकृत, श्रीराग गावै व्रज-भामिनी ॥

(६) मोहन मूरति मिलहि गोपालै।
सुनि सुंदरि पिय सुविधि रिझावहि, राग कल्याण सुगति....

(७) मुरली वाजे मधुर रसाल। सुनहि कान दै रसिक राधिके,

---

† इस संवंध में विशेष विवरण 'राग-संख्या' प्रकरण में देखिए

'कृष्णदास' काँकरोली प्रकाशन के आधार पर निर्धारित।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

केदार राग रचि रूपक तालें ।।

इस प्रकार अधिकतर 'सारंग' और 'कान्हरा' रागों के पद अधिक दिखाई देते हैं।

गायन के उपरांत मृदंग, वेणु (बंसी), रवाब, वीणा, मंदिलरा आदि वाद्य-वादन एवं नृत्य के भावात्मक पद-गान के विविध प्रकार भी निम्नलिखित उदाहरणों से देखिए:—

(१) (मृदंग-वादन) राग—गौड़-मल्हार

(स्थायी)– बाजत मृदंग उघटित सुधंग तक्कझं तक्कझं
धुमकिटता धुमकिट धुमकिट धिलांग तक ।

(अंतरा)– द्रगदां द्रगदां धिन्न दाना दनन,
रटत झौंस झौं झौंस तक ।।१।।

(संचारी)– मति बादर गरज घन दामिनी लरज,
अलाप लेत खरज होत अनुपम तरज ।।१।।

(आभोग)– 'कृष्णदास' प्रभु पास पूरन भई आस, नृत्य,
करत रस बिलास, थोंदिग् थोंदिग् तक थुंग तक थुंग तक ।।१।।

(ब) राग—ईमन

स्थायी– बाजै, हो मृदंग, तक धिंधिंताता तिकट
तिकट धिंधिंता थोंदि ताधिलांग ।।

अंतरा– धिलांग धिलांग तकि तकि धीधीकट धीधीकट
थुंथुंनाना गिडगिड बाजै, हो मृदंग ।

संचारी– मात्रा पंच संच प्रथम पदी विस्तार
मंद्र मंधरु तार को तामें साजे, बाजे, हो मृदंग ।

आभोग– कहै कवि 'कृष्णदास' इहि विधि लाडिलो लेत तान,
गिडि गिड धीधी गिड गिड बाजै, हो मृदंग ।।

वाद्य-वादन

वेणु-वादन:–(१) बेनु धर्यो रसिक कुंवर बलबीर
(२) ऐसी बंसी बाजै बन घन में, व्यापि रही धुनि ।
युगल वेणु-वादन:–

(१) सिखवत पियहि बजावन बंसी ।
रूप रासि गुन रासि किसोरी, वाम बाहु धरें प्रति वाम अंसी ।।१।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(२) अलापति भामिनी लेति उरप गति नागरि नारी ।
वाही के संग बेनु बजावत, सुघर राइ गिरिधरधारी ॥१॥

रवाब-वादनः–

(१) "पियके आगे वजावति रवाब चूकी री, सुघराई मैं जानी तेरी"
(२) "मन अनत ही डीठि अनत रवावहि कहा बजावति बैठी ।"

वीणा-वादन:

(१) रिझवत रसिक गोपाल कुँवर को ......
कर बीना लीने गति मिलवति, सुनु नागरि पटताल धरति"

मंदिलरा-वादनः–

(१) धिधितां तांतांतां धित्रां धित्रां मंदिलरा बाजै ।

नृत्य–

(१) नाचत है नागर बलबीर ।

(२) नृत्यमान रास-रंग, कान्ह संग घोख नारि"

नृत्त– (१) नृत्तति सुधंग अंग रंग-संग राधिका"

(२) नृत्तति गोपाल संग राधिका बनी"

(३) निर्तत गावत बजावत"

नाट्यः– (१) "स्याम सजनी सरद रजनी पुलिन मध्य नृत्य नाट्य"

(२) "नाचनि रास में लाल विहारी । ....
कृष्णदास नट नाट्य सुघर अति, कुसल केलि गोवर्धनधारी"

उपर्युक्त प्रकार के अनेक पदों के गायक 'कृष्णदासजी 'ने अपने कीर्तनों में संगीत (गीत, वाद्य और नृत्य) के अनेक* पारिभाषिक शब्दों का समावेश किया है। तदुपरान्त वाद्यों के भी विविध नामोल्लेख प्राप्त होते हैं । उदाहरण रूप में इनका वसंत खेल का एक निम्नलिखित पद देखिए:–राग-वसंत

---

* इनके पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख "हवेली संगीत में संगीत के पारिभाषिक शब्द" प्रकरण में किया गया है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"देखौ राधा-माधौ बन-विहार, ...

"तहाँ बाजत ताल मृदंग चंग, बाजै ढफ सहनाई अरु उपंग।
वीन* रवाव किन्नरी की घोर, बिच सिरिमंडल मुरली की रोर ।।
तंबूर सारंगी† सितार संग, खंजरी कठताल ढोलकी रंग ।
अछवट महुवर सुर मिलाई, झांझ झमक बाजै गिने न जाई ।।"

यही नहीं इनके कुछ पदों में राग की जाति और स्वरों का भी उल्लेख किया गया है– जैसे–

"नितंत आवत गावत वजावत, सासा गग मध मध निध मध ओंडव सुर राग हिंडोल"

उपर्युक्त प्रकार के संगीतपरक विपुल पदों से श्री कृष्णदास ने अष्टछाप परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। सम्प्रदाय के नित्य-नैमित्तिक आदि सभी प्रकार के उन्होंने लगभग १२०० पदों का गान किया है। पद गान-संख्या की दृष्टि से सूर और परमानंद के पश्चात् कृष्णदासजी का स्थान सुप्रसिद्ध है। संगीत की दृष्टि से सूर, परमानंद एवं गोविंदस्वामी के समान कृष्णदास को भी संगीताचार्य के रूप में देखना उचित होगा। यद्यपि सम्प्रदाय में सूर, परमानंद और गोविंदस्वामी अष्टमहानुभावों में संगीताचार्य के रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। हमारे मतानुसार कृष्णदासजी के काव्य-संगीत-ज्ञान में इन महानुभावों से कोई विशेष अंतर नहीं था। तथापि इनका प्रसिद्धि से वंचित रहने का एक कारण यह है कि वे तीनों महानुभाव सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही संगीतज्ञ एवं गायक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे : किन्तु कृष्णदासजी दीक्षित होने के पश्चात् सूर, कुंभन और परमानंदजी के सत्संग से तथा पर्यटन में अनेक संगीतज्ञों से परिचय प्राप्त होने पर संगीत के विशेष ज्ञान से सम्पन्न हुए। तदुपरान्त ये अधिकारी के स्थान पर होने से मंदिर की अनेक प्रकार की व्यवस्था में रत होने के कारण अधिकतर दिनभर के कार्यों से निपटकर सायं शयन के दर्शन में ही उपस्थित रहते थे। किसी दिन अवकाश मिलने पर ही 'राजभोग' के दर्शन में उपस्थित रहा करते थे। अतः कीर्तन-संगीत की ख्याति की अपेक्षा निडर शासक, योग्य प्रवंधक, कार्यदक्ष और व्यवहार-कुशल मुख्य अधिकारी पद की ख्याति जीवन पर्यंत अधिकार की सेवा के कारण सम्प्रदाय में अधिकतर प्रसिद्ध होती रही। फलतः संगीताचार्य की दृष्टि गौण वन गई और उन्हें अधिकारी पद की दृष्टि से सम्प्रदाय के विद्वान् देखने लगे।

पुष्टिमार्गीय भावनानुसार कृष्णदास का लीलात्मक रूप ऋषभ सखा एवं 'ललिता' सखी का माना जाता है। लीलासक्ति में रास-लीला, स्वरूपासक्ति में श्री मदनमोहनजी का स्वरूप, शृंगारासक्ति में मुकुट का शृंगार और दर्शन में 'शयन' के दर्शन में ये अधिक आसक्त थे।

---

* † इन वाद्यों का उल्लेख अष्टछाप में केवल कृष्णदासजी ने किया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीताचार्य परमानन्ददासजी

अष्टछाप के भक्त कवि और कीर्तनकार श्री परमानंददास जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनका जन्म सं. १५५० (ई. स. १४९४) की मार्गशीर्ष शु. ७ सोमवार को हुआ था। इनके पिता सामान्य स्थिति के थे। दान पुण्यादि द्वारा जीविका चलाते थे। परिवार में शिष्य-सेवक बनाने की परंपरा थी। यथासमय यज्ञोपवीत संस्कार किया और साहित्य तथा संगीत की शिक्षा दिलाई।

सोलह वर्ष की वय होने पर पिता ने उनका विवाह करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु परमानंददास जी ने विवाह करने का तथा विवाह के लिये द्रव्य एकत्रित करने का भी निषेध कर दिया। अनन्तर उनके पिता द्रव्य कमाने के लिये दक्षिण की ओर चले गये। तब परमानंददासजी भगवद्-कीर्तन के लिए समाज एकत्र कर भजन-पूजन और कीर्तन में अपना समय व्यतीत करने लगे; जिससे आपने सूरदास जी के समान स्वल्प समय में ही प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। इनके कई शिष्य भी होने लगे अतः परमानंद जी 'स्वामी' कहलाने लगे। स्वरचित पदों को वे ऐसे मधुर कंठ और उत्तम रीति से गाते थे कि श्रोता गण मुग्ध हो जाते थे। इन शिष्यों की दी हुई भेंट के कारण ये जीविका के संबंध में निश्चिन्त थे। छब्बीस वर्ष की वय तक उनकी जीवनचर्या का यही क्रम बना रहा। सत्संग, कीर्तन और संगीत के अनुरागी होने से ये कभी-कभी आसपास देशाटन करने भी जाया करते थे और कीर्तन-भजन का आयोजन एवं साधु, संतों, ब्राह्मणों की सेवा भी किया करते थे।

आप संवत १५७६ में कुंभ मेले के समय प्रयाग आये और कुछ समय तक वहीं रह गए। प्रयाग में रहकर भी ये भजन-कीर्तन-संगीत का पूर्ववत् प्रचार कर रहे थे; जिसके कारण वहाँ पर भी खूब प्रसिद्ध हो गये। आसपास के अनेक साधु, और भक्त-जन भी उनके कीर्तन का आनंद लेने के लिये एकत्रित हुआ करते थे।

परमानंददासजी के प्रयाग-निवास के समय यमुना के दूसरी ओर अडैल ग्राम में श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभु का निवास था। प्रयाग में प्रति रात्रि होने वाले भजन कीर्तन-समाज की बात श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के परिकर में भी पहुँच चुकी थी। प्रत्येक एकादशी को रात्रि भर जागरण करते हुए भजन-कीर्तन करने का परमानंदस्वामी का नियम था। श्रीवल्लभाचार्यजी का सेवक कपूर जलघरिया कीर्तन-गान प्रेमी था। ज्येष्ठ शु. ११ की रात्रि को कपूर जलघरिया सेवा के अनंतर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परमानंद स्वामी के भजन-कीर्तन सुनने को अडैल से प्रयाग चल दिया। सायंकाल के पश्चात् यमुना पार करने के लिये कोई नाव नहीं थी किन्तु उसकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी अतः वह तैर कर यमुना पार गया। परमानंददासजी के समाज में अन्य सेवकों ने उन्हें पहिचान कर आगे बैठाया। तब अड़ैल में श्री महाप्रभुजी की उपस्थिति का परमानंदस्वामी को ज्ञान हुआ।

कीर्तन समाप्त होने पर कपूर क्षत्रिय ने भगवत्स्मरण किया और अडैल जा पहुँचा। इधर जागरण के कारण परमानंद स्वामी की आँखें कुछ झपक गयीं और स्वप्न में उन्हें श्रीवल्लभाचार्य के पास जाने की प्रेरणा हुई। प्रातःकाल होते ही श्रीमहाप्रभुजी के दर्शनार्थ वे अडैल जा पहुँचे। संध्या-वंदनादि के अनंतर उनको महाप्रभुजी ने भगवल्लीला के पद गा कर सुनाने की आज्ञा की। तब उन्होंने विरह का निम्नलिखित पद गाया——

जिय की साध जिय में रही री।

विरह के पद सुनने के बाद श्रीआचार्यजी ने वाललीला के पद गाने का आदेश दिया, परन्तु परमानंददासजी ने प्रभु की बाल-लीला से अनभिज्ञता प्रकट की। तव कपूर क्षत्रिय के कथनानुसार वे स्नान कर श्रीवल्लभाचार्यजी के समीप पहुँचे उन्होंने श्री नवनीतप्रियजी के सम्मुख परमानंददासजी को नाम सुनाकर ब्रह्मसंबंध दीक्षा दी, और वाललीला की स्फूर्ति के लिये श्रीमद्भागवत दशम-स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाई।

बाद में 'परमानंददास' जी ने **'माईरी कमल नैन स्यास—सुन्दर झूलत है पलना'** इस पद का राग आसावरी में गान किया तथा राग-बिलावल में **'जसोदा तेरे भाग की कही न जाइ'** पद गाया। (यह वह आज भी पलना के समय इसी राग में गाया जाता है।) बिलावल में ही **'मनिमय आंगन नंद के खेलत दोऊ भैया'** सुनाया। (यह बाललीला के दिनों में विलावत में ही गाया जाता है।)

परमानन्ददासजी का पद राग—कान्हरो में **'प्यारे हरि को बिमल जस गावत गोपांगना'** आज भी बधाई के दिनों में गाया जाता है।

इस प्रकार आपने बाललीला-पलना के पद गाये। तब श्री आचार्यजी बहुत प्रसन्न होकर बोले—जो अब समय-समय के पद नित्य नवनीतप्रियजी को सुनायो करो। यह सेवा तुमको दीनी" "सो. परमानंददास नित्य नये पद श्रीनवनीतप्रियजी को सुनावते। अनोसर होय तब श्रीआचार्यजी के आगे व्रजलीला के अनेक कीर्तन करते। श्रीआचार्यजी सुबोधिनी की कथा जा समय जा प्रसंग की सुनावते ताही प्रसंग के कीर्तन कथा भये पीछे सुनावते। (वार्ता प्रसंग—१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परमानंददासजी ने श्री आचार्यजी सों श्रीठाकुरजी के चरणार्विद को महात्म्य कथा में सुन्यो ता समय तैंसोई पद कान्हरा राग में 'चरन कमल बंदों जगदीस' यह पद गायो (आज भी महात्म्य के चार पदों में यह पद गाया जाता है।)

ता पाछे श्रीआचार्यजी अडैल तें व्रजको पधारे तब परमानंददासजी ने अपने ग्राम कन्नौज में अपने घर पधराये। रसोई करवाई, भोग सराय आपु भोजन कियो। पाछें श्रीआचार्यजी ने कछू भगवद्-जस गायबे की आज्ञा करी। परमानंददास जी ने राग-सोरठ में 'हरि तेरी लीला की सुधि आवै' गायो यह 'पद सुनते ही श्रीआचार्यजी लीला में मग्न होय गये। जो चौथे दिन सावधान होय के नेत्र खोले, तब सब वैष्णव प्रसन्न भये।

इस प्रकार परमानंददासजी की वार्ता के सभी प्रसंगों में विविध लीलाओं के अनेक पद विविध रागों में गाये हुए प्राप्त होते हैं। परमानंददास कृत पदों में उन्होंने श्रीकृष्ण जन्म से लेकर बाललीला मथुरागमन भ्रमरगीत प्रसंग तक का गायन किया है। तदुपरान्त आपके द्वारा रचित वर्षोत्सव के पद और अनेक स्फुट पद भी मिलते हैं। उनके पदों का संग्रह भी उनके जीवनकाल में ही हो गया था। जो 'परमानंद सागर' के नाम से प्रसिद्ध है जिनका प्रकाशन काँकरोली विद्याविभाग से हो चुका है। इनमें प्राय: २००० पद हैं। इसका संपादान सं. १६४२ से १६८० के बीच की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया हुआ है अत: यह अत्यंत प्रामाणिक है।

अष्टछाप में विविध लीला गायन के कारण यद्यपि सूरदास सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं तथापि किशोरलीला गायन में श्री कुंभनदास और बाललीला गायन के लिए परमानंददासजी की ख्याति है।

ध्रुवदास ने आपके पद गायन की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

परमानंद अरु सूर मिलि, गाई सब व्रज-रीति।
भूलि जात विधि भजन की, सुनि गोपिन की प्रीत ॥

नाभाजी कृत भक्तमाल में चार परमानंदों के उल्लेख में से एक 'परमानंद सारंग' का विवरण इस प्रकार मिलता है—

पौगंड बाल किसोर, गोप लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात, हुतौ पहिलौ जु सखाई ॥
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन।
गद–गद गिरा उदार, स्याम सोभा भीज्यौ तन ॥
सारंग छाप ताकी भई, स्रवन सुनत आवेस देत।
व्रजवधू–रीति कलिजुग विषै, परमानंद भयो प्रेम केत ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपर्युक्त वर्णन अष्टछाप के परमानंददास का ही है। परन्तु 'सारंग छाप' के विषय में कोई स्पष्टीकरण संतोषजनक प्राप्त नहीं होता। 'अष्टछाप-परिचय' में उनकी समालोचना में निम्नलिखित विवरण मिलता है—

"अंतर केवल छाप के संवंध में है। इनके काव्य में 'परमानंद' 'परमानंददास' 'दास परमानंद', 'परमानंद प्रभु' और 'परमानंद स्वामी' की छाप मिलती है, किन्तु 'परमानंद सारंग' की छाप उपलब्ध नहीं होती है।" "भक्तमाल के सारंग शब्द का कोई भी कारण हो किन्तु उसका उपर्युक्त छप्पय अष्टछाप के परमानंद से ही सबंध रखता है"।

डॉ. दीनदयाल गुप्त ने इस संवंध में लिखा है—

"परमानंददासजी के जितने पद उपलब्ध हैं उनमें दो-तीन पदों में ही सारंग शव्द लेखक ने कवि के नाम के साथ देखा है। अन्यथा सारंग शब्द पदों में नहीं आता। इतनी वात अवश्य देखने में आती है कि परमानंददास के आधे से अधिक पद सारंग राग में लिखे हुए हैं"*

डॉ. दीनदयाल जी ने दो-तीन पदों में कवि के नाम के साथ "सारंग' शव्द देखा है। यदि आप उन पदों को प्रस्तुत करते तो ठीक था। अन्यथा १४०० पदों में से दो पदों में किया हुआ 'सारंग' शव्द प्रयोग किसी दूसरे अर्थ में भी हो सकता है ? क्या नाभाजी को १४०० में से ये पद ही प्राप्त हुए होंगे ? "परमानंद-दासजी के आधे से अधिक पद 'सारंग' राग में लिखे हुए हैं" यह विधान भी हमें जंचता नहीं है। क्योंकि अधिक प्रमाण में गाये हुये राग नाम के आधार पर कवि की छाप उस राग के नाम की लग जाने का कोई अन्य उदाहरण प्राप्त नहीं होता है। संख्या की दृष्टि से सारंग राग के पदों की संख्या आधे से अधिक नहीं है किन्तु कम अर्थात् ४२ प्रतिशत है।

हमारा मत है कि यहाँ मूल ग्रन्थ में लिखने वाले की या लिखाने वाले की उच्चारण में या सुनने में या लिखने में कुछ गलती मालूम होती है। वास्तव में यह 'सारंग' नहीं 'सागर' शव्द होना चाहिए। परमानंदजी के देहान्त समय जव श्रीगुसाँईजी ने आपको 'सागर' संवोधन किया था तवसे अष्टछाप के परमानंदजी को 'सागर' नाम से ही अधिकतर लोग पहिचानने लगे थे। नाभाजी का भी चार परमा-नंदों में जाको 'सागर' की छाप प्राप्त भई है, सागर छाप ताकी भई' कहने का हेतु यही होना चाहिए। परमानंददास अपने जीवनकाल में में ही 'सागर' कहलाने लगे थे जिनका उल्लेख "८४ वैष्णवन की वार्ता" में है

---

* *अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ—११३,*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"परन्तु सूरदास और परमानंददास ये दोऊ 'सागर' भये। इन दोउन के कीर्तन की संख्या नांही. सो दोऊ 'सागर' कहवाये। (पृष्ठ-४२) "पुष्टिमार्ग में दोइ 'सागर' भये। एक तो सूरदास और दूसरे परमानंददास" (पृष्ठ ५०)

परमानंदजी ने पद-गान में संगीत के जिन पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है, वे निम्न लिखित है—

(१) राग, नाद, संगीत, अलाप, नृत्य, निर्त, जाति, तत्थेई, उरप, तिरप, हस्त-भेद, इत्यादि।

वाद्यों के नाम निम्न प्रकार प्राप्त होते हैं:—

अ. वेनु, मुरली, महुवरि, चंग, भेरि,

ब. वीना (बीन), रवाव, श्रीमंडल (सुरमंडल)

क. मृदंग, पखावज, मुरज, रूंज, दमामा, डफ, ढोल, उपंग,

ड. किन्नरी, झालर, झाँझ, दुंदुभी।

परमानंददासजी ने जिन रागों में कीर्तन गान किया है, उनकी संख्या ४२ प्राप्त होती है, जो निम्न प्रकार है:—*

(१) ललित, (२) मालकोंस, (३) भैरव, (४) रामकली, (५) रामग्री, (६) देवगंधार, (७) विभास, (८) खट, (९) वसंत, (१०) परज, (११) पंचम, (१२) बिलावल, (१३) सूहा, (१४) गुर्जरी, (१५) टोडी, (१६) आसावरी, (१७) धनाश्री, (१८) सामेरी, (१९) सारंग, (२०) सोरठ, (२१) मल्लार, (२२) देसाख, (२३) नट, (२४) गौरी, (२५) मालव, (२६) पूर्वी, (२७) श्री, (२८) जेतश्री, (२९) मालश्री, (३०) मारू, (३१) काफी (३२) हमीर, (३३) ईमन, (३४) कल्याण, (३५) केदारो (३६) जैजैवंती, (३७) कानरो, (३८) नायकी (३९) रायसो (४०) अडानो, (४१) बिहाग, (४२) बिहागरो,

उपर्युक्त राग-संख्या से ज्ञात होता है कि सूरदसजी की मान्यतानुसार ६ राग और प्रत्येक राग की ६ भार्याएँ पद्धति को परमानंददसजी ने भी मान्य किया है, किन्तु दोनों के राग-नामों में पूर्ण समानता नहीं है, कुछ अन्तर दिखाई देता

* 'परमानंद सागर' कांकरोली प्रकाशन के आधार पर.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। संगीत की दृष्टि से सूरदास के समान आपने भी विविध अंगों से राग-गायन किया है।

साहित्य दृष्टि से कहा जाता है कि "इस प्रकार की रचनाएँ अष्टछाप के सभी कवियों के काव्य में मिलती हैं, किन्तु सूरदास, परमानंददास और नंददास की रचनाएँ सर्वश्रेष्ठ हैं।"*

व्रज में आने के पश्चात् उन्होंने अपना शेष जीवन पद-रचना एवं कीर्तन-गान की सेवा में लगाते हुए ९१ वर्ष की अवस्था में भगवल्लीला में प्रवेश किया।

* अष्टछाप परिचय—पृष्ठ १८१,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीताचार्य गोविन्दस्वामी

गोविंदस्वामी सनाढ्य ब्राह्मण थे। भरतपुर जिले के आंतरी ग्राम में सं. १५६२ (ई. स. १५०६) में उनका जन्म हुआ था। इनकी एक लड़की थी। कुछ समय पश्चात् इन्हें संसार से विरक्ति हो गयी और व्रज के महावन ग्राम में जा कर रहने लगे। शास्त्रोक्त विधि से महावन के ऊँचे टीलों पर बैठकर भगवद्गुण-गायन किया करते थे। वे उच्चश्रेणी के संगीताचार्य एवं उत्तम गायक और कवि थे। गान विद्या के उत्तम ज्ञाता होने के कारण इनके अनेक शिष्य थे, इसीलिये वे 'स्वामी' कहलाते थे। कोई शिष्य इनसे पद-गान सीख कर गोकुल जा कर श्री गुसाँईजी को पद सुनाता तो वे प्रसन्न होते और उसे प्रसाद से सम्मानित करते थे। इस प्रकार ये परोक्ष रूप में श्रीगुसाँईजी से परिचित हो गये थे।

एक समय श्रीगुसाँईजी के एक सेवक से इनका सत्संग हुआ और आपने भगवद्लीला के दर्शन की आतुरता उनके समक्ष प्रकट की। उस वैष्णवों की प्रेरणा से ये गोकुल गये। वहाँ गुसाँईजी के स्वरूप का और श्री ठाकुरजी की बाललीला के रसात्मक रूप का साक्षात्कार हुआ। तब वे श्री गुसाँईजी की शरण में सं. १५९२ में आये। उस समय आपने राग-सारंग में निम्नलिखित पद गा कर अपनी कृतज्ञता एवं आसक्ति प्रकट की—

"श्रीवल्लभनंदन रूप अनूप स्वरूप कह्यो नहिं जाई।
प्रगट परमानंद गोकुल बसत है, सब जगत को सुखदाई ॥१॥
भक्ति मुक्ति देत सबको निजजन पर कृपा बरखत अधिकाई ॥
सुखमय सुख रूप एक रसना कहां लौं बरनों 'गोविंद' बलजाई॥२॥

'गोविंदस्वामी' तब से 'गोविंददास' बन गये। शरण आने के पश्चात् श्री गोविंद स्वामी को श्रीजी की कीर्तन-गान की सेवा में सम्मिलित किया गया। जब अष्टछाप की स्थापना हुई तब श्री गुसांईजी ने इनकी योग्यता देखकर (सं. १६०७ में) गोविंददासजी को आठों कीर्तनकारों में मुखिया (मुख्य गायक) का स्थान दिया। यद्यपि उनके पूर्ववर्ती श्रीसूरदासजी, श्री परमानंददासजी तथा श्रीकृष्णदासजी भी उच्चकोटि के गायक थे किन्तु कृष्णदासजी अधिकारी के स्थान पर थे तथा सूरदास जी और परमानंददासजी वृद्ध हो चुके थे अतः गोविंददास को मुख्य स्थान दिया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गया । आज भी श्रीजी के कीर्तनकारों में मुखिया की गद्दी में गोविंदस्वामी की भावना की जाती है।

अष्टछाप कीर्तनकारों में श्रीकुंभनदास और 'गोविंदस्वामी' एकांत के सखा हैं, अर्थात् एकांत के समय श्रीनाथजी उनसे खेलते थे, हास्य-विनोद करते थे। यही नहीं दर्शन के समय भी इन्हें प्रत्यक्ष लीला की झाँकी का अनुभव कराते थे और तदनुसार ये उसी समय संगीतबद्ध पद-गान किया करते थे। इस विषय में उनकी ० 'श्री गोवर्धनरायलाला' की धमार सुप्रसिद्ध है। वार्ता में उल्लेख है कि शयन के दर्शन में गोविंदस्वामी इस पद की तीन तुक गा कर चुप हो गये, तीसरी तुक में "अचकां अचकां आइकें भाजी गिरिधर गाल लगाय" के अनुसार अरगजा कुंकुम लगा कर गोपिका के भाग जाने से खेल अधूरा रह गया और कवि का मन उलझ गया। तब श्री गुसाँईजी ने निम्न प्रकार पूर्ति कर धमार पूर्ण की—

"या विधि होरी खेलहिं ब्रजवासिन संग लगाय
श्रीगोवर्धनधर रूप पें जन 'गोविंद' बलि बलि जाय ।।४।।

गोविंदस्वामी शुद्ध राग के पक्षपाती थे। अशास्त्रीय ढंग से गाना वे अनुचित समझते थे। गायन में ताल, लय और स्वर को वे अति महत्व देते थे। अनुचित गान से प्रभु कदापि नहीं रीझते, यह उनका पक्का विश्वास था। इस विषय में उनकी वार्ता का एक प्रसंग उल्लेखनीय है—

"एक दिन गोविंददास जसोदाघाट पर बैठे हते, तहाँ एक बैरागी बैठ्यो गावत हतो। सो बहुत बेसुरो गावै। सुर कहूं, अक्षर कहूं, ताल कहूं, राग कहूं। सो सुनिके बैरागी सौं कह्यो जो अरे बैरागी! गाइवो खराब क्यों करत हौ? न तो तेरो सुर ठीक, न तेरा राग ठीक, तू ऐसो काहे कों गावत है? गाइवो न आवै तो मति गावै।" तब वा बैरागीनें कह्यो जों हौं तो अपने राम कों रिझावत हों। गाइवो नाहीं आवत तो कहा भयो? मेरो राम तों रीझत है। तब गोविंददास ने कह्यो जो तेरो राम ऐसो मूरख नाहीं, जो तेरे पर रीझेगो। हमही न रीझेंगे तो राम कहा रीझेगो?"**

---

० *इस धमार का राग 'वार्ता-रहस्य' में 'रायसो' प्रकाशित है किन्तु वास्तव में यह धमार का राग कल्याण है। कांकरोली प्रकाशन 'गोविंदस्वामी' पृ. ११ पर उल्लेख है कि "सो कल्यान राग में एक नई धमार गावत है" किन्तु धमार के शीर्षक में 'राग-कानरो' छपा हुआ ठीक नहीं है।*

*** 'गोविंदस्वामी' कांकरोली प्रकाशन (वार्ता त्रयोदश) पृष्ठ १३*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीत शास्त्र के विद्वान् और सुप्रसिद्ध गायक गोविंद स्वामी से अकबरी दरबार के संगीत-सम्राट तानसेन ने भी संगीत सीखा था।

उन्हीं की प्रेरणा से तानसेन श्री गुसाँईजी शरणागत हुए थे। प्रथम बार तानसेन ने जब 'गोविंदस्वामी' का पद-गान सुना तब वे चकित हो गये और श्री गुसाँईजी से कहा कि "महाराज ! इनके आगे मेरो गानो ऐसो है, जैसे मखमल के आगे टाट होत हैं। आप गोविंदस्वामी सों आज्ञा करें, जो-मोकों ये गान विद्या सिखावे। तब श्री गुसांईजी आज्ञा किये, जो—गोविंददास ! इनको कीर्तन सिखइयो। तब तानसेन कछूक दिन गोविंदस्वामी के पास रहे। मार्ग की प्रणाली अनुसार कीर्तन सीखे। ता पाछें श्रीगुसाँईजी की आज्ञा पाइ श्रीनाथजी के सम्मुख कीर्तन करन लागे"

इस विधान से ज्ञात होता है कि, 'तानसेन के प्रभु' छाप के जितने पद प्राप्त होते हैं, वे सब उपर्युक्त घटना के पश्चात् की रचनायें हैं और 'मियां तानसेन' छाप की रचनायें तत्पूर्व की कही जायेंगी।

"भैरवी राग छुई जाने से उन्होंने कभी इस राग का गान नहीं किया इस प्रकार की आख्यायिका सम्प्रदाय में प्रचलित है किन्तु सम्प्रदाय के ग्रन्थों में अधिकतर 'भैरव' राग का ही उल्लेख प्राप्त होता है। देखिए:—

श्री गोविंदस्वामी सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनका जन्म सं. १५६२ में भरतपुर जिले के आंतरी ग्राम में माना जाता है।

(१) "एक समय गोविंददास जसोदा घाट उपर बैठे हते, प्रातःकाल को समो हतो। सो गोविंददास ने भैरव राग अलाप्यो। सो भैरव राग ऐसो जम्यो जो—कुछ कहिवे में नाहीं आवे। सो एक म्लेच्छ चल्यो जात हुतो सो वाने गोविंद-दास को आलाप सुनि कें माथो धुन्यो। और कह्यो जो-वाह वाह ! कैसो भैरव आलाप्यो है? सो म्लेच्छ की बात सुनि कें गोविंददास नें कह्यो, जो-अरे ! राग तो छी गयो, जो म्लेच्छनें सराह्यो है, सो राग श्री गोवर्धननाथजी के आगे कैसे गाऊँ? राग तो छी गयो। सो ता दिन तें गोविंददास ने भैरव राग में कोई पद कियो नाहीं"

(२५२ वैष्णवन की वार्ता, कांकरोली प्रकाशन सं.-१९१० (२) प्राचीन वार्ता रहस्य-द्वितीय भाग, वार्ता पृ. ३२३ वार्ता प्रसंग-१२ प्रकाशन सं. १९१८, पृष्ठ २८५ पर भी उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार ही विवरण दिया गया है।)

(३) अष्टछाप-परिचय अग्रवाल प्रेस पृ. २४४ पर भी निम्नलिखित उल्लेख किया गया है:—

---

० २५२ वैष्णवन की वार्ता (प्रकाशन-शुद्धाद्वैत एकेडेमी) पृष्ठ-१५६-५७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"गोविंदस्वामी गोकुल के यशोदा घाट पर बैठ कर 'भैरव" राग का आलाप कर रहे थे। प्रातःकाल के शांत और सुखदं वातावरण में राग का ऐसा समाँ बंधा कि आने-जाने वाल राहगीर भी मंत्रमुग्ध से हो गये। कहते हैं कि उन्हीं राहगीरों में अकबर बादशाह भी एक साधारण यवन के वेष में छिप कर गाना सुन रहे थे। गायन पर मुग्ध होकर अकस्मात् बादशाह के मुख से 'वाह-वाह' की ध्वनि निकल पड़ी। इन प्रशंसात्मक शब्दों को सुनकर गोविंदस्वामी ने उनकी ओर देखा और खिन्न मन से वे गायन बंद कर खड़े हुए। उनका राग यवन के स्पर्श से भ्रष्ट हो गया ०००फिर जीवन पर्यंत उन्होंने भैरव राग में श्रीनाथजी का कीर्तन नहीं किया।" केवल 'गोविंदस्वामी कांकरोली प्रकाशन (सं. २००८) पृष्ठ १५ पर वार्ता-पंचदश में भैरव के स्थान पर 'भैरवी' (राग) का उल्लेख छपा हुआ है, किन्तु तत्पूर्व प्रकाशित कांकरोली प्रकाशन (१) वार्ता-रहस्य में एवं तत्पश्चात् (२) सं. २०१० में 'दो सौ वावन वैष्णवन की वार्ता' में 'भैरव' राग का ही स्पष्ट उल्लेख है। इस प्रकार अन्य प्रकाशित अप्रकाशित पुस्तकों में 'भैरव' अथवा 'भैरवी' नाम दिखाई देते हैं।

(१) हमारे मतानुसार तत्पश्चात् 'भैरव' राग का गान नहीं किया यह उल्लेख ही वास्तविक कहा जायगा। ऐतिह्य दृष्टि से अकबर बादशाह का समय और म्लेच्छों (यवनों) का स्वच्छन्द आना-जाना वि. सं. १६१२ से आरंभ होता है। अतः इस घटना का समय यदि वि. सं. १६१४ के आसपास का माना जाय तो भी तत्पूर्व उन्हें शरण आये बीस वर्ष हो चुके थे। इस समय में भी उन्होंने 'भैरवी' में गान किया यह सिद्ध नहीं हो सकता।

(२) वास्तव में इनके पूर्ववर्ती सूर, कुंभन, परमानंद, कृष्णदास आदि अष्टछाप के किसी भी महानुभाव ने भैरवी राग में गान किया नहीं है।

(३) भैरवी, पीलू, मांड इत्यादि अनेक शूद्र प्रकृति के एवं संकीर्ण राग सम्प्रदाय के आरंभ से ही कीर्तन गान में वर्ज्य हैं (विशेष विवेचन इसी ग्रन्थ के 'राग और राग संख्या' प्रकरण में देखिए)।

(४) यह स्पष्ट तथ्य है कि, उपर्युक्त घटना के पूर्व भी सम्प्रदाय में भैरवी राग वर्ज्य होने से गाया नहीं जाता था। अतः परवर्ती गोविंदस्वामी का भैरवी राग-गान हेतु जीवन भर निषेध करने का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

प्रातःकालीन भैरव राग, जो सम्प्रदाय के मुख्य रागों में माना गया है और आरंभ से जिसका गान किया जाता रहा है, उसे गोविंदस्वामी ने उस दिन से श्रीजी के सम्मुख गान वन्द किया यह निश्चित कहा जा सकता है। क्योंकि इस घटना के पूर्व गोविंदस्वामी के भैरव राग में गाये हुए एक दो पद प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तत्पश्चात् गोविन्दस्वामी ने भैरव राग में कोई भी कीर्तन गान नहीं किया किन्तु तत्पूर्व अपने गाये जानें वाले रागों में 'भैरव'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का समावेश किया था । अतः गोविंदस्वामी के माने हुए ६ राग और ३० रागिनियाँ मिलाकर उनके मतानुसार निम्न प्रकार से ३६ राग प्राप्त होते हैं—

१. भैरव, २. रामकली, ३. विभास, ४. ललित, ५. मालकोंस, ६. रामग्री, ७. देवगंधार, ८. बिलावल, ९ टोडी, १०. आसावरी, ११. धनाश्री, १२,सारंग, १३. वसन्त, १४. सोरठ, १५. मल्हार, १६ सोरठ मल्हार, १७. नट, १८. पूर्वी, १९. श्री, २० जेतश्री, २१. मालीगौरा, २२. गौरी २३. मालव, २४हमीर, २५. ईमन, २६. कल्याण, २७, केदारो, २८. कानरो, २९. अडानो, ३०. रायसो, ३१. विहाग, ३२. विहागरी, ३३. सुहा, ३४. नायकी, ३५. मारू, ३६ काफी,

इनके बहुत से पदों से जिस राग में जो गाया जाता है उसी राग का नाम लीला से सम्बद्ध किया गया है। जैसेः—

"माई नीके लागें दूलह दुलहिन खेलत फाग।"

० ० ० "अद्‌भुत राग जम्यो सुर टोडी उरप तिरप गति लाग ॥२॥

(२) "सघन छटा घन घोर नेन्ही,

"गोविंद वलि सुघर दोऊ गावत, केदारो राग तान अति सरसे"

तदुपरान्त जिस राग में कीर्तन गान किया है, उसी राग की स्वर-जाति (संख्या) का भी उल्लेख पाया जाता है, जैसेः—(१) राग-नट, का "झूलत नवरंग रंग संग राधा गिरिधर चंद"' इस कीर्तन में 'सप्तसुरनि राग रंग' कह कर नट राग की जाति सम्पूर्ण होने का निर्देश किया है।

(२) राग-केदारे का सुप्रसिद्ध कीर्तन "दोऊ मिल झूलत कुंज कुटिर" में 'सप्तसुरनि मिलि गावत दोऊ" इनमें सम्पूर्ण-जाति का उल्लेख स्पष्ट है।

(३) राग-कानरा-"झूलत है नंदलाल झुलावे प्यारी राधा" में "राग कानरो सप्त सुर राजत गावत गीत रसाल" इन में भी कानरा राग में सातों स्वरों का उल्लेख किया गया है।

यही नहीं कुछ पदों में राग में गाये जाने वाले स्वरों का भी उल्लेख किया गया है। देखिएः—राग—ईमन का निम्नलिखित पद—

"नंदलाल संग नाचति नवल किसोरी ॥

"षड्ज रिषभ गंधार सप्तसुरनि,

मधिम तीर लेत ग्रग्रततत्तत होरी ॥१॥

इस प्रकार 'ईमन' राग में सा, रे, ग इत्यादि सप्तसुर और मध्यम तीव्र लिये जाने का स्पष्ट वर्णन है। राग-कदारे के निम्नलिखित पद में नृत्य और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मृदंग के बोल सहित सप्त सुरों का वर्णन भी प्राप्त होता है—

"नाचत गोपाल संग गोप कुंवरि अति सुघंग,
तत्थेई तथेई तथेई तथेई मंडल मधि राजे ।
"संगीत गति भेद मान लेत सप्त सुर बंधान,
धिधिकटि धिधिकटि मृदंग मधुर-मधुर बाजे ॥१॥"

निम्नांकित पद-गान में कवि संगीत कला की चरम सीमा तक पहुँचे हुए दिखाई देते हैं। मोहन (श्रीकृष्ण) और वृषभान-नंदिनी (राधा) का सम्मिलित गायन, वादन और नर्तन कला के उत्कृष्ट वर्णन में कलापक्ष की भव्य झाँकी दिखलाई देती है—

राग—ईमन

"तिग-तिग (गिड़ि-गिड़ि) थुंग थुंगनि तकिटि थुंगनि,
एक चरन कर सों भले हो मृदंग बजावें ।
दूसरे कर चरन कर सों कठताल त्रिकटि झंझं
झपताल में अवघर गति उपजावें ॥१॥
कंठ सरस सुरही गावें बोहन मधुरी तान लावें,
सकल कला गुन पूरन वृषभाननंदनी पिय मन भावें ।
गोविंद प्रभु रीझि रहे मुसिकाई, रसन दसन धरिकें
रहसि रहसि उरसि लपटावें ।

श्री राधा एक चरन और एक कर से उनके बोलों के साथ मृदंग बजा रही है, दूसरे कर और चरण से झपताल में कठताल के बोल को अवघर गति (आड़ीलय) में उपजा रही है । इसके साथ मोहन सुंदर कंठ से सरस स्वरों में मधुर-मधुर गान कर रहे हैं।

कहीं कहीं तो संगीत की मौलिक उद्भावना से कवि ने नायक गोपाल और बैजू के समान स्वतंत्र व्यक्तित्व स्थापित किया है। उदाहरणार्थ—

० राग—कान्हरो

स्थायी

'महिमा धनि तुव मति श्रेष्ठ तुव परम निपुनि नृत्त तेरो बन्यो,
स्यामा वृन्दावन रीझे बीसों बीसा' ।

---

० *'गोविंदस्वामी'* प्रकाशन कांकरोली—पृ. १६८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अंतरा

'सप्त सुर तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छना बाईस स्त्रिति राग मध्य रंग राख्यो, सरगम पधनिसा, सासासासा निनिनिनि, धधधध पपपप, मममम गगगग रे रे सा सा।।१।।

संचारी

'जो इन नैननि सेंननि बेंननि गोंननि नयो हस्तक भेद करि दिखाई ले री प्रीतम को चित चोरि लीनो कीनो अरु बढ़ी निसा ।।

आभोग

'गोविंद' प्रभु रस बस करि तोरि तोरि जोरि जोरि अवलोकत तेरी ताई अनतजवे की भूलि गई दिसि विदिसा ।।२।।"

गोविंदस्वामी के कीर्तनों में निम्नांकित वाद्यों के नाम प्राप्त होते हैं—

बीन, मृदंग, झांझ, वेणु-बाँसुरी, उपंग, कठताल, अमृतकुंडली, आवज, किन्नरी, रवाब, दुंदुभी, ताल, मुरली, डिम-डिम, झालरी, रुंज, ढोल, मुरज, पखावज, भेरि, अधौटी, सहनाई, शंख ।

संगीत के पारिभाषिक शब्द—

राग, उरप, नाद, तान, तिरप, मान, निर्तत-नृत्यत-नाचत,सप्तसुर, ग्रग्र, तत्, थेई, थुडी, तकिट, गिड़ि, तीन ग्राम, लाग-डाट, मूर्छना, गति (लय), स्त्रिति (श्रुति), झपताल सुर (स्वर), अवघर, संगीत, गति (यति) ।

• 'गोविंदस्वामी' पृ ५३.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अष्टछाप के संगीतकीर्तनाचार्य

'छीतस्वामी'

छीतस्वामी का जन्म मथुरा में सं. १५७२ के लगभग हुआ था। वे मथुरा के पंडा थे और उनके घर में यजमानी का काम होता था। प्रारंभिक जीवन में मथुरा के पाँच प्रसिद्ध गुंडों में उनकी गणना थी। वार्ता में लिखा है—

"एक दिन पाँचों चोबेननें मिलिकें विचार कियो जो गोकुल के गुसाँई टोंना टमना वहुत करत हैं। जो उनके पास जात है, सो इनके वस होय जात है। तव उन पांचों ने मिलिकें एक खोटो रुपयाँ और थोथो नारियल लियो, तामें राख भरी, और यह विचार कियो जो गोकुल जायकें श्री गुसाईजी सों कुटिल विद्या करियें।" पश्चात् वे गोकुल गये और खोटा रुपया तथा थोथो नारियल श्रीविट्ठलनाथजी को भेंट किया। श्रीगुसाँई जी के चमत्कार से दोनों अच्छे हो गये। नारियल के टुकड़े करने पर अच्छी सफेद गिरी निकली और रुपया के वाजार से पैसे मँगवा लिए। इस चत्मकार से उनकी वृत्ति वदल गई और अपनी दुष्टता पर पश्चात्ताप होने लगा। फिर (सं. १५९२) में श्री विट्ठलनाथजी के शिष्य वनकर पुष्टि सम्प्रदाय के भगवद्भक्त वन गये।

सम्प्रदाय-प्रवेश के पहिले छीतू में कवित्व शक्ति का वीजरोपण हो चुका था। वचपन से ही काव्य-संगीत में रुचि थी और वे काव्य-रचना किया करते थे। किन्तु सम्प्रदाय की दीक्षा के वाद अनुकूल वातावरण ही नहीं सूर, कुंभन परमानंद आदि कीर्तनाचार्यों द्वारा प्रभु के लीलामय एवं संगीतमय संकीर्तनों के सिंचन से जो जीवन प्रतिभा और काव्य-संगीत प्रतिभा आई, उसने उनके लिये फलस्वरूप होकर अष्टछाप जैसी महनीय शैली में प्रतिष्ठित प्रभा प्राप्त करा जीवन को धन्य बना दिया।

वि. सं. १५९२ में शरण जाने के पश्चात् क्रमशः उनके काव्य और संगीत विषय के ज्ञान में और भी विकास हुआ। काव्य-संगीत में इनकी निपुणता को देखकर श्री विट्ठलनाथजी ने सं. १६०२ में अष्ट सखा की भावना से अष्ट संगीताचार्यों की मंडली में सम्मिलित किया तत्पश्चात् सं. १९०८ के प्रारंभ में जब अष्टछाप की स्थापना की तब 'अष्टछाप' में इनको सम्मानपूर्वक स्थान प्रदान किया था।

वे शरण आते ही छीतू से छीतूस्वामी पद प्राप्त कर चुके थे। वे प्रभु (गिरिधर) और गुरु को एक रूप मानते थे। शरण आने के अनंतर उनकी प्रथम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पद रचना राग-सारंग में निम्न प्रकार से प्राप्त होती है—

"जे वसुदेव किये पूरन तप, तेइ फल फलित श्रीवल्लभ-देह ।
"छीतस्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल, तेइ एइ एइ तेइ कछु न संदेह"

इस प्रकार उन्होंने अपनी छाप में 'छीत' शब्द अपने लिये और स्वामी गिरिधर के विशेषण रूप में प्रयुक्त कर दासोऽहं की भावना प्रकट की है । उनके प्रायः सभी पदों में 'छीतस्वामी गिरिधर' या "छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल" छाप लगाकर प्रभु और गुरु में समान भावना प्रकट की है । स्वकीय गुरुवर्य श्री विट्ठलनाथजी के सम्वंध में आपके वहुत से पद प्राप्त होते हैं । 'श्री वल्लभचार्य महाप्रभु' से संवंधित पद भी हैं। भगवल्लीला के एवं फुटकर पद मिलाकर उनकी २०० पद रचनाएं प्राप्त होती हैं। आपकी कविता सरल, भाषा सीधी और काव्य-सौंन्दर्य मध्यम प्रकार का कहा जा सकता है।

पुष्टिमार्गीय दीक्षा के वाद वे गोवर्धन के पास 'पूंछरी' स्थान पर एक श्याम तमाल वृक्ष के नीचे रहते हुए श्रीनाथजी की कीर्तन-गान सेवा में अपना समय लगाया करते थे। इनकी कीर्तन-सेवा का मुख्य समय संध्यार्ति, लीलात्मक स्वरूप 'सुबल' सखा एवं पद्मा सखी था । स्वरूपासक्ति 'श्रीविट्ठलनाथजी' में और 'सेहरा' के शृंगार में उनकी आसक्ति थी ।

संगीत की दृष्टि से तो उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों की मान्यतानुसार ३६ राग-रागिनियों का अपने पदों में प्रयोग किया है। किन्तु अन्य अष्टछापी महानुभावों की अपेक्षा आपकी गायन-कला सीधी और सरल दिखाई देती है। अटपटी बंदिशों और विभिन्न तालों के अंग प्रत्यंग उत्कृष्ट नहीं दिखाई देतें। तथापि उनका संगीत-विषयक उत्कृष्ट ज्ञान एवं उच्च प्रतिभा प्रशंसनीय थी जिसका परिचय अधोप्रस्तुत उदाहरणों में देख सकते हैं:—

(१) राग वसन्त के पद में—

"आयो रितुराज साज पंचमी वसंत आज"
"बाजत आवज उपंग, बांसुरी मृदंग चंग"

(२) राग-सारंग की धमार में:—

"सुरंगी होरी खेले सांवरो" तथा

रुज मुरज डफ बांसुरी, भेरिनिको भरपूरि
फूंकनि फेरी फेरिकें उचे गई श्रुति दूरि"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(३) राग-मल्लार के पद में—

"नागर नंदलाल कुंवर मोरनि संग नाचें।"
"उरप तिरप सुलप लेत, पाद घात सांचें"
"उदित मुदित सघन गगन घोरत घन दे दे भेद,
कोकिला कल गान करत पंचम सुर बाँचे ॥"

(४) राग—सारंग—

"कुंज महल प्यारी संग बैठे लाल करत रंग ॥
अधर धरें मुरली स्याम सारंग सुर बजावै ॥१॥
अवघर विकट तान लेत स्वर सुर बंधान
उपजावत मान विविध रस बढ़ावै ॥"

(५) राग ताल के नामोल्लेख भी उनकी रचना में निम्न प्रकार से मिलते हैं।
राग—केदारो

मधुर मोहन मुख मुरली बाजै।
सुनहि किन कान दै सुघर व्रजनागरी,
राग केदारो चर्चरी ताल साजै ॥१॥
सप्तसुर भेद बंधान तुअ नाम लै,
करत गुन गान मिलि तुव हित काजें ॥"

इस पद में केदारा में सप्त सुर होने का विधान किया है।

(६) रास के निम्नलिखित पद में गोविन्द स्वामी तथा कृष्णदासजी के समान उत्कृष्ट संगीत ज्ञान की झाँकी दिखाई देती है।

राग-ईमन

लालसंग रासरंग चत मान रसिक रमन
ग्रग्रता ग्रग्रता त्त त्त त्त त्त त्त त्त त्त थेहे गति लोने।"
स रि ग म प ध नि, ग म प ध नि धुनि सुनि व्रजराज
राज कुंवर गावतरी अति गति यति भेद सहित
ताननि नांन न न न न न न अति अनि अस लोने ॥१॥

उनके पदों में संगीत के निम्नांकित पारिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं:—

तान, श्रुति, सप्तस्वर, संगीत, उरप, तिरप, सुलप, पद-घात, पंचम-सुर, स्वर, अवघर, गति यति, मान, ताल,सारंग, केदारो, ग्रग्रता, तत्त, थेई, सरिगमपधनि। अनेक वाद्यों का नामोल्लेख भी है:—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आवज, उपंग मृदंग, चंग, डफ, रूंज, मुरज, बांसुरी, भेंरि फूंक-निफेरी, मुरली आदि ।

जिन ३६ राग रागनियों में उन्होंने गान किया है, वे इस प्रकार हैं:—

(१) भैंरव, (२) रामकली, (३) विभास, (४) ललित, (५) देवगंधार, (६) बिलावल, (७) टोडी, (८) आसावरी, (९) धना श्री (१०) सारंग (११) वसंत, (१२) सोरठ, (१३) मल्हार, (१४) सोरठ मल्हार, (१५) नट, (१६) पूर्वी, (१७) श्री, (१८) जेत श्री, (१९) माली गौरा (२०) गोरी, (२१) मालव (२२) हमीर (२३) ईमन, (२४) कल्याण, (२५) केदारो, (२६) कानरो, (२७) अडानो, (२८) विहाग, (२९) बिहागरो, (३०) गुर्जरी, (३१) काफी, (३२) जोनपुरी, (३३) मालश्री, (३४) नायकी (३५) हमीर कल्याण, (३६) केदारनट ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चतुर्भुजदासजी

चतुर्भुजदास सम्प्रदाय के सर्व प्रथम कीर्तनकार श्री कुंभनदास जी के सब से छोटे और सातवें पुत्र थे। उनके जन्म संवत् के संबंध में मतभेद है। हमारे मतानुसार उनका जन्म जमुनावता ग्राम में सं. १५८७ में हुआ था। कुंभनदासजी को प्रथम पांच पुत्रों के सेवा-विमुख होने के कारण घोर असंतोष था। छठा पुत्र कृष्णदास श्रीनाथजी की गायों की रखवारी की सेवा करता था इसलिए उनसे वे संतुष्ट थे किन्तु चतुर्भुजदास में अपने सभी संस्कार प्रदान करने की महत् शुभेच्छा होने के कारण बाल्यावस्था से ही उसे भक्ति, काव्य, संगीत तथा सेवा-सत्संग में प्रवृत्त रखते थे। दस वर्ष की आयु में ही वे पिता के गुणों का अनुकरण करने लगे। श्री गुसांईजी के आशीर्वाद से ही चतुर्भुजदास का जन्म हुआ था। अतः श्री गुंसाईजी ने भी गुणज्ञ चतुर्भुजदास को प्रसन्न होकर सं. १५९७ में सम्प्रदाय की दीक्षा देकर कीर्तन में मन लगाने का आशीर्वाद दिया। आपके आशीर्वाद से वे श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा में पिता की सहायता करते थे। बाल्यावस्था से काव्य-संगीतादि के सिंचन से पैतृक कला में योग्यता युवावस्था के प्रारंभ तक प्राप्त कर चुके थे।

एक बार पिता-पुत्र अपनी झोंपड़ी में बैठे हुए थे। वहाँ से श्रीनाथजी के मंदिर के झरोखों में दीपक का प्रकाश दिखलाई देने लगा। उस समय कुंभनदासजी ने शयन के अनुभवात्मक पद की एक पंक्ति का निम्न काव्य में गायन किया—"वे देखो वरत झरोखन दीपक, हरि पौढ़े ऊँची चित्रसारी" यह सुनते ही चतुर्भुजदास को भी श्रीनाथजी की उसी लीला का अनुभव हुआ और उसी समय उन्होंने दूसरी पंक्ति (अंतरा) गाकर प्रथम तुक की पूर्ति की।* "सुंदर वदन निहारन कारन, राखे हैं वहुत जतन कर प्यारी।" इस प्रसंग के पश्चात् कुंभनदासजी को विश्वास हो गया कि मेरा यह पुत्र वास्तव में मेरी इच्छा पूर्ण करेगा। श्रीनाथजी की भक्ति, सेवा-भावना, पद-रचना और संगीत कला से प्रसन्न होकर गुसांईजी ने नव युवक चतुर्भुजदास को सं. १६०२ में अष्ट सखाओं में सम्मिलित कर लिया। यही नहीं सं. १६०७ में अष्टछाप की स्थापना के महोत्सव में अपने वयोवृद्ध पिता एवं बड़े-बड़े भक्त कवियों और संगीत कीर्तनकारों में सम्मानपूर्वक सम्मिलित होना बीस वर्ष के युवक चतुर्भुजदास के लिए गौरव की बात थी।

---

* *वार्ता प्रसंग-४*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक समय श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के जन्म दिन पर श्रृंगार के दर्शन करके चतुर्भुजदास नें निम्नलिखित पद का गान किया—– राग-विलावल–*

"सुभग सिंगार निरखि मोहन को, लै दरपन कर पिय ही दिखावै"
आपुन नेंक निहारहु बलि गई, आज की छबि कछु कहत–
न आवे ॥१॥
भूखन बसन्त रहे ठनि ठाऊं, अंग अंग सोभा चितही चुरावै ॥
बार बार पुलकित तन सुंदरि, फूलनि रचि रचि पाग बनावै ॥२॥
अंचर फेरि करति नौछावरि, तन मन अति अभिलाख बढ़ावै ॥
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर को रूप रस, पिवत नैंन पुट तृप्ति न पावें ॥३॥

जन्मोत्सव के दिन जन्म-वधाई के स्थान पर उपर्युक्त पद-गान से एक वैष्णव को आश्चर्य हुआ। उनके संदेह निवारणार्थ श्री गुसांईजी की आज्ञा से चतुर्भुजदास ने गोविंदकुंड पर निम्नांकित पद भी सुनाया—

राग-विलावल:—

"माईरी आज और काल्ह और छिन प्रति और और,
देखिये रसिक श्री गिरिराज धरन ॥१॥‡

तथापि उन वैष्णव की समझ में रहस्य नहीं आया। अत: श्री गुसांईजी ने गूढ़ तत्त्व स्पष्ट करते हुए कहा कि—

"आज श्री महाप्रभुन को जनम उत्सव हतो तातें श्री स्वामिनीजी ने अपने मनोरथ को सिंगार-सामग्री सब अपने हाथ सों धराये हैं।"

इसी कारण से "लै दरपन कर प्रिय ही दिखावै" तथा "आज की छबि कछु कहत न आवै" इत्यादि वर्णन का पदगान किया। दूसरे पद के भावार्थ में कहा कि "जितने ब्रज भक्त हैं सो अपने-अपने मनोरथ की सामग्री धरावत हैं। अपने-अपने वस्त्र-आभूषण धरावत हैं तातें "आज और काल्ह और सो क्षण-क्षण में अनेक ब्रजभक्तन के मनोरथ को भाव है।"

वार्ता प्रसंग ६ में रासलीला-प्रसंग का उल्लेख प्राप्त होता है—

---

* वार्ता प्रसंग-५

‡ *यह (कीर्तन) ध्रुपद-गवैयों में तथा संगीत के विद्वानों में अति प्रसिद्ध हो चुका है। यह पद पं. भातखंडेजी की पुस्तक क्रमांक २, तथा 'संगीत कलाधर' में कुछ पाठांतर से छपा हुआ है। जिसका शुद्ध पाठ इसी ग्रन्थ के "प्रचलित ध्रुपद गायन में हवेली संगीत" प्रकरण में दिया जायगा।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"ताही समें श्री गोवर्धननाथजी तथा श्री गिरिधरजी दोऊ जने चंदसरोवर ऊपर आये" पीछें श्री गोवर्धननाथजी अपने ब्रजभक्तन के संग रासलीला करी रात्रि हू बढ़ि गई ता समे चत्रभुजदास ने यह कीर्तन गायो:—

राग-केदारो

"अद्भुत नट भेख धरे जमुनातट श्यामसुंदर,
गुननिधान गिरिवरधर रास रंग नाचें ।।
जुवति-जूथ संग मिलि गावत केदार राग,
अधर बेनु मधुर-मधुर सप्त सुरनि साँचे ।।१।।
उरप तिरप लाग डाट तत् तत् तत् थेई तथेई थेई,
उघरत सब्दावलि गति-भेद कोउ न बांचे ।।
'चत्रभुज' प्रभु बन बिलास, मोहे सब सुर अकास,
निरखि थक्यो चंद, रथहि पच्छिम नहिं सांचे ।।२।।

इस प्रकार चतुर्भुजदास के पदों में रागोल्लेख के अतिरिक्त संगीत के पारिभाषिक शब्दों की रचना से ज्ञात होता है कि वे संगीत में अति प्रवीण और ज्ञाता थे। उपर्युक्त पद में राग केदार का उल्लेख है और वह कीर्तन केदारा में ही आज गाया जाता है। आपका अधोलिखित पद भी संगीत के शास्त्रीय ज्ञान का परिचायक है—

"मदन गोपाल रास मंडल में मालव राग रसभर्यो गावै"
"अवघर तान बंधान सप्तसुर मधुर-मधुर मुरलिका बजावै ।।१।।
निर्तन सुलप लेत संच गति, बहुबिधि हस्तक भेद दिखावै ।।
× × ×
'चत्रभुज प्रभु' गिरिधर नट नागर, सुरनरमुनिगति मति बिसरावै ।।३।।

इसी प्रकार रास का एक अन्य पद भी आपकी साहित्य-संगीत-नृत्यकला की पारंगतता का द्योतक है—

राग-केदारा :

"रिझये सखि तें साँवरो सुजान राइ ।
तान बंधान अनूपम विधि सों, मधुर ताल सुर सुघर गाई ।।१।।
× × × उघरत शब्द संगीत स्वामिनी निर्तति पग नूपुर बजाई"
× × × चतुर्भुजदास प्रभु गोवरधनधर, लेत रहसि हँसि कंठ लगाई ।।३।।

रास के उपरान्त वसंत-खेल के कीर्तनों में भी वाद्यों का उल्लेख निम्नलिखित नटनारायण राग में गाये जाने वाले पद में प्राप्त होता है—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राग-नटनारायण—

"खेलत गिरिधरनलाल, परम मुदित ग्वाल बाल"
इत बनी ब्रज नारी नवल होरी बोलना ।।
गावत नटनारायण राग, जुवती-जन खेलत फाग
गारी देति गोप कुंवरि करि कलोलना ।।१।।
बीना बेनु तान तरंग, बाजत मधुर मृदंग,
भेरि महुवरि किन्नरी डफ झांझ ढोलना ।।
'चत्रभुज प्रभु' फगुवा दियो, राधाजु को भायो कियो"

होरी के पद में भी वाद्यों के नाम पाये जाते हैं—

राग-कान्हरो

वृन्दावन में खेलन होरी ।
× × × ताल पखावज बंसि धुनि बाजत ।
बिच मुरली धुनि सहज सुहाई ।।
ढोल निसान दुंदुभी बाजत, मदनभेरि आनक सहनाई ।।
रुंज मुरज अरु झांझ झलरी, बाजत कर कठताल उपंगा ।।
अरु पिनाक किन्नरी श्रीमंडल, मधुर जंत्र बाजत मुखचंगा ।।
× × ×
गिरिधरलाल की लीला गावैं, चतुर्भुजदास चरन रज पावै ।।

होरी के दिनों में गोरी राग में गाये जाने वाले निम्न पद में भी राग का उल्लेख और वाद्यों के नाम प्राप्त होते हैं ।

राग-गोरी

"गोकुल राय कुमार कमलदल लोचना ।
ठाड़े सिंघद्वार कमलदल लोचना ।।
× × ×
रसमसे नंदकिशोर निकसे खेलन फाग ।
मधुर बेनु कर में धरें, गावत गोरी राग ।।
× × ×
बाजत ताल मृदंग आवज डफ मुख चंग ।
मदनभेरि सुरबीन गिडि-गिडि झांझ मृदंग ।।
× × ×
कीरति अविचल रहो जुग जुग इहि ब्रजबास ।
श्रीगिरिधर को जसगान नित करहु 'चत्रभुजदास' ।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुरली के पद-गान में, सारंग राग में गाये जाने वाले निम्नलिखित पदों में भी संगीत के पारिभाषिक शब्द मिलते हैं—

(१)

"पिय पें मांगि पियारी मुरली आपु बजाई दिखावति ।

× × ×

गूढ भाव गति लेति ताल जति मंदही मंद सुनावति ।

ठानत हृदै अनागति हरि सम, छिनु-छिनु हँसत हँसावति ।

दास चत्रुभुज प्रभु गिरिधर को रीझि कंठ लगावति ।।

(२)

"ऐसेहु मोहि क्यों न सिखावहु" । × × ×

सारंग राग सरस नंदनंदन सजि सप्तक सुर गावहु ।।

तान बंधान सुजान सहज में बहुत अनागत लावहु ।।

श्रुति संगीत करी परिमित ताहु में अतित बढावहु ।।

× × ×

चत्रुभुज प्रभु गिरिधर गुन सागर जो इह तुम न बतावहु ।।

चतुर्भुजदास की रचनाओं में मिलने वाले संगीत के पारिभाषिक शब्द—

सप्त-सुर, संगीत, श्रुति, राग, तान, स्वर (सुर) उरप, तिरप, लाग, दाट, सुलप, ध्वनि (धुनि), सप्तक, अवघर, ताल-यति, अनागत, संच-गति गति-भेद, नट, निर्तत, नाचें, रास, हस्तक-भेद, तत् थेई

चतुर्भुजदास के पदों में उपलब्ध वाद्यों के नाम—

(१)	(२)	(३)		(४)
बेनु, मुरलिका	बीना,	ताल,	मृदंग	पखावज, डफ
भेरि, महुवरि	मुरज,	झांझ,	ढोल,	निसान, दुंदुभी
बंसि, मदनभेरि	श्रीमंडल	किन्नरी,	उपंग,	आनक,
पिनाक, सहनाई	सुर-बीन	झालरि,	रुंज,	
मुखचंग, जंत्र		कठताल		
		गिडिगिडि		

चतुर्भुजदास के 'अनुभवैक वर्णन' में, जो * खटऋतु वार्ता से प्रसिद्ध है, उनमें ३६ राग-रागिनियों के नाम प्राप्त होते हैं। किन्तु इन राग-नामों और सम्प्रदाय के

* 'खटऋतु वार्ता' में परिख द्वारकादास ने श्री गोकुलनाथजी द्वारा प्रकट होना माना है किन्तु अन्य मतानुसार श्री हरिरायजी द्वारा ग्रंथस्थ होना माना जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लिखित-प्रकाशित कीर्तन संग्रहों में चतुर्भुजदास के गाये हुए पदों के राग-नामों में कुछ भिन्नता दिखाई देती है। लिखित-प्रकाशित संग्रहों में से प्राप्त ३६ रागों के नाम निम्न प्रकार हैं:—

१. भैरव, २. रामकली, ३. विभास, ४. ललित, ५. रामग्री, ६. देवगंधार, ७. विलावल, ८. टोडी, ९. सामेरी, १०, आसावरी, ११. धनाश्री, १२. सारंग, १३. बसंत १४. सोरठ, १५. मल्हार, १६. सोरठ मल्हार, १७. नट, १८. नट नारायण, १९. पूर्वी, २०. जेतश्री, २१. माली गौरा, २२. गोरी, २३. मालव, २४. हमीर, २५. ईमन, २६. कल्याण, २७. केदारो, २७. कानरो, २९. अडानो, ३०, रायसो, ३१. विहाग, ३२. विहागरो. ३३. सुहा, ३४ मारु, ३५. काफी, ३६ मालश्री।

· Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीताचार्य भक्त कवि

श्री नंददासजी

अष्टछाप के आठवें संगीताचार्य कविवर नंददासजी का जन्म सं. १५९० (ई. १५३४) में सोरों के निकट रामपुर ग्राम में हुआ था। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनके पिता जीवाराम सोरों-निवासी तुलसीदासजी के पिता आत्माराम के सगे-भाई थे। तुलसीदासजी और नन्ददासजी दोनों के माता पिता बाल्यावस्था में ही गत हो जाने से ये सोरम में अपनी दादी माँ के पास रहते थे। दोनों ने रामानंदी पं. नरहरि से विद्याभ्यास और संस्कृत का उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। कहा जाता है कि सं. १६०६ में तुलसीदासजी और नन्ददासजी (अग्रज-अनुज) काशी में रहकर कथा-कीर्तन द्वारा आजीविका करने लगे।* दोनों भ्राताओं की बचपन से ही काव्य-रचना और संगीत कला की ओर रुचि होने से काशी में आकर इन विषयों में दोनों पारंगत हो गये थे।

एक दिन नंददास को ज्ञात हुआ कि द्वारिका-यात्रा के लिए एक संघ जाने वाला है। वे यात्रा संघ के साथ हो गये। मार्ग में संघ से मथुरा में नन्ददासजी अलग होकर द्वारिका की ओर अकेले ही चल दिये। रास्ते में मार्ग भूलकर 'सिंह-नद' ग्राम में जा पहुँचे। कहा जाता है कि वहाँ श्री गुसाँईजी के एक क्षत्रिय सेवक की रूपवती पत्नी को देख कर ऐसे मोहित हो गये कि प्रतिदिन उसका मुख नहीं देख लेते, तब तक वे जलपान भी नहीं करते थे। इसी कारण वे हमेशा उसके घर के चक्कर लगाने लगे। इस कृत्य से उस स्त्री की बदनामी होने लगी। पीछा छुड़ाने के बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उसके परिवार वाले असफल रहे तो अंत में वे सब घर छोड़कर गोकुल में जा कर ठहरे। उनका पीछा करते हुए नंददास भी गोकुल जा पहुँचे। घर वालों ने नन्ददास की यह कहानी गो० श्री विट्ठलनाथजी को सुनायी। श्री गुसाँईजी ने उनको सान्त्वना देकर नंददास को बुलवाया और उपदेश दिया। फलतः नन्ददास का मोह दूर हो गया और उन्होंने आपके शिष्य बनकर अपने हृदय का सम्पूर्ण प्रेम भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया। उनके जीवन का क्रम ही बदल गया। वे श्री विट्ठलेश्वर के साथ गोवर्धन आये। काव्य-संगीत का ज्ञान होने के कारण उनका मन श्रीजी के

---

* *कोई तुलसीदास को बड़ा भाई और कोई 'गुरुभाई' मानते हैं। हमारे मतानुसार 'अष्टसखान की वार्ता' के अनुसार नंददासजी को तुलसीदासजी का बड़ा भाई मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कीर्तन में विशेष लगता था। फलतः श्री गुसाँईजी ने इन्हें विष्णुदास छीपा के स्थान पर नियत किया, और अष्टछाप की पूर्ति हो गयी। यह घटना सं. १६०७ के आसपास की मानी जाती है।

सत्संग और सम्प्रदाय के ज्ञानार्थ श्री गुसाँईजी ने नन्ददासजी को प्रारंभ में सूरदास जी के पास रहने की आज्ञा की। सूर ने प्रभुचरण की आज्ञा से इन्हें चंद्रसरोवर में अपने पास छः मास तक रखकर दैन्य एवं वैराग्य स्थापित कर उनके हृदय का विद्यामद निवृत्त किया। तत्पश्चात् काव्य-चित्रों एवं कूट-पदों द्वारा मर्यादा प्रधान राम-भक्ति के स्थान पर उनके हृदय को अलौकिक शृंगार-रस-परिपूर्ण श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त किया। माधुर्य भक्ति के उपदेश के लिये श्री सूर ने जिन दृष्टि-कूट पदों की रचना की थी वे बाद में 'साहित्य लहरी' के रूप में संकलित किये गये। तदुपरान्त सूर के सत्संग से सम्प्रदाय का रहस्य एवं काव्य-संगीत की प्रतिभा भी निखर गयी फलतः साहित्य क्षेत्र में शृंगार रस एवं अलंकारों से परिपूर्ण अनेक रचनाओं का सृजन हुआ। नन्ददासजी की रचनाओं के बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं; जिनमें 'रास पंचाध्यायी' और 'भँवर गीत' विशेष प्रसिद्ध हैं। श्रीराम और हनुमान विषयक कतिपय पदों की रचना सम्प्रदाय-प्रवेश के पूर्व की हो सकती हैं। नन्ददासजी कृत उपलब्ध पदों की संख्या लगभग ४०० से अधिक हैं। हिन्दी साहित्य में अष्टछाप कवियों में सूर के पश्चात् नंददास का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है, परन्तु इसमें विवाद है।

संगीत-क्षेत्र की दृष्टि से देखा जाए तो नंददासजी ने उस समय के प्रचलित रागों में सैकड़ों पदों की रचना की है; जिनमें बहुत से पदों की बंदिशों के विविध प्रकार प्राचीन ध्रुपदादि प्रबन्धों का गान आज क्वचित् ही कीर्तनगायकों को परंपरानुसार शैली में स्मरण होना संभावित है। नन्ददासजी ने सर्वप्रथम रामकली राग में श्री यमुनाजी का स्तुति-गान किया यह 'वार्ता' से ज्ञात होता है। शरण में आने के पश्चात् राग-विभास में श्री गुसाँईजी की वंदना के भाव के प्रातःस्मरणीय पद गान किये तत्पश्चात् श्रीनवनीतप्रिय जी के सम्मुख सर्वप्रथम निम्नलिखित पदगान किया।

राग-बिलावल—गोपाल ललन कों मोद भरि जसुमति हुलरावति'

नंददासजी की वार्ता के प्रसंग २ में निम्न प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है—

"ता पाछे राजभोग करि कें श्री गुसाँईजी श्रीनाथजी द्वार पधारे। नन्ददास को हू संग लिये। उत्थापन के समय आय पहोंचे। सो नन्ददास श्रीगोवर्धननाथजी के दरशन करिकें बहोत प्रसन्न भये। ता समे नन्ददासने यह कीर्तन गायो।

राग-नट— 'सोहत सुरंग दुरंग पाग कुरंग ललना कैसे लोइन लोने"

"पाछे संध्यार्ति के दर्शन खुले तब यह कीर्तन गाये—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राग–गोरी।

१. बन तें सखन संग गायन के पाछें पाछें आवत

२. वनतें आवत गावत गोरी।

"सो या भाँति नन्ददास ने वहोत कीर्तन किये। ता पाछे नन्ददास छ माह पर्यंत सूरदासजी के संग परासोली में रहे"

वार्ता प्रसंग ३ में श्री तुलसीदासजी के पत्र और प्रत्युत्तर का प्रसंग प्राप्त होता है। सारांश में निम्न प्रकार का उल्लेख देखेंगे—

"सो नन्ददास ने तुलसीदास कों पत्र लिख्यो। तामें एक पद यह लिख्यो। सो पद–राग-आसावरी–

"कृष्णनाम जबतें श्रवन सुन्योरी आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री ॥

'भरि भरि आवै नैन, चितहूँ न परै चैन,
मुख हू न आवै बैन, तन की दसा कछु और भई री ॥१॥

जेतेक नेम धरम व्रत, किए री मैं बहुविधि,
अंग अंग भई हौं तो श्रवनमई री ॥

'नंददास' जाके नाम सुनत ऐसो गति,
माधुरी मूरति कैंधो कैसी दई री ॥२॥*

वार्ता प्रसंग ६ का निम्न विधान भी देखिए "नंददास ने सुनी जो अकबर बादशाह के डेरा गोवर्धन में मानसी गंगा पें भये हैं। पातशाह के एक लोंडी हती सो श्री गुसाँईजी की सेवक हती। वा सों नंददास सों बड़ी प्रीति हती। तहाँ नन्ददास आये। वहां लोंडी ने एकांत ठौर में रसोई करके भोग धर्यो हो। सो नन्ददास ता समें श्री गोवर्धननाथ जी कों देखे। ता पाछें नन्ददास एक वृक्षन की ओट में ठाडे रह कें यह कीर्तन गायो।" राग-टोडी–

"चित्र सराहत चितवत दुरि मुरि
गोपी बहुत सयानी ॥‡

---

* यह पद कीर्तन संग्रहों में 'हिलग' के पदों में समाविष्ट किया है। जो शीतकाल में राजभोग के दर्शन में गाया जाता है।

† परीख द्वारकादास के मतानुसार उस लोंडी के 'रूप मंजरी' होने की संभावना है।

‡ टोडी राग का यह पद आज भी शीतकाल में राजभोग आने पर गाया जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नन्ददासजी ने राग-ताल वद्ध द्रुपद-धमार शैली के प्रवन्धों के अतिरिक्त रोला, चौपाई, दोहा एवं छोटे छंदों में बहुत से ग्रन्थों की रचना की है। जैसे– अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, भँवरगीत, सुदामाचरित्र, प्रेमबाराखड़ी, विरहमंजरी, रासपंचाध्यायी ।

नंददास काव्य कला में भाषा की मधुरता एवं शब्दों के कलात्मक संयोजन में सिद्धहस्त थे। उनका शब्द-भंडार विपुल था। वे साहित्य और संगीत के भी पंडित थे। इसलिये "और कवि गठिया नन्ददास जड़िया" की उक्ति प्रचलित हो गयी हैं।

"नन्ददास में दो गुणों की प्रधानता है, 'माधुर्य और प्रसाद'। माधुर्य तो उच्च श्रेणी का है। प्रत्येक पद मानों अंगूर का एक गुच्छा है, जिसमें मीठा रस भरा है। शव्दों में कोमलता भी बहुत हैं। पंक्तियों में न तो संयुक्ताक्षर हैं और न लंबे-चौड़े समास ही। शब्दों की ध्वनि ही अर्थ का निर्देश करती है।*

नन्ददास के काव्य में पुष्टि सम्प्रदाय के सिद्धांत एव भावों को सफलता पूर्वक व्यक्त किया गया है। उनकी रचनाओं में विशेषता यह है कि उनमें धार्मिकता, साहित्यिकता तथा संगीतात्मकता का त्रिवेणी संगम हुआ है। उनके देहावसान की वार्ता में उल्लेख है कि अकवर बादशाह और बीरबल ने मानसी गंगा पर जब अपने डेरे लगवाये तब वहीं पर नन्ददास से भेंट होने पर अकबर के एक प्रश्न का प्रत्युत्तर गुप्त रखने के कारण नन्ददास और एक सेविका की भी मृत्यु हो‡ गयी। हम उपर्युक्त घटना का अर्थ लगाने में असमर्थ हैं । हमारा मत है कि उनकी मृत्यु स्वाभाविक रूप से हुई थी। देहावसान के समय गो. श्री विट्ठलनाथजी विद्यमान थे। नंददास का अवसान अनुमानतः सं. १६४० के लगभग हुआ था।"

अष्टछाप की पूर्ति नंददास से होने के पूर्व 'अष्टछाप' के भावात्मक स्वरूप की स्थापना की गयी थी; और आठवें सखा विष्णुदास छीपा माने जाते थे। नन्ददासजी जैसे उत्कृष्ट कवि, गायक एव संस्कृतज्ञ के शरण में आने के बाद श्री गुसाँईजी ने विष्णुदास को अन्य सेवा सौंपकर नन्ददासजी को उस स्थान पर नियुक्त किया और अष्टछाप की विधिवत् समारोह के साथ स्थापना की।

नन्ददास का संगीत पक्ष

हमारे मतानुसार नंददासजी भी ६ राग और ३० रागिनियों की मान्यता के पक्ष में थे। इस प्रकार कुल ३६ राग-रागिनियों के नाम पद-संग्रहों में से हमें निम्नप्रकार प्राप्त हुए हैं—

---

* *हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. १६०*

‡ *अष्टछाप परिचय, पृ. ३०,*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१. भैरव, २. रामकली, ३. विभास, ४. ललित, ५. मालकोंस, ६. देवगंधार, ७. विलावल, ८. टोडी, ९. आसावरी, १०. धनाश्री, ११. सारंग, १२. वसन्त, १३. पंचम, १४. मल्हार, १५. सोरठ-मल्हार १६. नट, १७. पूर्वी, १८. मालवगौरा, १९. गौरी, २०. हमीर, २१. कल्याण, २२ केदारो, २३. कानरो, २४. अडानो, २५. ईमन, २६, विहाग, २७. विहागरो, २८. खट, २९. सुघराई, ३०. देसाख, ३१. मारू, ३२. काफी, ३३. जैजैवंती, ३४. नायकी, ३५. स्यामकल्याण, और ३६. वडहंस,

नन्ददासजी की दोहे, छंद, रोला, चौपाई आदि में रचित रचनाएँ भी उत्कृष्ट हैं किन्तु यहाँ उनकी संगीतवद्ध गेय रचनाओं पर ही विचार करना सुसंगत होगा। नन्ददास जी रचित कुछ प्रवन्धों (कीर्तनों) का गायन अन्य गायकों ने अपना लिया था। जैसे:—

१. "चिरैयाँ की चुहचुहानी सुन चकई की बानी' (राग-विभास)

२. "जाकों वेद रटत ब्रह्मा रटत संभु रटत सेस रटत (राग सारंग)

३. "आवरी बावरी उजरी पाग में मेल के बांध्यो है मंजुला चोय"

* इन उदाहरणों में क्र. १ पद श्रीजी को जगाने के समय सम्प्रदाय में गाया जाता है। क्र. २ माहात्म्य का पद है, जो जयन्ति-उत्सवों पर राजभोग के दर्शन में तथा क्र. ३ शयन समय उष्णकाल में राग-कानरा में गाया जाता है। क्र. ३ का पद कोई शृंगार समय बिलावल राग में गाते हैं। किन्तु इस पद गान में लेखक की परंपरा में प्रत्येक पंक्ति की ताल वदलती रहती है। प्रथम पंक्ति चर्चरी में, दूसरी, सूल ताल में, तीसरी (संचारी) धमार में और चौथी (आभोग) पंक्ति चौताल में गाते हुए सुने हैं; जिनको 'ताल-माला' का नाम भी दिया जाता है।

तदुपरान्त नन्ददास जी द्वारा रचित राग-मालाओं की रचनाओं का प्रभु-सम्मुख किया हुआ गान आज भी भारतीय संगीत कला के उस स्वर्ण-युग का एक विशिष्ठ तत्त्व कहा जायगा। भावात्मक-काव्य और संगीतात्मक रागों के संगम से युक्त 'राग-माला' अष्टछाप के अन्य महानुभावों में ही नहीं किन्तु उस समय के अन्य किसी भी कवि या गायक की रचनाओं में प्राप्त नहीं होती। केवल स्वामी हरिदासजी—रचित एक राग-माला प्राप्त होती है, किन्तु 'राग-माला' (जिसे आजकल कुछ गायक 'राग-सागर' भी कहते हैं) के प्रथम गायक अर्थात् उद्भवकर्ता हरिदासजी हैं या नंददासजी इनका निर्णय करना संभव प्रतीत नहीं होता। नन्ददास जी कृत तीन राग-मालाएँ हमें प्राप्त हुई हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

* *ये तीनों पद गायकों के घराने की चीजें बन चुकी हैं। इनका विवरण अन्य प्रकरण में किया जायगा।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(स्थायी)

सारंग नैनी री काहे को लियो है एतौ मान ।

(अन्तरा)

गौरी* गरव छाँडि मिल लालें, मन क्रम वचन,
यातें होत कल्यान ॥१॥

(संचारी)

जिन हठ कर री नट-नागरसों, मोहेरी देव गान॥०

(आभोग)

मुरलीतान कान्हरो गावत, सुन लै री दै कान ॥२॥

संचारी–२

रंग-रंगीली सुघर नायिका, तू जिन जियमें अडान ॥

आभोग–२

'नंददास' केदारो करिकें, यों ही बिहाइगयो मान ॥३॥‡

उपर्युक्त पद में १० राग हैं जिनका आरंभ राग– 'सारंग' से होता है अतः सम्प्रदाय में यह 'सारंग की राग-माला' नाम से प्रसिद्ध है। 'तृतीय गृह कीर्तन प्रणाली में माघ शु. ४ को भोग के दर्शन में तथा अषाढ़ शु० १ को संध्यार्ति दर्शन में यह राग-माला गाई जाती है।

(२) राग–माला (ईमन)

स्थायीः– 'ये मानिनी मान मेरो कह्यो
काहे कों रुसानी प्यारे स्याम संग ॥

अंतराः– 'सूधें क्यों हमीर न चितवेरी-मोतन,
गौरी कान्हर ह्यो तो सों रंग ॥१॥

---

* पाठांतर–गहेरु, ० भैरोंही देवगंधार (देवगंधार, पाठ का अर्थ देव और गांधर्व हो सकता है)

‡ इस राग माला की प्रथम तुक 'चौताल' में, दूसरी तुक की प्रथम पंक्ति 'अर्ध-आड चौताल' में तथा द्वितीय पंक्ति 'धमार' एवं तीसरी तुक को 'त्रिताल' में इस प्रकार ताल बदल कर गाते हुए हमारे पिताजी को तथा बाद में वैष्णव कीर्तन-कार विट्ठलदास शाह (जो बम्बई लालबाबा के मंदिर में कीर्तन की सेवा में आया करते थे) तथा गोकलदास वकील एवं कीर्तनिया 'मगनलाल नायक' को भी लगभग ५० साल पूर्व सुना है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी–'तू जिन नट री नागरसों ए बड़हँसि तेरी,
आडन पट तजि दीजै मेरी आली ।।

आभोगः– 'नायकी क्यों न होत काफी के वचन सुनि,
ललित हिये गहि रहो वनमाली ।।२।।

संचारीः–२.'एरी धनवंती आसावरी रहे तेरी
पूरिये मनोरथ पिय मन ।।

आभोग–२. कहै नंददास तो सुहाग देवगान करत,
यों बिहाग इ रात उठि अंक मालव न ।।३।।

उपर्युक्त 'रागमाला' क्रमशः यमन, स्याम कल्याण, हमीर, गौरी, कान्हरो, नट, बडहंस, अडाना, नायकी, काफी, ललित, धनाश्री, आसावरी, पूर्वी, देवगंधार, विहाग और मालव, इस प्रकार १७ रागों में गाई जाती है।

राग-माला की नंददास कृत तीसरी रचना भी प्राप्त हुई है। वह उपर्युक्त राग-माला से मिलती-जुलती होते हुए भी रागों में कुछ भिन्नता होने के कारण यहाँ प्रस्तुत करना उचित समझा गया है। इसे हम स्वतंत्र रागमाला की अपेक्षा पाठान्तर कहना उचित समझते हैं।

(३) स्थायीः– 'ए मन मान मेरो कह्यो काहै को रुसानी प्यारे
स्यामसों सूधो क्यों न चितवेरी मोतन ।।

अंतराः– 'जेजेहुती सौंति तेरी तिनहु की जीत होति, सुघराई क्यों न करत,
बड़हंसि तेरी, होति, कर विचार नायका क्यों होति नट जिन

संचारीः– 'आड न पर दीजैरी मेरी आली काफी के बचन सुनि
ललित कहै रस लैये जू कैसेकें रिझैये उनको मन ।।

आभोगः– 'अरी धनव्है जू आसावरि रहिए तेरे उन आगें भरोंरी कैसे दिन ।।

आभोग–२. 'नंददास' देसाख कहत वचन सुनि कान्हर आय
पाँयन परै करि आभरन उठि अंक मालव न ठन ।।

इनमें ईमन, स्याम कल्याण, जैजैवंती, सुघराई, बडहंस, नायकी, नट, अडाना, काफी, ललित, धनाश्री, आसावरी, भैरव, देसाख, कान्हरा और मालव–इस प्रकार सोलह रागों का गान किया जाता है।

नन्ददासजी की रचनाओं में नायिकाओं के अनेक भेद दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु उपर्युक्त तीनों राग-मालाओं में मानिनी-नायिका के भावों को राग-नामों द्वारा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अभिव्यक्त किया गया है । इनमें काव्य-कला और संगीत-कला की उत्कृष्टता के साथ ही दोनों कलाओं की प्राण और शरीर के समान अभिन्नता का संकेत भी प्राप्त होता है। रस-भाव की उपलब्धि के लिये ये दोनों आवश्यक हैं । अन्यथा भावात्मक अभिव्यक्ति की पूर्णता का आस्वाद प्राप्त नहीं होता । इसी कारण पुष्टि-सम्प्रदाय की कीर्तन प्रणाली में भगदलीला युक्त (काव्य) पद गान संगीत-वद्ध ही किया जाता है।

प्राचीन तालों के नामोल्लेख भी नन्ददासजी के पदों में पाये जाते हैं–जैसें * अठताल, ० द्रुवताल, ‡ चपकताल ।

वार्ता रहस्य के कथनानुसार कहा जा चुका है कि नन्ददासजी सूरदास की संगति में छः माह तक चंद्रसरोवर पर रहे थे। अतः उनके पदों की भाषा, भाव एवं संगीतादि के अनुसरण की झलक नंददास के कतिपय पदों में स्पष्ट दिखाई देती है। उदाहरणार्थ देखिए:—

(१) सूर का पद, राग-आसावरी, ताल -चौताल ।
"माईरी कृष्णनाम जवतें स्रवन सुन्योरी तवतें भूली री भवन
वावरी सी भई री ।। भरि-भरि आवे नैन चित न रहत चैन,
सूधौ नहीं परै वैन, मन की दसा सव और व्है रही री ।।१। ।
कौन माता कौन पिता को वहिनी कौन भ्राता, कौन ज्ञान कौन
ध्यान मदन दही री ।। 'सूर' स्याम जब तें परे री मेरी दृष्टि वाम
काम धाम निसि याम कुल-कानि निनही री ।।२।।

इसी प्रकार का इसी राग-ताल में गाये जाने वाला नंददासजी का पद "कृष्ण नाम जवतें" पूर्ण रूप से पृ. १७९ पर लिखा जा चुका है।

(२) सूर का पद, राग-विहाग-ताल-चौताल अथवा चर्चरी
"दौरि दौरि आवत मोहि मानावति, दाम खरच कुछ मोल लई री ।
गई तौ गई न गई तौ न गई, ऐसी कहा कछु गरज भई री ।।१।।
सुनि राधे कैधों मान मेरो कह्यो, तो विनु लालन कछु न सही री ।
'सूरदास' प्रभु हरि लीनों, हसि मुसिक्याय मन निकट गई री ।।२।।

---

* "डफ मृदंग अठताल ('डोल झुलावत सव व्रजसुंदरी' पद में)
० ध्रुव ध्रुवपद ध्रुवताल (अनेकार्थ मंजरी)
‡ नंददास (पद संग्रह)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसी भाव, राग, तालादि का नंददासजी का पदः—

'दौरि दौरि आवत मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लईरी।
अचरा पसारति मोहि खिजावति, तेरे बावा की कहा चेरी भई री ॥१॥

जा री, जा सखि भवन आपुने, लख बातन की एक कही री।
'नंददास' प्रभु वे क्यों नहीं आवत, उनके पाँयन कहा मेंहदी दई री ॥२॥

(३) सूर का पद, राग—सारंग, ताल चौताल

'सूर आयो सीस पर छाया आई पाँयन तर,
पंथी सब झुक रहे देख छांह गहेरी ॥

'धंधी जन धंध छांडि बैठेरी धूपन के लिए,
पसु पंछी जीव जंतु चिरैया चुप रहे री ॥१॥

'व्रज के सुकुमार लोग दै दै किवार सोये,
उपवन की ब्यारि तामें पौढे पिय हे प्यारी ॥*

'सूर' अलबेलि चल काहैकों डराति है,
माह की मध रात जैसें, जेठ की दुपहरी ॥२॥

इसी राग, ताल, भाषा, भावादि का नंददासजी का पदः—

"सूर आयो माथे पर, छाया आई पाँयन तर,
उतर थके पथिक डगर देखि छाँह गहेरी ।

'सोये सुकुमार लोग जोरिकें किवार द्वार,
पवन सीतल गोख मोख भवन भरत लहेरी ॥१॥

'धंधी जन धंध छाँडि जब तपत धूप डरन,
पसु पंछी जीव-जंतु छिपत तरन सहेरी ॥

'नन्ददास' प्रभु ऐसे में गवन न कीजे,
माघ की आधि रात जैसी ये जेठ की दुपहरी॥२॥

साम्प्रदायिक कीर्तन संग्रहों में उपर्युक्त तीनों पदों का क्रमशः हिलग के पद, मान के पद और उष्णकाल दुपहरी के पदों में समावेश किया गया है। नन्ददासजी के भ्रमरगीत में भी सूरदास के भ्रमरगीत की छाया दिखाई देती है। अतः स्पष्ट कहा जा सकता है कि नन्ददास को काव्य रचना और सम्प्रदाय की भावना का ज्ञान सूरदास से ही प्राप्त हुआ था। नंददास बहुत से पदों में सूर के पदों के ज्यों के त्यों वाक्य

* पाठांतर—'तामें सुख क्यों न लहेरी'।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उद्धृत किये हुए प्राप्त होते हैं। सूर के शिष्यत्वेन उनके वाक्यादि का उपयोग करने का नन्ददासजी को अधिकार होना स्वाभाविक है। अन्यथा सूरदास ने जिस प्रकार कृष्ण-दास अधिकारी को उनके पदों से प्राप्त अपने पदों की मामूली छाया को देखकर भी टोका था, * उस प्रकार वे नन्ददासजी को भी अवश्य ही टोकते।

जो कीर्तन जिस राग में गाया जाता है उसी राग का नामाविधान उसी काव्य-संगति में पाया जाता है। नन्ददासजी के निम्नलिखित पद में यह विशेषता स्पष्ट दिखाई देती हैः—

"वन तें आवत गावत गौरी।
हाथ लकुटियाँ गाँयन पाछें, ढोटा जसुमतिकौरी ॥१॥
मुरली अधर धरे नंदनंदन, मानों लगी ठगौरी ॥
× × ×
'नंददास' जिन हरिमुख निरख्यौ, तिनको भाग्य बडौरी ॥२॥
यह पद नित्य-प्रणाली में संध्यार्ति के समय गाया जाता है

नन्ददासजी के पद-गान में संगीत शास्त्र के पारिभाषिक शब्द निम्न प्रकार से प्राप्त होते हैंः—

१. संगीत, २. अनाघात, ३. नाद, ४. गान, ५. तान, ६, उरप, ७. अनहत, ८. राग, ९. मान, १०. गति, ११, तिरप, १२. सुलप, १३. निर्त, १४. नृत्य, १५. नट, १६. तत्थेई,

वाद्यों के नाम इस प्रकार पाये जाते हैंः—

(१) तंतवाद्य

१. वीना (वीणा), २. सुर-बीन, ३. सुर-मंडल

(२) सुषिर—वाद्य—

१. मुरली, २. वेनु, (वेणु) ३. विषाण, ४. बांसुरी, ५. शहनाई,

---

* सूर निर्णय, पृ. १५७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(३) आनद्ध –वाद्यः—

१. मृदंग, २. डफ, ३. आवज, ४. चंग, ५. मुरज, ६. उपंग, ७. अघौटी, ८. पटह, ९. ढोल,

(४) घन—वाद्यः—१.झांझ, २. नाल*

---

* पारिभाषिक शब्द तथा वाद्यों के नाम निम्न लिखित पदों में प्रसिद्ध हैं

(१) 'एरी सखी निकसे मोहनलाल', इस काफी राग की होरी में देखिएः—

"सखि पटह आवज सुरबीन अनाघात गति गाजही"

"सखि ताल-मृदंग उपंग, रूंज मुरज डफ बाजही"

(२) 'निकसि कुंवर खेलन चले' इस होरी में–"सुरमंडल डफ झांझ"

(३) "डोल झूलत" पद में—"बाजत ताल मृदंग अधौरी, कूजन बेनु रसाल"

(४) 'सांवरे प्रीतम संग' इस राग के पद में—"संगीत की स्वामिनी" "राग-रागिनी ततथेई" "उरप तिरप मान अतिही अद्भुत गान"

(५) नितंत गिरिधरन संग' पद में–"बाजत अनहत मृदंग, ताल बीना गति" सुलप संच उरप तिरप लेत नागरी" "नृत्य भेद"

(६) 'डोल झुलावत' पद में—बाजत बेनु विषान बांसुरी

(७) 'बाजत ताल मृदंग झांझ डफ, सहनाई अरु ढोल"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घोंधी

संगीत के इतिहास में गायक घोंधी का नाम सुप्रसिद्ध है । वह मुसलमान ढाढी था। १० साल की उम्र में गवैयों के संपर्क में आया, राजा मान के समय में गायन वादन के कलावंतों के संग से गायन में तथा मृदंग बजाने में निपुणता प्राप्त की। ३० साल की उम्र होने पर माता पिता के देहांत बाद आग्रा आकर रहने लगा।

महावन में उनकी जाति के लोगों से मिलने कभी-कभी आया करते थे। कुछ कार्यार्थ एक दिन वहाँ से गोकुल में आना हुआ। वहाँ ठकुरानी घाट पर श्री गुंसाईजी (विट्ठलनाथजी) का मिलाप हुआ । आपके संगीत ज्ञान एवं कृष्ण भक्ति के प्रभाव से आर्कषित होकर नाम मंत्र की दीक्षा लेकर आपका सेवक बन गया। धीरे-धीरे भगवद्लीला का अनुभव होने लगा और अपने मधुर कंठ से तन्मय होकर भगवान के लीलात्मक पदों की रचना कर अपने गुरु विट्ठलेश की आज्ञा अनुसार भगवान् को सुनाने लगा । श्री विट्ठलेश्वर प्रसन्न होकर अपने आराध्य श्री नवनीत प्रभु के सन्मुख गान करने की आज्ञा होने पर सबसे प्रथम राग सामंत सारंग में "दुपहरी जनक भई" यह पद का राजभोग समय गान किया। घोंधी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार श्री विट्ठलेश्वर श्रीनाथजी की सेवा में पधारे थे। और नवनीत प्रभु की सेवा में श्री विठ्ठलेश प्रभु के बड़े पुत्र श्री गिरिधरजी थे। उस समय प्रभु सन्मुख घोंधी कीर्तन गान कर रहे थे । इनके गान से प्रसन्न होकर स्वयं नवनीत प्रभु साक्षात् दर्शन देकर अपने श्रीहस्त से ताल देने लगे । श्री गिरिधरजी ने यह देखकर अति प्रसन्न होकर अपने हाथ में पहने हुए सोने के कडे न्योछावर करके घोंधी को दे दिए।

अनुमानत : राजा मानसिंह के दरबारी गायकों की संग से घोंधी ने कलावंत तथा नायक की पदवी प्राप्त की । प्रारंभ में राजा मान के वहाँ रहना संभावित है। मान के शासन पश्चात् उनका आग्रा आकर रहना और अपनी कला द्वारा गुजारा करना संभावित है क्योंकि उनका वतन दिल्ली और आग्रा के बीच किसी गाँव का था और वहाँ उनके माता पिता रहते थे। उनकी उत्तरावस्था में संसार के प्रति विराग आने से उनका मन ईश्वर भक्ति के प्रति हो गया और श्री गुंसाइजी विट्ठलनाथजी संगीत विद्या में पारंगत एवं कलाकारों के प्रदान थे । इतना ही नहीं उनके वहाँ अष्टछाप के आठ महान् भक्त गायक और कविवर हमेशा श्रीजी के गुणगान में तत्पर रहते थे, इत्यादि कारणों से घोंधी श्री गुंसाइजी का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सेवक बनकर, गायक कलावंत तो था ही, किन्तु कवि और भक्त बनकर अष्ट-छाप की गान परंपरा में स्थान प्राप्त किया ।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणालिकाओं में घोंधी के पद भी कहीं-कहीं पूर्तिकारक दिखाई देते हैं । जैसे वर्षाऋतु के पदों में श्रीजी को अभ्यंग स्नान कराते समय गाये जाने वाला केवल मल्हार राग में घोंधी का ही "ठाड़े रहो अंगना हो पिय जों लों नखसिख देह न भीजे" यह पद ही प्राप्त होता है । घोंधी के पदों की संख्या लगभग ५० के आसपास प्राप्त हो चुकी है। जिनके मुख्यत: राग (१) ललित (२) मालकौंस (३) भैरव (४) देवगंधार (५) सारंग (६) सोरठ (७) काफी (८) नट (९) पूर्वी (१०) कल्याण (११) केदार (१२) अडाना (१३) विहाग (१४) वसंत (१५) मल्हार (१६) सूहा-सुघराई है । जिनमें झप-ताल, मठ-ताल, चपक ताल, चर्चरी धमार आदि प्राचीन तालों में बंदिशें दिखाई देती है ।

इनके कुछ पदों में अन्य छाप भी किसी ने रख दी हो ऐसा भी मालूम होता है। जैसे राग-मालकौंस का सुप्रसिद्ध पद 'आवन कह गये अजहू न आये' इस पद के आभोग में तानसेन की छाप का पाठ भी प्राप्त होता है, जो निम्न प्रकार हैं:—

"घोंधी के प्रभु तुम वहु नायक आये निपट सवारे ।।२।।

"तानसेन के प्रभु तुम वहु नायक, तोऊ मेरे नैनन के तारे ।।२।।

तानसेन के नाम की महत्ता के कारण ऐसा परिवर्तन होना संभवित है ।

(विशेष में देखिये दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता २४३।।)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तानसेन

तानसेन का मूल नाम तन्नामिश्र था। पिता का नाम मकरंद पांडे (ब्राह्मण) था। जन्म संवत् १५७६ में ग्वालियर के पास बिहर नाम के गांव में हुआ था। पांच साल की आयु के बाद उनको किसी संगीत निपुण मुस्लिम की सोबत हुई और तानसेन को संगीत सिखाया था। २५२ वैष्णव की वार्ता में निम्न प्रसंग लिखा गया है :

"सो तानसेन सुंदर गावन लाग्यो : पाछें सरस्वती की आराधना की, सरस्वती याको दरसन देकर कह्यो जो कछु मांगि, तब तानसेन ने कह्यो जो मोको राग सिद्ध होइ, तब सरस्वती कहे तथास्तु। पाछे तानसेन गावै तब हिरन उनके निकट दौरि आवै, अैसे सुंदर गावन लाग्यो। सो एक समय दिल्ली गये, पादशाह को गानो सुनायो पादशाह उनको गानो सुनि प्रसन्न भयो सो बहोत द्रव्य दियो। पाछे पादशाह तानसेन सौं कहे जो तू हमारे पास रहे। पाछे इनको महिना करि दियो। सो ता दिनते तानसेन पृथ्वीपति के पास रह्यो सो दरबार में जान लाग्यो और गानो सुनावें।

इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि एक दिन स्वामी हरिरायजी यात्रा में जाते हुए भक्त मंडली सहित तानसेन की बगीचो के पास से निकले तब दस वर्ष की आयु को बालक तन्नामिश्र की पशु-पक्षियों की नकल की आवाज सुनकर स्वामीजी प्रसन्न हुए और संगीत शिक्षा के योग्य जानकर उनको वृन्दावन ले गये और दस वर्ष तक सीखने के बाद पिता की बीमारी के कारण अपने गांव आये। पश्चात् रीवां के महाराजा रामचंद्र वृंदावन से अपने दरबार में ले गये। एक दिन शहनशाह अकबर का रीवां आना हुआ और तानसेन का संगीत सुनकर मुग्ध होकर अपने साथ दिल्ली ले गये और दरबार के मुख्य गायक के उपरान्त नवरत्नों में तानसेन को स्थान दिया गया।

श्री गुसांईजी का सेवक राजा आशकरण के दरबार में तानसेन गान सुनाने के लिये आया करता था। इन पर मुग्ध हो गया था। तानसेन का वैष्णव होने का प्रसंग वार्ता में निम्न प्रकार लिखा है—

"वार्ता प्रसंग-१"

"एक समै उष्णकाल के दिन तानसेन, श्री गुसांईजी जो गोविंदस्वामी आदि भगवदीय के पास गोविंदघाट पै बिराजे हते ता समें, गायवें कों आए। तब तानसेन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ने एक पद गायो । सो पद–'तेरे मन में किलो एक गुनरे जो तो पै आवे तो प्रकास कररे । सप्त सुर तीन ग्राम इसइस मूछंना जोइ सुर आवे तोपे सोइ सुर भररे । हिरन बुलाये, पगन पराये, मेहा बरसाये तोको सरस्वती वररे । कहे मियां 'तानसेन', सुनेरे गनीजन, सब गुनियन के पायन पररे ।'

सो यह पद सुनि कै श्री गुसांइजी तानसेन को पात्साह को गवैया जानि रुपया ५००) पांच सौ दिये । ता पर एक कोडी और दिये । तब तानसेन पूछ्यो, जो–महाराज! यह कोडी काहेकों दीनी? तब श्रीगुसांइजी आज्ञा किये, जो–तानसेन-जी! तुम पात्साह के गवैया हो तातें तुम कों रुपैया पांच सौ हम दिये हैं। और यह कोडी तो तुम्हारो बानी सुनि कै दीनी है । तब तानसेन ने श्रीगुसांइजी सों विनती कीनी, जो–महाराज! हम कों आप कछू अधकी सुनाइए तब हम जानें, जो–आपने हमारी कीमत करी सो उचित है । नांतरू हम कसें जाने? तब श्री गुसांइजी आप मुसिक्याइ कै गोविंदस्वामी की ओर देखें। पाछें गोविंदस्वामी सों आज्ञा कीनी,, जो–गोविंददास! कछू कीर्तन गाउ । तब गोविंदस्वामी ने सारंग राग में एक पद गायो । सो पद—

राग सारंग

श्रीवल्लभनंदन रूप अनूप स्वरूप कह्यो नहीं जाई ।
प्रगट परमानंद गोकुल बसत है सब जगत के सुखदाई ।
भक्ति मुक्ति देत सबन को कृपा प्रेम बरखत अधिकाई ।
सुखमय सुखरूप सुखद एक रसना कहांलो बरनौं 'गोविंद' बलि बलि जाई ।

ता पाछें दूसरो पद गायो—

राग सारंग

सुनिरी सखी दुपहरी की बिरियां बठि झरोखन पोवति हार।
ओंचका आय गये नंदनंदन मोतन कांकरी चितये डार ।
हो सकुच मुख मोरि ठाढ़ी भई गुरुजन लाज विचार ।
'गोविंद' प्रभु पिय रसिक सिरोमनि सेन बताई भुजा पसार ।

सो यह पद सुनत ही तानसेन चकित होंइ रहे । पाछें दोऊ हाथ जोरि श्रीगुसांईजी सों बिनती किये, जो–महाराज! इनके आगे मेरो गानो एसो है, जैंसे मखमल के आगे टाट होत हैं । ता पाछें तानसेन गोविंदस्वामी के निकट जांइ बिनती किये, जो–तुम मोकों कृपा करि कछू गान सिखाओ । तब गोविंदस्वामो कह्यो; जो–हम श्रीगुसांईजी के सेवक बिना काहू सों संभाषन हू करत नाहीं । तब तानसेन श्रीगुसांईजी सों विनती किए । तब श्रीगुसांईजी तानसेन को नाम सुनाए । पाछें तानसेन ने श्रीगुसांईजी कों एक सहस्त्र मुद्रा भेंट करी। और विनती कीनी, जो–

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महाराज ! आप गोविंदस्वामी सों आज्ञा करें, जो–मो गान विद्या सिखाये । तब श्रीगुसांईजी गोविन्दस्वामी सों आज्ञा किये, जो–गोविंददास ! इनकों कीर्तन सिखइयो । तब तानसेन कछूक दिन गोविंदस्वामी के पास रहे । मार्ग की प्रणाली अनुसार कीर्तन सीखे । ता पाछें श्रीगुसांईजी की आज्ञा पाइ श्रीनाथजी के सन्मुख कीर्तन करन लागे ।

तानसेन संवंधी अनेक किवदंतियां प्रसिद्ध हो चुकी हैं । तानसेन की उत्तरावस्था में उनका वैष्णव होना संभावित है । उनकी पद रचना में अष्टछाप की परम्परा की झलक दिखाई देती है । अष्टछाप के गाये हुए रागों में ही आपकी रचनायें प्राप्त होती हैं । दरवारी कानड़ा तथा कुछ रागों को तानसेन का आविष्कार माना जाता है किन्तु सम्प्रदाय में जो सैकड़ों पद गाये जाते हैं, उनका हस्तलिखित कीर्तन संग्रह में उल्लेख प्राप्त नहीं होता । उनके पद अधिवतर नित्य-सेवा प्रणाली के दृष्टिगत होते हैं । श्रृंगार रस से झलकते हुए ये पद आज भी शीतकाल, उष्णकाल और चतुर्मास में गाये जाते हैं।

कहा जाता है कि तानसेन ने १००० पद की रचना की है किन्तु "संगीत सम्राट तानसेन" पुस्तिका में लगभग ३०० पद प्रकाशित हुये हैं । ऐसी मान्यता है कि तानसेन के कुछ पद उनके नाम पर चढ़ गये जिनमें अन्य की छाप भी दिखाई देती है जैसे कि—

(१) रितु अंग अंग रंग रानी (हरिनारायण)
(२) मेरो पिय रसिया सुनरी सखी (कृष्णजीवन)
(३) हों पनिया न जैहों (प्रभु कल्याण)
(४) बरसि उघर गयो मेह-(सूरदास)
(५) अबही डारि दैरे इंडुरियां (मदनमोहन पिय)
(६) आवन कह गये (धोंधी)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजा आसकरण

अष्टछाप की परम्परा में श्री विट्ठलेश्वर के सेवक राजा आसकरण का भी महत्वपूर्ण सहयोग है। इसी परम्परा के अनुसार राग, ताल और बंदिशों में आपने १२५ पदों से अधिक संख्या में पद-गान किया हुआ दृष्टिगत होता है। इनका कीर्तन प्रणाली को समृद्ध बनाने में योग्य स्थान दिया गया है।

२५२ वैष्णव की १२३वीं वार्ता में आपके संबंध में निम्न उल्लेख प्राप्त होता है—

"सो आसकरन कों प्रथम राग पर बोहोत आसक्ति हुती। सो देस देस के कलामंत गवैया आसकरन के पास आवते। सो आसकरन सब कौ समाधान करते। जहां लों रहते तहां तांई सीधो सामान पहोंचावते। पाछें जब चलते तब बिदा हू आछी करते। सो दोइसौ-चारसौ गवैया सदा आसकरन के पास गाइवे कों रहते।

सो एक दिन तानसेन ने आसकरन की बड़ाई सुनी। यह विचार कै तानसेन आसकरन के उहां गए। सो मध्याह्न समय राजा अपनी कचहरी में बैठो है। दसबास भले भले गवैया गावत है, सारंग के पद। ज्येष्ठ के दिन हैं। सो आसकरण तानसेन कों देखि के बोहोत प्रसन्न भयो। कह्यो, तानसेन! तुम भले समय आये। कछु सारंग के पद गावो। तब गोविंदस्वामी को "कुंवर बैठे प्यारी के संग अंग-अंग भरे रंग बलि बलि बलि त्रिभंगी जुवतिन-सुखदाई।" यह पद गायो तब आसकरन ने कही जो—आज तांई मैंने एसो पद नहीं सुन्यो।

पश्चात राजा ने गोविंदस्वामी को मिलने की इच्छा प्रगट की किन्तु श्री गुसांईजी के सेवक भये बिना वे किसी को मिलते नहीं हैं। यह जानकर तानसेन के साथ गोकुल जाकर श्रीगुसांईजी के सेवक हुए। श्रीगुसांईजी की आज्ञा से गोविंद-स्वामी ने राजा को प्रातःकाल तें सेन पर्यंत की वर्ष भर की कीर्तन सेवा को क्रम सिखायो। राजा को काव्य और संगीत की अच्छी जानकारी होने से गोविंदस्वामी की परंपरा अनुसार कीर्तन की संधि रचना कर प्रभु सन्मुख गान करने लगे। कहा जाता है कि आपको भगवत लीला के दर्शन होने लगे और तदनुसार अष्टछाप की परंपरा-नुसार कीर्तन गान करते हुए प्रभु को रिझाने लगे। नरवरगढ़ नरेश होते हुए भी राजपाट छोड़कर तानसेन के संपर्क से उच्चकोटि के कवि, संगीतज्ञ एवं महानुभाव भगवदीय की गणना प्राप्त की।

वर्षभर की कीर्तन सेवा में आज भी आपके पद गाये जाते हैं जो कीर्तन संग्रहों में सुप्रसिद्ध हैं, राग और ताल अष्टछाप की परंपरा की मर्यादा में ही होने से यहां अलग सूची दी गयी नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गंगाबाई

गंगाबाई का जन्म एक क्षत्री के घर गोकुल के पास महावन में हुआ था। उनकी माता श्री गुसांईजी की अनन्य कृपापात्र थी। श्री गुसांईजी की कृपा से उनके वहां गंगाबाई का जन्म हुआ। कुछ समय बाद बड़ी होने पर उन्होंने श्रीगुसांईजी से दीक्षा प्राप्त की और सम्प्रदाय की प्रणाली अनुसार भगवद् स्वरूप पधराय कर सेवा करने लगीं। सेवा से निवृत्त होकर हमेशा गोकुल जाया करती थीं। वहां श्रीगुसांईजी से श्रीमद् भागवत-सुबोधिनीजी कथा इत्यादि श्रवण करती थीं और तत्काल उसी भावानुकूल पद रचना करके श्रीगुसांईजी को सुनाती थीं। ये शीघ्र कवयित्री थीं। यही नहीं संगीत का ज्ञान भी उच्च प्रकार का था। उनकी भक्ति-भावना से स्वयं श्री गोवर्धननाथजी प्रसन्न होकर सानुभावता यानि उसकी साथ प्रत्यक्ष वार्तालाप करते थे। लीला के दर्शनों की दिव्य झांकी का भी सौभाग्य उनको प्राप्त हुआ था। तदनुसार वे विविध प्रकार की पद-रचना करके राग-रागिनी में गान किया करती थीं और श्रीनाथजी को सुनाया करती थीं। उनकी पद-रचना में अपने नाम के स्थान पर उन्होंने अपने गुरु और गोवर्धनधरन की छाप स्थापित की है। उनकी गुरु और गोविंद में समान भावना थी। इस प्रकार उनके प्रत्येक पद में "श्रीविट्ठल गिरिधरन" की छाप दिखाई देती है।

श्रीगुसांईजी की उत्तरावस्था से लेकर श्री हरिरायजी के समय तक वे उपस्थित थीं। जीवन भर वे सम्प्रदाय के विविध उत्सव, बधाई, त्यौहारों के कीर्तनों की रचना कर दिव्य अनुभव करती रहीं। अष्टछाप के पश्चात कीर्तन साहित्य को समृद्ध बनाने में उनका योगदान कम नहीं है। अष्टछाप की परम्परा के रागों में ही उन्होंने अपनी रचना की है। श्री हरिरायजी के समय में जब कीर्तन प्रणाली नियत हुई तब अनेक उत्सव, बधाई और नित्यपद, इत्यादि में इनके पदों की पूर्ति की हुई दिखाई देती है।

विधर्मियों के उपद्रव के कारण ब्रज से श्री गोवर्धननाथजी जब मेवाड़ पधारे उस समय गंगाबाई साथ में ही रहीं। इस प्रकार १०५ वर्ष आयु तक अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सेवा स्मरण कीर्तन ध्यान करती हुई भगवद्चरणारविंद में प्राप्त हुईं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पदगानमें वाद्यों के नाम

अष्टछापीय परम्परा के पद गान में वाद्यों के जो नाम पाये जाते हैं उसके उदाहरणरूप कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं:–

"वाजत ताल मृदंग, वांसुरी किन्नर सुर कौतलरी" (कुंभनदासजी)
"ताल मुरज रवाव वीना कीन्नरी रस सार" (सूरदासजी)
"झांझ झालरी कीन्नरी रंग भीनी ग्वालनी" (सूरदासजी)
"मुरलिया वाजत है वहुबान तीनग्राम इकइस मूर्छना उनयासी कोटीकाम ।।२।।
"सूरस्याम के अधरन राजत सबहीं अंग निधान ।।३।।" (सूरदासजी)
"हाथ त्रिशूल दूज कर डमरू, सींगी नाद वजावे" (सूरदासजी)
"बाजत वीन मृदंग शंख ध्वनि घसि अरगजा अंग चढाई" (सूरदासजी)
"वाजत पटह निशान अहो हरि होरी है ।" (सूरदासजी)
"सुरमंडल पिनाक महुवरि जलतरंग मनमोहे" (कृष्णदासजी)
"मदनभेरो रायगिडगिडी सहनाइ सुरमोहे" (कृष्णदासजी)
"बाजत ताल मृदंग झांझ डफ नूर भेरि सहनाई" (कृष्णदासजी)
"बाजत ताल मृदंग अधोटी आवज डफ सुरबीन उपंग" (कृष्णदासजी)
"तहां घूरें निसान ते नगारे की ध्वनि रह्यो घोख सब गाज" (कृष्णदासजी)
"झांझ झनक खंजरि वाजे भई झालरकी झनकारें" (कृष्णदासजी)
"बाजत वीना मृदंग बांसुरी अंग चंग भेरी डफ, झांझ झालरि, मंजिर" (कृष्णदासजी)
"दूज हु बाजे वाजन लागे दुंदुभी धौंसा गाजे,
रुज मुरज आवज सारंगी यंत्र किन्नरीवाजे" (परमानंददासजी)
"ललना बाजत ताल मृदंग बाजत कर कठताल" (गोविंदस्वामी)
"वाजत ताल मृदंग, झांझ,डफ, सहनाई अरु ढोल" (नंददासजी)
"डिमडिम दुंदुभी झालरी आवज वर मुख चंग" (चत्रभुजदासजी)
"वाजे वाजे मंदिलरा अनुपम गति माई" (व्रजमति)
"सुरवीना श्रीमंडल अमृत कुंडलो, आवज उपंग चंग बाजे मृदंग ताल" (गनहरिया)

वाद्यों के चार प्रकार

(१) ततवाद्यः–सूरवीणा (बीना), वीन, किन्नरी, सारंगी, सुरमंडल, रबाब, पिनाक, अमृत-कुण्डली, श्रीमंडल, यंत्र, सहतार ।

(२) सुषिर वाद्यः–बांसुरी, मुरली, सहनाई, महुवरि, मुख चंग, मुहचंग, शंख, भेरि ।

(३) आनद्ध वाद्यः–मृदंग, पखावज, मंदिलरश, मुरज, रुंज, आवज, दुंदुभी, निसान, पटह, ढोल, डमरू, डिमडिमी, चंग, उपंग, नगारे ।

(४) घनवाद्यः–ताल, झांझ, कठताल, आलरि, मंजीर, मंजीरा, खंजरी, जलतरंग, घंट, रायगिडगिडी ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री गोकुलेश युग

(वि. सं. १६४२–१६९७)

श्री विट्ठलेश्वर के वाद श्री गोकुलेश युग का प्रारम्भ होता है। श्री गोकुलनाथजी श्री गुसांईजी के चतुर्थ पुत्र थे। आपका जन्म वि. सं. १६०८ में हुआ था।

आपके पितृचरण के लीलास्थ समय आपकी वय ३४-३५ की थी। व्यवहारादि कार्य का भार आपने हस्तगत कर लिया था। आपके पितृचरण एवं बड़े भ्राता श्री गिरधरजी से सम्प्रदाय के सिद्धांत, सेवा रीति, भाव-भावना, प्रणाली एवं व्यवहार कुशलतादि प्राप्त कर चुके थे। उसी समय दरम्यान सम्प्रदाय के अष्टछापादि संगीताचार्यों के निकट संपर्क से काव्य और संगीत विद्या में उत्तम जानकारी प्राप्त कर ली थी। यही नहीं राजद्वारी गायक-वादकों से भी आपका संपर्क रहा करता था।

आपका दूसरा नाम 'वल्लभ' भी प्रचार में था। पितृचरण श्री विट्ठलेश्वर तो प्रिय नाम 'वल्लभ' से ही बुलाया करते थे। कहा जाता है कि 'वल्लभ' छाप की कीर्तन-पद रचना आप ही की है। किन्तु इस छाप के कीर्तन बहुत कम दिखाई देते हैं। आपका व्रजभाषा का गद्य साहित्य विपुल प्रमाण में प्रचलित है किन्तु जो कुछ पद प्राप्त होते हैं, उनमें से निम्न दो पद उदाहरणार्थ यहां दिये जा रहे हैं, जो कीर्तन प्रणाली में आज भी गाये जाते हैं।

निम्न पद में कुंज की भावना के उपरान्त श्रीजी का मुरली वादन तथा प्रियाजी का वीणा-वादन तथा 'सारंग' राग का सुन्दर संगीतात्मक भाव-वर्णन किया गया है:–

(१) राग–सारंग, ताल-चौताल:–

बैठे हरि राधे संग कुंज भवन अपने रंग कर मुरली अधर धरें सारंग मुख गाईरी ।। मोहन अति ही सुजान परम चतुर गुन निधान जानि बूझि एक तान चूक कें बजाईरी ।।१।। प्यारी जब गह्यो बीन सकल कला गुन प्रवीन अति नवीन रूप सहित वही तान सुनाई ।। "वल्लभ" गिरिधरनलाल रीझ दई अंकमाल कहत भलें-भलें लाल सुंदर सुखदाईरी ।।२।।

(२) आपके पितामह श्रीमद् वल्लभाचार्यजी की जन्म बधाई का पद, राग-देवगंधार–

प्रगटे कृष्णानन द्विज रूप ।। माधव मास कृष्ण एकादशी, आये अग्नि स्वरूप ।।१।। दैवीजीव उद्धारन कारन आनंदमय रसरूप ।। "वल्लभ" प्रभु श्री गिरिधर प्रभु दोऊ, तेइ एइ एक स्वरूप ।।२।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आपके समय में श्रीमद् वल्लभाचार्यजी की ८४ और गुसांईजी की २८– [(१) गोकुल मंदिर में (२) बड़ी बैठक (३) वृंदावन (४) राधाकृष्ण कुंड (५) चंद्रसरोवर (६) चंद्रसरोवर (फूलघर) (७) गोपालपुर (८) कामवन (९) प्रेमसरोवर (१०) संकेतवन (११) रीठोरा (चंद्रावती कुंड) (१२) करहला (१३) कोटवन (१४) चीरघाट (१५) बच्छवन (१६) वेलवन (१७) चरणाट (१८) अडेल (१९) गौडदेश (बंगाल) (२०) सोरमजी (२१)) गोधरा (२२) अलीणा (२३) असारवा (२४) खंभात (२५) नवानगर (जामनगर) (२६) गुरुगढ़ (२७) द्वारका (दाऊजी मन्दिर के पास) (२८) द्वारका रामलक्ष्मण मंदिर] बैठकें स्थापित हो चुकी थीं। उसी प्रकार श्री गोकुलनाथजी ने भी भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में अपने रसाला सहित पधार-कर श्रीमद् भागवत सप्ताह का आयोजन किया था, इन स्थलों को श्री गोकुलनाथजी की बैठकें कही जाती हैं। जो निम्न प्रकार हैं:–

(१) गोकुल (२) वृंदावन (३) राधाकृष्ण कुंड (४) चंद्रसरोवर (५) गोपालपुर (६) कामवन (७) करहला (८) रासोली (९) सोरमजी (१०) अडेल (११) काश्मीर (१२) गोधरा (१३) असारवा।

आपके पिताचरण श्री विट्ठलेश्वर अपने सातों पुत्रों को भगवद् स्वरूप इत्यादि का बँटवारा कर चुके थे। बाद में इन सातों बालकों ने अलग-अलग मन्दिर बनाकर सेवा का प्रकार और प्रचार बढ़ाते रहे। अपने-अपने भावानुसार उत्सव, त्यौहारों में सेवा का प्रकार नियत होता रहा तदनुसार कीर्तन गान की सेवा में भी पदों की संख्या बढ़ती रही। अष्टछाप के सैकड़ों पदों की मूल गान परम्परा इसी समय तक ठीक-ठीक प्रवाहित होती रही किन्तु अधिकतर मन्दिरों तक ही सीमित रही।

सम्प्रदाय की सुरक्षा करने मे आपका महत्वपूर्ण स्थान है। आपने विधर्मियों से जबरदस्त सामना करके सम्प्रदायकी दीक्षाके अंगभूत तुलसीमाला एवं तिलक की रक्षा की। सम्प्रदाय का ब्रजभाषा साहित्य के ऐतिहासिक साहित्य में ८४ वैष्णव की वार्ता तथा २५२ वैष्णव की वार्ता एवं आपके हास्य प्रसंग इत्यादि सुप्रसिद्ध साहित्य आपकी ही देन है।

आपकी कार्यसिद्धि का युग अधिकतर शहनशाह जहाँगीर के समय से यानी १६४२ से माना जाता है। आपके पितृचरण श्री विट्ठलेश के समय से जो राग, भोग, श्रृंगारादि का सेवाक्रम था जो आपके समय में अधिक बढ़ता रहा। विविध प्रकार की सामग्री तथा श्रृंगारादि के वैभव के साथ संगीत कला को भी आपने अधिक उत्तेजन दिया। उस समय के प्रसिद्ध गायक-वादक-नृत्य कार भी आपको संगीत सुनाने के लिये आया करते थे। आपकी विद्वत्ता, व्यक्तित्व, व्यवहारता एवं सम्प्रदाय, प्रचार की तमन्ना से कुछ सेवकों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे आपको ही सर्वस्व मानने लगे। ऐसे अनन्य वैष्णवगण श्री गोकुलनाथजी के सेवक कहलाने लगे। आज भी वे श्री गोकुलनाथ के सिवाय अन्य किसी में श्रद्धा नहीं रखते।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आपके ऐसे अनन्य सेवकों में श्री मोहनभाईजी और श्री गोकुलभाईजी ये दोनों गुजराती वैष्णव अधिकाधिक कृपापात्र थे, जो श्री गोकुलेश को ही अपना सर्वस्व धन समझते थे। उन्होंने श्री गोकुलेश प्रभु के जन्म (शताब्दि) महोत्सव का बड़ी धामधूम से बादशाही ठाठ से एक मास तक आयोजन किया था। उसी का वर्णन सद्भाग्य से मौजूद है। उस में ११३ मांगल्य (कडवाँ) और १५०० तुलवंदी (कड़ीयाँ) है। जिनमें वस्त्राभूषण वर्णन, पात्र वर्णन सुगंधी द्रव्य वर्णन के साथ शीवण कला, सामग्री कला, चित्रकला, शोभन कला, वेश-भूषादि और संगीत कला का उस समय का चित्र दृष्टिगोचर होता है। अतः यहाँ संगीत संबंधी ही चर्चा उचित होने से मांगल्य ५३ और ५५ प्रसिद्ध है। इस काव्य ग्रंथ की रचना स्वयं श्री गोकुल भाईजी ने सं १७०८ में की और ग्रंथ का नाम "स्वरूपानुभवोच्छव रसलील" है।

"स्वरूपानुभवोत्सव रसलील" ग्रंथ के मांगल्य ५३ तथा ५५ में निम्न प्रकार के नगारची के नाम पाये जाते हैं। साथ में शहनाई का भी उल्लेख प्राप्त होता हैं। शहनाई वादको में श्रेष्ठ असे आग्रा घराना के औ गाँव के निवासी (१) वाजीदअली (२) आलमखाँ और (३) कालु। नगारची में (१) हसनअली (२) जमालखाँ।

गायक-नायक गुणीजनों के नाम—

(१) गोपाल नायक—जिन्होंने अपने संगीत द्वारा हिरणों को मोहित कर दिये थे।

(२) नायक बैजू—जिन्होंने अपने संगीत द्वारा पत्थरों को पिघलाया था।

(३) गायक—गोविंददास, (४) नायक बक्सू, (५) चिरजू, (६) मछू एवंम कलावन्तों में शिरताज (७) तानसेन, (८) चंचल (९) ससि और महागुणी (१०) नायक धोंधी।

मुरलीवादक कमालखान

वैष्णव गायक:—जिन्होंकी पदरचना आज भी संप्रदाय में गायी जाती है। (१) चतुर विहारी, (२) दास वृन्दावन तथा (३) श्यामदास, (४) रामदास (पूरविया कत्थक)।

नट गायक (नाट्यकार):—दक्षिण के (१) त्रिमल, (२) नित्यानंद, (३) कहानदास और नंदगाँद के कृष्णदास नटुमो।

गागर वादक:—(१) हरिचंद, (२) हीरामणि।

नृत्यकार: मथुरा का कृष्णदास सोनी, गोकुल के गोकुलभाइ लुहार तथा मुरली और बलराम एवं गुजरात के द्वारकादास और मोहनदास तथा नृत्यकार नारणदास।

पखावजी-मृदंग वादक:—वृन्दावन के पखावजी, (२) कितनदास, ग्वालियर के पखावजी, (२) दमजा-दामजी तथा गुजरात के (३) धूलो मृदंगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ताल-वादकः—मथुरा के (१) दमलो-दामोदर और (२) महावनीओ चीन्नु।

कठताल-वादकः—मथुरा के हरजीवन।

जलतरंग-वादकः—द्वारकादास।

सारंगी-वादकः—गुणीराज शिरोमणि (१) ध्यानदास और अजोड सारंगी-वादक (२) चतुरदास।

वीणा-वादकः—(१) गोपालदास और (२) दामोदर ठाकुर और श्रीगोकुलेश प्रभु के सिखाये हुओ रागों के वादक (३) द्वारकादास।

रवाब-वादकः—गोवर्धन के (१) खनुओ और (२) मखुओ खावी तथा महा-गुणी (३) रायचंद गुजराती।

पिनाकी-वादकः—हेरुक गामके (१) मयाचंद और (२) भावचंद।

अमृतकुंडली-वादकः—करेटीके (१) भगवानदास।

ढोलकी-वादकः—(१)लीलो सोनार (सोनी) और सेहरा के हरियो

स्त्री गायिका (१) राणी पद्मावती और (२) रूपमती हुडकवादकिनी स्त्रियाँ (१) रामकली, (२) अनारकली, (३) देव्या, (४) नांती, (५) करुणा (६) गंभीरा।

ढोलक वादकी:—(१) रुक्का भाटकी रूपवंती, (२) रुक्का भाट।

वाद्यों की नामावली

(१) वीणा (२) स्वर वीणा (३) किन्नरी (४) अघोटी (५) पिनाक (६) तंबूर (७) रवाब (८) सारंगी (९) सूर मंडल (१०) चीनो नटुक (११) कठताल (१२) झांझ (१३) मृदंग (१४) मुरज (१५) पखावज (१६) ढोलक (१७) आवज (१८) अमृत कुंडली (१९) डफ (२०) चंग (२१) जलतरंग (२२) गागर (२३) महुवर (२४) वांसली (२५) उपंग (२६) मुखचंग (२७) ढोलकी (२८) खंजरी (२९) हुड (३०) हुडकिनी (३१) ढोल (३२) दमामा (३३) शहनाइ (३४) नगारे (३५) ताल (३६) मुरली।

आपके समयके गायक-वादक गण तथा वाद्यों की जो गुर्जर काव्य रचना, जो उपर्युक्त दे चुके हैं, वह संगीतके इतिहास में अति उपयोगी है। जो की उनमें बदनु, बैरजु, गोपाल नायक, तानसेन, रानी पद्मावती जैसे महान संगीतज्ञों की उपस्थिति वि. सं. १६९२-९६ में होना संभावित नहीं है। फिर भी उन नामोंका इस काव्य में उल्लेख होनेका संभव यही हो सकता है कि आपके प्रारंभिक जीवन कालके प्रसंगों में वे उपस्थित हुओ हों।

मांगल्य-मूल निम्न प्रकार है

१. अने अहीं नाथजी आगल्य, कीर्तन थाय छे बहुवारजी। ताल झांझने पखाजशु दिवसे केटलाअेक आगम सारंगी। गाअे ते जनमलीला अने बाललीला अतिअे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जार स्नेह शुंजी ते सुणी सुणी प्रभुजी प्रसन्न थाय छे गाये छे तेह शुंजी अने वली भगवदी सहुमली वेठकमां हां गाय धोलजी स्त्रीय पुरुष भिन्न भिन्न थका आपायणे रोलजी

२. दमामा अरु वाजे सवे शहनाई मंगावो
व्रजपतिजीने पठवीया, प्रभुअे पछी व्यांह
ने वाजीगनी आआ थई, वाग्या मंदिरमांह (मांगल्य–५३)

मांगल्य–५५

यद्यपि मांहे कोई असुर नाम छे पण ते प्रभु प्रमाण्याजी,
गुणीजन गायक ने वाजंत्रीया श्री मुखे जे वखाण्याजी,
प्रथम नगारची ने शेहेनाईया, नोषत्यना वाजदारजी,
अे गामना माहा सुघड़गुणी, आगराई वलासारजी,
वजीद आलम अे अेना, शहेनाइया सिरताजजी,
श्री महाप्रभुजी अे स्वतह शरणे, राच्या सहित समाजजी,
हसन जमाल नगारची अे आदि, देइ सहु साजंदाजी,
वली आगराई शहेमाइओ, कालु नाम छे जे तेइनुंजी,
गोपाल नायक अे बेहेजू सहित, अे वेहू अतिशे वखाण्याजी,
रात्रे मृग मोहित करी मोतीनी, माला पहेरावे तेह ने जी,
बेहेजू राग आलापी द्रवित करे, पाथर छे जेहने जी,
वली गायक गोविंददासने वक्सू नायक जेहजी,
चिरजू नायक ने मछू नायक, घणु सहराया छे तेहजी,
कलावंत शिरताज तानसेन, राजा तणा निवाज्याजी,
सात दिप नवखंड मांहे जश रमी रह्यो नामे गाज्याजी,
वली चंचल ससि अे बेहू भाईने घोंधो महागुणी रायजी,
अति मधुरे सुर गाईने कमालखान मुरली पायजी,
अे सहु शिरमोर चतुरविहारी, परम चतुर गुण रूपजी,
दास वृंदावन कृपापात्र प्रभुना पद करे अनुपजी,
श्याम राम पूरवीया कथक सेवक थया प्रभुसानिध्यजी,
द्रुपद नौतन करी गायां प्रभुना गुण परमाविधजी,
नटुआ त्रिमला ने नित्यानंद कहानदास दक्षिणातजी,
नंदग्रामी कृष्णदास अे नटुओ, तेहनो पण विख्यातजी,
हरिचंद ने हीरामणि नागरी, तेह वगडे अनुपजी,
मथुरा नो कृष्णदास सोमार ते नितंनकारो मांह भूपजी,
नितंकारो गोकुल लुहार अे श्री गोकुलवासी घरनाजी,
अने मुरली बलराम अेह बडा नितंकारो थया घरनाजी,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गंधर्व द्वारकादास ने मोहनदास जेहु गुजरातीजी,
ने नारणदास निर्तकारीअे अणे गुणी संघातीजी,
कीर्तनदास पखावजी वृंदावनी, दमजा जे ग्वालेरीजी,
घूली मृदंगी ते गुजरातनो विद्यागुणे रहे घेरीजी,
ताल धारी मथुरानो दमलोने हरजी कठताली जी,
कलावंत महावनीयो चीन्नु, ताल वगाडे रसालीजी,
द्वारकादास खासजी आथा श्री प्रभुने सानिध्यजी,
महद अनुग्रह दादाजीने अे पाम्यो परमाविधजी;
जलतरंग चीनी प्यालानां, प्रभु आगलयने वजाड्याजी,
चढता उतरता स्वर साधी सुर बहु राग देखाड्याजी,
भाग्यराशि गुणीराज शिरोमणि घ्यानदास निज भक्तजी,
परमविध सारंगी वगाडे ते गुणे प्रभु अनुरक्तजी;
अेहने परोक्ष ते चतुरदास, सारंगी वगाडे रुडीजी,
संपूर्ण भूमंडल मांहा, अेह नी सम नहीं कोईजी,
गोपालदास ने दामोदर ठाकुर, द्वार रहे विणुकारजी,
धारणा ते महाप्रभुनो शिखव्यो, जंत्र वगाडे अपारजी,
खनुओ मखुओ रबाबो रबाब ते गोधन थी लइ आवेजी;
रायचंद ते गुजराती ते पण, महागुणी अति कहेवरावेजी,
हेरुफ रामना जे पिनाकीया, मयाचंद भावचंदजी,
अति मधुरी पिनाकी वजाडे, सुणे प्रभु आनंदकंदजी,
अमृत कुंडली ने ढोलकी, वजाडी अनुपम सारजी,
भगवानदास करेंटो नौ अंगी लीलो जे सोमारजी,
वली जेह सहशनो हरियो तेहनी सराहना कीधीजी,
राजामान ग्वलेरी तणी पद्मावती—लाडांरसालजी,
ने रूपमती ते बाजबहादुरनी रूपवंती रसालजी,
रामकली ने अनारकली जे हुडकणी अकबर तणीयजी,
सुन्दर, देव्यां नानीने, करुणा गंभीर भणीयजी,
तुलसां जेह हुठकणी ते आवी छे अहीं बहुवारजी,
रूकको भाटणी ढोलक वगाडे, त्यारे रहे न कोईनु धारजी,
रूपवंती सुन्दर अति चंचल, करे टोक गंभीरजी,
मांगल्य करने सदा सर्वदा ढोल वजते अेहजी,
गानकरे गंभीर स्वरे महा मधुर लागे तेहजी,
अेणारीते संक्षेपमा कही, आप्या गुणी गायकनामजी,
श्रीमुखथी प्रमाण्या जेअने, अनुभवो अभिरामजी,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री हरिराय युग
(वि. सं. १६९७–१७७२)

श्री गोकुलेश के पश्चात श्री गुंसाइजी के प्रपौत्र श्री हरिरायजी के युग का प्रारंभ होता है। आपके पिताका नाम कल्याणरायजी था। जन्म सं. १६४१ (ई. सं. १५९१) में हुआ था। आपके दीक्षागुरु श्री गोकुलेश प्रभु थे। बाल्यकाल से श्री गोकुलेश के संपर्क में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। श्री हरिरायचरण प्रकांड पंडित और समर्थ व्याख्याता तथा साहित्य संगीत एवं काव्य रचना में भी निपुण बन चुके थे। श्री गोकुलनाथजी की बहुतसी साहित्यिक रचनाअें आपने संपादन की थीं। आप अधिकतर गोकुल गोवर्धन इत्यादि संप्रदायके केन्द्रों में निवास करते थे तथापि आपने संप्रदायके प्रचारार्थ देशव्यापी यात्राओंसे मुख्यत: राजस्थान इत्यादि स्थलों में यात्राएँ की थीं, इनमें (१) गोकुल, (२) सावली, (३) डाकोर, (४) जंबुसर (५) जेसलमेर, (६) नाथद्वार (७) खीमनोर इन स्थलोंमें दीर्घ समय तक निवास किया गया था, जिनमें श्री हरिरायजी की बैठक कही जाती हैं।

कुछ समयांतर संवत १७२६ में जब मोगल सम्राट औरंगजेब ने मथुरा, गोकुल, वृन्दावन के मंदिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिये थे तब श्री नाथजी का देव-विग्रह भी गुप्त रीति से उसी काल में गोवर्धन से मेवाड ले गये थे। उसी अरसे में द्वितीयपीठ के (आपके सेव्य स्वरूप) श्री विट्ठलनाथजी का स्वरूप तथा श्री नवनीत-लालजी और तृतीय पीठ के श्री द्वारिकाधीश का स्वरूप भी ब्रज में उपद्रव के कारण मेवाड़ में सुरक्षित स्थल में पधराये गये थे।

आप भूतल पर १२५ वर्ष तक विराजमान रहे थे। जिनके अंतिम ४५ वर्ष मेवाड में ही सेव्य स्वरूप को सेवामें और संप्रदायको प्रणाली बद्ध करने में तथा साहित्य संगीत की भावनामय रचनाओं और ग्रन्थ संपादन करने में व्यतीत हुअे थे। आपकी ब्रजभाषामें तथा संस्कृत ग्रन्थ रचनाएँ संख्याबद्ध प्राप्त होतीं हैं। इस रचनाओं ने संप्रदाय के अतिरिक्त हिंदी साहित्यमें भी अमरता प्राप्त की है।

अष्टछाप और तत्पश्चात् के आपके पूर्व कीर्तनकारों की रचनाओं को संप्रदायकी कीर्तन प्रणाली में ऋतु तथा समयअनुसार आपने नियमबद्ध की किन्तु प्रत्येक उत्सव तथा त्यौहार के दिनों में उसी भावनाकी रचनाओंकी जहां जहां त्रुटियाँ थी अथवा विधर्मिओं के उपद्रव से ब्रज छोड़ने पर कुछ साहित्य नष्ट हो जाने पर इस त्रुटियों को आपने अष्टछापकी परंपरा अनुसार के रागों में तथा तालों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में लगभग सातसौ पदों की रचनाकर उसी भावना अनुसार गान करके संप्रदायकी ऋतु ऋतु अनुसार तथा समय समय अनुसार कीर्तन प्रणाली को व्यवस्थित करके नियमबद्ध करने का आपका ही श्रेय है।

आपके समय तक अष्टछाप परंपरा की गानशैली तदनुसार प्रवाहित रही। आपके गाये हुअे रागों की संख्या भी आपके पूर्व कीर्तनकारों के गाये हुअे रागों की संख्या की मर्यादा में ही रही है। आपकी रचनाओं की शैली भी पूर्व कीर्तनकारों के गाये हुअे रागों की बंदीशोंमें प्राप्त होती है। इसलिये यहाँ अलगसूची देने की आवश्यकता नहीं है। आपके पद रचनाओं में रसिक, रसिकदास, रसिकप्रीतम तथा हरिदास की छाप प्राप्त होती है।

श्री हरिरायजी के पूर्व ही सम्प्रदायकी संगीत कीर्तन प्रणाली समयऋतु और उत्सवानुसार नियत हो चुकी थी परन्तु कहीं-कहीं नित्य क्रम, ऋतुक्रम, जन्मोत्सव तथा त्यौहारादि कीर्तन प्रणालो में स्वयं रचना करके आवश्यक पूर्ति की। जैसे नौरात्रिके नौ दिनोंमें गाये जाने वाले नौ विलास के पदों इत्यादि अनेक पदों की भावनामय पूर्तिका श्रेय आपहीको है। बारह मास के नित्य और नैमित्तिक सेवा प्रणाली के उत्सव भी आपके समयमें ही व्यवस्थित और नियत हुए। प्रत्येक दिनकी सेवा का रहस्य रसात्मक पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी भगवदलीला की भावनानुसार प्रगट करने में आपकी अमूल्य देन है।

छप्पन भोग:—सम्प्रदायके उत्सवोंमें 'छप्पन भोग' का एक महाउत्सव माना जाता है। जिनको सप्त-स्वरूपोत्सव भी कहा जाता था क्योंकि सातों पीठके सातों स्वरूप एक ही स्थान पर विराजित होते हैं और अगणित-सामग्री का भोग लगाया जाता है। सर्व प्रथम यह उत्सव श्री विट्ठलनाथजी ने जतीपुरा (गोपालपुर) में किया था। कहा जाता है कि दूसरा भी सात स्वरूपोत्सव उन्हीं के समय में हुआ और तीसरा छप्पन भोग का उत्सव श्री गोकुलेश प्रभुने अपनी ९२ वर्ष की आयु में किया था, ऐसी मान्यता है।

छप्पन भोग के उत्सवमें वर्षभरके मुख्यत: उत्सवोंको भावना भी की जाती है। श्री हरिरायजी के समय में यह उत्सव क्रम भी नियत हो चुके थे। इस उत्सव में सात पीठों के सात निधि-स्वरूपों और अष्ट-समय दर्शनकी भावना का रहस्य माना जाता है। असल में मूल छप्पन भोग का आधिदैविक स्वरूप जहाँ सप्त-स्वरूप विराजित होते हैं वहाँ प्रगट होता है। इसीलिये सप्तस्वरूपोत्सव भी कहा जाता था किन्तु आजकल सप्तस्वरूप छप्पनभोग के स्थान पर सम्प्रदायके किसी भी मंदिरमें अन्नकोट से अधिकाधिक मात्रा में सामग्री का भोग धराने की प्रथा अधिक दिखाई देती है। इस प्रकार का छप्पनभोग सम्प्रदायकी मूल भावना से कितना सुसंगत है, वह मर्मज्ञ समझ सकते हैं। श्री हरिरायजी के समयमें छप्पनभोग की जो भाव-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भावना प्रगट हो चुकी थी उनका कुछ आवश्यक विवरण निम्न प्रकार दिया जा रहा है।

राग और भोग (सामग्री) तथा शृंगार यह तीनों सम्प्रदायके उगमसे अंगभूत माना जाता है। राग प्रकरणमें ५६ रागोंकी सूची दी जायेगी। यहां पर राग संख्या के साथ-साथ ५६ प्रकारकी सामग्री का जो भोग लगाया जाता है जिसको 'छप्पन भोग' कहा जाता है। सर्वप्रथम छप्पन भोग जो कि श्रीमद् विट्ठलेश्वर प्रभुके समयमें हुआ था किन्तु व्यवस्थित रूपसे राग और भोग इन दोनोंकी ओतप्रोतता श्रीमद् हरिराय महाप्रभु के समयसे दृष्टिगोचर होने लगी।

'छप्पन भोग' का भावात्मक स्वरूप अेवं छप्पन उत्सवों का संबंधादि का यहाँ कुछ विचार करेंगे।

(१) छप्पन भोग के उत्सव के रोज एक ही दिन में ५६ प्रकारकी सामग्री का जो भोग धराया जाता है, उसीको छप्पन भोग कहा जाता है।

(२) बारह मासके उत्सवों में जो जो सामग्री धराई जाती है वह सभी उत्सवों की सामग्री उसी रोज धराई जाती है। अतः वर्ष भर के उत्सवों की सूची निम्नप्रकार मानी जाती है।*

(१) जन्माष्टमी (२) चंद्रावलीजीका उ. (३) ललिताजीका उ. (४) राधाष्टमी (५) दान अेकादशी (६) वामन जयन्ति (७) सांझी प्रारंभ (८) कोटकी आर्ति (९) सांझी समाप्ति (१०) नवरात्रि पर्व (११) दशहरा (१२) शरद पूर्णिमा (१३) धन तेरस (१४) रूप चतुर्दशी (१५) दीपमालिका (१६) गोवर्धनपूजा (१७) अन्नकूट (१८) भाईदूज (१९) गोपाष्टमी (२०) प्रबोधिनी (२१) श्री गिरिधरजीका उ. (२२) श्री गोविंदराय जी का उ. (२३) श्री बालकृष्णजी का उ. (२४) श्री गोकुलनाथजी का उ. (२५) श्री रघुनाथजीका उ. (२६) श्री यदुनाथजीका उ. (२७) श्री घनश्यामजी का उ. (२८) श्री गुसांइजी का उ. (२९) चारोंघटा (सातकाल की) (३०) मकर संक्राति (३१) श्री दामोदरदासजी का उ. (३२) वसंत पंचमी (३३) होरी दंडारोपण (३४) श्री नाथजी का पाटोत्सव (३५) श्री मथुरेशजी का पाटो. (३६) कुंज एकादशी (३७) बगीचा (३८) डोलोत्सव (३९) द्वितीया पाट (४०) संवत्सर (४१) रामनवमी (४२) श्री महाप्रभुजी का उ. (४३) अक्षय तृतीया (४४) नृसिंह जयंति (४५) गंगा दशहरा (४६) स्नान यात्रा (४७) रथ यात्रा (४८) कसुंभा छठ (४९) हिंडोला (५०) ठकुरानी तीज (५२) नाग पंचमी (५३) पवित्रा अेकादशी (५४) पवित्रा द्वादशी (५५) रक्षाबंधन (५६) छठीको उ.

---

* देखिये वैश्वानर" मासिक ई. स. १९६१ पृष्ठ-१० लेखक : काशीरामजी शास्त्री

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(३) इनके अतिरिक्त सम्प्रदायकी भावदृष्टि से निम्न भावना भी मानी जाती है।

सम्प्रदाय के नित्य सेवा क्रम में हमेशा सातबार भोग लगाया जाता है। और श्री गोवर्धनधरण तथा अन्य सात मुख्य स्वरूप मिलकर आठ स्वरूप विराजमान हैं। यह आठों स्वरूपों को दिन में ७ वार भोग आते हैं। अतः ८×७=५६ की संख्या छप्पन भोग की भावनानुसार आज भी सुप्रसिद्ध है।

(४) अन्य लीलात्मक भावना यह भी है कि छप्पन भोग का मनोरथ श्रीवृषभानजी ने किया था। श्री नंदरायजी और श्री जसोदाजी श्री ठाकुरजी तथा कुटुंबजनों को साथ लेकर श्री वृषभानजी के भवन (वरसाना) में भोजनके लिये निमंत्रण दिया गया और श्री नंदरायजी सभी व्रजवासियों के साथ श्री राधिकाजी की सगाई (विवाह) के महान अवसर का जो आयोजन किया था जिसका वर्णन "गदाधरजीने" ने निम्न पद में किया है।

"श्री वृषभान सदन भोजनको नंदादिक मिलि आये हो"

आपके समय से ही छप्पन भोग, शब्द का रूढ़ अर्थ में प्रचार होने लगा तत्पूर्व सात स्वरूपोत्सव कहा जाता था।

सम्प्रदायके आवश्यक कीर्तनोंकी पूर्ति करनेमें आपके पश्चात् गो. श्री व्रजपतिजी हैं तथा गो. श्री व्रजपतिजी का जन्म सं. १६९२ में हुआ था। आपकी रचनाके बहुतसे पद कीर्तन प्रणाली में गाये जाते हैं।

गो. श्री व्रजाधीशजी महाराज का जन्म सं. १६९७ में हुआ था। अष्टछापीय परंपरानुसार आपकी रचनाके संख्याबंध पद प्राप्त होते हैं, जो आजभी गाये जाते हैं।

श्री हरिराययुगके समयके उपर्युक्त दो समर्थ वाग्गेयकारों बाद भी द्वारकेशजी महाराज का ही योगदान कहा जायेगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

द्रुपद

अष्टछाप के समय से श्री हरिराय चरण के समय तक द्रुपद गान ही प्रचलित था। द्रुपद शैली का गान उत्तम स्वरज्ञानी और रागज्ञानी से ही साध्य हो सकता था। आलाप गान करने वाले गायक द्रुपदिया कहे जाते थे। अकबर शाह के दरबारों में जो गायक थे वे सभी द्रुपदिया ही थे। द्रुपद गान ख्याल गायन से अधिक विस्तृत होता है। स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग इस प्रकार इसके चार भेद होते हैं। द्रुपद गान को हिंदुस्तान का मर्दानी और जोरदार गायन कहते हैं। इनमें वीर, शृंगार और शान्त रस प्रधान होते हैं। द्रुपद का स्थान भारतीय संगीत में कितना उच्च प्रकार का माना जाता है? "संगीत रत्नाकर" जैसे प्रमाणभूत ग्रन्थ के चतुर्थ प्रवंधाध्याय में लिखा है कि—

शुद्धश्छाया लगश्चेति द्विविधः "सूड" उच्यते।
एलादिः शुद्ध इत्युक्तो ध्रुवादिः 'सालगो" मतः ॥३१२॥
आद्यो ध्रुवस्ततो मण्ठ प्रति मण्ठनिसारुकाः।
अडु तालस्ततो रास एकतालीत्यसौ मतः ॥३१६॥

आगे चलकर इसी प्रकरण में ही कहा गया है कि

रासको रासतालेन स चतुर्धा निरुपितः ।:
विनोदो वरदो नन्दः कम्बुजश्चेरि शार्ङ्गिणा ॥
आलापान्तध्रुवपदाद्विनोदः कौतुकं भवेत् ॥३५३॥
ध्रुवादालापमध्यात्तु वरदो देवतास्तुतौ।
आलापादेर्ध्रुवपदात् कम्बुजः करुणे भवेत् ॥३५४॥

इसमें "आलापान्त ध्रुवपदात्", "ध्रुवादालापमध्यास्तु" और "आलापादेर्ध्रुव-पदात्" ये शब्द द्रुपद के आलाप का समर्थन करते हैं। आलाप की आवश्यकता पर द्रुपद गायन में विशेष झोक दिया गया है।

तदुपरान्त १२वीं सदी के भावभट्ट पंडित रचित "अनूप संगीत रत्नाकर" नामक ग्रन्थ में द्रुपद की व्याख्या निम्न प्रकार दी गई है—

"गीर्वाणमध्यदेशीय भाषासाहित्यराजितम्।
द्विचत्तुर्वाक्यसंपन्नं नरनारी कथाश्रयम् ॥
शृंगाररसभावाद्यं रागालापपदात्मकम्।
पादान्तानुप्रासयुक्तं पादान्तयुगकं च वा ॥
प्रतिपादं यम बध्यमेवं पाद चतुष्टयम्।
उद्ग्राहध्रुवका भोगान्तरं ध्रुव पदं स्मृतम ॥"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संस्कृत मिश्रित मध्यप्रदेशीय भाषा साहित्य संपूर्ण हो तथा जिसमें स्त्री-पुरुष संबंधी कथा हो, शृंगार-रस पूर्ण हो, जिनके पद राग.लाप से पूर्ण हो तथा चरण के पदान्त में तुकबंदी हो उसको द्रुपद कहते हैं। जिनमें 'रागालापपदात्मकम्" शब्द से आलाप की विशेषता सिद्ध होती है।

वदतिरिक्त संगीत के विद्वानों ने द्रुपद गायन की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। यही नहीं परन्तु इस गायन को अन्य गान शैलियों से श्रेष्ठ कक्षा में दिया गया है। इस संबंध में यहां केवल "लक्ष्यसंगीत" एवं "अभिनवराग मंजरी" के कर्त्ता पं. भातखंडे-जी ने स्पष्ट कहा है कि "द्रुपद गायन पिछले सैका के आरंभ तक अत्यन्त लोकप्रिय था। हाल भी उनको शुद्ध और सन्माननीय गिना जाता है। परन्तु पिछले १००-१५० वर्षों में ख्याल गायन लोगों को अधिक प्रिय होने लगा इसलिए द्रुपद गायन की पीछे हट होती रही। द्रुपद गायन का पुनः प्रचार और लोकप्रिय हो ऐसी सहज इच्छा है।"

आधुनिक समय जव गायन पीछे हट रहा है, अब द्रुपद गायन के घराने भी नष्ट होते जा रहे हैं तथा द्रुपद गायन से लोकरुचि भी कम होती जा रहीं, ऐसे समय में यह पवित्र गायन की परम्परा रखनी हो तो इसका पुनरुद्धार होना चाहिए। पुष्टि सम्प्रदाय के मंदिरों का द्रुपद की परम्परा जीवित रखने में कम योगदान नहीं है। जिसका श्रेय अष्टसखादि महान कीर्तनकारों को दिया जायेगा। सम्प्रदाय की परम्परा में आज भी हजारों की संख्या में यह पद साहित्य दृष्टिगत होता है। जिसका गान आज भी मन्दिरों में होता रहा है। यह द्रुपद शैली का गायन चौताल, सुल ताल, धमार, आड-चौताल, चर्चरी, दीप्त्रा आदिताल इत्यादि तालों में गाया जाता है।

द्रुपद गायन की पद्धति के प्राचीन काल में चार वर्ग माने जाते थे। (१) कृष्ण मत मुजव "गोबर हारी" वानि (२) शंकर मत की "नौहारी" बानि (३) भरत की "डागुरी" वानि (४) हनुमत की "खंडारी" बानि कही जाती थी किन्तु इस प्रकारों की वानियों का उगम कहां से और किस समय में हुआ यह चर्चास्पद है। कहा जाता है कि "गौवरहारी" बानि पुष्टि सम्प्रदाय की परम्परा की है, जिसका उगम श्री कुंभनदासजी के समय से है। "गोवरहारी" नाम "गोवर्धन हरि" नाम का अपभ्रंश हुआ है, श्रीनाथजी की सेवा में गोवर्धन पर्वत पर अष्टछाप के संगीत का उद्भव होने के कारण गोवर्धन के साथ हरि नाम जोड़कर गोवर्धन हरि की बानि कहा करते थे।

दूसरा यह भी है कि प्राचीन समय से व्रज में यह रिवाज है कि दीवाली के दूसरे दिन प्रातः गायके गोबर का छोटासा गोवर्धन बनाकर उसकी पूजा करते हैं, भोग लगाते हैं और आरती भी करते हैं। यही नहीं उसी समय से वैष्णव मन्दिरों में आज भी गोबर का गिरिराज वनाकर विधवत् पूजा की जाती है। अतः कुछ लोग गोवर्धन का गोवर नाम कहकर साथ में हरि (श्रीनाथजी भगवान) नाम जोड़कर "गोबर हरि" नाम प्रचार में आने की संभावना अस्थानीय नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूसरा मत यह है कि प्राचीन काल में शुद्धा, भिन्ना, वेंसरी, गोर्डी, साधारणी प्रत्यादि गीति को गाने की जो भिन्न भिन्न शैलियां प्रसिद्ध थीं उन्हीं शैलियों का समयान्तर में यह चार बानियों में परिवर्तन माना जाता है। प्रत्येक गायक अपने पूर्वजों की वाणी से अभ्यास किया करते थे ऐसा माना जाता है, किन्तु आजकल इन बानियों का कोई महत्व रहा नहीं है। आजकल की ध्रुपद परम्परा का उगम अष्टछाप के समय तक ले जा सकते हैं जो राजा मानसिंह के समकालीन समय है। उस समय से ध्रुपद की परम्परा देवालय और राज्यालय में ऐसे दो विभागों में प्रचलित होने लगी।

पुष्टि सम्प्रदाय के कीर्तन तथा कीर्तनकारों की ओर कुछ कहना उचित समझता हूं। आजकल के कुछ कीर्तनकार लोग इस गायन में ख्याल-अंग की गायकी का प्रयोग करते हैं। यह शोचनीय है। असल में अष्टछाप की गान परम्परा एक होते हुए भी श्री हरिराय युग के पश्चात् मुख्यतः उनका तीन विभागों में विभाजन दृष्टिगत होने लगा–(१) नाथद्वारा-कांकरोली, (२) गोकुल-मथुरा-कामवन-काशी, (३) अहमदावाद-वड़ौदा-सूरत तथा जामनगर-जूनागढ़-पोरबंदर इत्यादि इन तीन विभागों को हम अष्टछाप के तीन घराने कहना उचित समझते हैं। इन तीनों घरानों में अपनी-अपनी कुछ विशिष्टता दिखाई देती थी। इन स्थानों में व्यवसायी और अव्यवसायी उत्तम कीर्तनकारों की नियुक्ति की जाती थी। मन्दिरों के अधिपति गोस्वामी महाराज भी संगीत के उत्तम ज्ञाता होने से व्यवसायी कीर्तनकारों की शिष्य परम्परा एवं इनके परिवार की परम्परा को वर्षों तक पोषण देते रहे। किन्तु अन्तिम पचास वर्षों से कीर्तनकारों को प्रोत्साहन, पोषण और गुजरान के अभाव के कारण यह परम्परा नष्ट होने लगी। फलतः व्यवसायी कीर्तनकारों के परिवार लोग अन्य व्यवसाय में जाने लगे। यदि अष्टछाप की ध्रुपद परम्परा को जीवित रखना हो तो हाल भी कुछ गिनती के बचे हुए उत्तम कीर्तनकारों का सहकार लेकर शिष्यगण तैयार करना आवश्यक और अनिवार्य कहा जावेगा। पुष्टिमार्गीय हवेली संगीत की परम्परा हम श्री हरिराय युग तक ही ले जा सकते हैं। क्योंकि तत्पश्चात् किसी के भी पद गान सम्मिलित न होने की लक्ष्मण रेखा अंकित की हुई दिखाई देती है। अष्टछाप संगीत की विशिष्टता भी इसी कारण से सम्मानित रही है।

ध्रुपद शैली के गान की सीमा भी यहां सीमित हो जाती है और ख्याल, ठुमरी, टप्पा, गजल, कव्वाली इत्यादि शैलियों के घराने का आरम्भ होता है। सद्भाग्य से हमारे वैष्णव मन्दिरों के उपरान्त रामपुर, उदयपुर, जयपुर जैसे स्थलों में ध्रुपद गान की प्राचीन परम्परा हरिराय युग तक कही जायेगी और पश्चात् ख्याल युग का आरंभ होता है। जो विगत शताब्दी तक ध्रुपद शैली की झांकी दृष्टिगत होती रही किन्तु तत्पश्चात् की स्थिति विचारणीय ही नहीं किन्तु शोचनीय कही जायगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री द्वारकेशजी महाराज का परिचय

आपका जन्म वि. सं. १७५१ में हुआ था। आपने सेवा प्रणालीकी भावना पर महत्वका टिप्पण लिखा है। इसलिये आपको भावनावाले द्वारकेशजी से पहिचानते हैं। आपने ज्योतिष शास्त्र और संगीतके राग-तालका उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। आपके रचित पद संम्प्रदायकी कीर्तन प्रणालीमें गाये जाते हैं। आपकी पद रचनाओंमें सेवा, सिंगार और विविध उत्सव त्योहारोंकी भावनाएँ अधिक दिखाई देती है।

(१) श्री कृष्ण जन्मपत्रिका (२) श्री वल्लभाचार्यजीकी तथा (३) श्री विट्ठलेश्वर की जन्मपत्रिकाओंके राग–सारंग, ताल-चर्चरी की सुंदर बंदिशमें रचना की है जो क्रमशः निम्न प्रकार है।

(२) "धन्य हो नंद जग वंदते सुकृत फल आज व्रजचंद आनंद पूरन सूदठ"

(२) तत्व गुन बान भुवि माधवा सित तरणि प्रथम भगवद दिवस प्रगट लक्ष्मन सुवन"

(३) चक्षुमुनि तत्व विधु असित निधियाम, गुण समय प्रकट वल्लभ तनुज"

इसके अतिरिक्त आपके लगभग ३० से अधिक पद लगभग १० रागोंमें अष्टछाप परंपरानुसार गाये जाते हैं।

किन्तु आपकी विशिष्ट रचना "मूलपुरुष" है। २२ तुककी छंद वद्ध रचना बिलावल रागमें प्रचलित है। इनमें श्री वल्लभाचार्यजी की संक्षिप्त जीवनी तथा वंशावली का ऐतिहासिक वर्णन किया गया है। मूलपुरुष की यह रचना वैष्णवोंके घर घरमें आजभी प्रचलित है। आपकी रचनाओंमें रागमाला भी प्राप्त होती है। जो इस प्रकार है।

"ए मन मान मेरे कह्यो काहे कों रिसानी प्यारी तू। प्रथम री भैरों गुन जन गाइये याही ते सुघराई होतु।। २।। मालकोस की तानन ले-ले राजत रूप बिहाग। 'द्वारकेश' प्रभु वसंत खिलावत चाही तैं बठत सुहाग।।२।।

श्री द्वारकेश युग

सम्प्रदायकी कीर्तन प्रणाली की दृष्टि से श्री हरिराययुगके पशचात् यहां संवत १७७२ से १८२५ तक का समय "श्री द्वारकेशयुग" का माना गया है। इस युग का समय द्रुपद शैलीका परिवर्तन होकर ख्याल शैलीका आरंभ समय कहा जायगा। कहा जाता है कि आधुनिक ख्याल पद्धतिका उगम इस समयके "सदारंग" और "अदारंग" के समयसे हुआ है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सदारंग

सदारंग का मूल नाम न्यामतखां था । वे उत्तम वीनकार थे। विक्रम की ८वीं शती के अन्तिम भागमें (इ. स. १७१६-१७४८) वि. सं. १७९२-१८०४ तक दिल्ही के शहनशाह महमदशाह का राज्य था । इसी समयमें न्यामतखां ने सदारंग उपनामसे सैकड़ों चीजोंकी रचना कर, आधुनिक ख्याल पद्धति को जन्म दिया। कहा जाता है कि वे तानसेन की पुत्री के खानदान के दशवें व्यक्ति थे। पिताका नाम लालखां था। न्यामतखां महम्मद शाहके आश्रित थे। अेक दिन वादशाहने सारंगी के साथ बीन बजानेको कहा तब न्यामतखांने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि मैं खानदानी वीनकार हूँ। फलतः वादशाहने दरवारसे निकाल दिया और न्यामतखांको अेकांत जीवन विताना पड़ा।

कहा जाता है कि ख्याल—गायन का मूल उगम अमीर-खुसरोने सन् १२५० से १३२५ तकके समयमें किया था। किन्तु उनका यह कार्य सफल नहीं हुआ पश्चात् सुल्तान हुसेन शर्फी, वाज वहादूर चंचलससि इत्यादिने इसे आगे वढानेकी चेष्टाकी किन्तु उन्हेंभी सफलता न मिली, इस असफलता का न्यामतखांने विचार किया कि जबतक कवितामें वादशाहका नाम न जोड़ दिया जाय तब तक यह गायन प्रचलित नहीं हो सकेगा। अतः न्यामतखांने अपनी कविता में अपना उपनाम सदारंग रखकर इसके साथ महम्मद शाह का नाम जोडकर "सदारंगीले महम्मद शाह" का नाम कवितामें रखकर वादशाह को सुनाया। वादशाह वह दिलचस्पी से सुनने लगा। सदारंग ने अपने शागीर्दों से यह चीजें तैयार कराइ और वे वादशाहको सुनाने लगे। पश्चात् न्यामतखां के पूर्व अपराधोंको बादशाहने क्षमा करके अपने दरबारमें आदर-पूर्वक रख दिया।

इस प्रकार ख्याल प्रचारके कारण ध्रुपदियों में वातें चलने लगी और कहने लगे कि इससे संगीतका अपमान होता है तथा इन चीजोंको वो जनाना संगीत कहने लगे, क्योंकि यह चीजें बहुतसी गायिकाओंमें भी फैल चुकी थी। जोकि यह चीजें सदारंगने अपने खानदानके लिये नहीं किन्तु वादशाहको खुश करनेके लिये वनाइ थी। तथापि दिनप्रतिदिन यह गायकी जनसमाजमें अधिक पसंद आने लगी और धीरे-धीरे गायकोकों राज्याश्रय मिलता रहा। भारतके विविध राज्योंमें गायक और गायिका कों पोषण मिलता रहा। इन राज्योंके कलावंत गायकोंने उत्तम ख्यालोंकी रचना कर अपनी अपनी बंदिशों में कला प्रदर्शित करने लगे। फलतः भिन्न भिन्न घरानों का जन्म हुआ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अदारंग

न्यामतखां के फिरोजखां और भूपतखां नामके दो पुत्र थे। अदारंग उपनाम फिरोजखां का था और भूपतखां का उपनाम महारंग था। पिताके पश्चात् इन दोनों पुत्रों ने उपर्युक्त उपनाम से ख्यालोंकी रचना करके इस पद्धति को आगे बढ़ाकर संगीत क्षेत्र की सेवा की।

अेक ओर "सदारंग" "अदारंग" की ख्याल रचनाका आरंभ हो चुका था यही नहीं भारत के कुछ बड़े रजवाड़ोंमें भी उसका प्रचार गायक और गायिकाओं द्वारा हो रहा था, दूसरी ओर अष्टछापकी स्थापना के समय से (वि. १६०८) जो हवेली-संगीत के विकासका आरंभ हो रहा था; वो श्री गोकुलेश और श्री हरिराय युग में क्रमश: वढता रहा। तदपश्चात् व्रजमंडल, राजस्थान और गुजरातादि प्रान्तों में मुख्य सात पीठों के उपरान्त अन्य मंदिर-हवेलियों की स्थापना में होती रही।

श्री द्वारकेश युग में जामनगर और जूनागढ़ में राज्योंकी सहायतासे मंदिरों की जो स्थापना हुई जिसका विवरण संक्षिप्त में इस प्रकार है।

जामनगर :—

विक्रमकी १९वीं सदीके प्रारंभमें श्रीवल्लभजी महाराज का जामनगर में आगमन हुआ था। १८१४ में आप स्थिर हुअे। पश्चात् श्री वल्लभजी महाराजके द्वितीय पुत्र श्री गिरिधरजी महाराजने सं. १८२७ में नया मंदिर (हवेली) बनवाकर श्री मदनमोहनजी को पधराये और प्रणाली अनुसार सेवाक्रम आरंभ किया। इस मंदिरके दरवाजे के पास अेक शिलालेख है। जिनमें कीर्तनकार पुरुषोत्तम विप्रका एवं मुख्य कीर्तनकार गोकुलदास का भी शिलालेख में उल्लेख किया गया है। इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस हवेलीसे आरंभसे ही मुख्य कीर्तनकार और अन्य कीर्तनकार नियत किये गये थे।

जूनागढ़ :—

नवानगर यानि जामनगर की हवेली की स्थापना के साथ मध्य सौराष्ट्र के चीतल गाँव में श्री वल्लभजी महाराज के तृतीय पुत्र श्री माधवरायजी जो श्री मदनमोहनलालजी की सेवा करते थे। आपने चीतल और आसपास के गांवों में संख्यावद्ध वैष्णव को सेवक किये थे। और कीर्तनादि सेवा का प्रचार भी कर रहे थे। बाद में श्री माधवरायजी का सं. १८३६ में जूनागढ़ में आगमन हुआ। उस समय नवाब महोल्लनखान की हुकुमत थी। किन्तु दिवान अमरजी की विनंती से आप पधारे थे। और पंचहारडी के सरकारी वरंडामें आपका मुकाम दिया था। वहाँ आपके चमत्कारों से आपकी महत्ता वढने लगी। स्वयं नवाबकी भी आपके प्रति सद्भावना उत्पन्न हुई और दिवान अमरजी को उसी स्थान पर मंदर बनाने का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हुकुम किया तथा निभावके लिये दो गाँवभी भेंट किये। मंदिर सिद्ध होने पर श्री माधवरायजी महाराज ने श्री गुसांइजी का सेवक दया भवैया के ठाकुर श्री मदन मोहनजी को वैशाख शुक्ल १३ को पाट वेठाये।

इस प्रकार मंदिरों की स्थापना विविध स्थलों पर होने के वाद सात पीठों के गुरुगृहों के अन्तर्गत इन मंदिरों में सेवा प्रकार का क्रम भी नियत हो चुका था। अधिकतर नित्य और त्यौहारोत्सव की सेवा का क्रम सात पीठों के अंतर्गत गृहों में अेकसाही होने से कीर्तन संगीत प्रणाली का क्रम भी अेकसाही रहा है। यह अष्टछापीय भक्ति संगीत की परंपरा समझने के लिये प्रथम नित्य सेवा क्रम की गान प्रणाली और त्यौहारोत्सव की गान प्रणाली का क्रम ध्यान में लेना आवश्यक है जो निम्न प्रकार है।

कीर्तन-गानका नित्य क्रम :—

पुष्टिमार्ग के मंदिरों की कीर्तन गान प्रणाली का बंधारण आपके युग में ही नियमित हो चुका था। सम्प्रदायकी गान प्रणाली नित्य और नैमित्तिक अैसे दो प्रकार में विभाजित है। सम्प्रदाय में नित्य लीला का सैद्धांतिक प्रकार मुख्य माना जाता है और नैमित्तिक लीला का क्रियात्मक आयोजन श्री विट्ठलेश्वर के समय से हुआ था। तथापि इसका व्यवस्थित रूप श्री हरिराययुग में ही माना जाता है।

नित्य और नैमित्तिक यह दो प्रकारोंमें सम्प्रदायकी सभी कीर्तन प्रणालीका समावेश होता है। किन्तु आपके युगमें ही अधिकतर कीर्तनोंके हस्तलिखित संग्रह बनने लगे थे। जो नित्य और नैमित्तिक ये दोनों स्वरूप के आधार पर यानी संगीत और साहित्यकी दृष्टिसे अलग-अलग वर्गीकरण वाले संग्रह ग्रन्थ प्राप्त होते है। कीर्तन गानकी दृष्टिसे संगीत–रस को प्रश्रय देने वाले संग्रहों में विशेषत: (१) नित्य (२) वर्षोत्सव और (३) वसंतधमार अैसे तीन विभागोंकी परंपरा दृष्टिगत होती है। जो अनुक्रमसे (१) नित्य कीर्तन संग्रह (२) वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह (३) वसंतधमार कीर्तन संग्रह नामसे प्रसिद्ध हो चुके हैं।

(१) नित्य कीर्तन संग्रहमें श्री बालकृष्ण प्रभुकी नित्य लीलामें जगायवेसे पौढवे तकके पद गान हैं। (२) वर्षोत्सव कीर्तन संग्रहमें वर्षभरके उत्सव, जन्म-बधाई तथा त्यौहारोंके पदोंका समावेश किया गया है। (३) वसंतधमार संग्रह में श्रीकृष्ण की वसंत खेल अेवं होरीके खेलकी लीलाका तादृश वर्णन किया गया है।

इस प्रकार अष्टछापीय संगीत की दृष्टिसे उपर्युक्त तीन प्रकार हैं किन्तु साहित्य की दृष्टिसे देखा जाय तो (१) नित्य सेवागान (२) वर्षोत्सव बधाइ (३) पर्वत्योहारगान (४) लीलात्मक गान (५) प्रकृति सौंदर्यगान (६) भाव.त्मक रसगान (७) विनय दीनतादि आश्रयगान और (८) गुरुनिष्ठादि प्रकीर्णगान अैसे आठ विभागोंमें सुप्रसिद्ध है। किन्तु यहां कीर्तन संगीत प्रणाली संबंधित चर्चा उपयोगी होगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीमद वल्लभाचार्यजी ने स्वमार्गीय सेवा विधि का नव निर्माण करते समय प्रथम अष्ट-समय की नित्य सेवा का आरंभ किया था उसी समय से नित्य सेवा क्रमके साथ-साथ नित्य लीला प्रसंगके कीर्तनोका प्रथम उद्भव होने से नित्य कीर्तन संग्रह को प्रथम स्थान माना जाता है।

नित्य क्रम के अतिरिक्त वर्ष भरके पर्व त्यौहारों की भावना अनुसार श्री विट्ठलेश्वर ने नित्य सेवा क्रम के उपरान्त अधिक में जो क्रम निर्माण किया तद्नुसार पर्व त्यौहारोमें जो कीर्तन गाये जाते हैं उसको वर्षोत्सवमें समावेश किया गया है। तदुपरांत जन्म वधाइके उत्सवों की सेवाक्रमका समावेश श्री गोकुलेशके समय तक वर्षोत्सवमें नियत हो चुका था। इस क्रम में गाये जाने वाले पदोंके संग्रह को वर्षोत्सव पद संग्रह कहते है।

वसंत पंचमीसे लेकर डोल तक त्यौहारों में जो पद गाये जाते हैं इनका समावेश वसंत धमार कीर्तन संग्रहमें किया गया है।

श्री हरिराय युगमें ही उपर्युक्त (१) नित्य (२) जन्मोत्सव अेवं पर्वोत्सव तथा (३) वसंत धमारके पदोंके संवंधित यह तीनों प्रकार हम देख चुके। पश्चात् किस समय इन तीनों प्रकार के कीर्तनोंको सेवाक्रमके अनुसार गाया जाता है उसका विचार करेंगे।

नित्य सेवा विधिः—

प्रातःकालीन सेवा क्रम :—पुष्टिमार्ग की सेवा प्रातःकालीन तथा सायंकालीन अेसे दो विभागोंमें की जाती है। मंदिरोंमें प्रातःकालीन सेवाका समय पांच घंटाका और सायंकालीन सेवाका समय चार घंटे का माना गया है जो उत्सवादि दिनोंके विशेष क्रममें अेक-अेक घंटा और वढाया जा सकता है।

प्रथम श्रीजीको जगायवे के पहले प्रातः तीनवार शंखनाद होता है बादमें तीनवार घंटानाद भी किया जाता है। तद्पूर्व बडे स्थानोंमें (सम्प्रदायकी मुख्य पिठोमें) बीन (वीणा) वादन होता है। पश्चात् मुख्य कीर्तनकार यानी कीर्तन के मुखियाजी तानपूरा के साथ प्रथम गाये जानेवाले रागकी आलापचारी करते है। बादमें श्री वल्लभाचार्यजीका और श्री गुसांइजीका प्रातः स्मरणीय पद गान करते है। उसके बाद श्रीजीका जगायवेका अेक पद और कलेउके दो पद तथा श्री यमुनाजीका अेक पद उपरांत खंडिताका अेक पद गानेकी प्रथा है। खंडिताका पद बाललीला और बधाई के दिनमें गाया नहीं जाता।

मंगलाभोग सरे :—"मंगल मंगलम् व्रजभुवि मंगलम्" यह श्री गुसांइजी रचित पद नित्य गाया जाता है: जिसकी अंतिम तुक दर्शन सन्मुखमें गायी जाती है। मंगला दर्शनमें ऋतु अनुसार अेक पद का गान किया जाता है। मंगलाके बाद

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रृंगार के ओसरा में:—समयानुसार दो या चार पद अेवम् श्रृंगारके दर्शनमें अेक पद ऋतु और उत्सव अनुसार गाये जाते हैं।

ग्वालबोलें :—नित्य क्रममें धैयाका अेक पद तथा वधाइ और वसंतधमार के दिनों में तदनुसार।

ग्वाल के दर्शन में:—पलनाका अेक पद गाया जाता है। कहीं कहीं उराहनेका या माखन चोरीका पद गाने की प्रथा है।

राजभोग आये :—शीतकालमें घर भोजनके, उष्णकाल में छाकके और वर्षामें वर्षाकी छाकके चार पद गाये जाते हैं। बधाइके दिनमें बड़ी बधाई हो तो अेक, छोटी हो तो चार बधाइ तथा वसंत धमारके दिनों में वसंत धमारके पद गाये जाते हैं। उसी प्रकार राजभोग सरे अचवनको अेक पद तथा अेक बीरीको पद ऋतु एवं उत्सावनुसार गाया जाता है।

राजभोग दर्शन में:—ऋतु, श्रृंगार, बधाइ और त्यौहार अनुसार पद गाया जाता है।

सायंकालीन सेवाक्रम :—

भोग अेवम् संध्यार्तिके दर्शन में:—ऋतु, श्रृंगार, बधाइ उत्सवादि क्रमानुसार पद गाया जाता है।

शयन भोग आये :—दो पद ब्यारुके तथा दूधका अेक पद।

भोग सरे :—अेक बीरीका पद गाया जाता है। शयन दर्शनमें जहा सन्मुखमें बीरी आरोगते है वहा दर्शन सन्मुख प्रथम बीरीका अेक पद और बादमें अेक पद ऋतु तथा बधाइ, उत्सव क्रमानुसार गानेकी प्रथा है।

पोढ़वे में :—ऋतुनुसार अेक मानको और अेक पोठवेको पद तदपश्चात् आश्रयके पद श्री महाप्रभुजी और श्री गुसांइजी के गाये जाते हैं।

और यहां दिन भरकी कीर्तन सेवा समाप्त होती है।

वर्षोत्सव प्रणाली

जन्माष्टमी की बधाई:—का आरंभ निधि के गृहों में याने वड़े ठिकाने में व्रज श्रावण वदी ४ (गुर्जर अषाढ़ वदी ४) के दिन से होता है। और छोटे मन्दिरों में पवित्रा एकादशीसे आरंभ होता है।

जन्माष्टमी के दिन जागवेसु झांझ पखावज के साथ प्रणालीनुसार दिनभर बधाई गाई जाती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाल लीला:—जन्माष्टमी के दूसरे दिन से अमावस तक बाल लीला के पद गाये जाते हैं।

श्री राधाष्टमी की बधाई:—के पद भाद्र शुक्ल १ से अष्टमी तक (राधाष्टमी के दिन प्रणाली अनुसार) गाये जाते हैं।

दान के पद:—भाद्रो शुक्ल ११ से गुर्जर भाद्र व्रज आश्विन वदी अमावस तक गाये जाते हैं।

सांझी के पद:—गुर्जर भाद्र कृष्ण १ से अमावस तक भोग संध्या के समय गाये जाते हैं।

रास के पद:—आश्विन शुक्ल १ से गुर्जर आश्विन कृष्ण १ तक गाये जाते हैं (शरद पूर्णिमा के दिन मान और पोठवे के कीर्तन तक झांझ, पखावज के साथ प्रणाली अनुसार पद गाये जाते हैं।

नवविलास के पद:—आश्विन शुक्ल १ से ९ तक शृंगार में या संध्या समय में रोज एक पद गाया जाता है।

झरखा के पद:—सस्त्र धरे उस रोज से दशेरा तक भोग संध्या के समय में गाये जाते हैं। (दशेरा के दिन झवारा धरे तब प्रणाली अनुसार झवारा का पद झांझ, मृदंग सहित गाया जाता है।)

अन्नकूट के पद:—अन्नकूट की वधाई अन्नकूट की वधाई में गोवर्धन लीला, गोवर्धन पूजा, एवं अन्नकूट के भाव के पदों का समावेश होता है। बड़े ठिकाने दशेरा से और छोटे मन्दिरों में गुर्जर आश्विन कृष्ण २ से अन्नकूट तक गाई जाती है।

(अ) गाय खिलायवे के पद (व) कान जगायवे के पद (क) दीप मालिका के पद और (ड) हटरी के पद।

अन्नकूट की वधाइ में गोवर्धनलीला, गोवर्धनपूजा एवं अन्नकूट के भाव के पदों का समावेश होता है।

गुर्जर आश्विन शुक्ल ७ से क्रमशः (अ) भोग संध्या के समय (व) शयन भोग आये (क,ड) सेन के दर्शन में गाये जाते हैं।

इन्द्रमान के भंग के पद:—अन्नकूट पीछे सप्तमी तक दिनभर गाये जाते हैं।

गोपाष्टमी:—के दिन से कार्तिक शुक्ल १० तक गाय चरायवे के भाव के पद गाये जाते हैं। (गोपाष्टमी के दिन प्रणाली अनुसार)।

प्रबोधिनी:—(का.शु. १२) के दिन अपने गृह की कीर्तन प्रणाली अनुसार। कहीं मंगला दर्शन में "गोविंद तिहारो स्वरूप निगम नेती नेती गावे" तथा शयन दर्शन में माहात्म्य के चारों पद तथा सब समय नित्य के भाव के पद गाये जाते हैं। प्रबोधिनी पीछे पूर्णिमा तक ब्याह के पद गाये जाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्रत चर्या के पद:—गुर्जर कार्तिक कृष्ण १ से मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा तक मंगला से श्रृंगार तक गाये जाते हैं।

हिलग के पद तथा पनघट के:—केवल टोडी राग के पद गुर्जर कार्तिक—व्रज मार्गशीर्ष वदी १ से अमावस तक राजभोग के दर्शन में गाये जाते हैं।

श्री गोकुलनाथजी की बधाई:—मार्गशीर्ष शुक्ल १ से सप्तमी तक गाई जाती है। कहीं-कहीं श्रीगुसांईजी की बधाई (श्री गसांईजी की बधाई में और आपके सात बालकों के उत्सवों में जन्माष्टमी की, श्री महाप्रभुजी की और श्री गुसांईजी की बधाई के पद गाये जाते हैं।) का भी शुक्ल १ से आरम्भ होता है। छोटे मन्दिरों में मार्गशीर्ष सुदी ९ से पन्द्रह दिन तक श्री गुसांईजी की बधाई गाई जाती है।

श्री गुसांईजी का उत्सव:—इस रोज प्रणालीनुसार बधाई के पद गाये जाते हैं।

पौष सुदी एकम से व्रज माघ कृष्ण अमावस तक मंगला, श्रृंगार में ललित, मालकौंस राग की खंडिता के पद तथा राजभोग आये घर भोजन के तथा दर्शन में तिलक के धनाश्री, आसावरी राग के पद तथा टोडी राग के पनघट के पद क्रमानुसार रागों में गाने की प्रथा है तथा सायंकालीन सेवा में नित्य के पद गाये जायेंगे।

वसंत बहार के पद:—माघ सूद १ से ४ तक गाये जाते हैं।

वसंत पंचमी से पूर्णिमा तक दिनभर वसंत राग के पद गाये जाते हैं। (वसंत पंचमी के रोज प्रणाली अनुसार वसंत के पद)।

माघ सु. १५:—होरी डंडा रोपन से राग विलावल, धनाश्री, जेतश्री और सांझ को गौरी राग की धमार श्रीनाथजी के पाटोत्सव के अगले दिन तक गाई जाती है। कहीं-कहीं मंगला में और मान पोठवे में वसंत भाव के पद गाने की प्रथा है।

श्रीनाथजी का पाटोत्सव:—प्रणाली अनुसार धमार (धमार के कीर्तन के साथ डफ, उपंग, कीन्नरी चंग इत्यादि वजाये जाते हैं।) के पद गाये जाते हैं। आज रोजसे डोल तक सभी राग की धमारे समयानुसार गाई जाती है। केवल फाल्गुन सुद १२, कुंज एकादशी के डोल तक राजभोग में "सारंग" राग में तथा शयन के दर्शन में 'कल्याण' राग में डोल के पद गाये जाते हैं।

फाल्गुन सुद ८ से होली तक राजभोग एवं शयन में आरती होने के बाद होरी के ख्याल और रसिया गाये जाते हैं।

डोल के दूसरे रोज द्वितीया पाट:—के दिन प्रणाली अनुसार और तत्पश्चात श्री महाप्रभुजी की बधाई के आरंभ तक सभी समय में कुंज के भाव के पद समयानुसार रागों में गाने की प्रणाली है। 'नूर सारंग' राग अधिकतर इसी समय में गाया जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चैत्र सु. १:–के रोज राजभोग के दर्शन में "चैत्र मास संवत्सर पडवा बरस प्रवेश कियो है आज" सारंग राग का यह पद खास गाया जाता है ।

चैत्र सु. ३:–के रोज गनगोर के पद गाने की प्रथा है ।

चैत्र सु. ११:–से श्री महाप्रभुजी की बधाई का आरंभ होता है। आज से उत्सव तक श्रीमहाप्रभुजी के वधाई के पद उपरान्त जन्माष्टमी के वधाई के पद दिन-भर गाये जाते हैं ।

व्रज वै. कृष्ण ११ श्री महाप्रभुजी का उत्सव:–आज रोज जगायवे से ही झांझ, पखावज के साथ कीर्तन गाये जाते हैं और दिनभर प्रणाली अनुसार वधाई के पद गाने की प्रथा है ।

उत्सव के दूसरे रोज से अक्षय तृतीय के पहले रोज तक बाललीला के पद समयानुसार रागों में गाये जाते हैं ।

अक्षय तृतीया वै. सु. ३:–के दिन प्रणाली अनुसार ।

आज से पूर्णिमा वै. शु. १५ तक राजभोग के दर्शन में खसखाने के पद सारंग और सामंत सारंग राग में गाये जाते हैं। और पश्चात् ज्येष्ठ शु. १५ तक दुपहर के पद, चंदन के पद और फुल मंडली के पद भी गाये जाते हैं ।

सांझ को भोज के दर्शन में खसखाने के उपरान्त जलप्यावे के भाव के भी कीर्तन सारंग और सामंत सारंग राग में गाये जाते हैं । संध्यार्ती में राग हमीर के संध्यार्ती के पद गाये जाते हैं ।

ज्येष्ठ सु. १ से १५ तक केवल राजभोग के दर्शन में ही सारंग राग में पनघट के पद होय और ११ से १५ तक दिनभर पनघट के भाव के पद समयानुसार राग में गाने की प्रथा है ।

गंगा दशमी:–के रोज विशेष में श्री गुसांईजी रचित (नमो देवी यमुने) यह श्री यमुनाष्ट पदी के उपरान्त गंगाजी के पद गाये जाते हैं ।

ज्येष्ठ सु. १५ स्नान यात्रा:–के दिन मंगला पहले श्री यमुनाजी के पद गान से झांझ-पखावज के साथ कीर्तन होते हैं । स्नान के दर्शन में टोडी राग में चार पद स्नानयात्रा के भाव के गाये जाते हैं । वाद में "नमो देवी यमुने" यह यमुनाष्ट पदी तथा श्री यमुनाजी के पद (४० पदों में से भी) गाये जाते हैं ।

स्नानयात्रा से रथयात्रा के पहले रोज तक मंगला शृंगार में सुहा-सुघराई राग की खंडिता के पद और राजभोग में घन-दामिनी के भाव के पद गौड सारंग राग में गाये जाते हैं एवं भोज संध्या में सोरठ राग के पद गाने की प्रथा है । शयन में भी इसी भाव के पद यमन, केदार, कानरा और अडाणा राग में गाये जाते हैं ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अषाढ़ सु. २ रथयात्रा:—रथ के चार दर्शन में से तीसरे भोग तक विलावल राग के पद और पश्चात् मल्हार राग की आलापचारी करके मल्हार राग के रथ-यात्रा के पद गाये जाते हैं। आज से पवित्रा एकादशी के पहले रोज तक दिनभर मल्हार राग के पद गाये जाते हैं।

पवित्रा एकादशी:—पवित्रा के दर्शन में पवित्रा धरायवे के पद गाये जाते हैं। आज रोज से जन्माष्टमी की बड़ी बधाई का आरम्भ होता है। व्रज भाद्र कृ. ७ के रोज छड़ी के उत्सव में शयन भोग आये छड़ी पूजा के समय छड़ी के भाव के दो पद गाये जाते हैं।

व्रज श्रा. कृ. २ से भाद्र कृ. २:—तक सांझ को डिंडोरा के दर्शन में शृंगार और विविध प्रकार के हिंडोला के भाव के पद सायंनकालीन सभी रागों में चार पद गाये जाते हैं।

उपर्युक्त नित्य और नैमित्तिक कीर्तन प्रकारों के अंतर्गत कम से कम दो-तीन हजार पदों का समावेश होता है। यहां लीलात्मक पदों में से केवल छाक लीला के प्रकारों का उदाहरण दिया जा रहा हैं—

छाक लीला के विविध प्रकार कीर्तनों में पाए जाते हैं। भगवान बालकृष्ण गौचारन के लिए व्रज के विविध स्थलों पर पधारते थे उस समय माता यशोदा भोजन के लिए कभी ग्वालों के साथ और कभी ग्वालिनियों के साथ भोजन सामग्री पठाया करती थीं। ग्वाल लोग कांवर लेकर और ग्वालिनियां सिर पर सामग्री का डला लेकर जाया करती थीं। भगवान कृष्ण कभी दूर निकल जाया करते थे तो टेर देकर भोजन लाई हूं ऐसा संकेत करके बुलाती थीं। यशोदाजी के घर की छाक के उपरांत अन्य व्रजभक्त अन्य गोपीजन अपने-अपने घर से भी छाक ले जाया करते थे। कभी महावन, कभी वृन्दावन, कभी गिरिराज, कभी यमुना तट इत्यादि स्थलों पर छाक ग्वाल-बालों के साथ, कभी मंडलाकार तो कभी हंसते-खेलते हुए भोजन करते हुए इत्यादि लीलाओं के छाक के पद प्राप्त होते हैं। उनमें से २२ प्रकार के भावात्मक पदो की प्रथम पंक्तियां निम्न प्रकार से दी जा रही हैं:—

छाकलीला-प्रसंग

छाकलीला प्रकार	उदाहरण : पदों की प्रथम पंक्ति
१. टेरनी के पद	१. हरि कों टेरत फिरत गवारि।
	२. तुम कों टेर टेर मैं हारी।
२. टेरनी जमुना तट की	१. पीत उपरना वारे ढोटा। तोहि कबहुं की टेरत ग्वालिनी।
	२. गोविन्द लीजे छाक तिहारी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३. टेरनी वृंदावन की	१. छाक लिए सिर, स्याम बुलावत ।
	२. टेरत गुपाल, गुवाल चलीं ।
४. टेरनी-दुपहर की	१. अकेली वन बन डोल रहीं ।
५. स्यामढाक की छाक	१. स्यामढाक तर छाक अरोगत ।
	२. स्यामढाक तर मंडल जोर जोर ।
६. वंसीवट की छाक	१. वंसीवट वैठे हैं नंदलाल ।
	२. भोजन करत नंदलाल,संग लिए ग्वालवाल।
७. कदमखंडी की छाक	१. ग्वालमंडलि जोर राजे कदमखंडी मधि ।
	२. लाडिलो छाक खात वनमांह ।
८. वृंदावन की छाक	१. श्रीवृंदावन नवनिकुंज मत्तभ्रमर ।
९. कुमुदवन की छाक	१. कुमुदवन भली पहोंची आई ।
१०. गोवर्धन की छाक	१. बैठे गोवर्धन गिरि गोद ।
	२. गोवर्धन गिरि शृंग सीलन पर ।
११. जमुनातट की छाक	१. जमुनातट भोजन करत गोपाल ।
	२. लाल गोपाल है आनंदकंद ।
१२. उसीरमहल की छाक	१. उसीरमहल में बिराजे मंडल ।
	२. सीतल सदन में जेंवत मोहन ।
१३. जसुमति के घर की छाक	१. जोरत छाक प्रेम सों भैया ।
	२. आई छाक, बुलावे स्याम ।
१४. घरघर की छाक	१. घरघर तों आई छाक ।
	२. अरी छाकहारी चार-पांच आवत ।
१५. दान के भाव की छाक	१. दानघाटी छाक आई गोकुल तें ।
	२. आज दधि मीठो मदनगुपाल ।
१६. सरद के भाव की छाक	१. लाडिले तुम कों छाक ले आई ।
	२. आज बन विपिन में छाकलीला रची ।
१७. गोचारन के भाव की छाक	१. ग्वालिन झांकत है चढि अटा ।
	२. विहारीलाल आवहु आई छाक ।
१८. पीतवस्त्र की छाक	१. टेरत हैं फेरत पट पियरो ।
	२. बहुत फिरी तुम काज कन्हाई ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१९. वर्षाऋतु की छाक	१. बादर झूम रहे चहुं ओर।
	२. आरोगत मोहन मंडल जोरे।
२०. वर्षा में कुंज के भाव की छाक	१. जेंवत हरि बठे कुंजनमांह।
	२. आरोगत नागर नवलकिशोर।
२१. वर्षा-हरियारी की छाक	१. लाल बन भई सकल हरियारी।
	२. स्याम सुन हरि भूमि सुखकारी।

नित्य सेवाक्रम में से उष्णकाल एवं चतुर्मास में गाये जाने वाले छाक के पदों में से दो-दो पदों का उदाहरण देख चुके। पश्चात् नैमित्तिक सेवाक्रम में से यहां केवल हिंडोला (झूला) के समय गाये जाने वाले कुछ प्रकारों की ओर दृष्टि करेंगे।

हिंडोरा के प्रकार भेद

१. नंदालयक हिंडोरा	१४. कदंबके हिंडोरा
२. सुरंग हिंडोरा	१५. मचर्काके हिंडोरा
३. फूलके हिंडोरा	१६. लहरियाके
४. फूल-फूलके	१७. चूनरीके
५. कुंजके	१८. हरेवस्त्र-हरीघटा
६. मुकुटके भावके	१९. पीरे वस्त्र-पीरी घटा
७. टिपाराके भावके	२०. वसूंभी घटा
८. सेहराके भावके	२१. सफेद घटा (सरद के)
९. फेटा-चंद्रिकाके भावके	२२. गुलाबी घटा
१०. काँचके दरपनके	२३. स्याम वस्त्र-स्याम घटा
११. हेम के हिंडोरा	२४. सावन तीज-ठकुरानी तीज के
१२. जमुना तटके	२५. सावनकी पून्यो के
१३. गोवर्धनके हिंडोरा	२६. पवित्राके हिंडोरा

ऋतुअनुसार राग

उपर्युक्त ऋतु-ऋतु अनुसारके पदगान के प्रकारोंके पश्चात् उस पदोंको ऋतु-ऋतु अनुसार गाये जानेवाले रागों का क्रम निम्न प्रकार है।

सीतकालमें गाये जानेवाले राग :–

(१) भैरव (२) रामकली (३) ललित (४) मालकोष (५) परज (६) सोहनी (७) खट (८) धनाश्री (९) आसावरी (१०) टोडी (११) पूर्या

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१२) नट (१३) गोरी (१४) नायकी (१५) कान्हरो (१६) कल्याण (१७) विहाग।

इनमेंसे ललित, मालकोष, परज, सोहनी, धनाश्री, आसावरी, टोडी, नायकी यह राग केवल शीतकालमें ही गाये जाते हैं।

उष्णकालमें गाये जानेवाले राग:—

(१) विभास (२) देवगंधार (३) रामकली (४) विलावल और विलावल के प्रकार (५) सारंग (६) सामन्त सारंग (७) नूर सारंग (८) गौर सारंग (९) पूर्वी (१०) सोरठ (११) हमीर (१२) कल्याण (१३) यमन (१४) केदार (१५) कानरो (१६) अडाना (१७) विहागरा।

इनमेंसे विभास, सारंग और सारंग के प्रकार, सोरठ, हमीर, केदार ये राग केवल उष्णकालमें ही गाये जा सकते हैं।

शीतकाल की मर्यादा प्रवोधनीसे वसंत तक और उष्णकालकी मर्यादा द्वितीया पाठ से रथयात्रा तक मानी गई है।

चतुर्मास:—ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमासे रथयात्रा तक वर्षा आगम मानी जाती है। इन दिनोंमें मंगला और सिंगार समय राग और सुघराई के पद गाये जाते हैं। बादमें रथयात्रासे पवित्रा एकादशी तक राग मल्हार और मल्हार के प्रकार गाये जा सकते हैं। हिंडोलाके दर्शन समय मल्हारके अतिरिक्त सांज की सेवामें गाये जानेवाले सभी रागका गान किया जाता है।

वसंतपंचमीसे होली डंडारोपण (माघ शुक्ल १५) तक दिनभर केवल राग बसंत और वसंतके प्रकार गाये जाते हैं।

जन्मदिन और बधाइके दिनोंमें प्रायः सभी राग गाते दृष्टिगत होते हैं।

पुष्टि-सम्प्रदायकी वर्षभरकी उपर्युक्त कीर्तन गान प्रणाली क्रम को देखनेसे पता चलता है कि मंदिरोंमें कीर्तन गान करनेवाले कीर्तनकार जिसको कीर्तनियाजी कहनेका रिवाज है। उनको कमसे कम दो हजार ध्रुपद शैलीके पदगानकी बंदिशें कंठस्थ होना आवश्यक था। अष्टछापीय संगीत परंपरा के अैसे कीर्तनकारोंकी नियुक्ति व्यवस्थित रूपसे होनेका आरंभ द्वारकेशयुग में दिखाई देता है। इसी समयमें श्रीमद्वल्लभवंश के गोस्वामी महाराजश्री के मंदिरोंकी विविध स्थलों पर स्थापना भी हो चूकी थी। जिनमें व्यवसायी अेवम् अव्यवसायी सेवक गण भी थे। तत्पूर्व अनन्य सेवक गण भक्ति-भावना से जो कीर्तनगान करते थे उनमें अधिकतर वाग्गेयकार होनेके कारण पद-गानकी संख्यामें अभिवृद्धि हुई। किन्तु यह परंपरा द्वारकेश युगके पश्चात् स्थगित हो जानेके कारण गायन और वाद्यकलाके व्यवसायी लोग संगीतज्ञ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गोस्वामी महाराजाओके सम्पर्कमें आने लगें। उनमेंसे धार्मिक वृत्तिके भावुक लोग मंदिरोकी राग-भोग श्रृंगार की सेवा और पदगान को देखकर आकर्षित होने लगे।

इनमेंसे कुछ कलाकारों ने सम्प्रदायकी दीक्षा भी प्राप्त की। इस प्रकार भावुक कलाकारोंको वैष्णव दीक्षा देकर कीर्तन गानकी सेवामें नियुक्त किया गया। परंपरासे सिखे हुअे अैसे भावुक वैष्णव कीर्तनकार जो अव्यवसायी थे उनके संपर्कमें आकर मंदिरोंमेंही कीर्तनगानकी परंपराकी तालीम प्राप्त करने लगे।

इस प्रकार इस युग में व्रजमंडल, राजस्थान, मध्यप्रदेश अेवम् गुजरातमें अष्टछापकी संगीत परंपराका काफी विकास दृष्टिगोचर होता है।

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अष्टछापीय-भक्ति संगीत

उद्भव और विकास

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

द्वितीय खण्ड

चम्पकलाल छ. नायक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राग और राग-संख्या

भारतीय संगीत की प्राचीन अष्टछाप (हवेली) संगीत-परंपरा में गाये जाने वाले राग और राग संख्या-प्रणाली की मर्यादा के संदर्भ में हम इस प्रकरण में चर्चा करना चाहते हैं। परन्तु तत्पूर्व हम प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथों के आधार पर राग और उनकी संख्या का संक्षिप्त विचार करेंगे।

भारतीय संगीत के इतिहास में 'बृहद्देशीय' एवं 'भरत नाट्य शास्त्र' प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। 'भरत नाट्यशास्त्र' के विवरण में हम देख चुके हैं कि उस समय जाति-गान प्रचार में था। राग शब्द का उल्लेख उस समय प्राप्त नहीं होता है।

'बृहद्देशीय' ग्रंथ में मतंग मुनि ने राग शब्द का प्रथम उल्लेख किया किन्तु उस समय भी जाति-गान प्रचार में था। मतंग ने जिन सात जातियों का उल्लेख किया है, उनमें मात्र एक जाति का नाम राग-जाति कहा है। आज हम राग शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं, उस प्रकार के रागों का उद्भव उस समय नहीं हुआ था। सात शुद्ध और ग्यारह विकृत जातियाँ मान कर षड्ज ग्राम व मध्यम ग्राम से अठारह जातियों की उत्पत्ति एवं जाति के दशविध लक्षण तथा मूर्छनादि का वर्णन किया गया है।

तत्पश्चात् का ग्रंथ नारद-कृत 'संगीतमकरंद' माना जाता है। इस ग्रंथ में छः राग और प्रत्येक राग की छः भार्या तथा प्रत्येक रागिनी के आठ-आठ पुत्र तथा आठ-आठ पुत्रवधुओं का उल्लेख किया गया है। इस ग्रंथ का रचना काल ८ वीं शताब्दी तक का माना जाता है। ११ वीं शताब्दी में कवि जयदेव ने 'गीत-गोविंद' का राग रागिनी में ही गान किया अतः उस समय के पहिले १० वीं शती के समय के लगभग रागरागिनियों की उत्पत्ति का एवं प्रचार का प्रमाणभूत ग्रंथ 'संगीतमकरंद' मानना समुचित है।

इस शताब्दी के पश्चात् १३ वीं शताब्दी के "संगीतरत्नाकर" नामक संगीत-क्षेत्र के प्रामाणिक ग्रंथ के रागों का उल्लेख करना चाहते हैं।

पं० शार्ङ्गदेव के समय में निम्नप्रकार से २६४ राग-संख्या प्राप्त होती है—

ग्रामरागाः ३०, उपरागाः ८, रागाः २०, पूर्वप्रसिद्धरागांगानि ८, भाषांगानि ११, क्रियांगानि १२, उपांगानि ३, भाषाः ९६, विभाषारागाः २०, अंतर्भाषारागाः ४, शार्ङ्गदेवसमयप्रसिद्धरागांगानि १३, भाषाः ९, क्रियांगानि ३, उपांगानि २७, कुल २६४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"सर्वेषामिति रागाणां मिलितानां शतद्वयम् ।
चतु:षष्ट्यधिकं ब्रूते शार्ङ्गी श्रीकरणाग्रणी : ।। (श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् पृ.–६)

"राग-विवोध" ग्रंथ में कुल ९९ राग–संख्या दी गई है:–
जनकमेल राग–२३ तथा जय राग संख्या ७६

"स्वरमेलकलानिधि" ग्रंथ में कुल ६८ राग नाम वताये हैं:—
मेलनाम राग २० तथा जन्य राग नाम ४८।

"चतुर्दंडीप्रकाशिका" ग्रंथ में पं. व्यंकटमखी ने जनकमेल और जन्य रागों की संख्या निम्नप्रकार से स्पष्ट की है:–

शुद्धमध्यमयुक्त मेल–३६, तीव्रमध्यमयुक्त मेल–३६, कुल ७२ ;

प्रत्येक मेल (थाट) से ४८४ जनक रागों की उत्पत्ति वताई गई है तदनुसार राग-संख्या ३४८४८ होती है।* परन्तु उनमें भी लोकप्रसिद्ध मेल १९ सहित लोकप्रिय जन्य राग संख्या ५५ मानी जाती है।०

"रागतरंगिणी" ग्रंथ में पं. लोचन ने कहा है–"पहिले १६००० राग थे। उन रागों का गोपियों ने श्रीकृष्ण के सान्निध्य में गान किया था।" इस प्रकार कृष्णावतार के समय १६००० रागों की संख्या कही गई है।

"एक थाट में से आरोहावरोह की गिनती से ४८४ राग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार ७२ थाटों से (४८४ × ७२) ३४८४८ राग उत्पन्न होती हैं। किन्तु इन सभी को राग नहीं कह सकते, क्योंकि राग में रंजकतादिक नियम होना अनिवार्य है।

'राग कुटुंव' यानी प्राचीन पद्धति में राग-रागिनी का वर्गीकरण किया जाता था। प्रत्येक राग-परिवार में राग, रागनियाँ, राग पुत्र तथा पुत्रभार्या राग पाये जाते थे। इनमें विविध मतों के कारण कुछ नामों में भिन्नता दिखाई देती है।

राग-परिवार को प्रसिद्ध करने वाले मुख्य चार मत प्राचीन माने जाते हैं जो कि निम्न प्रकार हैं–

(१) शिवमत† में मुख्य ६ राग तथा प्रत्येक की ६-६ भार्या और आठ-आठ पुत्र माने गये हैं। अत: राग-६, रागनियाँ ३६ तथा प्रत्येक राग के ८ पुत्र राग कुल मिलाकर संख्या ९० होती है।‡

---

* विशेष जानकारी के लिये देखिए–"भातखंडे क्रमिक पृ. ३
० लक्ष्यसंगीत पृष्ठ-१३
† शिवमत को कोई सोमेश्वर मत भी कहते हैं।
‡ इस मत को शिवजी ने पार्वतीजी के प्रति उपदिष्ट किया था, यह माना जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(२) कृष्णमत में भी ६ मुख्य राग, ३६ रागिनियाँ और ४८ पुत्र राग मिलाकर ९० की संख्या होती है किन्तु रागिनियों एवं पुत्र-रागों के नामों में कुछ अन्तर है। मुख्य ६ रागों के नाम शिवमत के अनुसार ही हैं।*

(३) भरत-मत में ६ मुख्य राग प्रत्येक की पांच-पांच भार्या (६+३०) ४८ पुत्र राग और ४८ पुत्र भार्या मिलाकर कुल १३२ की संख्या होती है।

(४) हनुमान्मत में मुख्य ६ राग, प्रत्येक की पाँच-पाँच भार्या, और पाँच-पाँच पुत्र तथा पाँच-पाँच पुत्र भार्या हैं अतः ६ + ३० + ३६ + ३० कुल ९६ की संख्या होती है। मुख्य ६ रागों के नाम भरतमत के समान हैं। भरत मतानुसार ६ मुख्य रागों के नाम इस प्रकार हैं।

"भैरवः कौशिकश्चैव हिंदोलोदीपकस्तथा।
श्रीरागो मेघरागश्च षडेते पुरुषाह्वया ।।३।। (सं-दर्पण)

(१) भैरव (२) मालकौंस (३) हिंडोल (४) दीपक (५) श्री (६) मेघ। शिवमतानुसार मुख्य ६ रागों के नाम:—

श्रीरागोऽथ वसंतश्च भैरवः पंचमस्तथा।
मेघरागो बृहन्नाटः षडेते पुरुषाह्वया ।।३।। (संगीत दर्पण)

(१) श्री (२) वसंत (३) भैरव (४) पंचम (५) मेघ (६) नटनारायण। शिवमतानुसार रागिनियाँ निम्नप्रकार हैं‡—

१. श्रीराग की रागिनियाँ—

(१) मालवी (२) त्रिवेणी (३) गौड़ी (४) केदारी (५) मधुमांधवी (६) पहाड़ी।

२. वसंत राग की रागिनियाँ—

(१) देशी (२) देवगिरिं (३) वराटी (४) तोड़िया (५) ललिता (६) हिंडोली।

३. भैरव राग की रागिनियाँ—

(१) भैरवी (२) गुर्जरी (३) रेवा (४) गुणकरी (५) बंगाली (६) बहुलो।

४. पंचम राग की रागनियाँ—

(१) विभास (२) भूपाली (३) कर्नाटी (४) बडहंसा (५) मालवश्री (६) पदमंजरी।

---

* संगीत दर्पण २।१४-१९

‡ वही २।३८-४३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५. मेघराग की रागिनियाँ—

(१) मल्लारी (२) सोरठी (३) सावेरी (४) कौशिकी (५) गांधारी (६) हरिश्रृंगार।

६. नट नारायण राग की रागिनियाँ—

(१) कामोदी (२) कल्याणी (३) आभेटी (४) माटिका (५) सालंगनाटी (६) हवीरा।

इनके अतिरिक्त संगीत दर्पण में रागार्णव मत का भी उल्लेख किया गया है। जिनमें मुख्य ६ राग और प्रत्येक की पाँच-पाँच रागिनियों के नाम भी बताये जाते हैं।*

प्राचीन पद्धति के ये सभी राग मूर्छनाओं के आधार पर निर्धारित किये जाते थे। मूर्छना कहने से रागों के अलग स्वर कहने की आवश्यकता नहीं थी।

हनुमन्मत के अनुसार—

पुरुषराग—(१) भैरव (२) कौशिक (३) हिंडोल (४) दीपक (५) श्री (६) मेघ।

१. भैरव की रागिनियाँ—

(१) मध्यमादि (२) भैरवी (३) बंगाली (४) वराटिका (५) सैंधवी।

२. कौशिक की रागिनियाँ—

(१) तोडी (२) संभावती (३) गौडी (४) गुणकी (५) ककुभा।

३. हिंदोल की रागनियाँ—

(१) वेलवली (२) रामक्री (३) देशाख्या (४) पटमंजरी (५) ललिता।

४. दीपक की रागिनियाँ—

(१) केदारी (२) कानडा (३) देशी (४) कौमुदी (५) नाटिका।

५. श्री राग की रागिनियाँ—

(१) वसंती (२) मालती (३) मालश्री (४) धनाश्री (५) आसावरी।

६. मेघ राग की रागिनियाँ—

(१) मल्लारी (२) देशकारी (३) भूपाली (४) गुर्जरी (५) टक्क।

---

* "संगीत-दर्पण", अध्याय-२ श्लोक ३१ से ३७ तक पश्चात् श्लोक ३८ से रागार्णव मत का उल्लेख होता है। इनके मत-अनुसार पुरुष-राग ६ इस प्रकार हैं—

भैरव: पंचमो नाटो मल्लारो गौडमालव:।

देशाख्यश्चेति षड्रागा: प्रोच्यन्ते लोकविश्रुता: ३८॥

(१) भैरव (२) पंचम (३) नाट (४) मल्लार (५) गौड़मालव और (६) देशाख्य।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हनुमन्मत और भरत मत के मुख्य ६ पुरुष रागों में कोई भिन्नता नहीं है किन्तु रागिनियों, पुत्र तथा पुत्रभार्याओं के नामों में कहीं कहीं भिन्नता दिखाई देती है। यहाँ पर हनुमन्मत के अनुसार राग-परिवार का कोष्टक निम्नप्रकार दिया जा रहा है--

(१) राग-भैरव-परिवार

रागिनी	पुत्र	पुत्रभार्या
मधुमाधवी	वडहंस	सोरठी
भैरवी	खट	पूर्वी
वंगाली	वरवा	(दिनकी) पूर्या
वैरारी	विभास	जैजैवंती
सैंधवी	सारंग	ईमन-केदारी

(२) राग-कौशिक (मालकौंस) परिवार

रागिनी	पुत्र	पुत्रभार्या
तोडी	वागेसर	केदार-नाट
खंभावती	सुघराई	शुद्धनटी
गौड़ी	मांढ	यमुन-कल्याणी
गुनकरी	गारा	भीमपलासी
कुकुभ	अडाना	कामोदी

(३) राग-हिंडाल-परिवार

रागिनी	पुत्र	पुत्रभार्या
बिलावली	देवगिरी	मालव-गारू
रामकली	बिलहरी	यमन
देशाख्य	सूहा	पूर्या (रातकी)
पटमंजरी	अल्हैया	हमीर
ललित	पंचम	त्रिवेणी

(४) राग-दीपक-परिवार

रागिनी	पुत्र	पुत्रभार्या
केदार	जैत	कामोदनाट
कानडा	नायकी	परज
देशी	काफी	लच्छीसाख
कामोद	श्याम	नट-मल्हारी
नट	छायानट	विहाग

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(५) राग-श्री परिवार

रागिनी	पुत्र	पुत्रभार्या
वसंत	मारवा	लंकदहन
मारू	शंकरा	सोहिनी
मालश्री	लाचारी	पहाड़ी
धनाश्री	जोगिया	शंकराभरण
आसावरी	गांधारी	गौड-सारंग

(५) राग-मेघ परिवार

रागिनी	पुत्र	पुत्रभार्या
मल्लार	गौंड	मुलतानी
देशकार	कल्याण	मांझी
भूपाली	विद्रावनी	मालीगौरा
गूर्जरी	नटनारायण	खमाज
टंक	सामंत	कान्हड़-नाट

(४) "चत्वारिंशच्छतरागनिरूपण" ग्रंथ में १० राग तथा प्रत्येक की ५–५ भार्या, ४ पुत्र और ४ स्नुषाओं का उल्लेख है। जिनकी संख्या कुल १४० की होती है।

प्राचीन चार मतों के मुख्य छः रागों को अनुकूल छः ऋतुओं में गाने का प्रचार भी था। यह पद्धति लगभग मुसलमानों के समय (मध्यकाल) तक स्वीकृत मानी जाती थी। परन्तु पटना के मुहम्मद साहब ने सबसे पहिले १८१३ ई. में इस प्रकार की पद्धति को अशुद्ध बतलाकर उसकी विस्तृत आलोचना की थी। इसका सारांश है कि रागों से उत्पन्न होने वाली रागिन्यादि में कुछ समानता अवश्य होनी चाहिए। इस मान्यता के आधार पर सब से पहिले बिलावल को अपना शुद्धथाट मानकर नई थाट-पद्धति को जन्म दिया। तत्पश्चात् पं. भातखंडेजी ने भी राग-रागिनी की कुटुंब व्यवस्था पद्धति इत्यादि को गलत बतलाया और जन्य-जनक थाट पद्धति का प्रचार किया और इन्हीं १० थाटों के अंतर्गत प्रचलित सभी रागों को रख दिया।

"राग" की व्यवस्था में रंजकत्व होना अनिवार्य होने से कहा जाता है कि रागों की संख्या मर्यादित होती जा रही हैं। पं. भातखंडेजी ने कहा है कि "२०० रागों से अधिक राग दिखाई देना असंभव सा ही है।" परन्तु क्रमिक ४ भागों की सैकड़ों चीजें ४५ रागों में ही प्राप्त होती हैं। भारतीय संगीत घरानों में विशेषतः इन ४५ रागों का ही अधिक प्रचार और प्रसार था। घरानों के गायक-वादक संख्या की अपेक्षा राग का उठाव, स्वरूप, सुरावट एवं रंजकत्वादि की ओर अधिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

झुकाव रखते थे। फलतः उनकी उन चीजों की बंदिशें अपने घराने का मुख्य अंग बनकर आज तक चालू रही हैं।

"रागतरंगिणी" के श्रीकृष्ण के समय की राग-संख्या के उल्लेख की अति प्राचीन एवं भावात्मक दृष्टि तथा "चतुर्दंडीप्रकाशिका" ग्रंथ की ७२ थाटोत्पन्न रागों की गणित दृष्टि को बाद करने पर प्राचीन तथा मध्यकालीन सभी ग्रंथों में 'संगीत रत्नाकर' में ही सर्वाधिक अर्थात् २६४ की संख्या मिलती है।

अष्टछाप संगीताचार्यों के समय में जन्य-जनक पद्धति का व्यवहार प्रचलित नहीं था। किन्तु राग-कुटंब व्यवस्था प्रचलित हो चुकी थी। अतः अष्टछाप संगीताचार्यों ने भी राग-रागिनी पद्धति को ही दृष्टि में रखकर रागों को अपनाया यह प्रतीत होता है। यह अनुमान "खटऋतु की वार्ता" के निम्नलिखित उल्लेख से स्पष्ट होता है।

"ता पाछें श्री ठाकुरजी ने छत्तीसों राग-रागिनी को बुलाय के आज्ञा करी जो तुम छै-छै सखी रूप होय के छत्तीसों वाजेन सहित एक-एक ऋतुन की निकुंजन में छै-छै समै-अनुसार श्रीस्वामीजी की आज्ञा तें नृत्य, गान तथा बाजे सावधानीसों वजाइयो। तब छत्तीसों राग-रागिनी श्री ठाकुरजी कों दंडवत करिके छेओं ऋतुनके छेओं निकुंज में छै-छै बाजे सहित छै-छै पधारे। सो तिन छत्तीसों रागरागिनीन के तथा छत्तीसों वाजेन के नाम कहते हैं।" राग-रागिनियों" के नाम निम्न प्रकार दिये हुए हैं:—

१. मल्लार, २. ललित, ३. पंचम, ४ आसावरी, ५. भैरव, ६. मालव, ७. टोडी, ८. कल्याण, ९. गुर्जरी, १०. मालवा,० ११. गोडी, १२. बिलावल, १३. धनाश्री, १४. रंगिली,* १५. खमाज १६. देसाख, १७. कान्हरो, १८. गौड-मल्लार, १९. केदारो, २०. खट (मंजरी), २१. रामकली, २२. †गंधारी, २३. बराडी, २४. कुकुभ, २५. कामोद, २६. नट, २७. गुनकली, २८. θमाधवी २९. देस, ३०. विभास, ३१. ‡हास, ३२. काफी, ३३. सोरठ, ३४ ईमन, ३५. जैजैवंती, ३६ सारंग,

---

० लेखक की कल्पनानुसार यह राग मालवी अथवा मालव-कौशिक (मालकौंस) होना चाहिए।

* "रंगीली" नाम "नायकी" का संकेतात्मक नाम है, ऐसा इस लेखक का मत है। नंददासजी रचित "सारंग" की रागमाला में "रंग रंगीली सुघर नायकी" कहा गया है, जो विशेषण रूप में "नायकी" का ही उपनाम मानना चाहिए।

† "गंधार" को देव-गंधार तथा θ माधवी को मधमाध सारंग तथा

‡ "हास को" हिंडोलसुहा मानना उचित कहा जायगा। मूल रागों के नाम से अनजान लिखने वाले से हस्तलिखित प्रति में कुछ उलट क्रमसे अपभ्रंश होने की संभावना है। प्राचीन लिखित प्रति प्राप्त होने पर निश्चित हो सकता है। यहाँ हमने प्रकाशित पुस्तक के आधार पर अनुमान किया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपर्युक्त विधान में राग-रागिनियों की संख्या ३६ प्राप्त होती है, किन्तु मुख्य छः राग और ३० रागिनियों का कोई उल्लेख नहीं है। यदि इनमें ६ रागों की संख्या और इनके नाम समझने का हम प्रयत्न करें तो अनुमानतः १ मल्लार, २, पंचम ३, मालवकौशिक, ४ भैरव, ५ हिंडोल तथा ६ नट इन रागों की संभावना कर सकते हैं।

अष्टछाप के महानुभाव श्री सूरदासजी-रचित "सब दिन तुम ब्रज में रहो, हरि होरी है" (यह होरी-धमार जो "गोरी" राग में प्रसिद्ध है) की ९ वीं तुक में 'छाट छै राग छै रागिनी, ताल तान बंधान" कहा गया है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि श्रीसूरदासजी के मतानुसार छः राग और प्रत्येक राग की छः रागिनी के उल्लेख से राग-रागिनी की संख्या कुल ४२ की मानी जायगी। इस मान्यता के अनुसार उन्होंने "सूरसारवली" में निम्नप्रकार वर्णन किया है।

"ललिता ललित बजाय रिझावत, मधुर बीन कर लीने ।
जान प्रभात राग पंचम खट मालकोष रस भीने ।।

सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि, सारंग सुर नट जान ।
सुर सावंत भूपाली ईमन, करत कान्हरो गान ।।

ऊंछ अड़ाने के सुर सुनियत, निपट नायकी लीन ।
करत बिहार मधुर केदारो, सकल सुरत सुख दीन ।।

गौर—मल्हार सोहागनि भैरव, ललित बजायो ।
मधुरबिभास सुनत बेलावल, दंपति अति सुख पायो ।।

देशाख देव पुनि गौरी श्री सुखरास ।
जेतश्री अरु पूर्वी टोडी, आसावरी गुन रास ।।

रामकली गुनकली केतकी, सुर सुघराई गाये ।
जैजैवंती जगतमोहिनी, सुरसों बीन बजाये ।।

सुआ सरस मिलत प्रीतम सुख, सिन्धुवरिरस मान्यो ।
जान प्रभात प्रभाती गायो, भोर भयो दोउ जान्यो ।।*

(१) ललित, (२) पंचम, (३) खट, (४) मालकौंस, (५) हिंडोल, (६), मेघ, (७) मालव, (८) सारंग, (९) नट, (१०) सावंत, (११) भूपाली, (१२) ईमन, (१३) कान्हरो, (१४) अडानो, (१५) नायकी, (१६) बिहागरो, (१७) केदारो (१८) सोरठ, (१९) गोड, (२०) मल्हार, (२१) सोहनी, (२२) भैरव, (२३)

* "केतकी" राग का संकेत प्राप्त नहीं हुआ है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बिभास, (२४) बिलावल, (२५) देवगिरि, (२६) देसाख, (२७) देवगंधार, (२८) गौरी, (२९) श्री (३०) जेतश्री, (३१) पूर्वी, (३२) टोडी, (३३) आसावरी, (३४) रामकली, (३५) गुनकली, (३६) केतकी, (३७) सुघराई, (३८) जैजैवंती (३९) *जगतमोहिनी, (४०) सुहा, (४१) सिंधुरा, (४२) प्रभाती।

प्रिया प्रीतम को प्रसन्न करने के लिए संगीत-प्रवीणा ललिता सखी ने वीणा (बीन) तथा गान द्वारा उत्तर रात्रि के ललित राग से आरंभ करके प्रातःकाल के पश्चात् मध्यान्ह एवं सांझ और रात्रि के समय में गाये जाने वाले राग-रागिनियों को मिलाकर ४२ की संख्या पूरी की।

उपर्युक्त ४२ राग-रागिनियों में से मुख्य छः राग सूर की दृष्टि से निम्न प्रकार प्राप्त होंगे।

(१) श्री, (२) वसंत, (३) भैरव, (४) पंचम, (५) मेघ, (६) नट

"सूर-सारावली" के आधार पर ४२ तथा "षड्ऋतु" भावना के आधार पर ३६ राग-रागिनियों की संख्या स्पष्ट होती है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के समय तक की कीर्तन प्रणाली में छः राग और तीस रागिनियों को मिलाकर कुल ३६ रागों का ही गान श्रीजी के संमुख किया जाता था।

१. श्रीकुंभनदासजी के गाये हुए ४२ रागों के नामोल्लेख प्राचीन कीर्तन संग्रहों में प्राप्त होते हैं।
२. श्रीसूरदासजी के गाए हुए ४२ रागों के नाम प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। किन्तु श्रीमदाचार्य की उपस्थिति के समय में ३६ रागों का ही गान किया होगा।
३. श्रीपरमानंदजी ने भी ४२ रागों का गान किया। किन्तु श्रीमदाचार्य-चरण के समय तक ३६ रागों का ही गान किया।
४. श्रीकृष्णदास जी के पद ४२ की राग-संख्या में पाये जाते हैं।
५. श्रीगोविंदस्वामी के पद ३६ की राग-संख्या में हैं।
६. श्रीछीतस्वामी जी के पद ३६ की राग-संख्या में उपलब्ध हैं।

---

* *"जगतमोहनी" राग का उल्लेख "संगीत सागर" (हाथरसप्रकाशन) पृष्ठ ७२ एवं १२० में है। तदुपरांत*
"संगीत शास्त्र" पृष्ठ ३०८ पर "मायामालव" मेला जन्य तथा जिसके स्वर सा ग म प नि सा/सा नि प म ग रे सा बताये हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

७. श्रीचतुर्भुजदास जी के पद ३६ की राग संख्या में मिलते हैं। और

८. श्रीनन्ददास जी के पदों में भी ३६ रागों के नामोल्लेख पाये जाते हैं।

उपर्युक्त संख्या के रागों के नामों का अष्टछाप संगीतचार्यों के संक्षिप्त जीवन परिचय के प्रकरण में भी उल्लेख किया गया है।

हम पहिले कह चुके हैं कि श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के समय में जनक मेल और जन्य रागोत्पत्ति का प्रकार प्रचार में नहीं था। किन्तु राग-परिवार-व्यवस्था प्रचार में होने से श्री सूरदासजी, श्री परमानंददास जी तथा श्री कृष्णदासजी ने ६ राग और ३६ रागिनियों के शास्त्रोल्लेख के अनुसार ४२ की राग संख्या का तथा श्री कुंभनदासजी, श्री गोविंदस्वामी, श्री छीतस्वामी, श्री चतुर्भुजदास जी तथा श्री नंददासजी ने ६ राग और ३० रागिनियों का सिद्धांत अपनाया यह दृष्टिगत होता है। संभवत: इन पांच सखाओं षट्ऋतु की भावना को भी लक्ष्य में रख कर ३६ संख्या को उचित समझा होगा।

हस्तलिखित पद संग्रहों में से कीर्तनों का समुच्चय करके नित्य की, वसंतधमार की और वर्षोत्सव की बृहद् पुस्तक श्री ठाकुरदास ने सर्व प्रथम प्रकाशित की तत्पश्चात् उनके अनुकरण भी हुए। इन प्रकाशनों में भी ३६ से अधिक रागों के नाम प्राप्त होते नहीं हैं। श्री ठाकुरदास सूरदास तथा श्री लल्लूभाई देसाई के प्रकाशित कीर्तनों के पूर्व प्रकाशित वृहद् ग्रंथों में भी प्राय: निम्न ३६ रागों के नाम ही दिखाई देते हैं:–

१. भैरव, २. रामकली, ३. खट, ४. विभास, ५. देवगंधार, ६. ललित, ७. मालकौस ८. विलावल, ९. पंचम, १०. सूहा, ११. सुघराई, १२. धनाश्री, १३. आसावरी, १४. टोडी, १५. सारंग, १६. नट, १७. गौरी, १८. श्री, १९. पूर्वी, २०. मारू, २१. कल्याण, २२. हमीर, २३. सौरठ, २४. काफी, २५. जैजैवंती, २६. केदार, २७. ईमन, २८. मालव, २९, कानरा, ३०. नायकी, ३१. अडाना, ३२. विहाग, ३३. वसंत, ३४, मल्हार, ३५. रायसा, ३६. विहागरा।

यहाँ पर एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि अप्टछाप जैसे संगीताचार्यों के पद-गान के संग्रहों में ३६ या ४२ रागों के ही नामोल्लेख क्यों प्राप्त होते हैं? अधिक क्यों नहीं?

इस प्रश्न को विचारने के पहिले ही हमने कहा है कि उस समय संगीत क्षेत्र में राग-कुटुंव व्यवस्था प्रचलित थी। ग्रंथों में दो मत थे। एक मत में ४२ की संख्या और दूसरे मत में ३६ (राग ६-रागिनियाँ ३०) की संख्या मानने का प्रचार था। अत: उस समय के राग-रागिनियों की संख्यानुसार इतने ही रागों को प्रभुसंमुख विनियोग कराया। यह प्रमाण (शास्त्राधार) और प्रमेय (भावनानुसार) की दृष्टि से संबंधित है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूसरा कारण यह भी है कि करीब संवत् १५५६ (ई. सं. १५००) में गोवर्धन की गिरिराज की पहाड़ी पर छोटा सा कच्चा मंदिर बनवाकर श्रीकुंभनदास-जी को सेवक बनाकर कीर्तन-गान की सेवा में नियत किया गया तथा सद्गूपांडे और रामदास चौहान को सेवा-पूजा का कार्य करने की आज्ञा की गई। परन्तु उस समय राग, भोग और श्रृंगार की सेवा का कोई नित्यक्रम निर्धारित नहीं था व्रजवासी लोग अपनी इच्छानुसार सेवा-पूजा गानादि किया करते थे। तत्पश्चात् संवत् १५५९ की वैशाख शु. ३ को इस मंदिर का नव निर्माण आरंभ हुआ। संवत् १५६४ में मंदिर का अधिकांश भाग बनने पर श्रीनाथजी को विराजमान किया गया। तव बंगाली वैष्णवों को सेवा-पूजा के लिए बुलवाया गया। सेवा-प्रकार भी सूक्ष्म रूप में था। श्रृंगार में प्रायः मोर चंद्रिका, पाग और गुंजा की माला का श्रृंगार किया जाता था। और व्रजवासियों द्वारा प्राप्त साधारण सामग्री का भोग लगाया जाता था। श्री कुंभनदासजी कीर्तन की सेवा करते थे और श्री-कृष्णदासजी उस समय भेंटिया (भेंट लाने) का कार्य करते थे।

पूरणमल्ल क्षत्रिय के द्रव्य से अधूरा मंदिर संवत् १५७६ में (१७ वर्ष बाद) वैशाख शु. ३ को सम्पूर्ण सुविधानुसार पूरा बन गया। इस समय श्रीमद्-वल्लभाचार्य जी की उपस्थिति में एक समारोह हुआ। यद्यपि श्रीसूरदासजी संवत् १५६७ में श्रीमदाचार्य जी की शरण आये उसी समय से वे श्रीनाथजी को कीर्तन सुनाया करते थे किन्तु इस समय (संवत् १५७६) से श्रीकुंभनदासजी के साथ श्रीसूरदासजी भी नियत क्रम से कीर्तन की सेवा करने लगे। दोनों महानुभाव मिलकर श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा सम्हालते थे। तदतिरिक्त श्रीकृष्णदास जी, जो संवत् १५६८ में शरण आये; प्रारंभ में भेंटिया का कार्य करते थे और बाद में मंदिर के अधिकारी बने थे। अधिकारी के कामों की जवाबदारी के कारण वे अवकाश के समय श्रीकुंभनदासजी तथा श्रीसूरदासजी के कीर्तन-गान को सुना करते थे। एकाग्रता, तन्मयता, संगीत के प्रति अभिरुचि; भगवद्भाव एवं मधुर कंठ तथा तीव्र ग्रहणशक्ति के कारण एक दशक के समय में ही वे श्रीनाथजी की कृपा से संगीत और कवित्व शक्ति प्राप्त कर चुके थे।

सं. १५७७ में कीर्तनकार श्रीपरमानंददासजी श्रीमद्वल्लभाचार्यजी की शरण आये और श्रीनाथजी की कीर्तन-संगीत की सेवा में नियुक्त किये गये। कृष्णदासजी को अब तीनों संगीताचार्यों के सत्संग का लाभ प्राप्त होता रहा। फलतः श्रीमहा-प्रभुजी के समय तक कृष्णदास संगीत शास्त्र के ज्ञाता सुकवि और उत्तम गायक भी हो चुके थे, और अवकाश मिलने पर भक्तिपूर्वक लीलात्मक पदों का श्रीजी के सम्मुख गान भी किया करते थे।

अष्टछाप के आठ महानुभावों में श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के उपर्युक्त चार सेवकों के पश्चात् श्रीगुसाँईजी के चार सेवकों में श्रीगोविंद स्वामी और छीतस्वामी वि.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सं. १५९२ में तथा श्रीचतुर्भुजदास सं. १५९८ में एवं नंददासजी सं. १६०७ में श्री गुसाँईजी के सेवक हुए।

पहिले हम बता चुके हैं कि श्रीसूरदासजी, श्रीपरमानंददासजी तथा श्रीकृष्ण-दासजी के पद संग्रहों में प्रायः ४२ राग और तदतिरिक्त पांच सखाओं के पद संग्रहों में ३६ रागों से अधिक संख्या का उल्लेख हमें प्राप्त हुआ नहीं है। इसमें कोई आश्चर्य न होगा क्योंकि भारतीय संगीत के इतिहास के प्रसिद्ध घरानों में भी अधिकतर ४५ राग ही विशेष प्रचार में थे। इसके समर्थन में इतिहासज्ञ पं. भात-खंडेजी का निम्न उद्धृत विधान देखिए। "गेल्या शंभर वर्षांतर संगीताचा इतिहास आपण पाहूं लागतो तर एक गोष्ट आपल्या दृष्टिस पेडल कीं, त्या कालांत प्रसिद्धीस आलेल्या उत्तमोत्तम गायकां चे तैयारी चे नेहमीच्या गाण्या चे राग म्हटले या चार क्रमिक पुस्तकांत ४५ राग सांगितले आहेत तेच असत। खुद ग्वाल्हेर चे प्रसिद्ध ख्याल गायक नथूखां, हस्सूखां, हद्दूखां वगैरे झाले त्याचे नेहमीच्या गायकी चे राग तर या चार पुस्तांकत येणारेंच बहुतेक असत।

(क्रमिक पु० ४ मराठी पृष्ठ ३)

उपर्युक्त विधान पं. भातखंडेजी ने करीब ५० वर्ष पहिले किया है। अतः ई. सं. १८०० के प्रारंभ समय के पश्चात् यानी आज से १५० वर्ष के इतिहास की दृष्टि से भारतीय घरानों की ४५ रागों की संख्या उनकी चार पुस्तकों में निम्नप्रकार प्राप्त होती है—

(१) यमन (यमनकल्याण) (२) बिलावल (अल्हैयाबिलावल), (३) खमाज, (४) भैरव, (५) पूर्वी, (६) मारवा, (७) काफी, (८) आसावरी, (९) भैरवी, (१०) तोड़ी, (११) भूपाली, (१२) हमीर, (१३) केदार, (१४) बिहाग, (१५) देस, (१६) तिलकामोद (१७) कालिंगडा, (१८) श्री, (१९) सोहनी, (२०) बागेश्री (२१) बिन्द्राबनी-सारंग, (२२) भीमपलास, (२३) पीलू, (२४) जौनपुरी, (२५) मालकौंस, (२६) शुद्धकल्याण, (२७) कामोद, (२८) छायानट (२९) गौड-सारंग, (३०) हिंडोल, (३१) शंकरा, (३२) देशकार, (३३) जैजैवंती, (३४) रामकली, (३५) पूर्याधनाश्री, (३६) वसंत, (३७) परज, (३८) पूर्या, (३९) ललित, (४०) गौड-मल्लार, (४१) मियां-मल्लार, (४२) बहार, (४३) दरबारी-कानडा, (४४) अडाना और (४५) मुलतानी।

जिस प्रकार उस समय के उत्तमोत्तम गायकों की तैयारी के रियाज के, और हमेशा की गायकी के मुख्य ४५ ही राग प्रचार में थे। उसी प्रकार अष्टछाप घराने की कीर्तन प्रणाली में भी ३६ या ४२ राग-संख्या प्रचार में है।

उपर्युक्त इन ४५ रागों के अतिरिक्त कुछ अप्रचलित एवं अप्रसिद्ध राग भी थे, ये खोज के पश्चात् पं. भातखंडेजी को प्राप्त हुए थे। इस प्रकार के रागों को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उन्होंने क्रमिक पाँचवें और छठे भाग में प्रकाशित किया है। इनकी संख्या सब मिलाकर २०० के लगभग है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के समय में श्री कुंभनदासजी तथा श्रीकृष्णदास (अधिकारी) अपने अवकाश और सुविधा के अनुसार, किन्तु श्रीसूरदासजी तथा श्रीपरमानंददासजी नियमित रूप से समय एवं ऋतु के अनुसार श्रीजी के संमुख कीर्तन पद-गान किया करते थे। पश्चात् श्रीविट्ठलनाथजी ने अपने काव्य-संगीत कलाविद् चार शिष्यों—गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास को सम्मिलित कर अष्टसखा के नाम से एक मंडली बनाई, जो "अष्टछाप" के नाम से आज तक प्रसिद्ध है।

अष्टछाप की स्थापना का समय संवत् १६०२ (ई. सं. १५४६) में माना गया है* किन्तु उस समय श्रीनंददासजी के स्थान पर विष्णुदास छीपा को सम्मिलित किया गया था यह माना जाता है। क्योंकि श्रीनन्ददासजी सं. १६०७ (ई. सं. १५५१) में श्रीविट्ठलनाथजी की शरण आये थे। उसी समय काव्य-संगीतादि में विशेष योग्यता के कारण "नंददास" को अष्टछाप में स्थान दिया और विष्णुदास छीपा को वृद्धत्व के कारण श्रीगुसांईजी ने द्वार-रक्षक के स्थान पर नियत किया, ऐसी मान्यता है। मुझे लगता है कि श्रीविट्ठलनाथजी ने संभवतः सं. १६०८ के आसपास अष्टछाप की स्थापना की होगी।

संवत् १६०७ में श्रीविट्ठलनाथजी को विधिपूर्वक आचार्यत्व प्राप्त हुआ। पश्चात् एकाध वर्ष में श्रीजी की सेवाक्रम में राग, भोग, और शृंगार का क्रम क्रमशः बढ़ता रहा। आठ मुख्य कीर्तनकारों के सहायक रूप में आठ उपकीर्तनकार भी रखे गये। श्रीगुसांईजी स्वयं संगीतशास्त्र के ज्ञाता ही नहीं, अच्छे वीणावादक भी थे। राग-रागिनियों में प्रवीण होने के कारण अष्टछाप के कई महानुभावों की कलाओं के आस्वादन के लिये बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी तरसते थे।

श्रीविट्ठलनाथजी के समय तक में राग, भोग और शृंगार की सेवा-विधि का क्रम बढ़ता रहा। पश्चात् आपके सात पुत्रों के समय में भी इसमें क्रमशः वृद्धि होती रही। नित्य नैमित्तिक उत्सव-त्यौहारों में अन्नकूट तथा छप्पनभोग के उत्सव भी मनाये जाने लगे, जिनमें छप्पन प्रकार की विविध सामग्री के भोग अर्पित्त किये जाते थे। उसी प्रकार वर्ष भर के मुख्य उत्सव भी ५६ की संख्या में मनाये जाते थे; जिनका उल्लेख अन्यत्र किया जायगा। राग-संख्याओं की दृष्टि से भेद होने पर भी, अष्टछाप कीर्तनकारों में से तीन सखाओं ने ४२ और अन्यों ने ३६ की संख्या में राग-गान किया है। बाद में रागों के अन्य प्रकारों का विनियोग होने पर रागों की संख्या भी ५६ हो गयी जो कि निम्न प्रकार से प्राप्त होती है :—

---

* "प्राचीन वार्ता रहस्य" द्वितीय भाग में अष्टछाप के चित्र के साथ उसका समय १६०२ छपा हुआ है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१) भैरव, (२) रामकली, (३) रामग्री, (४) ललित, (५) मालकोंस, (६) खट, (७) विभास, (८) हिंडोल, (९) वसंत, (१०) पंचम, (११) देवगंधार, (१२) बिलावल, (१३) सुहा, (१४) सुघराई, (१५) गुर्जरी, (१६) टोडी, (१७) आसावरी, (१८) धनाश्री, (१९) सारंग, (२०) सोरठ, (२१) मेघमल्लार, (२२) मल्लार, (२३) खरज, (२४) अल्हैया-बिलावल, (२५) नट-बिलावल, (२६) गौडमल्हार, (२७) सोरठमल्लार, (२८) सामंत-सारंग, (२९) गौडसारंग, (३०) नट, (३१) नटनारायण, (३२) मालव-गौरा, (३३) पूर्वी, (३४) चेती-गौरी, (३५) सामेरी, (३६) श्री, (३७) जैतश्री, (३८) मालश्री, (३९) मारू (४०) मालव, (४१) खमाज, (४२) काफी, (४३) हमीर, (४४) हमीरकल्याण, (४५) ईमन, (४६) कल्याण, (४७) ईमनकल्याण, (४८) स्यामकल्याण, (४९) केदारो, (५०) जैजैवंती, (५१) कान्हरो, (५२) नायकी, (५३) रायसो, (५४) अड़ानो, (५५) विहागरो, (५६) विहाग।

सम्प्रदाय की सेवा-प्रणाली में प्रारंभ से ही राग (संगीत), भोग (सामग्री) और श्रृंगार को प्रमुख स्थान दिया गया है। श्रीविट्ठलनाथजी भलीभाँति जानते थे कि पुष्टिमार्गीय सेवा और भावना का क्रियात्मक रूप से विस्तृत प्रचार करने में इन तीनों प्रकारों का विस्तार करने की योजना बनाना आवश्यक है। फलतः "भोग" के प्रकार में "छप्पनभोग" (छप्पन प्रकार की सामग्री) का, "राग" यानी कीर्तन-सेवा में ५६ प्रकार के रागों का और श्रृंगार यानी शोभन कला में ५६ के त्यौहारोत्सवों का क्रमशः आयोजन किया। संभव है अष्टछाप की स्थापना के पहिले ४२ रागों का और तत्पश्चात् श्रीविट्ठलनाथजी के समय तक श्रीजी की कीर्तन-सेवा में ५६ की संख्या में राग-रागिनियों का अंगीकार हुआ होगा।

अष्टछाप के अतिरिक्त श्रीमद्वल्लभाचार्य के ८४ सेवकों तथा श्रीविट्ठलनाथजी के २५२ वैष्णवों में जो संगीतज्ञ कवि थे, जिन्होंने अष्टछाप परंपरा की भावनानुसार प्रभु-संमुख कीर्तनगान किया था, उनके पदों को तथा तदुपरान्त भगवद्-सानुभावैक सम्प्रदायेतर संगीतज्ञ भक्त कवियों के पदों को भी श्रीविट्ठलनाथजी ने कीर्तन-प्रणाली में स्थान देना आरंभ किया था; जिनकी नामावली "जीवन-परिचय" प्रकरण में प्रकाशित की गई है। इस प्रकार क्रमशः ३६, ४२ और ५६ की राग-संख्या का विचार करने के पश्चात् श्रीगोकुलनाथजी के तथा श्रीहरिरायजी के समय के लगभग साम्प्रदायिक तथा सम्प्रदायेतर भक्त कविवरों के पदों की विपुल प्रमाण में रचनाएँ सम्प्रदाय के लिखित संग्रहों में प्राप्त होती हैं। इन पदों का उस समय से प्रभु-संमुख गान किया जाता है। इन पदों का अधिकांश प्रकाशन भी हो चुका है। परन्तु श्रीहरिरायजी के समय तक यानी ईसा की १८ वीं शताब्दी तक ५६

१. *यह ५६ प्रकार के रागों की नामावली लिखित एवं प्रकाशित कीर्तन संग्रहों में दिये हुए शीर्षक के आधार पर ही प्रस्तुत की गई है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से अधिक संख्या में राग संख्या का विस्तार हुआ इस संवंध में हमारा मत है कि अष्टछाप-संगीत-परंपरा की मर्यादा में ईसा की १८ वीं शताब्दी तक के महानुभाव भक्त-संगीतज्ञ कविवरों के रचे हुए और गाये हुए पदों का समावेश दृष्टिगोचर होता है, जो प्रकाशित-अप्रकाशित कीर्तन-संग्रहों में विद्यमान है। इन संग्रहों में से जिन-जिन रागों के नाम प्राप्त हैं उन्हें एकत्र करने के उपरान्त कई पदों की वन्दिशों को सुनने पर रागों के कुछ अन्य प्रकार भी पाये जाते हैं। किन्तु इनकी संख्या भी ८४ से अधिक नहीं है। अतः अष्टछाप (हवेली) संगीत परंपरा में ८४ राग-संख्या ही मान्य है, यह स्वीकार करना समुचित है।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि रागों की कुल संख्या ८४ ही क्यों, न्यूनाधिक क्यों नहीं ? इस प्रश्न का समाधान शास्त्रीय एवं भावात्मक दृष्टि से इस प्रकार हो सकता है। पं. लोचन रचित १५ वीं शती के "राग-तरंगिणी" ग्रंथ में उल्लेख मिलता है कि "पहिले प्राचीन समय में मूल १६००० रागों की संख्या थी। इन सभी रागों का श्रीकृष्ण के सन्निधान में सोलहसहस्त्र गोपियों ने गायन किया था। इस विधान को "रागकल्पद्रुम" ग्रंथ का भी समर्थन प्राप्त होता है।*

षोडशसहस्त्र भिन्न-भिन्न रागरागिनी ईरितः ।
वृन्दावने रासक्रीडायां एकैक श्रीकृष्णसन्निधौ ।।

(राग-कल्पद्रुम, रागाध्याय, पृष्ठ–१३)

वृन्दावन में रासक्रीडा के समय श्रीकृष्ण के सम्मुख १६००० गोपिकाओं में से प्रत्येक ने भिन्न-भिन्न राग गाकर "सोलहसहस्त्र" राग-रागिनियाँ प्रस्तुत की थीं। "संगीतकलाधर" ग्रंथ में भी १६००० की संख्या का उल्लेख किया गया है।‡

अष्टछाप के संगीताचार्य श्रीनंददासजी ने भी भावात्मक दृष्टि से "रासपंचाध्यायी में यही वर्णन किया है:—

जितकहूंतीं ब्रजवधू, कोटियन कोटि भरि रति ।
तितेई तहां रागिनी-राग, संगीत भेद गति ।।९।।

सम्प्रदाय में सारस्वत कल्प की श्रीकृष्ण-लीला की भावनानुसार पुष्टिमार्गीय सेवा-प्रणाली की रचना की गयी है, यह माना जाता है। सम्प्रदाय की सेवा-भावना में उस समय की लीला का स्पष्ट प्रतिबिंब देने का प्रयत्न है। तदनुसार राग-संख्या के विषय में भी सारस्वत कल्प की रासक्रीड़ा के समय की राग-गान संबंधी अनुकरण भावना मानी गई है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के ८४ सेवकों को भी पूर्वजन्म की भावना में सखीरूप माना जाता है। उस कल्प की श्रीकृष्णलीला में रासक्रीड़ा के समय प्रत्येक गोपिका

---

* उ. हिं. सं की ऐतिहासिक समालोचना (गुजराती प्रति) पृष्ठ १७

‡ संगीतकलाधर पृ. १२८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ने एक-एक राग का गान किया था उसी आधार पर "पुष्टिमार्ग" की 'राग' प्रणाली में पुष्टिमार्ग के संस्थापक श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के ८४ सेवकों में प्रत्येक की ओर से एक-एक राग को अंगीकार कराने के हेतु से पुष्टिसंगीत प्रणाली में प्रभुको कुल ८४ रागों का ही विनियोग माना गया है।

यही नहीं संप्रदाय में निम्न तथ्यों में भी ८४ की संख्या को ही महत्व दिया है:—

(१) श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने ८४ स्थानों पर ही श्रीमद्भागवत का पारायण किया, इन स्थलों को श्रीमहाप्रभुजी की बैठक कहा जाता है। बैठकों की ८४ संख्या सुप्रसिद्ध है।

(२) पुष्टि-सम्प्रदाय के दीक्षा मंत्र (ब्रह्मसंबंधमंत्र) के अक्षर ८४ ही हैं।

(३) श्रीवल्लभाचार्यजी के ग्रंथों की रचना भी ८४ है।

(४) श्रीकृष्णक्रीड़ा-स्थान व्रज-प्रदेश की मर्यादा भी ८४ कोस की है; जहाँ प्रति वर्ष व्रजयात्रा निकलती है।

इस प्रकार ८४ की संख्या की मर्यादा के संदर्भ में ८४ लक्ष योनियों में भटकते हुए जीवों को बंधन-मुक्त करने का हेतु भी दीख पड़ता है। मैं समझता हूँ कि इसी उद्देश्य से सम्प्रदाय की राग-संख्या भी ८४ मानी गई है। इन ८४ रागों में पुष्टिमार्गीय भगवद्-गुणगान (कीर्तन) से जीव ८४ लक्ष योनियों से मुक्त होकर कृतार्थ होता है, यही नहीं भगवत्-साक्षात्कार तक ले जाने की शक्ति भगवद्गुणगान में है, जो भारतवर्ष के भक्तों तथा संतमहंतादि महानुभावों के जीवन-चरित्रों में हम देख सकते हैं।

८४ राग-संख्या के समर्थन में उपर्युक्त विवेचन के अतिरिक्त श्रीगुसाँईजी, श्रीगोकुलनाथजी तथा अष्टसखादि कीर्तनकारों ने सम्प्रदाय के उत्तमादि सिद्धांत को भी लक्ष्य में रखा है। सम्प्रदाय की सेवा का मुख्य सिद्धांत है कि "प्रभु उत्तम वस्तु के भोक्ता हैं।" यह सिद्धांत राग (संगीत), भोग (सामग्री) एवं श्रृंगार, इन तीनों प्रकार की सेवा-प्रणाली में अपनाया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भोग-सामग्री अर्थात् खाद्य पदार्थों के सात्विक, राजस और तामस गुणों का वर्णन किया गया है जिनमें भोजन के सात्विक पदार्थों को आयु, बुद्धि, वल, आरोग्य, सुख एवं प्रीति में वृद्धि युक्त, रसयुक्त, स्निग्ध, स्थिर और हृदय के लिए आनंद युक्त वताया है। राजस भोजन के पदार्थों में कटु, लवण, अम्ल, उष्ण, तिक्त, रुक्ष एवं दाह करने वाले आहारों का उल्लेख किया गया है, और यातयाम, रसहीन, दुर्गंधयुक्त, वासी (पर्युषित) उच्छिष्ट एवं अपवित्र भोजन को तामस-प्रिय कहा है।*

---

* *श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय-१७ श्लोक—८, ९, १०)*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीमद्भगवद्गीता के उपर्युक्त सिद्धांतानुसार पुष्टि सम्प्रदाय में "भोग" (सामग्री) में सात्विक पदार्थों का ही नित्य-क्रम में उपयोग किया जाता है। ऋतु, उत्सव, त्यौहार आदि नैमितिक क्रम में कभी किसी राजस पदार्थ का समावेश तो किया जाता है परन्तु तामस पदार्थों का सर्वथा वर्जन किया जाता है।

प्रायः ९० प्रतिशत सात्विक अर्थात् उत्तम पदार्थों की सामग्री का भोग लगाया जाता है। १० प्रतिशत नैमित्तिक क्रम में राजस यानी मध्यम प्रकार के पदार्थों का उपयोग किया जाता है, किन्तु तामस अर्थात् अधम पदार्थों का भोग में कोई स्थान नहीं है। प्याज, लहसुन, मोगरी, मूली, तरबूज, गाजर, फलावर, कोबीज, कालकूल इत्यादि राजस-तामस आहार में गाजर, मूली, तरबूज, मोगरी, राजस (मध्यम) पदार्थ होते हुए भी त्याज हैं, परन्तु प्याज, लहसुन, आदि तामस-अधम वस्तु सर्वथा निषिद्ध हैं। सम्प्रदाय की प्रणाली में "भोग" और "राग" का परस्पर गहरा संबंध है। इस विषय की चर्चा अन्य स्थल पर की जायगी। श्रीजी को उत्तम यानी सात्विक वस्तुओं का ही भोग लगाया जाता है और कतिपय राजस-मध्यम-सामग्री का उपयोग भी किया जाता है, किन्तु अधम का सर्वथा निषेध है।

इस प्रकार राग (संगीत) की सेवा-प्रणाली में भी उत्तम, मध्यम एवं अधम का विचार किया गया है। यह केवल साम्प्रदायिक भावना की दृष्टि ही नहीं है, किन्तु संगीत के शास्त्रग्रंथों में भी इस विचार का समर्थन किया गया है। उदाहरणार्थं 'स्वरमेल कलानिधि' ग्रंथ के 'राग-प्रकरण' के आरंभ में कहा है—

"एतेषु वा मता रागा उत्तमा मध्यमा अपि।
अधमाश्चापि सकलाः कथ्यन्ते ते विवेकतः ।।"

तत्पश्चात् उत्तम वर्ग में २० रागों का नामोल्लेख किया है,

× × × इतिरागाः कथिताश्चोत्तमोत्तमाः।
असंकीर्णतया लोके रागा विशंतिरेव च ।।
गीतप्रबन्धकालापयोग्या एते भवन्ति हि ।।

भावार्थ—ये बीस राग उत्तम वर्ग में हैं। ये असंकीर्ण होने से गीत, प्रबन्ध, आलापादि गायन के योग्य मानी गयी है।

× × × पञ्चदशश्चैव।
लोके बहुव्यवहाराः कीर्तिता मध्यमा बुधैः ।।

भावार्थ—इन १५ रागों को पंडितों ने "मध्यम" वर्ग में माना है। (ये राग प्रवन्धादि आलापों के योग्य माने जाते हैं किन्तु व्यवहार में लोगों में बहुप्रचलित न होने से मध्यम वर्ग के माने गये हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"अधम" रागों की संख्या का भी वर्णन किया गया है—

आर्द्रदेशीत्याद्यश्च रागाः स्युरधमाः क्रमात् ।
सर्वेष्वेतत्पुरोक्तेषु मध्यमेषूत्तमेषु च ।।
अन्तर्भूताश्च संकीर्णाः पामरभ्रामकाश्च ते ।
रागास्तावत् प्रबंधानामयोग्या बहुलाश्च ते ।।
तस्मान्नेते परिग्राह्या रागाः संकीतकोविदैः ।।

भावार्थ:—आर्द्रदेशी इत्यादि सभी तैंतीस राग "अधम" माने गये हैं। उपर्युक्त वताये गये रागों में "उत्तम" "मध्यम" और "अधम" सभी रागों का वर्णन किया गया है। जिनमें साधारण लोगों को भ्रम में डालने वाले "संकीर्णरागों" का भी समावेश होता है। इस प्रकार के प्रवन्धादिगानों में अयोग्य रागों की संख्या वहुत होने से पंडितों ने इनका विशेप विचार किया नहीं है।

इस (स्वरमेल कला निधि) ग्रंथ का रचनाकाल ई. सं. १५५० (संवत् १६०६) का है; जो अप्टछाप की स्थापना के समय का माना जायगा। अप्टछाप की स्थापना का प्रारंभ करीव सं. १६०७ में हुआ* अत: अष्टछाप की स्थापना के समय उत्तम, मध्यम और अधम रागों की मान्यता प्रचलित थी। इस वात की अधिक स्पष्टता निम्न श्लोकों से की गई है—

"तथापि लक्ष्यमाश्रित्य लक्ष्यज्ञाननुसृत्य च ।।
विशंत्युत्तमरागाणामसंकीर्णस्वरूपिणाम् ।
मध्यमानां तथा पञ्चदशानां च ततः परम् ।।
अधमानां च केषांचिल्लक्षणं लक्ष्यतेऽधुना ।।

उत्तम, मध्यम और अधम वर्ग के इन रागों के अधिकतर नामादि लक्षण दाक्षिणात्य पद्धति के होने से अत्र निरुपयोगी होने से अत्र हम यही कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त श्लोक में जो "लक्ष्यमाश्रित्य" व 'लक्ष्यज्ञाननुसृत्य च' कहा गया है, इससे स्पष्ट होता है कि उस समय के व्यवहार और प्रचार के अनुसार ही रागों का उत्तम, मध्यम और अधम प्रकारों का वर्णन किया गया है।‡

तदुपरान्त "रागविवोध" ग्रंथ, जो ई.स. १६१० (संवत् १६६६) में पं. सोमनाथ के द्वारा लिखा हुआ है, के चतुर्थ विवेकांत—पृ. ५ पर प्रकाशित टीका में 'उत्तम' 'मध्यम' और 'अधम' रागों का वर्गीकरण ठीक पं. रामामात्य के "स्वरमेलकलानिधि" के वर्णन के क्रमानुसार 'उत्तम', 'मध्यम' और 'अधम' वर्गों में ही प्राप्त होता है।

---

* *अष्टछाप परिचय—पृ. ६६-६७*

‡ *स्वरमेलकलानिधि मुद्रित प्रति सन् १९१०, पृष्ठ ३२*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि अष्टछाप की स्थापना के पूर्व समय से लेकर श्री विट्ठलनाथजी और श्री गोकुलनाथजी के समय तक रागों के त्रिवर्ग की मान्यता लोक में सुप्रचलित थी।

पुष्टिमार्ग के स्थापनाकर्ता श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के समय से ही पुष्टिमार्गीय-सेवाक्रम की प्रत्येक प्रणाली में सात्विक, राजस, तामस, यानी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ (अधम) भावना का सैद्धांतिक दृष्टि से विचार किया गया है। इसी सैद्धांतिक भावना का उस समय में रागों के संबंध में जो प्रचलित व्यवहार एवं शास्त्रीय मान्यता के आधार पर श्री विट्ठलेश्वर, श्रीगोकुलनाथजी, श्री हरिरायजी तथा अप्टछापादि कीर्तन-कारभक्तों ने रागों की इस मर्यादा को अपनाकर कुल ८४ रागों में ही भगवद्-गुणगान किया है।

अभी तक साम्प्रदायिक संगीत पर कोई विवेचनात्मक ग्रंथ प्राप्त न होने से इस वर्गीकरण के विषय में भी उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर हमारे मतानुसार निम्न प्रकार से विचार किया जा सकता है:—

(१) 'उत्तम रागों' में प्रवन्धादि आलापगान के योग्य और असंकीर्ण रागों का समावेश किया हुआ है। ये अधिकतर सम्पूर्ण जाति के हैं। 'उत्तम राग' केवल असंकीर्ण होने से उन्हें शुद्ध भी कहा जाता है। शुद्ध राग की व्याख्या में शास्त्रकारों ने बतलाया है कि जिन रागों में शास्त्रशुद्ध नियमों का पालन होता है तथा जो राग अन्य प्रकार के रागों से स्वतंत्र हैं अर्थात् जिन रागों में अन्य किसी राग की छाया नहीं आ सकती, जिनका विस्तार स्वतंत्र होता है, उन्हें शुद्ध राग कहते हैं। संक्षेप में शास्त्रोक्त नियमानुसार गाया जाने वाला और रंजन करने वाला राग शुद्ध कहलाता है। (तत्र शुद्धराग त्वं नाम शास्त्रोक्तनियमाद्रंजकत्वं भवति।)

(२) 'मध्यम-राग' प्रवन्धादि गान एवं आलापादि गान में उपयोगी माने गये हैं किन्तु व्यवहार में वहुत प्रचलित नहीं हैं। इन रागों का 'छायालगत्व' वर्ग में समावेश किया जाएगा। इनकी व्याख्या में कहा गया है कि—

"छायालगत्वं नामान्यच्छायालगत्वेन रक्तिहेतुत्वं भवति"

अर्थात्—छायालग रागों में अन्य किसी राग की छाया दिखाई देती है, जो प्रकार रंजक होता है। कुछ राग ऐसे हैं जिनमें किसी एक अन्य राग की छाया स्पष्ट होती है, जिसका हेतु रंजकत्व होता है।

(३) 'अधम-राग' प्रवन्धादि आलापगान के योग्य नहीं है, सामान्य लोगों को भ्रम में डालने वाले हैं, जिसका संकीर्ण रागों में (अन्तर्भूताश्च संकीर्णा:) समावेश किया गया है। संकीर्ण-राग की व्याख्या ग्रंथकारों ने इस प्रकार की है—संकीर्णरागत्वं नाम शुद्धच्छायालग मुख्यत्वेन रक्तिहेतुत्वं भवति अर्थात्—शुद्ध तथा छायालग रागों के मिश्रण से संकीर्ण रागों की उत्पत्ति होती है, यह मिश्रण लोकमनरंजनार्थ किया गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जैसे छायालग रागों में किसी एक अन्य राग की ही छाया दीखती है परन्तु संकीर्ण राग में अधिक रागों की छाया दिखाई देती है।

राग-वर्गीकरण में मुख्यतः तीन पद्धतियाँ मानी जाती हैं–

१. राग-रागिनी (राग-कुटुंब व्यवस्था) पद्धति ।
२. रागांग-पद्धति ।
३. मेल (थाट) व्यवस्था (जन्य-जनक) पद्धति ।

उपर्युक्त तीन पद्धतियों में से अष्टछाप के समय के पश्चात् मेल (जन्म-जनक) पद्धति का प्रचार हुआ है अतः उस समय के पूर्व राग-रागिनी पद्धति तथा रागांग पद्धति प्रचार में थी। राग-रागिनी-पद्धति तथा उत्तम-मध्यमादि तथा शुद्धच्छाया-लगत्वादि पद्धति की चर्चा की जा चुकी है।

रांगांग-राग—उत्तम राग एवं शुद्ध राग के शास्त्रीय रागों को रागांग राग कहते हैं। यदि इनमें जरा सा भी नियमों का भंग हो जाय तो रागांगत्व नहीं रह सकता, राग उत्तम या शुद्ध वर्ग के राग माने जाते हैं।

भाषांग-राग—ये शास्त्रीय रागों के निकट के माने जाते हैं। इनका समावेश मध्यम एवं छायालगत्व रागों में किया जा सकता है।

क्रियांग-राग—इनमें शास्त्र के कुछ नियम कायम रहते हैं किन्तु वहुधा अवरोह में विचित्रता और लोकरंजन के लिए विवादी स्वरों का उपयोग होने से शुद्ध राग भ्रष्ट होता है। इनका समावेश हम अधम यानी संकीर्ण कोटि के राग में कर सकते हैं।*

उपांग-राग—इनमें मूल राग को भ्रष्ट किया जाता है अर्थात् राग के मूलस्वरों को निकाल कर नये स्वर प्रविष्ट किये जाते हैं। इस प्रकार राग प्रायः अष्टछापी पद्धति में वर्ज्य होने से इस वर्ग से हमारा कोई संबंध नहीं है।‡

सम्प्रदाय की सेवा के प्रत्येक अंग में अधम वस्तु त्याज्य होने से उत्तम तथा मध्यम वस्तुओं का ही विचार किया गया है, इस प्रकार संगीत (राग) की सेवा प्रणाली में भी उत्तम और मध्यम रागों का ही उपयोग किया गया है। उत्तमराग रागांग पद्धति के शुद्ध राग हैं। ये शुद्ध शास्त्रीय राग अधिकतर संपूर्ण जाति के दिखाई देते हैं। जिनकी संख्या २४ है। ये इस प्रकार है—

(१) भैरव, (२) रामकली, (३) विभास, (४) देवगंधार, (५) ललित, (६) मालकौंस, (७) हिंडोल, (८) पंचम, (९) बिलावल, (१०) आसावरी, (११) धनाश्री, (१२) टोडी, (१३) सारंग, (१४) नट, (१५) गौरी, (१६) पूर्वी, (१७) श्री, (१८) सोरठ, (१९) कल्याण, (२०) कान्हरा, (२१) केदारा, (२२) बिहागरो, (२३) वसंत, (२४) मल्लार।

---

* ‡ हि. सं. पद्धति भाग-१ (गुजराती पृष्ठ-६७५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपर्युक्त २४ रागों में वसंत ऋतु के तीन (वसंत, पंचम, हिंडोल) तथा वर्षाऋतु का मल्लार इन चार के अतिरिक्त बीस राग नित्य सेवा क्रम में पर्याप्त हैं। वसंत और वर्षा ऋतु सहित नित्यक्रम की कीर्तन सेवा का प्रारंभ इन उत्तम वर्ग के २४ रागों से ही हुआ होगा, अर्थात् श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के समय में अधिकतर इन २४ रागों में ही कीर्तनगान होता होगा, यह हमारी मान्यता है। इस समय भोग सामग्री में भी व्रजवासियों के घर से जो कुछ आया करता था, उसी का भोग लगाया जाता था, और शृंगार में मस्तक पर पाग तथा मयूरपिच्छ की चंद्रिका (मुकुट) और श्रीकंठ में गुंजा की माला धराई जाती है।

तत्पश्चात् क्रमशः भोग-सामग्री, शृंगार, उत्सव, त्यौहारादि का क्रम बढ़ता रहा। तदनुसार गानप्रणाली में भी मध्यम वर्ग के अर्थात् भाषांग पद्धति के छायालग रागों में से क्रमशः ६० रागों का विनियोग किया गया। जैसे:—नट बिलावल, गौडसारंग; हमीर कल्याण, सोरठामल्लार, मालव गौरा, नायकी-कान्हरा इत्यादि बिलावल के, सारंग के, गौरी के, कल्याण के, मल्लार के, कानडा के तथा वसंत आदि के छायालगत्व राग एवं अन्य मध्यम वर्ग के रागों में समय ऋतु, त्यौहारादि के भावानुसार कीर्तन गान से प्रभु को रिझाने लगे। इस प्रकार का क्रम अष्टछाप की स्थापना के समय से क्रमशः बढ़ने लगा और श्री गोकुलनाथजी के समय तक ८४ रागों की नियत संख्या स्थिर हो चुकी थी।

मध्यम वर्ग के ६० रागों की संख्या तथा उत्तम प्रकार के २४ रागों की संख्या मिलाकर कुल राग-संख्या हमारी दृष्टि से निम्न प्रकार प्राप्त होती है—

प्रातः कालीन राजभोग पर्यंत की सेवाक्रम के राग—

भैरव १. रामकली २. गुनकली ३. देवगंधार ४. खट ५. परज ६. ललित।

१. पंचम २. हिंडोल ३. सोहनी ४. विभास ५. रामग्री ६. बिलावल (शंकराभरण)।

१. अलरया बिलावल २. नट-बिलावल ३. कुकुम-बिलावल ४. देवगिरि-बिलावल ५. सोरठ-बिलावल ६. सुहा—बिलावल ७. गौड-बिलावल।

आसावरी १. जीवनपुरी (जौनपुरी) २. धनाश्री ३. सांवेरी।

सारंग (ब्रि.) १. गौड-सारंग २. मघमाघ-सारंग ३. सामंत-सारंग ४. नूर-सारंग ५. बड़हंस-सारंग।

टोडी १. गुर्जरी २.

सायंकालीन शयन पर्यंत की सेवाक्रम के राग—

नट १. नटनारायण २.

पूर्वी १. मारू २.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सोरठ १. खमाज २. काफी ३.

हमीर १. ईमन २.

गौरी १. जैतश्री २. मालश्री ३.

गौरी १. गौरी (प्र. चेती) २. मालीगौरा ३. ललिता गौरी ४.

श्री १. जैतश्री २. मालश्री ३.

कल्याण १. हमीरकल्याण २. पूर्व-कल्याण ३. स्याम कल्याण ४. ईमन कल्याण ५. भूपाली (भूप-कल्याण) ६. हिंडोल।

कान्हरो १. नायकी (कानडा) २. अडाना (कानडा) ३. रायसो (कानर) ४. सिधुरा (कानरा) ५. सुघराई (कानरा) ६.

वसंत १. ललित वसंत २. हिंडोल वसंत ३. पंचम वसंत ४.

मल्लार १. मेघ-मल्लार २. गौंड-मल्लार ३. सोरठ-मल्लार ४. सूर-मल्लार ५. धूंडिया मल्लार ६.

संख्या	रागनाम	कुंभनदास	सूरदास	परमानन्ददास	कृष्णदास	गोविन्दस्वामी	चतुर्भुजदास	छीतस्वामी	नंददास
१.	भैरव	।	।	।	।	।	।		
२.	रामकली	।	।	।	।	।	।	।	।
३.	विभास	।	।	।	।	।	।	।	।
४.	ललित	।	।	।	।	।	।	।	।
५.	मालकौंस	।	।	।	।	।	।	।	।
६.	रामग्री	।	।	।	।	।	।		
७.	देवगंधार	।	।	।	।	।	।	।	।
८.	बिलावल	।	।	।	।	।	।	।	।
९.	टोडी	।	।	।	।	।	।	।	।
१०.	सामेरी	।	।	।			।		
११.	आसावरी	।	।	।	।	।	।	।	।
१२.	धनाश्री	।	।	।	।	।	।	।	।
१३.	सारंग	।	।	।	।	।	।	।	।
१४.	वसंत	।	।	।	।	।	।	।	।
१५.	पंचम	।	।	।	।				।
१६.	सोरठ	।	।	।	।	।	।	।	
१७.	मल्लार	।	।	।	।	।	।	।	।
१८.	मेघ मलार	।	।		।				
१९.	सोरठ मलार	।	।			।	।	।	।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संख्या	राग-नाम	कुंभनदास	सूरदास	परमानन्ददास	कृष्णदास	गोविन्दस्वामी	चतुर्भुजदास	छीतस्वामी	नन्ददास
२०.	नट	।	।	।	।	।	।	।	।
२१.	नटनारायण	।	।		।		।		
२२.	पूर्वी	।	।	।	।	।	।	।	।
२३.	श्री	।	।	।	।	।		।	
२४.	तेजश्री	।	।	।		।	।	।	
२५.	मालवगौरा	।	।		।	।	।	।	।
२६.	गोडी (गोरी)	।	।	।	।	।	।	।	।
२७.	मालव	।	।	।	।	।	।	।	
२८.	हमीर	।	।	।	।	।	।	।	।
२९.	ईमन	।	।	।	।	।	।	।	।
३०.	कल्याण	।	।	।	।	।	।	।	।
३१.	केदारो	।	।	।	।	।	।	।	।
३२.	कानरो	।	।	।	।	।	।	।	।
३३.	अडानो	।	।	।	।	।	।	।	।
३४.	रायसो	।	।	।	।	।	।		
३५.	विहाग	।	।	।	।	।	।	।	।
३६.	विहागरी	।	।	।	।	।	।	।	।
३७.	खट		।	।	।				
३८.	परज		।	।					।
३९.	सुहा		।	।	।	।	।		
४०.	सुघराई		।		।				।
४१.	हिंडोल				।				
४२.	गुर्जरी		।	।	।				
४३.	देसाख		।	।	।			।	।
४४.	मारू		।	।	।	।	।		।
४५.	काफी		।	।	।	।	।	।	।
४६.	जोनपुरी							।	
४७.	मालश्री			।			।	।	
४८.	जैजैवंती		।	।	।				।
४९.	नायकी		।	।	।	।		।	।
५०.	हमीरकल्याण							।	
५१.	केदार नट							।	
५२.	वड़हंस								।
५३.	श्याम कल्याण								।
		३६	४५	४२	४२	३६	३६	३६	३६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राग और रस

भारतीय संगीत शास्त्रों में राग एवं रस, राग एवं नायक-नायिका भेद, तथा स्वर एवं रस का संबंध बताया गया है। भारतीय साहित्य में नौ रस माने गये हैं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि जैसा नायक-नायिका भेद का काव्य-तत्त्व से प्रगाढ़ संबंध है वैसा ही राग का भी संबंध होना चाहिये।

साहित्य के नौ रस इस प्रकार से बताये गये हैं— शृंगार, हास्य, वीर, अद्‌भुत, रौद्र, करुण, वीभत्स, भयानक एवं शान्त।

नायक-नायिका भेद का संक्षिप्त निरूपण इस प्रकार है। नायक चार प्रकार के होते हैं—अनुकूल, दक्ष, शठ, धृष्ट । नायिका के प्रमुख तीन भेद बताये गये हैं– स्वकीया, परकीया एवं साधारण। (सामान्य) स्वकीया की व्याख्या इस तरह है–

विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया।

परि० पृ. ५७ साहित्यदर्पण

वय की दृष्टि से स्वकीया के तीन भेद हैं:—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। फिर धीरा, अधीरा, धीराधीरा, जैसे भेदों से षड्‌विध नायिका होती हैं तथा कनिष्ठा-ज्येष्ठा-भेद से द्वादश प्रकार एवं मुग्धा एक, ऐसे स्वकीया के तेरह भेद है। परकीया भी वरोढा एवं कन्यका भेद से द्विविध है। सामान्य नायिका का एक प्रकार है—वेश्या। उनमें से प्रत्येक के अष्टविध भेद हैं–

(१) स्वाधीनभर्तृका (२) खण्डिता
(३) अभिसारिका, (४) कलहान्तरिता
(५) विप्रलब्धा (६) प्रोषितभर्तृका
(७) वासकसज्जा (८) विरहोत्कंठिता।

अष्टछाप महाकवियों ने एवं इस परंपरा में समाविष्ट अन्य भक्त कवियों ने अपने कीर्तनों में उपर्युक्त नायिका भेदों का भी समावेश किया है।

संगीत-शास्त्र के प्राचीन वर्गीकरण के अनुसार राग-रगिनियों का सम्बन्ध रस एवं नायक-नायिका-भेद से इस तरह बताया गया है–

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

	राग/रागिनी	रस	नायक	नायिका
१. भैरव :		शान्त	धीरोदात्त	स्वीया
(१)	भैरवी	,,	अनुकूल	प्रगल्भा गाढतारुण्य, प्रोषितभर्तृका, खंडिता
(२)	बंगाली	विप्रलंभ शृंगार	धीरोदात्त	प्रगल्भा, अभिसारिका, प्रोषितभर्तृका
(३)	बेरारी	संयोग-शृंगार	अनुकूल	सामान्य प्रौढा, स्वाधीनभर्तृका
(४)	मधु माधवी	,,	धीरोदात्त	स्वीया, मध्या, स्वीया, प्रगल्भा
(५)	सिंधवी	विप्रलंभ-शृंगार	धृष्ट	स्वीया, प्रगल्भा, अधीरा, खंडिता
२. मालकोंश		संयोग-शृंगार	दक्षिण	स्वीयानायिका
(१)	टोडी	विप्रलंभ-शृंगार	धीरप्रशान्त	परकीया कन्या
(२)	गौरी	,,	धीरललित	स्वीया, मध्या प्रौढ़-यौवना, प्रोषितभर्तृका
(३)	गुणकली	,,	धीरोदात्त	मुग्धा, मान स्वीया, मृदु-अभिसारिका विरहोत्कंठिका
(४)	खंभावती	वि. शृं.	धीरललित	सामान्या, वासकसज्जा
(५)	कुकुभ	सं. शृं.	,,	समस्तरतिकोविदा, सामान्या
३.	हिंडोला	वि. शृं.	शठ	प्रौढा परकीया
(१)	रामकली	सं. शृंगार	धीरोदात्त	कन्याभिसारिका
(२)	देशाख	,,	,,	,,
(३)	ललिता	,,	अनुकूल	अभिसारिका; प्रौढा
(४)	बिलावली	वि. शृं.	धीरोदात्त	खंडिता-प्रौढाभिसारिका
(५)	पटमंजरी	,,	,,	स्वकीया, प्रोषितभर्तृका

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

४.		दीपक	संयोग श्रृंगार	शठ	स्वीया-मध्या
	(१)	देशी	,,	धीरोदात्त	प्ररूढस्मराभिसारिका
	(२)	कामोदी	वि. श्रृं.	,,	प्ररूढयौवनाभिसारिका
	(३)	नट	सं. श्रृं.	अनुकल	स्वाधीनभर्तृका, परकीया
	(४)	केदारि	वि. श्रृं.	धीरप्रशांत	स्वीया, प्रोषितभर्तृका
	(५)	कान्हरा	,,	धृष्ट	प्रगल्भा, अधीरा, प्रोषितभर्तृका
५.		श्री	वि. श्रृं.	धीर प्रशान्त	कन्यका
	(१)	मालश्री	,,	धीरोदात्त	विप्रलब्धाभिसारिका
	(२)	आसावरी	,,	,,	सामान्य, श्वेताभिसारिका
	(३)	धनाश्री	,,	,,	मुग्धा, मान मृदुविरहोत्कंठिता
	(४)	वसंत	,,	,,	मध्याभिसारिका
	(५)	मारू	,,	,,	प्रगल्भा, वासकसज्जा
६.		मेघ	वि. श्रृं.	धीर प्रशांत	परकीया
	(१)	टंक	,,	अनुकल	स्वीया, मध्या, विरहोत्कंठिता
	(२)	मल्हार	,,	,,	स्वीया, मध्या, प्रोषितभर्तृका
	(३)	गुर्जरी	,,	शठ	सामान्या, खंडिता
	(४)	भूपाली	,,	,,	प्रगल्भा, श्वेताभिसारिका
	(५)	देशकार	,,	धीरोदात्त	स्वीया, मध्या, प्ररूढस्मरा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'संगीत मकरंद' में रागों का वर्गीकरण पुरुष राग, स्त्रीराग एवं नपुंसक राग में किया गया है।

रौद्रेऽद्भुते तथा वीरे पुंरागै, परिगीयते ।
श्रृंगारहास्यकरुणं स्त्रीरागैश्च प्रगीयते ॥
भयानके च बीभत्से शान्ते गायन्नपुंसके ।

रौद्र, अद्भुत तथा वीर रस पुरुष रागों में, श्रृंगार, हास्य एवं करुण स्त्री-रागों में भयानक, बीभत्स एवं शांत रस नपुंसक रागों में गाये जाते हैं।

पुरुष राग में बंगाल, सोम, श्री, भूपाली, छाया गौड, शुद्ध हिंडोल, आन्दोली, दोंवुली, गौड़, कर्णाट, फडमंजी, शुद्धनाटी, मालव-गौलक, रागरंग, छायानट, कोलाहल, सौराष्ट्री, वसंत, शुद्ध सारंग, भैरवी, रागध्वनि।

स्त्री-राग में तुंडी, तुरुष्कतुंडी, मल्लारी, मादुरी, पौरालिकी, काम्भारी, भल्लाती, सैंधवी, सालग, गंधारी, देवकी, देशिनी, बोलावली, वहुली, गुणक्री, घुजेरी, वराटी, द्राविडी, हंसी,, गोडी, नारायणी, अहिरी, मेघरंजी, मिश्रनाट।

नपुंसक-राग में कौशिक, ललित, धनाश्री, कुरंजी, सौराष्ट्र, द्राविडी, शुद्ध, नागवराटी, कामोदकी, रामक्री, सावेरी, वडहंस; सामवेदी; शंकराभरण।

इस तरह से भाव और रस का एक दूसरे से निकट का संबंध दिखाई देता है।

राग नायकी	नैना लोभी भये लोचन लालची भये	आसक्ति वर्णन
राग विहागरा	प्यारी पग होले होले धरि. . . .	शुक्लाभिसार
राग केदार	मानिनी मान निहारो	मान-वर्णन
राग सारंग	आज कहा संभ्रम है तुम्हारे धर तात-अद्भुत	
राग मालव	जै जै जै मोहन वलवीर अद्भुत रस गावत मुनि "कीर"	

हवेली संगीत के साहित्य में भी नायिका-भेद का वर्णन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। इन पदों में नायक केवल श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ही हैं। परात्पर परब्रह्म श्री कृष्ण एक होते हुए भी 'एकोऽहं वहुस्याम' इस श्रुति वाक्य के अनुसार अपने स्वरूप में नायक भेद के कई स्वरूप प्रकट करते हैं। इसलिए पदों में श्रीकृष्ण को 'बहुनायक' के नाम से संबोधित किया गया है। तानसेन एवं धौन्धी की रचनाओं में अपनी छाप के साथ बहुनायक का प्रयोग अधिकतर किया गया है—जैसे "तान के प्रभु तुम बहुनायक" एवं "धौन्धी के प्रभु तुम बहुनायक' इस प्रकार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की छाप प्रचुर पदों में देख सकते हैं। नायिका-भेद के अनेक प्रकार प्राप्त होते हैं। अष्टछाप कवियों में श्री गोविन्द-स्वामी रसेश पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीनाथजी के अष्टछाप कीर्तनकारों के प्रमुख अर्थात् इन कीर्तनकारों की गादी के मुखिया थे। अष्टछाप के संस्थापक गोस्वामी श्री विट्ठलेश्वर ने गोविन्दस्वामी को इस पद से सम्मानित किया था। आज भी कीर्तनकारों के मुखिया की गादी को गोन्विद-स्वामी की गादी से संबोधित किया जाता है। यहां विस्तार भय से विवेचन अधिकतर केवल श्री गोविन्दस्वामी के पदों तक ही परिसीमित किया गया है।

अष्टछाप कविओं ने अपनी रचनायों में मुख्यतः रसराज श्रृंगार रस को ही दिखाया है, साथ में शान्त एवं करुणरस को भी अभिव्यक्त किया है। मान, स्वप्न, संयोग, उत्कण्ठा, खंडिता आदि के द्वारा विप्रलम्भ श्रृंगार की झलक दिखाई है। कई पदों में संयोग-श्रृंगार का भी अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। इन भक्त कवियों ने इन पदों से जीव और ब्रह्म के महामिलनजन्य अचिन्त्य आनन्द की ओर संकेत किया है। "ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति" इस न्याय से इन पदों के प्रत्येक शब्द से सौन्दर्य , भक्ति, रूप, लावण्य, अंगसौष्ठव इत्यादि का सुन्दर अर्थ प्रकट होता है। जैसे कि

"छाक ले चली प्राणपति पास.....
उत छबि निरखत सकुच ओट ह्वै
बलि बलि 'गोविन्ददास' ।।

इस पद में संयोग-श्रृंगार रस की सुन्दर अभिव्यक्ति दिवसाभिसारिका नायिका ब्रजसुन्दरी के रूप से की गई है। स्थायीभाव, आलंबन, उद्दीपन, संचारी-इन सभी भावों की अभिव्यक्ति भी है।

सुपनमें सगरी रैन गई....
'गोन्विद' प्रभु मिले सुख उपजे
जात न काहू कही ।।

इस पदमें विप्रलम्भ-श्रृंगार की अभिव्यक्ति है।

पिय बिन चन्द लग्यो दुःख देन....
'सूरदास' प्रभु तिहारे दरस बिन
विरहिन को नहिं चैन ।।
दिन दिन होत कंचुकी गाढ़ी....
गोविन्द प्रभु मिलिवे के कारण
निकसी करारे ठाढ़ी ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस पदमें 'मुग्धा' नायिका का वर्णन मिलता है।

गुजरिया ! गरव गहीली उतर नाहीं देत ।
गोन्विद प्रभु कहे सखनि सों
घेरो घेरो तव धाई अंचला धरियां ।

इस पद में रुपर्विता नायिका का वर्णन है।

सांझ के सांचे वोल तिहारे. . . .
कुंभनदास प्रभु गोवर्द्धनधर !
भले वचन प्रतिपारे ?

कुंभनदासजी के इस पद में खंडिता नायिका का वर्णन है जिसमें नायिका ने भगवान् के वचन प्रतिपालक स्वरूप की सुन्दर व्यञ्जना की है !

तुमसों वोलवे की नाहिं
घर घर गवन करत गिरधर पिय
चित नाहिं एक ठांही....
× × ×
कृष्णदास प्रभु प्यारी के वचन सुन
हृदय मांझ मुसिकांही

'कृष्णदास' के इस पद में भी खंडिता नायिका का वर्णन है।

खंडिता के पद संप्रदाय में मंगला और शृंगार के दर्शन में शीतकाल में ललित एवं मालकौंस में और उष्णकाल में विभास और विलावल में अधिकतर गाये जाते हैं।

माननी नायिका के विविध भावों के पद मानके पद कहे जाते हैं, शयन-दर्शन के पश्चात् नित्य इनके गाने की प्रथा है। इन पदों में रस के सभी प्रकार दिखाई देते हैं।

—केदार (उष्णकाल)

मान न कीजे पियसों बावरी
गोविन्द प्रभु सुन्दर कर, गूंथत कुसुमदावरी ।

—बिहाग (शीतकाल)

दौरी दौरी आवत मोहि मनावत
दाम खरच कछु मोल लईरी
'नंददास' प्रभु क्यों नहि आवत
उनके पायन कछु मेंहदी दईरी

—चातुर्मास (मल्हार)

यह रितु रूसिवेकी नांही
सूरदास उठ चलि श्री राधे
दै प्रीतम गलबांही ।

इस पद में मान एवं मिलाप का वर्णन है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अष्टछाप के महानुभावों ने अपने काव्यों के साथ रस का संबंध किया है। इतना ही नहीं रागों के साथ भी आपने रस का गहरा संबंध जोड़ा है। राग भैरव शान्तरस प्रधान होने से इस राग में शान्त रस प्रधान काव्य–गान सुसंगत होता है अतएव श्री चतुर्भुजदासजी का शान्त-रस-प्रधान निम्न पद देखिए; जो कि मंगला आरती के समय गाया जाता है—

मंगल आरती गोपाल की माई।
नित्य प्रति मंगल होत निरख मुख,
चितवन नैन विशाल की।
चतुर्भुज प्रभु सदा मंगलनिधि,
वानिक गिरधरलाल की।

अष्टछाप के स्थापक गोस्वामी श्री विट्ठलेश्वरजी का संस्कृत भाषा में रचा हुआ निम्न पद राग भैरव में नित्य प्रति गाया जाता है।

मंगल–मंगलं व्रजभुवि मंगलम्
× × ×
त्वं जय सततं श्रीगोवर्धनधर
पालय निजदासान् ।।

ललित एवं मालकौंस दोनों संयोग-शृंगार रस प्रधान राग होने से निम्न-पदों में भी ये ही रस दृष्टिगोचर होते हैं—

सूरदासजी का पद —राग ललित
"भोर भये मुख देख लजाने
आज अति रेन उनींदे हो लाल.....
श्री कृष्णदासजी का पद—
कहो तुम सांची कहां ते आये
हो भोर भये नंदलाल।
और छीतस्वामी का पद—
मेरे आये भोर पियारे
रेन कहां गमाई.....

मालकौंस में गाये जाने वाले निम्नलिखित पद भी दृष्टव्य हैं—
सूरदासजी—
आये अलसाने सरसाने हम जान पाये।
धौंधी का पद—
भोर ही आये मेरे पाछे जोगिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गौरी विप्रलंभ-शृंगार-रस-प्रधान रागिनी है एवं स्वकीया मध्या नायिका तथा प्रोषितभर्तृका जैसी नायिकाओं के भावप्रधान पद इस रागिनी में गाये जाते हैं।

नन्ददासजी का पद—

देखन न देतीं बैरिन पलकें।

राग सिंधुरा वीररस प्रधान राग माना जाता है। निम्नपदों में वीररस का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है—

"आज रघुपति चढ़े लंक गढ़ लैन को" —हरिनारायण-श्यामदास

जुगल वर आवत हैं गठ जोरे।— गदाधरदासजी

शास्त्रों में स्वरों का रस के साथ संवंध वताया गया है—

स्वर	रस	स्थायी भाव
सा...	शृंगार रस	रति
रे...	हास्य ,,	हास
ग....	वीर ,,	उत्साह
म....	रौद्र ,,	क्रोध
प...	वीभत्स ,,	जुगुप्सा
ध....	करुण ,,	करुणा
नि...	अद्‌भुत ,,	विस्मय

नवधा भक्ति से भक्तियोग के नव रसों की उत्पत्ति होती है—

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं स्मरणं पादसेवनम्,
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्।
इत्थं नवरसा देवी भक्तियोगे प्रकीर्तिता,
पूजने नवधा भक्तिः रसोल्लासं च जायते ॥

सामान्यतः नव रस निम्नांकित प्रकार के कीर्तनों में प्राप्त होते हैं:—

१. शृंगार रस	प्रायः अधिकतर पदों में
२. हास्य	सव्रीड हास्य के पदों में
३. करुण	विनय के पदों में
४. रौद्र	प्रथम समागम के पदों में
५. वीर	रसावेश के पदों में
६. भयानक	मुग्धता के पदों में
७. बीभत्स	सुरतांत के पदों में
८. अद्‌भुत	अद्‌भुत, विस्मय के पदों में
९. शान्त	सुरतांत के पदों में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अन्नकूट के इस पदमें है:—

"आज कहा संभ्रम है तुमारे घर तात"
यह लीला अद्‌भुत रस रसिक होई गावै

इन्द्रमान भंग के इस पद में, जो मालव राग में गाया जाता है:—

जै जै जै मोहन बलवीर
अद्‌भुत रस गावत मुनि कीर ।।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि अष्टछाप कीर्तन परंपरा के रागों में एवं पदों में नव रस तथा नायिका भेद स्पष्ट दिखाई देते हैं। इस परम्परा की नवधा भक्ति में भी राग और रस का गहरा संबंध है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारतीय-संगीत के घरानों में हवेली-संगीत का प्रचार

अष्टछाप संगीत-परंपरा की विशिष्ट गान-शैली पुष्टिमार्गीय सेवा-प्रणाली द्वारा राजा मानसिंह तोमर के समय से चली आ रही है। ४५० वर्ष पूर्व के इस प्राचीन घराने के पदगान की अनेक चीजें भारतीय संगीत के उत्तम गायकों के प्रसिद्ध घरानों में आज तक ठीक-ठीक प्रसार पाती रही हैं, किन्तु संगीत क्षेत्र का बहु-जन समाज इस तथ्य से अनभिज्ञ है अतः इस विषय का समुचित परिचय देना कर्तव्य समझता हूँ।

अष्टछाप (हवेली) संगीत-परंपरा की द्रुपदधमारादि पद-गान की विपुल-प्रमाण में चीजों का किस समय, कैसे और किस प्रकार प्रसिद्ध घरानों की चीजों में समावेश हुआ होगा इसको समझने के लिए कोई ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं है, किन्तु यह निश्चित कह सकते हैं कि भारत के उदयपुर, जयपुर, रामपुर, ग्वालियर तथा आगरा घराने के सुप्रसिद्ध गायकों ने अष्टछाप परंपरा की बहुत सी चीजों का अपने-अपने घरानों की चीजों में समावेश कर लिया है। यही नहीं उनकी अन्य घरंदाजी में भी उनका गहरा असर दिखाई देता है।

यह सुप्रसिद्ध है कि, मुगलेआज़म अकबर के समय से ही अष्टछाप-संगीताचार्यों के पद-गान को काफी प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। उनके दरबार में अन्य गायक-कविजनों द्वारा अष्टछाप का पदगान सुनाया गया था; जिससे प्रभावित होकर सूरदासजी एवं कुंभनदासजी से मिलने की इच्छा प्रगट करना ही नहीं, उन दोनों को निमंत्रण देने का और मिलने का प्रसंग भी "८४ वैष्णवन की वार्ता" में सविस्तार वर्णित है।

इस प्रकार शहंशाह अकबर के समय से ही अष्टछाप परंपरा के वैष्णव-पद राज्यालयों में स्वार्थी गायकों द्वारा पहुंच जाया करते थे। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि बहुत कुछ पदों के स्थायी, अन्तरा, संचारी ज्यों के त्यों ही गाते थे और आभोग में दी गई छाप को पलटकर शहंशाह का नाम रख देते थे। इस प्रकार चौर्य-विद्या द्वारा कुछ लोग गायक-कवि होने की प्रतिष्ठा एवं पुरस्कार प्राप्त कर लेते थे। उदाहरण रूप निम्न पद देखिये:—

स्थायी

"सीतल सुवास अतिही छिरक्यो गुलाब रस खसखानो।"

अंतरा

"मधि निर्मल जंत्र-जल त्रिविध पवन जाडो लागत,
हिम रितु वाही ठौर अब आइ रही है मानो" ॥१॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी

"अतर अरगजा पान फूल तैसोई राग रंग,
सुन्दर त्रियन ऐसे ही मन आनंद आनो" ।।

आभोग

पलटे हुए शब्द : "अति विचित्र शाहन्शाह जलालुद्दीन"
असल में : "प्रभु विचित्र गिरिधर पिय बैठे आछे नीके शोभित,
योंही ग्रीष्म रितु जुग बरसानो" ।।२।।

पुष्टि सम्प्रदाय में उष्णकाल में खस के बंगले में जब श्रीजी विराजते हैं तब राज-भोग के दर्शनों में उपर्युक्त पद गाया जाता है। इस पद के 'आभोग' की प्रथम पंक्ति को पलट कर 'शाहन्शाह जलालुद्दीन' रख दिया गया था।

संभव है द्रुपद-धमार व ख्याल-गायन के राज्याश्रित एवं घरानेदार-गायक-गण उत्तम कलाकार होते हुए अधिकांश काव्य साहित्य से ही नहीं, अक्षरज्ञान से भी अन-भिज्ञ होने के कारण उन लोगों को अष्टछापादि वैष्णव सम्प्रदाय की चीजों को कर्णोप-कर्ण द्वारा या यत्र-तत्र से अपनाने को मजबूर होना पड़ा होगा। फलतः कुछ समय बाद वे ही वैष्णव-पद-गान की चीजें मुस्लिमादि घरानेदार गायकों के घरानों की बंदिशें बन गई और राज्य-दरबारों के आश्रय में प्रसिद्ध होती रहीं।

इस प्रकार भारतवर्ष के प्रमुख घरानों की चीजों में अष्टछापादि के जिन परंपरागत-पदों का समावेश हो चुका है और जिनमें साहित्य एवं संगीत की दृष्टि से भी कुछ परिवर्तन हुआ दृष्टिगत होता है, उन पर यहां विचार करना संगीत-रसिकों के लिए उपयोगी होगा।

पुष्टिमार्ग (हवेली)—परंपरा के जो द्रुपद-धमारादि पदगायकों की घरंदाजी (खानदानी) चीजें बनकर प्रसिद्ध हो चुकी हैं, उनको मौलिक दृष्टि से देखा जाय तो मुख्यतः दो बातें दृष्टिगोचर होती हैं—(१) साहित्यिक दृष्टि से अशुद्धियां और अपूर्णता। (२) संगीत की दृष्टि से बंदिश-भेद एवं राग-ताल।

पुष्टिमार्गीय संगीत का मूल एवं द्रुपद गायकी के उद्गम का समय समकालीन होने से अष्टछाप-परंपरा की गायकी का अंग द्रुपद-अंग ही माना जाता है। 'ध्रुवपद' शब्द का अपभ्रंश रूप 'द्रुपद' है। 'ध्रुव' का अर्थ है 'अचल' अर्थात् द्रुपद गायकी अपरिवर्तनशील है; नियमबद्ध है। पं. भावभट्टने द्रुपद की व्याख्या में कहा है:—

"जिसमें गीवार्ण और मध्यप्रदेश की भाषा का साहित्य हो, दो चार वाक्य हों, नरनारी की कथा हो, शृंगार-रस-भाव हो, पादान्तानुप्रास तथा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पादांतयमक युक्त चार पाद और उद्ग्राह, ध्रुव सहित उत्तम आभोग भी हो उसे द्रुपद कहते हैं।"*

उपर्युक्त व्याख्या का पालन अधिकांश पुष्टिमार्गीय-संगीत में ही दृष्टिगत होता है। जिनमें—गीर्वाण (संकृत) तथा व्रजभाषा (हिन्दी की बोली) का साहित्य, नर (कृष्ण) नारी (गोपी) की कथा, श्रृंगाररस-भाव, अनुप्रास, चार पाद और उत्तम आभोग सहित की सैकड़ों रचनाऐं प्राप्त होती हैं।

द्रुपद में चार पाद यानी स्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग का होना आवश्यक होता है, किन्य आजकल के द्रुपद-गायक कुछ द्रुपदों में केवल स्थायी-अन्तरा ही गाते हुए नजर आते हैं। अष्टछाप परंपरा के प्रत्येक पद में स्थायी, अन्तरा, संचारी व आभोग का होना अनिवार्य माना गया है। वहुत से पदों में अन्तरा-आभोगादि अधिक भी होते हैं।

ऐसा शायद ही कोई घरानेदार द्रुपद-गायक होगा जिसके पास अष्टछाप परंपरा का द्रुपद पूर्ण या अपूर्ण, शुद्ध या अशुद्ध रूप में न पहुंचा हो। हां, यह संभव है कि, खुद गायक को मालूम न हो कि इस द्रुपद का रचयिता कौन है या कहाँ से प्राप्त हुआ है या किस घराने का है?

आज से ३० साल पूर्व कुछ समय तक पू.पा. गो. श्री व्रजभूषणलालजी महाराज के आश्रय में कांकरोली में रहने का सौभाग्य इस ग्रंथ-लेखक को प्राप्त हुआ था। उस समय कभी-कभी उदयपुर के प्रसिद्ध द्रुपद घराने के गायक सर्वश्री जियाउद्दीन खां एवं इमामुद्दीन खां के गान सुनने का सुयोग प्राप्त होता रहता था। उनकी गायकी आज भी हमारे कर्ण-पट से दूर नहीं है। एक दिन उन्होंने अडाना राग का द्रुपद
थ सुनाया। काफी-थाट की बंदिश में और शुद्ध निषाद पर सम रखते हुए योग्य फिरत के साथ सुन्दर ढंग से निम्नलिखित शब्दों में पेश किया था।

स्थायी बैनी निरखत भुजंग तज पताल लोप गये,
तेरे दृग देख मीन जल में दुराये।

अंतरा मुख देख कलाहीन उडगनपति ब्रह्मधाय,
दशनन छबि देख तहां अनार दरकाये।"

पश्चात् मेरे प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने बताया कि:—

---

* *गीवार्णमध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम्।*
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारीकथाश्रयम्॥
श्रृंगाररसभावाढ्यं रागालापपदात्मकम्।
पादान्तानुप्रासयुक्त पादांतयमकंवा॥
प्रतिपादं यत्रबद्धमेवंपादचतुष्टयम्।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगोत्तमं द्रुपदं स्मृतम्॥
(अनूप संगीत रत्नाकर)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"हमारे खानदानों से जैसा सुना और सीखा है उसी राग में और उन्हीं शब्दों में हम पेश करते हैं।"

"इन चीजों की रचना किस-किस की है, इसका हमें पता नहीं है।"

कुछ द्रुपद ऐसे भी हैं जिनके स्थायी-अन्तरा ही हम गाते हैं।"

क्योंकि हमारे बुजुर्गों की पोथी में इतना ही लिखा हुआ मिलता है और हमारी पोथी में भी स्थायी -अन्तरा ही लिखा हुआ है, जो हमारा खानदानी घराने का प्राचीन-द्रुपद है।"

किन्तु वास्तव में उपर्युक्त द्रुपद-सम्प्रदाय का पद-गान है। जो शयन के दर्शन में गाया जाता है। जिसका सम्पूर्ण-पाठ हस्तलिखित प्रति में निम्न प्रकार पाया जाता है।

(१) *स्थायी* बेनी निरखत भुजंग तजि पाताल-लोक गये,
तेरे दृग देख मीन जल में बुरे हो।

अंतरा मुख देखि कला हीन उडुगन पति व्योम* बसत,
दसनन द्युति देखत ही अनार दरकि मुरें हो‡ ॥१॥

संचारी कुच देखि चक्रवाकें लागेरी निस जोग साध,
तन देखि कंचन पावक में जरि-जरें हो।

आभोग "सिंघ बली कटि निहारि, लंघन करि विपति सारि,
'खेम-रसिक' प्रभु निहारि, डारत तन तोरें हों ॥२॥

पुष्टि सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र नाथद्वारा और कांकरोली, उदयपुर राज्यांतर्गत होने से तथा उदयपुर नरेशों की गुरु-भावना के कारण शुभ अवसरों, मांगलिक पर्वों पर एवं उत्सव-त्यौहारादि पर परस्पर जाने-आने का व्यवहार हुआ करता था। संगीतादि कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते थे। अत: उन दरबारी गायकों का नाथद्वारा-कांकरोली से ये चीजें प्राप्त करना सहज था। इसी प्रकार गोकुल-मथुरा, कोटा, कामवन, बनारस आदि स्थानों के पुष्टिमार्गीय प्रधान पीठों द्वारा जयपुर, आगरा, ग्वालियर, रामपुर, बनारसादि के सुप्रसिद्ध घरानों में अष्टछाप-परंपरा के अनेक पदों का किसी न किसी रूप में प्रसार होकर ये घरानेदार चीजें बन चुकी हैं। उन्हीं में से जिन चीजों में पुष्टिमार्गीय संगीत की मौलिक दृष्टि से देखने पर भाषा-दोष, अर्थहीन पाठ, पाठान्तर, अपूर्णता तथा काव्य, रागतालादि--परिवर्तनादि तथा भिन्नता दिखाई देती है, उनमें से कतिपय चीजों की चर्चा यहां प्रस्तुत है। यह संगीतज्ञों एवं संशोधकों के लिए उपयोगी होगी।

रामपुर, जयपुर, ग्वालियर, आगरा आदि उत्तर भारत के जो संगीत घराने सुप्रसिद्ध माने जाते थे एवं उन के प्रसिद्ध गायक व उनकी शिष्य-परंपरा के गायक अब

पाठांतर-- * धाय, ‡ पूरें हों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तक जो चीजें गाते थे और गा रहे हैं, उनका समावेश प्राप्त सभी पुस्तकों की अपेक्षा पं. भातखंडेजी ने अपनी क्रमिक पुस्तक मालिकाओं में अधिकाधिक मात्रा में किया है। इस क्रमिक मालिका की चतुर्थ पुस्तक की ई. स. १९२३ के प्रकाशन की प्रस्तावना में भी निम्नलिखित निर्देश प्राप्त होता है:—

"इस क्रमिक पुस्तक में दी हुई चीजों की भाषा प्राचीन ग्रन्थों और विद्वानों की सहायता से संभवतः शुद्ध करने का प्रयास किया है, तथापि अभी भी कहीं-कहीं भाषा-दोष रहे होंगे।"

"उन चीजों को गुणी लोगों से, जिस प्रकार वे प्राप्त हुई, उसी प्रकार में उन्हें प्रसिद्ध किया है। भविष्य में उनके शुद्ध बोल वाचकों अथवा इष्ट मित्रों द्वारा प्राप्त होने पर अगली आवृत्ति में उनका संशोधन साभार स्वीकार होगा।"

५० साल पहिले के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि, गुणी जनों ने अपनी चीजों के जो-जो शब्द व्यक्त किये, प्रायः उन्हीं को प्रकाशित किया गया है तथा उनके शुद्ध पाठादि के संशोधनार्थ विज्ञप्ति भी की गई है। परन्तु इस विषय के संशोधन की ओर आजतक कोई प्रामाणिक प्रयास नहीं हुआ। यह भी सत्य है कि इस प्रकार का संशोधन अति अनुभव, श्रम और समय-साध्य है। क्योंकि, भारतीय-संगीत में परंपरागत-घरानेदार चीजों का भंडार विपुल सामग्री से भरा हुआ है। उनमें से उदाहरण के लिये प्रथम हम पं. भातखंडे जी की 'क्रमिक पुस्तक मालिकाओं' तथा 'मारिफुन्नगमात' ग्रन्थ में दी हुई घरानेदार चीजों की ओर दृष्टि डालेंगे। इन ग्रन्थों में जो अष्टछाप-परंपरा में गाये जाने वाले पद घरानों की चीजें बनकर प्रसिद्ध हो चुके हैं और भिन्न ढंग व. भिन्न राग या ताल में पाए जाते हैं, उनमें से प्रथम द्रुपद अंग की चीजों को देखिए:—

(१) भातखंडे* क्रमिक पु: ४ में कामोद राग की निम्न चीज इस प्रकार दी गई है:—

राग—कामोद, ताल—झपताल

स्थायी— "जयति नवनागरी सकल गुन सागरी, केष्ण गुन आगरी दिनन भोरी।
अंतरा— "जयति हरि भामनी केष्ण घन दामनी, मत्त गज गामनी नव किशोरी ॥१॥

हवेली-संगीत-परंपरा में इस पद को राग रामकली व खट में गाया जाता है। जिसका संचारी-आभोग सहित शुद्ध पाठ निम्न प्रकार है:—

स्थायी— "जयति नव नागरी कृष्ण सुख सागरी, सकल गुन आगरी दिनन भोरी।
अंतरा— "जयति हरि भामिनी कृष्ण घन दामिनी, मत्त गजगामिनी नव किसोरी ॥१॥
संचारी— "जयति पिय केलि हित कनक नव बेलि सम, कृष्ण कर कलपतरु मिलि विलासी।

* आवृत्ति ३ सन्—१९३९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आभोग– "जयति वृषभान कुल कुमुद-बन कुमुदिनी, कृष्ण मुख हिमकिरन लख प्रकासी।।२।।

(२) भा० *क्रमिक पु० ४ से शंकरा रागका द्रुपद निम्नलिखित शब्दों में दिया गया है:–

स्थायी– हरि हरि छांड के दूसरी न कीजे बात, एक एक घरी तोहे करोरन की जात है।
अंतरा– घरी पल दिन सोये फिरहू न आये तोरे, छिन भंग देह ताको मरन जैसि घात है।।
संचारी– प्रभु को संभार प्यारे बकवो बिसार डार तज के अमृत विष काहे को खात है।
आभोग– काहे हरि दीसे यह सांस को बिस्वास कहा, एक एक छिन में वो तो निकस निकस जात है ।।

इस द्रुपद को बहुत से लोग तानसेन के गुरु हरिदास स्वामी की रचना समझते हैं, किन्तु इसके रचयिता अष्टछाप के प्रणेता गो. श्री विट्ठलनाथजी के प्रपौत्र गो. श्री हरिरायजी हैं; जिनके "हरिदास", 'रसिक', 'रसिकदास' एवं 'रसिकराय' छाप के सैकड़ों पद सम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध हैं। इस पद को विहाग राग में गाने की प्रथा है। ताल भिन्न नहीं है। इसका शुद्ध पाठ इस प्रकार प्राप्त होता है।

स्थायी– हरि हरि छांडिकें दूसरी न कीजे बात, एक-एक धरी सो तो करोरन की जात है।
अंतरा– घरी पल दिन खोइ फेरि हू न आवे सोइ, छिन भंगुर देह तामें मरन जैसी घात है।।१।।
संचारी– "हरिकों संभार बेगि बकवो बिसारि डार, तजि अमृत विष काहे को तू खात है।
आभोग– "कहै 'हरिदास' यह स्वांस को बिस्वास नांहि, एक-एक छिन में निकसि-निकसि जात है ।।२।।

(३) क्रमिक पु० ४ में राग–देशकार, ताल-चौताल का द्रुपद निम्न शब्दों में प्राप्त होता है‡:—

स्थायी– "जागिए गोपाल लाल प्रकट भयो अंशुपाल,
मिट्यो अंधकार उठो जननी सुख पाई ।
अंतरा– "मुकुलित भये कमल जाल कुमुद बिंद्राबन बेहाल,
त्रिविध ताप मिट्यो जंजाल तन नसाई ।।

उपर्युक्त द्रुपद का केवल स्थायी अंतरा ही प्रकाशित हुआ है। हवेली-संगीत प्रणाली में इस पद को श्रीजी को जगाने के समय विभास या भैरव राग में गाने की प्रथा है। यह 'सूरदास' जी की रचना है। इसका संचारी-आभोग सहित पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी– "जागिये गोपाल लाल, प्रगट भयो अंसुमाल,
मिटि गयो अंधकार उठौ जननी मुख दिखाई ।

---

* *हिन्दी आवृत्ति सन् १९७०*

‡ *यही पाठ का यह द्रुपद फिरोज फ्रामजी की पुस्तक में पूर्वी थाट के विभास राग में छपा है ।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अंतरा– "मुकुलित भये कमल जाल, कुमुद वृन्द बन बिहाल,
मेटौ जंजाल त्रिविध ताप तन नसाई ॥१॥
संचारी– "ठाडे सब सखा द्वार कहत नंद के कुमार,
टेरत हैं बार–बार आइये कन्हाई ।
आभोग– "गैयन भई बड़ी बार, भर-भर पय थनन भार,
बछरा गन करि पुकार तुम बिनु जदुराई ॥२॥

(४) क्रमिक पु०४ में राग-परज, ताल-चौताल का द्रुपद निम्नांकित शब्दों में छपा हुआ है—

स्थायी– एरी अंग अंग रंग रानि अतही सयानी पिया जीया मन मानि
अंतरा– "सोलै हूं कला सुहानी बोलत अमृत बानि,
तेरो मुख देखे चंद्र ज्योति हूं लजानि ॥
संचारी– "कटि केसरि कदलि खंब कीर कीसि नासिका,
सिरिफल उरज जाके सोभा हु आनि ।
आभोग– "कहे 'मियां तानसेन' सुनो हो सुघर नारि,
तेरो राज रहे जौंलौं गंग जमुन पानि" ॥२॥

उपर्युक्त पाठ में 'कहे मियां तानसेन' से यह 'तानसेन' की रचना प्रतीत होती है। भातखंडेजी ने घरानों के प्रसिद्ध गायकों व उनकी शिष्य-परंपरा में जो चीज जिस प्रकार गायी जाती थी, उसे उसी प्रकार प्रकाशित की है। अत: इस द्रुपद को भी उन्होंने जिस प्रकार सुना होगा उसी पाठानुसार प्रकाशित किया है। वास्तव में यह पुष्टिमार्गीय कीर्तन-प्रणाली का शयन दर्शन व तदनंतर बिहाग राग में गाया जाने वाला द्रुपद है। यह 'हरिनारायण स्यामदास' की रचना है* देखिए:—

स्थायी– 'री तू अंग अंग रंग रानी अति ही सयानी, पिय जिय मन मानी ।
अंतरा– "सोलह कला समानी, बोलत मधुरी बानी,
तेरो मुख देखि चंद-जोति हूं लजानी ॥१॥
संचारी– "कटि केहरि कदली जंघ, नासिका पर कीर वारों,
श्रीफल उरोज बीच अधिक सयानी ।
आभोग– "हरिनारायण स्यामदास" के प्रभुसों,
तेरो नेह रहो जौंलौं गंग जमुन पानी ॥२॥

---

* *पुष्टिमार्ग-तृतीय गृह (पीठ) प्रणाली में यह द्रुपद चैत्र शु. ३ को तथा होली पीछे जिस रोज मुकुट का सिंगार होता है, उस रोज खास गाया जाता है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(५) क्रमिक पु०४ राग-ललित-ताल-चौताल का द्रुपद स्थायी और अंतरा में निम्न शब्दों में छ्पा हुआ देखिए:—

स्थायी– "नारायन तेरी गत अगाध मोसे बरनी न जात,
निरंजन निराकार ।

अंतरा– "सप्त द्वीप सप्त सागर अष्टकली परवत,
मेरु सर्वदा रचो निराकार ।।

उपर्युक्त द्रुपद को पुष्टिमार्गीय कीर्तन-प्रणाली में शीतकाल में जब ललित-मालकौंस के पद गाये जाते हैं और श्रीजी को जब किरीट-मुकुट का शृंगार धराया जाता है, उस समय शृंगार या राजभोग के दर्शनों में गाने का रिवाज है। इसके रचयिता तानसेन हैं। तानसेन के कुछ पद पुष्टिमार्गीय कीर्तन-प्रणाली में गाये जाते हैं। हस्तलिखित कीर्तन-संग्रहों में इसका सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार दिया गया है:–

राग–मालकौंस

स्थायी– तेरी गति अगाध मोपें बरनी न जात,
निरंजन निराकार नारायण ।

अंतरा– सप्त–द्वीप सप्त सागर अष्टकुलि परवत,
मेरु रच्यो धारायन ।।१।।

संचारी– तूही चंद तूही सूरज तूही उडुगन के तारे,
तूही तेज पवन पानी तूही धरनी आकासमान ।

आभोग– 'तानसेनके' प्रभु घट–घट में करत ज्ञान,
अगम निगम सकल सृष्टि धरत ध्यान ।।२।।

(६) क्रमिक पु० ४ में राग-अडाना की धमार का निम्नलिखित पाठ प्राप्त होता है:—

स्थायी– काल तुम हा हा करे छूटे मोहन अब तुम वही ढंग कीने ।

अंतरा– इतने ही में भूल गए हो, निपट चतुर प्रवीने ।।१।।

उक्त धमार में 'चतुर' शब्द होने से कोई पं. भातखंडेजी की रचना होने का भ्रम न करें। अष्टछाप कीर्तन-परंपरा की यह धमार है। संचारी व आभोग सहित इसका संपूर्ण पाठ अधोलिखित है। यह 'सुघरराय' की रचना है।

राग–अडाना, ताल–धमार

स्थायी– काल्ह तुम हा हा करे छूटे हो मोहन, अब तुम वही ढंग कीने ।

अंतरा– इतने में ही भूलि गये हो, निपट चतुर प्रवीणे ।।१।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी– लंगर होरी में लागोई आवे, गारी-परोज सांवरे महोने ।
आभोग– ऐसे निलज तुम कबके भये हो, 'सुघरराय' रंग भीने ॥२॥

इसी प्रकार घरानों के गायकों से प्राप्त की हुई अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की चीजें भी दी गई हैं। जैसे:—

(७) (क्रमिक पु० ४) राग–परज का ध्रुपद 'सोहत सीस मुगट' जिसका स्थायी और अंतरा ही दिया गया है। वैष्णव सम्प्रदाय में यह ईमन या कल्याण राग में सुप्रसिद्ध है, जिसका सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार पाया जाता है:—

स्थायी– सोहत *सीस मुकुट श्रवन कुंडल, भाल तिलक गुंजमाल,
‡पीताम्वर कटि काछिनी बिराजें ।

अंतरा– शंख चक्र गदा पद्म, कर मुरली अधर धरे,
बृन्दावन चंद 'मधि गोपिन संग राजें ॥१॥

संचारी– गोपीनाथ मदनमोहन श्रीपति श्रीनारायन,
ईश्वर अनादि अनंत सरूप साजें ।

आभोग– ××× 'बद्रीदास'↑ के प्रभु सप्त सुर छाय रहे,
मुरली में तीनों ग्राम मधुर मधुर बाजें ॥२॥

(८) (भा. क्रमिक पु–३) सारंग राग का अधोलिखित ध्रुपद स्थायी व अंतरा में ही पाया जाता है; जिसका पाठ इस प्रकार छपा हुआ है:—

राग–विंद्रावनी सारंग, ताल–चौताल

स्थायी– धन धन बिन्द्रावन धन धन गोकुल,
जमुना के तट पर पीपर छाई री ।

अन्तरा– धन गोपी ग्वाल बाल, धन वाहा गूंद माल,
धन मुरली यह श्याम बजाई री ॥

अष्टछाप–परंपरा में उपर्युक्त पद का राजभोग–दर्शन के समय गाये जाने वाले पदों में समावेश होता है; जिसका सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार है—

स्थायी– धन धन बृन्दावन धन धन यह लोक,
जमुना निकट बर पीपर छांई री ।

अंतरा– धन यह गोपी ग्वाल, धन यह सखा संग,
धन मुरली जिंहि स्याम बजाई री ॥१॥

संचारी– धन यह पवन, सीतल सुगंध मंद,
धन यह बन जहां धेनु चराई री ।

---

* पाठान्तर:–शोभित ‡ पाठान्तर–पीताम्बर पीत ↑ 'अग्रदास' के प्रभु ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आभोग– "चतुर बिहारी" गिरिधारी पिय-प्यारी केलि,
धन ब्रज भूमि मानों बानक बनाई री ॥२॥

(९) (भा० क्रमिक पु–३) *विन्द्रावनी–सारंग*, चौताल में "सूर आयो सिर पर" द्रुपद का स्थायी से आभोग तक पूर्ण पाठ दिया गया है, किन्तु कहीं-कहीं पाठ भेद पाया जाता है। पुष्टिमार्गीय कीर्तन-प्रणाली में यह द्रुपद उष्णकाल ज्येष्ठ मास में राजभोग-दर्शन के समय राग-सारंग, चौताल में गाया जाता है, प्राचीन लिखित संग्रहों में शुद्ध पाठ इस प्रकार हैं:—

स्थायी– सूर आयो सिर पर, छाया आई पांयन तर,
पंथी सब झुक रहे, देखि छांह गहेरी ।

अंतरा– धंधी जन धंध छांड़, रहे री धूपन के लिए,
पसु पंछी जीव जंतु, चिरियां चुप रहे री ॥१॥

संचारी– ब्रज के सुकुमार लोग दै दै किंवार सोये,
उपवन की बयार तामें पौठे पिय हे प्यारी ।

आभोग– "सूर" अलबेली चलि, काहे कों डरात है,
माघ की मध रात जैसें जेठ की दुपहरी ॥२॥

(१०) भातखंडे क्रमिक पु०३ में राग–देश–चौताल का निम्न लिखित द्रुपद स्थायी अंतरा में इस प्रकार प्रकाशित हुआ है:—

स्थायी– एरि सखि सावन आयो, बिरहा अगन मोपें,
कल ना परत प्रान प्यारे बिन ।

अंतरा– चहुं ओर में बादल, उमड़ घुमड़ आये,
छतियां उमगी कान कारे बिन ॥

उपर्युक्त द्रुपद का अपूर्ण पाठ ही प्रचार में आजकल सुनने में आता है। जो पुष्टिमार्गीय हवेली परंपरा में वर्षाॠतु के आगमन के दिनों में राग-सोरठ या सोरठ-मल्हार राग में गाया जाता है। जिसका संचारी व आभोग सहित पाठ निम्न प्रकार से है। यह प्राचीन पाठ से मालूम होता है जबकि क्रमिक पुस्तक के उपर्युक्त पाठ में स्थायी का दूसरा, तीसरा तथा अंतरे का प्रथम आवर्तन बदला हुआ दिखाई देता है:—

स्थायी– ऐरी सखि सावन आयो, बरखा रितु आगम,
नैना तो चुवत प्रान प्यारे बिनु ।

अंतरा– आज की अंधेरी रैन, बिजुरी सी चमकत,
छतियां उमगी कान्ह कारे बिनु ॥१॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी– दादुर मोर पपैया बोले, कोकिल की कुहुक,
सुनि छांड़िहू न मारे बिनु ।
आभोग– इतनी अरज मेरी 'सूर' के, प्रभु सों,
घायल को कल ना परत पुकारे बिनु ।।२।।

(११) भातखंडे क्रमिक पु० ३ में राग–मालकौंस, सूलताल में दिया हुआ द्रुपद का निम्नलिखित पाठ भी अपूर्ण है, जो इस प्रकार है:—

स्थायी– आवन कह गये अजहूं ना आये,
सब निस बीति मोहे गिनत तारे ।
अंतरा– दीपक चन्द्र जोत, मलिन भई जात है,
कोने दूतियन बिरमाए प्यारे ।।

अष्टछाप-परंपरा प्रणाली में यह द्रुपद शीतकाल के मार्गशीर्ष पौष-मास में मंगला-समय गाने की प्रथा है। संचारी-आभोग सहित पूर्ण पाठ निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होता है। राग-ताल में कोई परिवर्तन नहीं है।

राग–मालकौंस, सूलताल।

स्थायी– आवन कह गये अजहू न आये,
सब निसि बीती मोहे गिनत ही तारे ।
अंतरा– दीपक ज्योति मलिन भई है,
किन दूतियन बिरमाये प्यारे ।।१।।
संचारी– तमचुर बोले बगर सब खोले,
फूले कमल मधुप गुंजारे ।
आभोग– "तानसेन" के प्रभु तुम बहु नायक,
तोऊ मेरे नैनन के तारे ।।२।।

(१२) भातखंडे क्रमिक पु०२ राग-बिलावल, ताल-झपताल में जो द्रुपद-अंग का सादरा प्रसिद्ध हुआ है, उनके राग-ताल पुष्टिमार्गीय प्रणाली से भिन्न नहीं है, किन्तु उसमें स्थायी-अन्तरा ही दिया गया है, जिसका सम्पूर्ण पाठ हवेली-परंपरा में प्राप्त होता है। यह 'सूरदास' की रचना है और बाललीला में प्रातः मंगला के दर्शन के बाद श्रृंगार तक गाया जाता है। देखिए:—

राग–बिलावल, ताल–चर्चरी (झपताल)

स्थायी– ले तेरी लकरी लै तेरी कामरि,
बछरा चरावन हौं न जैहौं (माई)। ।
अंतरा– संग है ग्वाल बलभद्र क्यों न मोकलौ,
एकलो बन में हौं जु डरैहौं ।।१।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी– सघन बन में कछु खबर नाहिन परै,
संग के ग्वाल सब मोहि डरावै हो ।

आभोग– चात्रक मोर चकोर मिलि यों रहे,
कृष्ण-कृष्ण कहि मोहि खिजावै हो ॥२॥

आभोग– 'सूर' के प्रभुको कौन संग मोकलों,
संगही ग्वाल–बलभद्र भैया हो ॥२॥

(१३) भातखंडे क्रमिक भाग–२ में अल्हैया बिलावल राग में छपे हुए द्रुपद का पाठ इस प्रकार है:—

राग–अल्हैया विलावल, ताल-चौताल ।

स्थायी– आज और काल्हि और दिन प्रति और और,
देखिए रसिक गिरिराजधरन माई री ।

अंतरा– दिन प्रति नई छबि बरने सो कौन कवि,
पान कीजे रीझ रहिये सदाही सरन ॥

संचारी– सोभा श्याम अंग-अंग लाजत कोटिक अनंग,
छबि की उठत तरंग विश्व को मनहरन ।

आभोग– 'चत्रभुज' प्रभु गिरिधारी को सरूप सुंदर,
देखिए सिंगार बाग बरन बरन ॥

हवेली संगीत का उपर्युक्त द्रुपद श्रृंगार के समय गाये जाने वाले पदों में सुप्रसिद्ध है। अल्हैया विलावल राग में और चौताल में ही गाया जाता है। यह अष्टछापी 'चत्रभुजदासजी' की रचना है।

उपर्युक्त पाठ में कुछ पाठान्तर है और दो तीन पंक्तियां इधर उधर हो गई हैं। जिसका शुद्ध पाठ सम्प्रदाय में निम्न प्रकार पाया जाता है:—

स्थायी– माई री आजु और काल्ह और दिन प्रति औरहिं और,
देखिए रसिक गिरिराजधरन ।

अंतरा– छिनु प्रति नव छबि बरनें सो कौन कवि,
नितहीं सिंगार बागे-बरन-बरन ॥१॥

संचारी– सोभा सिन्धु अंग अंग मोहत कोटि अनंग,
छबि की उठत तरंग विश्व के मनु हरन ।

आभोग– 'चत्रभुज' प्रभु को रूप सुधा नैन पुट,*
पान कीजें जीजें रहिये सदाई सरन ॥२॥

---

* *पाठभेद–चत्रभुज प्रभु गिरिधर को सरूप सुधा,*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१४) क्रमिक पुस्तक–२ में उपर्युक्त द्रुपद के अतिरिक्त उसी राग-ताल में 'आज की सिंगार सुभग' द्रुपद भी प्रसिद्ध हुआ है। यह द्रुपद भी पुष्टिमार्गीय सेवा में श्रृंगार-समय प्रायः पाग और पटुका का सिंगार श्रीजी को होता है तब अल्हैया-बिलावल चौताल में ही गाया जाता है। पुस्तक में छपे हुए इस द्रुपद के पाठ में कोई खास भेद नहीं है। केवल आभोग में ही पाठान्तर होने से उसे यहाँ दुहराना अनावश्यक है। अतः पुष्टि-सम्प्रदाय का प्रसिद्ध शुद्ध पाठ ही प्रस्तुत है—

स्थायी– आजको सिंगार सुभग सांवरे गोपाल जु को,
कहत न बनि आवे देखेही बनि आवै ।

अन्तरा– भूखन बसन भांति-भांति अंग-अंग छबि कही न जात,
लटपटी सुदेस पाग चित्तकों चुरावै ॥१॥

संचारी– मकर कुंडल तिलक भाल, कस्तूरी अति रसाल,
चितवनि लोचन बिसाल, कोटि काम लजावै ।

आभोग– कंठसरी बनी माल, कपटुका कटि छोरन छबि,
निरखि त्रिभुवन त्रिया को जु* धीरज रहावै ॥२॥

(१५) भातखंडे भाग–२ में छपा हुआ राग-भैरव का (सादरा) द्रुपद स्थायी-अन्तरा में ही प्रकाशित हुआ है जिसके शब्द निम्न प्रकार हैं:—

राग–भैरव, ताल–झपताल

स्थायी– आज नंदलाल सखि प्रेम माधक, पिये,
संग ललना लिए तीर जमुना बरन ।

अंतरा– फूलि केसर कमल मालती सघन बन,
मौंद सोगौंध सीतल समीरे बरन ॥

उपर्युक्त सादरा पुष्टि-सेवा-क्रम में मंगला (क्वचित् श्रृंगार) के समय में भी राग-खट में उष्णकाल की ऋतु में गाया जाता है। इनमें यमुना-तट की लीला का भावना-मय आठ तुकों में सुन्दर वर्णन किया है। इनमें से यहाँ पर कुछ पंक्तियां दी गई हैं। क्रमिक पुस्तक के पाठ में स्थायी और अंतरा के अन्त में 'बरन' शब्द संगत लगा दिया है, जो मूल पाठ में स्थायी के प्रारंभ में 'बने' शब्द है। देखिए:—

राग–खट, ताल–चर्चरी (झपताल)

स्थायी– बने आज नंदलाल सखी प्रेम मादिक पीयें,
संग ललना लिये, जमुना तीरें ।

अंतरा– फूलि केसर कमल मालती सघन बन,
मंद सुगंध सीतल समीरें ॥१॥

---

* पाठ भेद (अ) धीरज धरावे (ब) धीरज मन लावे ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी– नीलमनि बरन तन कनक मंडित बसन,
परम सुंदर चरन परस माला ।
आभोग– मधुर मृदु हास परकास दसनावली,
छबि भरे इतरात दृग बिसाला ।।२।।
संचारी– रसिकमनि रंग भरे बिहरत वृंदाबिपिन,
संग सखि-मंडली प्रेम पागी ।
आभोग– कहत "भगवान हित रामराय" प्रभु,
सोई जानें जाहि लगनि लागी ।।८।।

(१६) भा. क्रमिक पु. २ में भैरव राग, ताल-चौताल में छपे हुए निम्नलिखित द्रुपद का पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी– सघन बन छायो द्रुम बेली माधो भवन अत प्रकास,
बरन बरन पुष्प रंग लायो ।
अंतरा– कोकिला खंजन कीर कपोत अत आनंदकारि,
चहूं ओर झर बरसायो ।।
संचारी– सप्त सुर तीन ग्राम एकईस मूरछान,
ओक्त जोक्त लाग डांट कर दिखायो ।
आभोग– कहे मियां "तानसेन" सुनो शाहा अकबर,
प्रथम राग भैरव गायो ।।

इस द्रुपद में "तानसेन" की छाप संभवतः मुस्लिम द्रुपद-गायकों द्वारा लगायी गयी है किन्तु वास्तव में "सुघरराय" की छाप है । पुष्टिमार्गीय संगीत-प्रणाली में वर्षों से यह पद प्रायः प्रातः काल वसंत पंचमी के पूर्व दिनों में मंगला-समय या तदनंतर श्रृंगार के ओसरा में गाने की प्रथा है । हस्तलिखित प्रति में इस प्रकार पाया जाता है:–

स्थायी– सघन बन छायो द्रुमबेलि *मधि भुवन अति प्रकास,
बरन-बरन पुहुप रंग लायो ।
अंतरा– बोलत कोकिला कीर अति ही आनंद भरे,
चहूं ओर रस बरसायो ।।१।।
संचारी– सप्त सुरन तीन ग्राम एकईस मुरछना,
उनंचास कोटि तान गाय प्रभु रिझायो ।
आभोग– कहत 'सुघरराय" सुनो हो सुघर नारि,
प्रथम राग भैरों गायो ।।२।।

* पाठान्तर–*मध्य*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१७) क्रमिक पु. २ में छपा हुआ भैरव राग का निम्नलिखित ध्रुपद है:–

स्थायी–सब मिल गायो बजायो मिरदंग,
आज हमारे लालन की बरस गांठ ।

अंतरा– कनक थार भर भर मुक्ताफल,
कर करि न्योछावर पायो ॥

संचारी–नव नव पल्लवन की माला,
द्वार द्वार बंधायो ।

आभोग– "बंसीधर" प्रभु को जस सुनियत है,
सबही को लागत है सुहायो ॥

उक्त ध्रुपद की रचना "आनंदघन" की है । हवेली संगीत में श्रीकृष्ण-जन्म की बधाई के पदों में यह संगृहीत है। राग-मालकौंस चौताल में बधाई के दिनों में प्रातः मंगला या शृंगार के समय गाने की प्रथा है । पाठ निम्नांकित प्रकार से है:–

स्थायी– सब मिल आवो, गावो बजाओ मृदंग,
आज हमारे लाल जु की बरस गाठ ॥ सब०

अंतरा– कनक थार भरि भरि मुक्ताफल लै,
न्योछावर करवावो ॥१॥

संचारी– नव-नव पल्लव बंदन-माला,
द्वार द्वार *बंधायो ।

आभोग– "आनंदघन" प्रभु को जन्म सुनत ही,
लाग्यो सुजस ‡सुहायो ॥२॥

(१८) भा० क्रमिक भा० २ में पूर्वी-राग के ध्रुपद का केवल स्थायी और अंतरा निम्न प्रकार से मुद्रित हुआ है:—

स्थायी– लोचन लाल लाल चूनरी लाल लाल,
हीरा मोति लाल लाल ।

अंतरा– गरे बीच हार लाल नासिका बेसर लाल,
पिया लाल प्यारि लाल सेज लाल ॥

पुष्टिमार्गीय सेवा-प्रणाली में शीत ऋतु में जब घटाएँ होती हैं, तब घटा के रंग के अनुसार उसी रंग के श्रीजी को वस्त्राभूषण तथा गादी, तकिया, पिछवाई आदि साज सजाये जाते हैं । जैसे–श्याम-घटा के रोज श्याम, श्वेत-घटा के रोज श्वेत, हरी घटा के रोज सभी साज शृंगार हरे रंग के होते हैं । उपर्युक्त ध्रुपद का सम्प्रदाय में लाल-घटा के दिन गाये जाने वाले पदों में समावेश होता है । इसे प्रातः सेवा के राजभोग-समय राग-टोडी, चौताल में या सायं-सेवा में भोग के दर्शन में राग-पूर्वी, चौताल में भी गा सकते हैं । संचारी-आभोग सहित उसका पूर्ण पाठ निम्नलिखित शब्दों में प्राप्त होता है:–

पाठान्तर– * बंधावन ‡ सुहावन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी—लोचन लाल लाल चूनरि की सारी लाल,
हीरा मोती लाल-लाल ।।

अंतरा—गरे बीच हार लाल श्याम का सिंगार लाल,
पिया लाल प्यारी लाल सेज लाल ।।१।।

संचारी—प्यारी को बेसर लाल, तामें एक मोती लाल,
बाजूबंध लाल-लाल, चलत उमंगि चाल ।।

आभोग—'तानसेन' प्रभु लाल, ब्रज के सब गोपी ग्वाल,
तामें एक मदन-गुपाल लाल ।।२।।

(२०) क्रमिक पु.२ में राग पूर्वी की धमार का पाठ निम्नांकित है—

स्थायी—अहो कैसे जान पावोगे भर होरी में,
जब* जो गये तुम भाजे।

अंतरा—गारी** दूंगी दिलाऊं सबन पै,
मुख मोडोंगी आजे ।।

मालूम होता है कि उपर्युक्त धमार की शब्द-रचना भी गायकों में कर्णोपकर्ण द्वारा पहुंच गई है, स्थायी के चार आवर्त्तन बनाने के लिए 'कैसे जान पावोगे' शब्द बढ़ा दिये गये हों। अथवा नई रचना दिखाने के लिये शब्दों में घट-बढ़ करना उचित समझा गया हो। वास्तव में यह धमार महाकवि 'जगन्नाथ कविराय' की रचना है, पुष्टिमार्गीय हवेली संगीत में इस धमार को फाल्गुन मास में मंगला के दर्शन के समय राग 'ललित' में गाने की प्रथा है। सम्प्रदाय के लिखित संग्रहों में उसका सम्पूर्ण पाठ निम्न प्रकार से प्राप्त होता है:—

स्थायी—अहो हरि होरी में, जब जो गये तुम भाज।

अंतरा—गारी देहूं भरूं भराऊं, मुख मांडोंगी आज ।।१।।

संचारी—हों अपनो मन भायो करिहौं,
सुनि कुंवर ब्रजराज।

आभोग—"जगन्नाथ कविराय" के प्रभु माई,
सकल घोख सिरताज ।।२।।

(२१) भातखंडे क्रमिक पु. ५ में नट-राग का द्रुपद अंग का सादरा स्थायी-अंतरा में ही पं. भातखंडेजी को गायकों के घराने से प्राप्त हुआ है; जो निम्न प्रकार से प्रकाशित किया गया है।***

** कल ** गारी मैं देहूं देवैहूं सबन से (मारिफुन्नगमात भा. २)*

**** आवृत्ति—हिन्दी, सन १९६३, पृष्ठ-१८२।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी—जुवति जूथ सन फाग, खेलत नंद के लाल,
कुंवर होरी हो होरी बोलना।

अंतरा—गाय नटनारायण मुदित चेत सुफाग,
चहूं दिस मिल गोपबाल बिन्द टोलना।।

उपर्युक्त द्रुपद-सम्प्रदाय के सर्वप्रथम कीर्तनाचार्य श्री कुंभनदासजी की रचना है। उन्होंने श्रीजी के सम्मुख होरी-धमार के दिनों में नट राग में ही इस पद का गान किया, यह स्पष्ट होता है। आज भी अष्टछाप परम्परा में राग-नट ताल-चर्चरी (झपताल) में माघ शुक्ल पूर्णिमा के बाद फाल्गुन शुक्ल दशमी तक सायं सेवा-क्रम के 'भोग समय' में गाये जाने वाले पदों में यह पद (कीर्तन) भी गाया जाता है। यह पांच तुकों का पद है। जिसका संचारी-आभोग सहित शुद्ध पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी—जुवति जूथ संग फाग, खेलत नंदलाल,
कुंवर होरी हो होरी हो बोलना।।

अंतरा—गावें नटनारायण राग, मुदित वेत चैत फाग,
चहूं दिस जुरे ग्वाल-बाल बृन्द-टोलना।।१।।

संचारी—बाजते आवज उपंग, बासुरी सुर-बीन चंग,
संख वंस झांझ डफ, मिरदंग ढोलना।।

आभोग—चलत सुअनेक ताल, सुघरराय श्री गोपाल,
बेनु मध्य गान करत होरी हो होलना।।२।।

× × × ×

'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर, प्रेम सिन्धु प्रकट कियो,
सुर-बिमान बियकि देखि ब्रज किलोलना।।५।।

(२२) क्रमिक-पुस्तक-५ में भैरव मेल जन्य राग बिभास की दी गई चीजों में द्रुपद-अंग का सादरा स्थायी-अन्तरा में ही पाया जाता है, जो कि निम्न प्रकार है:—

स्थायी—चिरियां चुहचुहानि सुन चकइ की बांनि,
कहत जसोदा रानि जागो मोरे लाला।

अंतरा—रवि की किरन जानि कुमुदिनी मुकलानि,
कमलिनी बिकसानि दधि मथे बाला।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह चीज भी पुष्टिमार्गीय हवेली-संगीत का प्राचीन पद है। यह अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि और संगीताचार्य 'नंददास जी' की रचना है। प्रातः श्रीजी को जगाने के समय राग-विभास में या भैरव में भी गाने की प्रथा है किन्तु अधिकतर राग-विभास में ही गाया जाता है, यहां ध्यान रहे कि हवेली-संगीत का विभास राग विलावल-थ्राट का है। वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में श्रीजी को जगाने के समय इस पद-गान से अतिशय सुन्दर और भक्तिमय वातावरण वन जाता है। इनका संपूर्ण पाठ इस प्रकार है–*

स्थायी–चिरैयां चुहचुहांनी सुनि चकई की बानी,
कहत जसोदा रानी जागो मेरे लाला ।।

अंतरा–रवि की किरन जानि, कुमुदिनी सकुचानी,
कमलनि बिकसानी दधि मथें बाला ।।१।।

संचारी–सुबल श्रीदामा तोक उज्ज्वल बसन पहिरें,
द्वार ठाड़े टेरत हैं बाल-गोपाला ।।

आभोग–"नंददास" बलिहारी उठौ क्यों न गिरिधारी,
सब-कोऊ दुख्यो चाहे लोचन बिशाला ।।२।।

(२३) भातखंडे θ क्रमिक भाग-६ राग-मधमाध सारंग ताल-चौताल का द्रुपद निम्नलिखित शब्दों में छपा हुआ है:—

स्थायी–अपने-अपने घरकी किवाड दे दे सोय रही,
आलीरी ऐसो समय तूं अब बुलाये का न ले।

अंतरा–सूरज आयो सीस पर छाई परछाई भूले है,
बटोही बाट धूप देख गहरी ।।

---

* *पं. पटवर्धनजी के राग-विज्ञान भाग-२ में भी राग 'देशकार' झपताल में निम्नांकित पाठ प्राप्त होता है।*

स्थायी–चिड़ियां चुचवाती चक्रवाक सुन बानी।
कहत यशोदा रानी, जागो मेरे लाला ।।ध्रु।।

अंतरा–रवि के किरण जानि, कुमुदिनि विकसानी,
समुदित सकुचानि, दधि मथित बाला ।।१।।

इस पाठ का अर्थानुसंधान ठीक नहीं है। शायद किसी गायक से सुना हुआ पाठ प्राप्त किया होगा।

θ ई.स. १९३७ मराठी आवृत्ति पहिली।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस प्रकार उपर्युक्त द्रुपद का स्थायी और अन्तरा ही प्रकाशित है। हवेली-संगीत प्रणाली में यह पद ग्रीष्म ऋतु जेष्ठ मास में श्रीजी के राजभोग-दर्शन में मधमाध-सारंग में ही गाने की प्रथा है, परन्तु बंदिश और पाठान्तर में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। संचारी व आभोग सहित पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी–अपने अपने घर के किंवार दै कें सोय रहे,
ऐसे में तू क्यों न सुख लहैरी ॥

अंतरा–सूर आयो सीस पर छाया आई पांयन तर,
बाट के बटाउ थके देखि धूप गहैरी ॥१॥

संचारी–पहिरें तन स्वेत सारी* मोतिन की माल गरें,
सोल्है सिंगार अंग क्यों न सजिहैरी ॥

आभोग–'सूरदास मदनमोहन' तलफत जैसें चातक मीन,
माघ की मध्य रात जैसें जेंठ की दुपहैरी ॥२॥

(२४) भा. क्र. पु. ६ में मधमाघ–सारंग, झपताल में प्रसिद्ध किया हुआ द्रुपद (सादरा) का भी केवल स्थायीं अन्तरा ही और अशुद्ध पाठ भेद युक्त निम्न प्रकार दृष्टिगत होता है।

स्थायी– "आज अंजन दियो, राधिका नैन को ।
अंतरा– "मीन म्रिग हीन कुल, लजत खौंजन नरेस,
अधक चंचल सुरस, श्याम सुख नैन को ॥

उपर्युक्त पद श्री 'सूर' की रचना है। तीन तुकों में 'सूर' ने श्री राधिका जी के स्वरूप-वर्णन का सुन्दर पद-गान किया है। सम्प्रदाय में यह द्रुपद जब राज-भोग दर्शन-समय गाया जाता है, तब इसी राग ताल में गान कर सकते हैं। किन्तु अधिकतर दशहरे के पूर्व दिनों में शयन समय (मान) राग-कानड़ा में गाने की प्रथा है। सम्पूर्ण पद का प्राचीन पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी– आज अंजन दियो राधिका नैन कों ॥
अंतरा– मीन गुन हीन मृग लज्जित खंजन चकित,
अधिक चंचल सरस स्याम सुख दैन कों ॥१॥

संचारी– दसन दामिनि उदित, भौंह मनमथ फंद,
सुलप लर लटकत, रहत नहिं चैन कों ॥

आभोग– कनिक कंचुकी बंद, हार ग्रीवा रुरत,
निरखि गगन गयो, उडुपति सुगैंन कों ॥२॥

---

* पाठान्तर–गरें गुंजमाला धारी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी– चरन नुपूर रुनित, क्षुद्र-घंटिका क्वनित,
कनक सम गौर सोभा, लज्जित उस मैंन कों ।।
आभोग– 'सूर' सुन्दर नवल, रसिक गिरिधर देखि,
चली गज गति मानों, मदन-गढ लेंन कों ।।३।।

(२५) भा.* क्रमिक पु. ६ में देखिए, राग-नायकी, चौताल का द्रुपद भी गायकों के घराने की चीज बन जाने पर मात्र स्थायी और अन्तरा में ही एवं विसंगत शब्द-रचना का पाठ चतुर पंडित को जो प्राप्त हुआ है, यह निम्न प्रकार से है:—

स्थायी– सुन्दर बिन सुख सदन श्याम को, निरखे नैनन मन थाके ।
अंतरा– या बिधुनते निकसे री मोहन, तुछको झरुके झांके ।।

हवेली–संगीत का यह प्रसिद्ध द्रुपद पुष्टि-सेवा प्रणाली में आषाढ़ शुक्ल २ (रथ-यात्रा) के रोज शयन के दर्शन में राग-अडाना चौताल में गाया** जाता है। इस द्रुपद के मूल गायक और रचनाकार महाकवि 'सूरदासजी' हैं। रथ में विराजित श्री कृष्ण की झांकी के भावानुसंधानयुक्त इस कीर्तन में कितना सुन्दर भाव भरा हुआ है, –

स्थायी– सुन्दर बदन सदन, सोभा को, निरखि नैन मन थाक्यो ।
अन्तरा– हौं ठाडी वीथिन ह्वै निकस्यो, उझकि झरोंकन झांक्यों ।।१।।
संचारी– "मोहन एक चतुराई कीनी, गेंद उछारि गगन मिस ताक्यो ।।
आभोग– बासेंरी लाज बैरिन भई मोकों, मैं गमार मुख ढांक्यों ।।२।।
संचारी– "चितवनि में कछु करि गये मोतन, मन न रहत क्यों राख्यौ ।।
आभोग– "सूरदास प्रभु" सर्वसु लै गये, हंसत हंसत रथ हांक्यौ ।।३।।

(२६) भातखंडे क्रमिक पु.६, पृष्ठ–३५० (आवृत्ति–१ सन् १९३७) पर राग-खट, ताल-झपताल में दिया हुआ द्रुपद (सादरा) का पाठ निम्न प्रकार से है:—

स्थायी– "आज नंदलाल मुख चौंद नैंनन निरख, परम मंगल भयो भुवन मेरे ।
अंतरा– "कोटि कंदर्प लावण्य एकत्र करि,वारों तबहि जनहि नेक हेरे ।।
संचारी– "सकल सुख सदन हरखित वदन,गोपवर प्रबल दल मदन जतो संग हेरे ।
आभोग– कह्यो कोउं कैसेंहु नांहि सुध बुध रहे, 'गदाधर मिश्र' गिरिधरन ठेरे ।।

हवेली–संगीत परंपरा के अनुसार ही राग-ताल में पं. भातखंडेजी को उपर्युक्त पद प्राप्त हुआ है। सम्प्रदाय में इस पद को प्राय: प्रबोधिनी (कार्तिक शुक्ल-११) के पश्चात् मंगला-दर्शन के समय गाने की प्रथा है। शब्दों में कुछ अशुद्धि है, शुद्धि निम्न प्रकार है:—

---

* आवृत्ति पहिली सन् १९३७, पृष्ठ–२०२

** क्वचित मल्हार राग में भी गाया जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी का पाठ ठीक है ।

अन्तरा–की दूसरी पंक्ति में 'जनहिं' के स्थान पर 'जबहिं' चाहिए ।

संचारी–दूसरी पंक्ति में 'जतों' शब्द निरर्थक है ।

'गोपवर प्रबल दल मदन संग घेरे' चाहिए ।

आभोग–प्रथम पंक्ति में 'रहे' की जगह 'बने' और दूसरी 'ठेरे' के स्थान पर 'टेरे' चाहिए ।

उपर्युक्त पाठ सम्प्रदाय के मुद्रित संग्रहों के अनुसार शुद्ध किया गया है, किन्तु एक प्राचीन हस्तलिखित पोथी में दिया हुआ निम्न पाठ अधिक सुसंगत कहा जायगा ।

स्थायी और अन्तरा में खास कोई परिवर्तन नहीं है ।

संचारी–"सकल गुन सदन हरखित बदन, गोप दल प्रबल बल मदन दल संग घेरे ।
आभोग– "कहो कोउ कैसेउ नाहिं सुध बुध रहे, 'गदाधर मिश्र' प्रभु मधुर टेरे ।।२।।

(२६ ब) इसी द्रुपद (सादरा) को क्रमिक पु. ६ पृ. ७५ राग–सिन्दूरा, ताल–झपताल में प्रकाशित किया गया है । किन्तु उनका स्थायी, अन्तरा ही दिया है । जिसका पाठ ठीक है, किन्तु पुष्टि–सेवाक्रम प्रणाली इस पद को 'खट' राग में ही गाने की प्राचीन परंपरा है । यह चीज सिन्दूरा-राग में और केवल स्थायी–अन्तरा में ही पं. भातखंडेजी को किस घराने से प्राप्त हुई होगी, यह अज्ञात है ।

(२७) भातखंडे क्रमिक भाग ६ (पृष्ठ–२८५, आवृत्ति–१ ई. स. १९३७) में 'राग-आभोगी, ताल–झपताल' में तथा क्रमिक पु. भाग–४ के (पृ.३६६, अवृत्ति–३, सन् १९३९) प्रकाशन में 'राग–बहार' में छपा हुआ निम्न लिखित द्रुपद (सादरा) का पाठ इस प्रकार है:––

स्थायी– जयति शिरि राधिके, सकल सुख साधिके,
तरुणि मणि नित्य नौतन किशोरी ।

अंतरा– कृष्ण नव नील घन, रूप की चातकी,
कृष्ण मुख-हिमकिरण की चकोरी ।।

क्रमिक पु. ६ एवं ४ में छपे उक्त द्रुपद का केवल स्थायी-अन्तरा ही प्रकाशित है । किन्तु हवेली-संगीत के संग्रहों में इनका संपूर्ण पाठ प्राप्त होता है । पुष्टिमार्गीय सेवा-क्रम में यह द्रुपद राग–रामकली-चर्चरी ताल (झपताल) में प्राय: मंगला के समय गाने की प्रथा आज कल है । 'गदाधरजी' रचित चार तुकों का यह पद सम्प्रदाय में निम्न लिखित शब्दों में सुप्रसिद्ध है–

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी—जयति श्री राधिके सकल सुख-साधिके,
तरुणि मणि नित्य नौतन किशोरी ।

अंतरा—कृष्ण तन नील घन रूपकी चातकी,
कृष्ण मुख हिम किरण की चकोरी ॥१॥

संचारी—कृष्ण दृग भंग विश्राम हित पद्मिनी,
कृष्ण दृग मृगज बंधन सुडोरी ॥

आभोग—कृष्ण अनुराग मकरंद की मधुकरी,
कृष्ण गुनगान रस-सिन्धु बोरी ॥२॥

संचारी—परम अद्भुत अलौकिक मेरी गति,
लख मनसि सांवरे रंग अंग गोरी ॥

आभोग—और आश्चर्य मैं कहूं न देख्यो सुन्यौ,
चतुर चौसठ-कला तदपि मोरी ॥३॥"

संचारी—विमुख परि चित्त में चित्त याको सदा,
करत निज नाह की चित्त चोरी ॥

आभोग—प्रकृत यह "गदाधर" कहत कैसे बनैं,
अमित महिमा इते बुद्धि थोरी ॥४॥

(२८) क्रमिक हि. सं. पु. भाग ६, पृष्ठ-२७२ (आवृत्ति १ सन् १९३७) राग-मीरां की मल्हार, ताल-चौताल में प्रकाशित द्रुपद का शब्द-पाठ देखिए:—

स्थायी—तुम घनसे घन गरजे,
गरज गरज कहा अत जाय बरजे हो ।

अंतरा—कहूं घाम कहूं छाह बतावत,
कहू लागत ओसरे हो ॥

यही द्रुपद "मारिफुन्नगमात" में स्थायी, अन्तरा, संचारी आभोग सहित राग-मीरावाई की मल्हार में भी प्रकाशित हुआ है । गायक का नाम "रजाहुसेनखां लखनऊ" छपा हुआ है अतः उन्हीं से प्राप्त इस द्रुपद का पाठ* निम्न प्रकार से पाया जाता है ।‡

स्थायी—तुम घनते घन गरजे ।
गरज-गरज कहीं अन्त जाय बरसे हो ।

अंतरा—कहूं घाम कहूं छांह बनावत,
कहूं लागत झरसे हो ॥१॥

---

* "मारिफुन्नगमात" दूसरा-भाग हिन्दी-प्रति सन् १९५२ पृ-१९४

‡ फिरोज फ्रामजी की पुस्तक में भी इसी राग में यही पाठ छपा हुआ है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी—झूठी बातें करो ना पती जी,
औरन के पग परसे हो ।

आभोग—"लछीराम" तुम हो बहुनायक,
सब बातन सरसे हो ॥२॥

क्रमिक पुस्तक ६ तथा मारिफुन्नगमात में दिये हुए उपर्युक्त दोनों पाठ शुद्ध नहीं हैं । दूसरे पाठ के आभोग में रचनाकार का नाम भी मिलता-जुलता लगा दिया प्रतीत होता है । वास्तव में यह ध्रुपद पुष्टिमार्गीय संगीत-प्रणाली का प्राचीन पद-गान है । मल्हार राग की खंडिता के पद-गान में इनका समावेश किया गया है । सम्प्रदाय के लिखित पद-संग्रहों में इनके दो पाठ प्राप्त होते हैं जो निम्न प्रकार से हैं:—

(१) कांकरोली (नाथद्वारा) के कीर्तनकारों की लिखित पोथी से प्राप्त पाठ—

स्थायी—तुम घनसे घनस्याम,* गरज-गरज कहूं अनत जांय बरसे हों ।

अंतरा—कहूं बादर कहूं नेह जनावत, कहूं लावत झरसे हो

संचारी—अेकन कों नैन सैंन एकनसों मीठे बैंन,
एकन पें जाय तुम पग परसे हो ॥

आभोग—"घोंघी" के प्रभु तुम बहु नायक,
सब बालन सरसे हो ॥२।

(२) पुष्टिमार्ग में षष्ठ-पीठ 'सुरत" का भी माना जाता है, वहां की कीर्तन-प्रणाली संग्रह से प्राप्त पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी—तुम घनसे घनस्याम मनोहर,
गरज-गरज अनत बरसे हो ॥

अंतरा—उमड घुमड में नेह जनावत,
कहूं लावत सरसे हो ॥१॥

संचारी—झूठी सांची हसही मिलावत,
औरन पैं जाय तुम पग परसे हो ॥

आभोग—"घोंघी" के प्रभु तुम बहु लायक,
सब बातन सरसे हो ॥२॥

उपर्युक्त दोनों पाठ ठीक हैं, परन्तु इस लेखक को प्रथम का पाठ विशेष मान्य है ।

---

* पाठान्तर घनस्याम मनोहर ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(२९) भा. क्र. पु. ६ पृष्ठ ६७ (आवृत्ति पहिली) राग 'ललितागौरी की धमार निम्न लिखित शब्दों में प्रसिद्ध हुई है ।

स्थायी–ए मुरलीवाले सांवरे नेक मारग देहो वताय रे ।

अंतरा–ढूंढ फिरी सौंकेत संकल बन, हूं अबला कित जाऊं रे ।।

यही धमार "मारिफुन्नगमात" भाग-२ में निम्नलिखित शब्दों में प्राप्त होती है:–

होरी ललिता गोरी धमार

स्थायी–क्रमिक पु. ६ से समान है ।

अंतरा–हूं तो अकेली, संग ना सहेली, अबला कित जाय ।।

उपर्युक्त धमार को "होरी" की संज्ञा दी गई है, किन्तु यह धमार होरी की नहीं है । सम्प्रदाय में प्रायः श्रीकृष्ण की होरीलीलायुक्त सभी पदों को धमार संज्ञा से संबोधन किया जाता है । परन्तु होरी के अतिरिक्त नित्य और नैमित्तिक आदि सेवाक्रम के पदों में कई पद धमार ताल में गाये जाते हैं । इस धमार में होरी की भावना नहीं है, 'सांझी' (फूल-बीनत)-लीला की भावना होने से सम्प्रदाय के संग्रहों में 'सांझी' के पद में समावेश होता है । भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा से अमावस्या तक सायं-सेवा के भोग-संध्यार्ति के दर्शन में ये पद गाये जाते हैं । सम्प्रदाय के अग्रगण्य (पुराने) कीर्तनकारों से हमने यह धमार राग-ललिता गौरी के स्वरों से मिलते-जुलते स्वरों में ही सुनी हुई है । "भगवान हित रामराय" की छाप के इस पद-कीर्तन का सम्पूर्ण पाठ सम्प्रदाय के संग्रहों में इस प्रकार है:–

स्थायी–(ए) मुरली वारे सांवरे नेंक मारग मोहि बताऊ रे ।।

अंतरा–फिरौं अकेली संग न सहेली,
कित नंदीसुर गांउ रे ।।१।।

संचारी–भूलि परी संकेत सघन बन, हों अबला कित जाऊं रे ।।

आभोग–मृगनैनी के बचन सुनत ही, आइ मिले तिंहि ठाउं रे ।।

संचारी–लिये लगाय अंक भरि भेटें, भलो बन्यो है दाउं रे ।।

आभोग–(२) कहे भगवान हित 'रामराय' प्रभु
राधा-रमन जाको नाऊं रे ।।२।।

(३०) भातखंडे क्रमिक पु. ३ देश-राग का द्रुपद "ए री सखी सावन" जो प्रसिद्ध हुआ है, यही द्रुपद मारिफुन्नगमात" भाग-२ में (पृ. १९७) नवाब "छम्मन' साहेब से प्राप्त देस राग में ही छपा हुआ है । दोनों में इनका स्थायी अन्तरा ही पाया जाता है । जिनके शब्द निम्न प्रकार से हैं:–

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी–एरि सखी सावन आयो, बिरहा अगम मोपें,
कल ना परत प्रान प्यारे बिन ।

अंतरा–चहूं ओर तें बादल उमड घुमड आवै (छायो)
छतियां उमगी कान्ह कारे बिन ॥१॥

इस द्रुपद के संचारी-आभोग भी आजकल संगीतकारों एवं गायकों को अज्ञात से ही रहे हैं । सम्प्रदाय की कतिपय हस्तलिखित पोथियों (कीर्तन-संग्रह) में ही यह द्रुपद दृष्टिगत होता है। राग-सोरठ या मल्हार के पदों में इनका समावेश किया गया है । वर्षा-आगमन के दिनों में सम्प्रदाय में गाने की प्रथा समुचित है । यह अष्टछाप के महान् भक्त "सूर" की रचना है, पाठ इस प्रकार प्राप्त होता है:–

स्थायी–एरी सखी सावन आयो, बरखा रितु आगम,
नैना तो चुवत प्रान प्यारे बिनु ॥

अंतरा–आज की अंधेरी रैन, बिजुरी सी चमकत,
छतियां उमगी कान्ह कारे बिनु ॥१॥

संचारी–दादुर मोर पपैया बोले, कोकिल की कूहुक
सुनि छांडि हु न मारे बिनु ॥

आभोग–इतनी अरज मेरे "सूर" के प्रभु सों,
घायल को कल ना पुकारे बिनु ॥२॥

(३१) मारिफुन्नगमात, भाग-२, चीज नं. ५८ (पृष्ठ-७५) देखिए । "मोहम्मद अली खां" गायक से प्राप्त, शंकराभरण-चौताल में छपा हुआ निम्नलिखित द्रुपद की चीज के वोल इस प्रकार हैं:–

स्थायी–आये जी कैसे आवन पाये,
भले ही आये मेरे नवल लाल ।

अंतरा–तुम हो चतुर सुजान, बूझत सब गुन निधान,
महाज्ञान मूरत हो अति रसाल ॥

संचारी–हमसों अवध बही अन्त विरम रहे,
ऐसी न कीजै दीन दयाल ।

आभोग–"तानसेन" के प्रभु तुम हो बहुनायक,
दीजै दरस कीजै निहाल ॥

उपर्युक्त द्रुपद के स्थायी, अन्तरा और आभोग के शब्दों में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता, किन्तु संचारी के चारों आवर्तनों के शब्दों को (प्राप्त न होने पर) वदल दिया गया है या पाठान्तर है । जब तक प्राचीन हस्तलिखित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ग्रन्थ में उपर्युक्त पाठानुसार संचारी प्राप्त न हो तब तक हमारे संशोधनानुसार ई. १७४६* की लिखित प्रति का निम्नलिखित पाठ ही मूल एवं शुद्ध कहा जायगा। लिखित संग्रहों में खंडिता (नायिका) के पदों में यह द्रुपद दृष्टिगोचर होता है, जो विशेषतः राग-परज, चौताल में प्रातःकाल मंगला-समय गाया जाता है। तानसेन के वैष्णव होने के पश्चात् के सभी पदों में "तानसेन के प्रभु" की छाप ही प्राप्त होती है। ये वहुत से पद पुष्टिमार्गीय सेवा-प्रणाली के कीर्तन-गान में ओत-प्रोत होकर अष्टछाप-परंपरा में पाये जाते हैं। ऊपर लिखित द्रुपद का प्राचीन पाठ इस प्रकार है।

राग-परज, ताल-चौताल

स्थायी—आईये जु कैसे आवन पाये,
भलेई आये मेरे नवल लाल ॥

अन्तरा—तुम हो अति सुजान बूझत गुन** निधान,
महाज्ञान मूरत छबि रति रसाल ॥१॥

संचारी—ज्यों ज्यों इन नैनन देखन‡ न पाऊं,
त्यों त्यों मन‡‡ होत बिहाल ॥

आभोग—"तानसेन" के प्रभु तुम बहुनायक,
दीजिये दरस कीजिये निहाल ॥२॥

(३२) मारिफुन्नगमात-भाग-२ पृ. ९६ (आवृत्ति सन् १९५२) में राग जैजैवन्ती का द्रुपद चौताल में निम्न शब्दों में छपा हुआ है। जो गायक-मोहमद अलीखां से प्राप्त किया हुआ है:—

स्थायी—रंग रहे लाल उनही तिरियन संग,
निरखत छबि ढंग परंत, और-और ॥

अंतरा—ले दरपन मुख देखो निहार श्याम,
अधरन अंजन लाग ठौर-ठौर ॥

संचारी—हमसों अवधि बदी औरन सों रीत मानी।

आभोग—जाउजी जाउजी जहां सारी रैन जागे श्याम,
अब काहे आवत प्रातःकाल दौर-दौर ॥

---

* कांकरोली से प्राप्त।

** पाठान्तर—सब गुन ‡ देखन पाऊं ‡‡ रहत विहाल वाल

०० संगीत कलाधर ग्रंथ में राग परज में ही मिलता है। लिखित नित्य पोथी, कांकरोली में स्वरलिपि दी गई है, जिसका पाठ मारिफुन्नगमात के पाठ से मिलता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुस्लिम घरानाओं के गायकों में सम्प्रदाय का यह ध्रुपद भी किसी न किसी प्रकार पहुंच गया । स्थायी में खास अंतर नहीं है । अन्तरा में पाठान्तर है । संचारी अपूर्ण (केवल दो आवर्तन की) है । आभोग में सूरदास की छाप की जगह अन्य शब्द लगा दिये हैं । सम्प्रदाय में यह ध्रुपद राग-अल्हैया विलावल में गाया जाता है । सूरदासजी की यह रचना शृंगार के दर्शन में श्रीजी को दर्पण दिखाने के समय गाने की प्रथा है । 'खंडिता' के पदों में इस ध्रुपद का समावेश किया गया है । पुष्टि-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में इसका शुद्ध पाठ निम्न प्रकार से दिया गया है:–

स्थायी–माई, रंग रंगे* हो लाल उनही त्रियन संग,
छबि देखियत ढंग परत कछु और-और ।।

अन्तरा–लै दरपनθ देखिये जु प्यारे लाल,
अधरन अंजन लग्यौ–ठौर-ठौर ।।१।।

संचारी–मोसौं अवधि बदी, औरन सों रति मानी,
प्रीत करत फिरत नई पौर-पौर ।।

आभोग–जाओजी जाओजी तुम उनही में "सूर" प्रभु,
काहे को आवत मेरे प्रात दौर-दौर ।।२।।

(३३)

मारिफुन्नगमात भाग ३ पृष्ठ ८ हिन्दी प्रथमावृत्ति (सन् १९२७) राग–देसकार, धमार–ताल में जो होरी प्रसिद्ध हुई है, इनके शब्द निम्न प्रकार से हैं:–

स्थायी– प्रातकाल नंदलाल खेलत होरी ।
अन्तरा– आई आनंद भरी, ब्रज की गौरी ।।
संचारी– कंचन पिचकारी हाथ, और गुलाल झोरी ।
आभोग– सीस पाग छटक रही, केसर रंग बोरी ।।

इस धमार के मूल–गायक व रचियता 'सूरदास मदनमोहन' हैं । उपर्युक्त पाठ में अंतरा से आभोग का क्रम क्रमशः नहीं है । हवेली संगीत प्रणाली में यह धमार राग-भैरव में प्राप्त होती है; जो मंगला के दर्शन–समय गाई जाती है । होरी दंडारोपण '(माघ शुक्ल पूर्णिमा) से होरी तक गाये जाने वाले पदों में इसका समावेश है । कविता का पाठ सम्प्रदाय के ग्रन्थों में निम्न प्रकार से पाया जाता है:—

---

* पाठान्तर–रहे हो । θ मुख देखिये जु ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी– प्रातसमें नंदलाल खेलत हैं होरी ।
अन्तरा– सीस पाग झुकि रही, केसर रंग बोरी ॥१॥
संचारी– सब नारी जुरिकें आई, नंदजु की पौरी ॥२॥
आभोग– * सूरदास मदनमोहन भली बनी जोरी ॥३॥

(३४)

मारिफुन्नगमात भाग‡ २ तथा भागθ ३ में राग–जैंजैवंती की धमार प्रकाशित हुई है। गायक–मोहम्मद अलीखां द्वारा प्राप्त हुई इस धमार का भाग २ में स्थायी और अंतरा ही दिया है, तथा भाग ३ में संचारी-अभोग सहित का पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी– भली भई ब्रज होरी, घर आये घनश्याम ।
अन्तरा– लोग कहें टुनवा पढ़ डारो, ये राधे को काम ॥
संचारी– धन तेरो भाग सोहाग भावती, और ना दूजी वाम ।
आभोग– कृष्णजीवन की इच्छा पूजि, ये बेग ही श्याम ॥

सम्प्रदाय के 'वसंत–धमार' संग्रहों में यह धमार राग-केदार में प्रकाशित हुई है । शयन-दर्शन के समय होरी के दिनों में इसके गाने की प्रथा सुप्रसिद्ध है। अनुमानतः यह धमार भी मुस्लिम गायकों के पास कर्णोपकर्ण द्वारा पहुँचने से पाठ में कुछ परिवर्तन हो गया है। प्राप्त पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी– भली भई ब्रज होरी आई, घर आये घनश्याम ।
अंतरा– चोवा चंदन और अरगजा, वे राधा के काम ॥१॥
संचारी– धन तेरो भाग सुहण लाडिली, और न दूजी वाम ॥
आभोग– 'कृष्णजीवन लछीराम' के प्रभुसों, ज्यों सीता मिलि राम ॥२॥

(३५)

मारिफुन्नममात, भाग ३ (पृष्ठ-५७) में राग-शहाना की होरी-धमार का पाठ निम्न प्रकार से पाया जाता है:—

स्थायी– तू जिन बोलरी देने दे वाहू गारी ।
अंतरा– वे तो लबारी झबारी जगत के, तुमहो सुलछन कारी ॥१॥
संचारी– जो वाके मन में सोही पाख रही हूं, कहा करी हूं लाज की मारी ॥

---

* पृष्ठ–१०१ ‡ पृष्ठ–२२

θ वल्लभ गोपाल निरख बिहसत मुख भोरी । (संदिग्ध)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपर्युक्त धमार के पाठ में भी कहीं-कहीं परिवर्तन हो चुका है। "कृष्ण-जीवन लछीराम' की इस रचना को होरी के दिनों में राग काफी में गाने की प्रथा सम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध है। जिनका शुद्ध पाठ सम्प्रदाय के संग्रहों में इस-प्रकार प्राप्त होता है:—

स्थायी–सखी, तू जिन बोलरी, देन दै वाहिकों गारी ॥
अंतरा– एतो लवार जिवार, जगत को हम चतुर सुलच्छन नागर नारी ॥१॥
संचारी–वाके मुख आवे सो गावै, हम न कहें कछु लाज की मारी ॥
आभोग– या होरी में कौन बिगोयो, 'कृष्णजीवन लछीराम' जंजारी ॥२॥

(३६)

मारिफुन्नगमात–भाग–२ (पृष्ठ–६८) राग–नट, ताल–चौताल (गायक–मोहम्मद अलीखां) का द्रुपद स्थायी–अंतरा में ही छपा हुआ है। पाठ निम्न प्रकार से है।

स्थायी– कैसे जाऊं बीच । जमना बाढी जमना बाढी ॥
अंतरा– ए ले पार कान्ह बसिया बजावे, वे ले पार हम ठाड़ी ॥

पुष्टिमार्गीय सेवा-क्रम में यह पद उष्णकाल में जब यमुनाजी के पद गाये जाते हैं, तब भोग–समय राग-नट में ही गाया जाता है। ७ मात्रा (अर्ध-आडा-चौताल) के ताल में द्रुपद अंग से गाने की प्रथा है। इनकी बंदिश चौताल में सुसंगत नहीं है। गायक मोहम्मद अलीखां ने शब्दों में मात्राएँ बढ़ा कर तथा 'जमना बाढ़ी-जमना बाढ़ी' दो बार ले करके भी चौताल में गाना क्यों पसंद किया होगा–इसका कारण अज्ञात है।

सम्पदाय के लिखित संग्रह में 'तानसेन' की छाप है, और सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार है:—

संचारी– कहारी कहौं बीच जमुना बाढी ।
अंतरा– याही पार कान्ह मुरली बजावत, वाही पार हम ठाड़ी ॥१॥
संचारी– कांधे कंमरिया हाथ लकुटिया, रहत सदाई आडो ॥
आभोग– 'तानसेन' के प्रभु बहुनायक, निकसि करारें ठाडो ॥२॥

(३७)

'द्रुपद–स्वरलिपि' ग्रन्थ (प्रकाशन–१९२९) में पृष्ठ–३४ पर प्रकाशित किया हुआ राग–हिन्डोला, चौताल (द्रुपद) का गीत पाठ निम्न प्रकार से है—

स्थायी–यशोमति दधि मथन कर बैठे वीरधाम,
ओरि ठाड़े हरि यस निहारे सुन्दर छबि राजे ॥१॥
अंतरा– चितवन चित रहि लोभात शोभा कछु कहि न जात,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी—जननी कहे नाचो बाला देऊंगी नवनीतनुत्ता,
रुनुन रुनुन झुनुन झुनुन पायनि बाजनि बाजे ।।३।।
आभोग—गावत गुण 'सूरदास' सुख बढ़त भूम आकाश,
नाचत त्रिलोकनाथ माखन काजे ।।४।।

उपर्युक्त पाठ में कहीं-कहीं अशुद्धियां स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होती हैं। अष्टछाप के 'सूर' द्वारा रचित इस प्राचीन द्रुपद का पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणाली में 'दधिमथन के पद' राग-विलावल में समावेश किया हुआ है। 'दधिमथन के पद' ग्वाल के समय जब घैयां का भोग आता है तब गाये जाते हैं। सम्प्रदाय-प्रसिद्ध इस प्राचीन द्रुपद का शुद्ध पाठ संग्रहों में निम्न प्रकार से प्राप्त होता है:—

स्थायी—जसोमति दधि-मथन करति बैठी वर-धाम अजर,
ठाड़े हरि हसंत नन्हीं दतियत छबि छाजे ।।
अंतरा— चितवनि चित रह्यो लुभाय, सोभा कछु कही न जाय,
मुनिन के मन हरन को मन-मोहिनी दल साजें ।।११।।
संचारी—जननी कहै नाचो लाल देहुंगी नवनीत लोंदा,
आभोग—गावत गुन सूरदास सुख छायो भुव-अकाश,
नाचत त्रय-लोक-नाथ माखन के काजें ।।२।।

(३८)

द्रुपद-स्वर लिपि पृष्ठ-१३१ में 'पूरवी' राग का द्रुपद निम्न पाठ से छपा हुआ है:—

स्थायी—धर टेडी पाग हि चन्द्रिका और टेडो त्रिभंगी लाल।
अंतरा—कुंडल कि छबि मानों कोटि रवि उदय होत और राजत बनमाल।
संचारी—श्यामरो बदन पर पीत पट ओढना मुख मुरली बाजत मधुर रसाल।
आभोग—श्रीमत वल्लभ बन तें आयो संग लिये ब्रज गोप बाल।

पूर्वी-चौताल का उपर्युक्त द्रुपद हवेली-संगीत का प्राचीन पद है। यह अष्टछाप के सुप्रसिद्ध वाग्गेयकार 'नन्ददास' जी की रचना है। सम्प्रदाय में राग-पूर्वी चौताल में गाने की प्रथा सम्प्रदायेतर गायकों में भी दृष्टि-गोचर होती है, किन्तु पाठ ठीक नहीं है। अंतिम पंक्ति का पूर्व भाग अन्य ही जोड़ दिया है। संभव है उन्हें ठीक पाठ प्राप्त हुआ न हो। पुष्टिमार्गीय कीर्तन-प्रणाली में यह द्रुपद सायं भोग-संध्या आरती के दर्शन में (श्रीजीको पाग-चंद्रिका का श्रृंगार जिस रोज किया जाता है उस रोज) गाया जाता है। प्राचीन पाठ इस प्रकार है:—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी—धरें टेढी पाग* चंद्रिका टेढी त्रिभंगी लाल ।।
अंतरा—कुंडन किरन मानों कोटि रवि उदय होत, उर राजत बनमाल ।।१।।
संचारी—सांवरे बरन† पीताम्बर ओढ़े, ‡मुरली बजावत तान रसाल ।।
आभोग—नंददास बनतें ब्रज आवत संग सखाθ लिये बाल ।।।

(३९)

प्रो. श्री फिरोजफामजी (पूना) की पुस्तक में पृष्ठ-९१ पर राग जेत (ओडव प्रकार) चौताल का द्रुपद केवल स्थायी अंतरा में ही निम्न प्रकार से प्रकाशित हुआ है—

स्थायी—जाकों बेद रटत ब्रह्मा रटत शेष रटत शंभु रटत,
नारद शुक व्यास रटत पावत नहीं पार
अन्तरा—ध्रुव जन प्रहलाद रटत कुंती के कुंवर रटत,
द्रुपद की सुता रटत अनाथन प्रतिपाल।

यह द्रुपद पुष्टिमार्गीय संगीत में राग-सारंग, चौताल में गाया जाता है। भगवन्माहात्म्य के पदों में इनका समावेश होता है। अष्टछाप के वाग्गेयकार श्री नन्ददासजी–रचित यह द्रुपद राजभोग-सम्मुख पुष्टिमार्गीय प्रणाली के अनुसार गाया जाता है। संचारी-आभोग सहित सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी—(जाकों) बेद रटत ब्रह्मा रटत शंभु रटत सेस रटत,
नारद सुक-व्यास रटत पावत नहीं पार।
अन्तरा—ध्रुव-जन प्रहलाद रटत कुंती के कुंवर रटत,
द्रुपद-सुता रटत नाथ अनाथन प्रतिपाल ।।१।।
संचारी—गनिका गज गीध रटत, गौतम की नारि रटत,
राजन की रमनी रटत, सुतन दे दे प्यार।
आभोग—'नंददास' श्रीगोपाल गिरिवरधर रूप रसाल,
जसोदा को कुंवर प्यारी राधा उर-हार ।।२।।

(४०)

'संगीत' मासिक के द्रुपदांक पृष्ठ ८५ पर छपा हुआ राग वृन्दावनी सारंग, चौताल का निम्नांकित द्रुपद संपूर्ण प्रकाशित हुआ है, किन्तु उसके प्रारंभ में शब्दकार 'वल्लभाचार्य' लिखा है जो संपादक की साम्प्रदायिक अज्ञानता है। 'वल्लभ' छाप

पाठान्तर : * टेढी चंद्रिका

पाठान्तर : † सुन्दर वदन।
‡ बजावत मुरली मधुर रसाल θ ब्रजबाल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीमद्वल्लभाचायजी के पौत्र श्री गोकुलनाथजीकी है । श्री वल्लभाचार्यजी ने व्रजभाषा में कोई पद रचना नहीं की है। इस छपे हुए पाठ में संचारी का अंतिम और आभोग के तृतीय आवर्तन का पाठ भी कुछ भिन्न है। बाकी सभी पाठ ठीक होने से यहां सम्प्रदाय-प्रसिद्ध पाठ को ही निम्न प्रकार दिया गया है:—

राग–सारंग, ताल-चौताल

स्थायी—बैठे हरि राधे संग कुंजभवन अपने रंग,
कर मुरली अधर धरें सारंग मुख गाई री ।।

अंतरा—मोहन अति ही सुजान परम चतुर गुन निधान,
जानि-बूझि एक तान चूक के बजाई री ।।१।।

संचारी—प्यारी जब गह्यो बीन सकल-कला गुन-प्रवीण,
अति नवीन रूप सहित वही तान सुनाई री ।।

आभोग—'वल्लभ' गिरिधरनलाल रीझि दई अंकमाल,
कहत भले-भले लाल सुंदर सुखदाई री ।।२।।

उपर्युक्त पाठानुसार पुष्टिमार्गीय प्रणाली में इस ध्रुपद का 'कुंज के' पदों में समावेश किया गया है। होली पीछे चैत्र मास में कुंज के पद 'जव गाये जाते हैं तव यह पद भी राजभोग-दर्शन में गाया जाता है । इस पद में वल्लभ' छाप होने से रचियता 'श्रीगोकुलनाथजी' माने जायेंगे, तदापि हमारे संशोधन में एक लिखित पुस्तक में 'श्री विट्ठलगिरिधरनलाल' छाप भी प्राप्त हुई है, तदनुसार यह रचना 'गंगाबाई' की होना भी संभव है; जिन्होंने सैकड़ों पदों की रचना की है, जो संम्प्रदाय संगीत की परम्परा में सुप्रसिद्ध है।

(४१)

'सगीत-कलाधर' नामक गुजराती लिपि के सुप्रसिद्ध और विशाल ग्रन्थ के पृष्ठ ४२३ पर राग-जयजयवंती ताल झपक (झपताल) में छपे हुए निम्न ध्रुपद का पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी—गोकुल की पनिहारी पनियां भरन चली,
बड़े बड़े नैनन में फब रह्यो कजरा।

अंतरा—पहनी तन सेत सारी अंग अंग छबि न्यारी,
गोरे-गोरे भुजन में मोतिन को गजरा।।

संचारी—चलत सखी के संग मन में अति उमंग,
कान्ह सों यों कह्यो कित हें जु डगरा।

आभोग—नंददास प्रिया प्यारी बस कीने गिरिधारी,
नैन की सेंन दे के सीस धर्यो गगरा।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह द्रुपद अष्टछापी वाग्गेयकार श्री नंददासजी की रचना है। पुष्टि (हवेली) संगीत परंपरानुसार राग कुकभ विलावल अथवा (अल्हैया) विलावल चर्चरी (झपताल) में गाया जाता है। कोई क्वचित् चौताल में भी गाते हैं। पनघट के भाव के इस पद का पाठ सम्प्रदाय के संग्रहों में इस प्रकार पाया जाता है:—

स्थायी—गोकुल की पनिहारी पनिया भरन चली,
बड़े-बड़े नैनां तामें खुभि रह्यो कजरा।।

अंतरा—पहिरे कसूंभी सारी अंग-अंग छबि भारी,
गोरी-गोरी बहियन में मोतिन के गजरा।। ११।।

संचारी—सखी संग लिये जात हँसि-हँसि बूझति बात,
तनहूं की सुधि भूली सीस धरें गगरा।।

आभोग—"नंददास" बलिहारी बीच मिले गिरिधारी,
नैनन की सैननि में भूलि गई डगरा।।२।।

(४२)

गवैयों में पहुंचा हुआ निम्नलिखित द्रुपद भी 'संगीत कलाधर' ग्रन्थ राग-बसंत चौताल में लिपिवद्ध किया हुआ प्राप्त होता है । जिनका शब्द पाठ (पृष्ठ-५०३) इस प्रकार है—

स्थायी—ऋतु बसंत तरु लसंत मन हसंत कामिनी,
अभिरामिनी अंग-अंग रमत फाग री।।

अंतरा—उड़त गुलाल लाल-लाल बाहर घर चादर,
केसर कुमकुमा उड़न लागरी।।

संचारी—गाम गाम धाम धाम डगरे दोऊ झगरें,
दंपति अति सुख पावत खेलन को लाग री।

आभोग—अखियां दोउ अखियां तें निरख रही आंगन में,
कब घर आवे मेरे पिव बड़े भाग री।।

अष्टछाप परम्परा में यह "ऋतु बसंत तरु लसंत मन हसंत" द्रुपद बसंत राग में ही गाया जाता है, किन्तु स्वर और ताल में भिन्नता है। हवेली संगीत में शुद्ध धैवत लगाया जाता है। (इस विषय की हम राग प्रकरण में चर्चा करने वाले हैं अतः यहां राग और ताल के नामोल्लेख ही करना चाहते हैं।) सम्प्रदाय में इसे (चर्चरी) झपताल में गाने की प्रथा दिखाई देती है। उपर्युक्त पाठ की स्थायी के शब्दों में खास कोई भिन्नता नहीं है। किन्तु तत्पश्चात् के पाठ में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिवर्तन किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। सम्प्रदाय के संग्रहों में यह पद 'विष्णुदास' की रचना में मिलता है। यह 'कृष्णदास' की रचना में भी प्राप्त होता, किन्तु उपर्युक्त पाठ से भिन्न है।

'डागुर-ब्रदर्स' राग खमाज थाट की दुर्गा का द्रुपद जो 'मानुस हों' चौताल में गाते हैं, यह द्रुपद पुष्टि-सम्प्रदाय के कवि 'रसखान' जी की रचना है जो कि सम्प्रदाय में निम्न प्रकार से सुप्रसिद्ध है:—

स्थायी—मानुस हों तो वहीं रसखानि, बसों ब्रज गोंकुल गाँव के ग्वारनि।।

अंतरा— जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु चरावनि।।१।।

संचारी—पाहन हौं तो वहीं गिरि कों, जु धर्यो कर छत्र पुरंदर कारन।।

आभोग—जो खग हों तो बसेरो करों, मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारनि।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

हवेली संगीत का ख्याल गायन में प्रचार

द्रुपद-धमार के अतिरिक्त ख्याल-गायन पर भी हवेली संगीत का गहरा प्रभाव पड़ा है। बहुत से ख्याल-गायकों ने हवेली संगीत के पदों को अपनाकर अपने-अपने ख्याल-घराने की बंदिशों में समावेश किया है। उन कलाकारों के लिये अपनी सूझ के आधार पर नई-नई बंदिशों में पदों को ख्याल की रचना बनाकर प्रचार में लाना सहज सुलभ था। उन्होंने राज्याश्रय द्वारा श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव जमाया और द्रुपद-धमार गायकी के स्थान पर छोटे-बड़े ख्यालों के गायन से समाज को आकर्षित किया। यह कृत्य वास्तव में प्रशंसनीय था। यहां हम केवल परिवर्तित बंदिशों के संदर्भ में हवेली-संगीत परम्परा के आधार पर विचार करेंगे।

यह कहना समुचित होगा कि द्रुपद-धमार के उपरान्त भारतीय संगीत के ख्याल-घरानों की गायकी को भी समृद्ध और प्रभावशाली बनाने में हवेली-संगीत एवं वैष्णव-सम्प्रदाय की देन कम नहीं है, जिनमें अष्टछाप एवं अष्टछाप परंपरा के वाग्गेयकारों की रचनाओं का आश्रय उल्लेखनीय है। हवेली-संगीत परंपरा की द्रुपदांग गायकी के पद-कीर्तनों को ख्याल-बंदिश में गाने के लिए कहीं राग, कहीं ताल, कहीं राग और ताल तथा कहीं-कहीं शब्द रचना भी परिवर्तित कर दी गई है। इस सन्दर्भ में 'भातखंडे संगीत शास्त्र' का निम्नलिखित उदाहरण उपयोगी होगा।

प्रश्न——"यह आप क्या कह रहे हैं? मालूम होता है कि अधूरे गीत गाने वाले गायक भी मिल सकते हैं?"

उत्तरः——"हां, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आजकल इस प्रकार के गायक भी दिखाई देने लगे हैं। ये लोग घंटे-दो-घंटे तक चीखते रहेंगे और इतनी अवधि में लंगड़ी-लूली चार पांच रागों की चीजें गाने का प्रयत्न करेंगे, परन्तु मजा यह है कि उकता देने वाली पुनरुक्ति-युक्त तानवाजी करते हुये ये प्रत्येक चीज अधूरी रख देंगे। ये ऐसा क्यों करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर अनेक प्रकार से दिया जा सकता है; जैसेः— उन्हें स्वतः उत्तम प्रकार की तालिम नहीं प्राप्त हुई होगी। समाज में गाते समय मन चाहे शब्दों को लेकर वे गाते होंगे। किसी प्राचीन और प्रसिद्ध चीज को रूपान्तरित करते हुए गाने में उन्हें यह भी भय रहता होगा कि कोई हमारी-चीज सुनकर नहीं उड़ा लें या अन्तरे में भिन्नता संभालना नहीं आता होगा, इत्यादि अनेक कारण अधूरी चीज गाने के हो सकते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"मैंने यही चीज अमुक खां के मुंह से अमुक राग में सुनी थी। परन्तु इसने तो अन्तरा ही नहीं गाया।"

(भातखंडे संगीत शास्त्र भाग-२, पृ. २९२)

इस. दृष्टि को सामने रखकर यहाँ ख्याल-गायन की प्रचलित चीजों में से कुछ विलंवित तथा द्रुत-ख्यालों का संक्षिप्त विवेचन सहित उल्लेख किया जा रहा है।

(१)

भातखंडे * क्रमिक भाग-२ में अल्हैया-बिलावल ताल-त्रिताल में छपी हुई निम्न चीज का पाठ देखिए:—

स्थायी– लाडली लाल फूले आवत, लाडली लाल फूले ।
अन्तरा– कुंज केलि नवरंग बिहारी, सुरत हिंडोरे झूले ।।

इस चीज को हवेली-संगीत परंपरा में 'धमार' ताल में गाने की प्रथा है। श्रावण मास में हिंडोला के दिनों में यह पद मंगला-समय गाया जाता है। राग में परिवर्तन नहीं हुआ है, किन्तु धमार ताल के इस पद को 'मध्यलय-त्रिताल' का ख्याल बना कर प्रकाशित किया गया है। 'विट्ठल विपुन' की छाप के इस पद का संचारी आभोग सहित संपूर्ण पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी– आवत लाल लाडिली फूलें ।।
अन्तरा– कुंज केलि नवरंग बिहारी, सुरत हिंडोरे झूलें ।।१।।
संचारी– निसि जागे अलसात रगमगे, पट पलटें गति भूलें ।।
आभोग– 'विट्ठल बिपुन' बिनोद बिहारी, दुरि देखत द्रुम मूलें ।।२।।

(२)

भा. क्रमिक पु. २ (पृ. ७९ सन् १९२९) मध्यलय-त्रिताल की चीज़ के स्थायी-अन्तरा का निम्न पाठ देखिए:—

राग-अल्हैया विलावस, त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी– बल बल जाऊं मधुर सुर गावो, अवकी बेर
मेरे कुंवर कन्हैया नंद ही नाच दिखावो ।।

अन्तरा– तारी दे दे अपने करकी, परम प्रीत उपजाओ ।
आन जौंत धुन सुन डरपत कत मो भुज कंठ लगावो ।।

---

* पृ. ७८ (आवृत्ति-३ ई.स. १९२९)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अष्टछाप-परंपरा में सूरस्याम छाप का द्रुपद अंग की गायकी का उपर्युक्त पद ख्याल की बंदिश में प्रसिद्ध किया गया है। इस पद का सम्प्रदाय के ग्रन्थों में 'बाललीला के पद, राग-बिलावल' में समावेश किया गया है। यह श्रीकृष्ण जयन्ती के बाद श्रृंगार-समय गाया जाता है। पाठ में कोई अन्तर नहीं है। इस चीज का पूर्ण पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी– बलि-बलि जाउं मधुर सुर गाओ ।
अन्तरा– अबकी बेर मेरे कुंवर कन्हैया, नंद ही नाच दिखाओ ।।१।।
संचारी– तारी दे दे अपने करकी, परम प्रीति उपजाओ ।
अन्तरा२– आनि अंत धुनि सुनि डरपत कित, मो भुज कंठ लगाओ ।।२।।
संचारी– नाचहुं नेंक जाउं बलि तेरी, मेरी साध पुराओ ।।
आभोग– रतन जटित किंकिनी पग नूपूर, अपुने रंग बजाओ ।।३।।
संचारी– कनक खंभ प्रतिबंबित सिसु इक, लोंनी ताहि खवाओ ।।
आभोग२–'सूरस्याम' उर अंतर तें कहुं, टारें नेकु न भाओ ।।४।।

(३)

भा० हिं० सं० प० क्रमिक भाग-२ (पृष्ठ-३४ आवृत्ति सन् १९२९) राग-यमन, ताल झूमरा में प्रकाशित किया हुआ विलंवित ख्याल के स्थायी अन्तरा का पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी– बन रे बलैयां लूंगी आज सुहाग की रात, नवेला वर पाया
अन्तरा– चौंद्र बदन पर निपटकी लोचन चमकत लरीयां
बना बनी के मुख तंबोल बीरी बनाय अनगीन दूंगी ।

वास्तव में उपर्युक्त ख्याल की रचना हवेली-संगीत के निम्न पद में से की गई है। स्थायी के शब्दों में खास अन्तर नहीं है। किन्तु अन्तरा के पाठ में परिवर्तन किया गया है, जो अर्थ-भाव की दृष्टि से ठीक नहीं कहा जा सकता। सम्प्रदाय में 'श्रीजी' को जब 'सेहरा' का श्रृंगार धराया जाता है तब शयन के दर्शन में द्रुपद अंग से गाये जाने वाले इस पद का पूर्ण पाठ इस प्रकार है:–

राग–इमन

स्थायी– आजु सुहाग की राति* सुघर वर पायो
बनारे बलैयां लेहौं ।।
अन्तरा– तन मन धन नौछावर करिहौं,
अधर तंबोल बीरी** अनगिन देहौं ।।१।।

पाठान्तर– * रैनि, ** मुख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी– बागो लाल सुनहरी सोहै, मोर मुकुट को मोर धरें हो
आभोग– 'कृष्णजीवन लछीराम' के प्रभु सों, मिलिकें रति-रस बढ़ैहों ॥२॥

(४)

भा० हिं० सं० प० भाग-२ (पृष्ठ-४०) राग-यमन, ताल त्रिताल में छपे हुए विलंबित ख्याल का पाठ भी देखिये:–

स्थायी– पलखन सें मग झारूं रे भाई, कब घर आवे मोरा प्यारा ।
अन्तरा– तपत बुझाऊं, तन मन धन उन पर वाऊं ॥

यह चीज भी पुष्टिमार्गीय-संगीत में 'रसिक प्रीतम" की छाप का पद है । जिनमें से कुछ शब्दों को घटा-बढ़ा कर 'अन्तरा' जोड़ दिया, यह मालूम होता है । संचारी व आभोग सहित यह पद इसी राग में चौदह मात्रा की झूमरा या आड चौताल में ताल में सम्प्रदाय के वृद्ध कीर्तनकारों से सुना हुआ है, पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी– माई पलकन सौं मग झारूंगी ।
अन्तरा– या मगमें आवत मेरो पिया, तन मन जोबन वारूंगी ॥१॥
संचारी– सेज संवारो चरन तलासौं, और मधुरे सुर गाऊंगी ।
आभोग– 'रसिक प्रीतम' पिय अबकें मिलें तो, हँसि हँसि कंठ लगाऊंगी ॥२॥

(५)

हिं० सं० प० क्रमिक भाग-२ (पृष्ठ-३५५) प्रकाशन में राग आसावरी ताल-त्रिताल (मध्यलय) का ख्याल स्थायी-अन्तरा में इस प्रकार प्रकाशित किया गया है:–

स्थायी– मेरी अखीयन के भूखन गिरिधारी,
एरि सखि बल-बल जाऊँ छबीली छब पर अति आनंद सुखकारी ।
अन्तरा– परम उदार चतुर चिन्तामणि, दरस परस दुख हारी,
अतुल* सुभाव तनक तुलसीदल, मानस सेवा भारी ॥

सम्प्रदाय में शीतकाल की ऋतु में राजभोग के दर्शन-समय राग-असावरी में ही यह पद गाया जाता है । 'हिलग के पद' शीर्षक में संगृहीत पदों के संग्रह में इनका समावेश किया गया है ।

अष्टछापी संगीतकार छीतस्वामी की रचना है । इसका पूर्ण पाठ इस प्रकार है:–
स्थायी– मेरी अखियन के भूषन गिरिधारी ॥
अन्तरा– बलि-बलि जाऊं छबीली छबि पर, अति आनंद सुखकारी ॥१॥

---

* *यहाँ 'सुभाव' के स्थान पर मूल पाठ में 'प्रताप' शब्द है, शेष पाठ मूल के समान है ।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी– परम उदार चतुर चिन्तामनि, दरस परस दुखहारी ।।
आभोग– अतुल प्रताप तनिक तुलसीदल, मानत सेवा भारी ।।२।।
संचारी२–कहा बरनों गुन-गाथ नाथ के, श्री विट्ठल हृदय बिहारी ।।
आभोग२–'छीतस्वामी' गिरिधरन बिसद जस, गावत गोकुल नारी ।।३।।

(६)

क्रमिक भाग-३ में प्रकाशित किया हुआ* राग-केदार, ताल त्रिताल का विलंबित ख्याल-स्थायी-अन्तरे में निम्न शब्दों में पाया जाता है ।:–

स्थायी– बनठन कांहां जो चले ऐसी को मन भावन सांवरे सलोने कन्हाई ।
अन्तरा– दूजे कैसो चौंद्रमा नीको ही लागत, छुप छुप देत दिखाई ।

घरानेदार गायकों का यह प्रसिद्ध ख्याल हवेली-संगीत का प्राचीन ध्रुपद है । अष्ट-छाप के वाग्गेयकर 'नंददासजी' रचित इस पद को पुष्टिमार्गीय प्रणाली के अनुसार शयन-समय के दर्शन में राग केदार में ही गाने की प्रथा चालू है ।‡ सम्प्रदाय का यह प्राचीन ध्रुपद ख्याल बन जाने के बाद उनके शब्दों में कहीं-कहीं परिवर्तन सा उपर्युक्त पाठ में दिखाई देता है । संप्रदाय के संग्रहों में उनका संचारी आभोग सहित पाठ इस प्रकार प्राप्त होता है:–

स्थायी– बन ठन कहां जु चले ऐसी को मन भाई, सांवरे से कुंवर कन्हाई ।
अंतरा– मुख सोहे जैसे दूजको चंदा, छिप छिप देत दिखाई ।।१।।
स्थायी– चले ही जाओ नैंक ठाडे रहोगे, किन ऐसी सीख सिखाई ।
आभोग– "नंददास" प्रभु अब न बनेगी, निकस जायगी ठकुराई ।।२।।

(७)

क्रमिक पु. ३ में केदार राग में ही मध्यलय-त्रिताल का ख्याल जो प्रकाशित हुआ है, θ इनके मूल-गायक हैं अष्टछाप के सुप्रसिद्ध वाग्गेयकार परमानन्ददासजी । शब्दों के पाठ में कोई खास विभिन्नता नहीं होने से क्रमिक पुस्तक के पाठ को प्रस्तुत न कर सम्प्र-दाय-प्रसिद्ध पाठ ही प्रस्तुत किया जा रहा है:–

स्थायी– बड़ी है कमलापति की ओट ।
अंतरा– सरन गये ते पकरि न पाये, कियो कृपा को कोट ।।१।।
संचारी– जाकी सभा एक रस बैठत, कौन बड़ो को छोट ।
आभोग– सुमिरत नाम अघै भव भंजन, कहा पंडित कहा बोट ।।२।।

---

* *हिं० सं० प० भाग-३, पृष्ठ-*

‡ *क्वचित् आजकल हमन राग में भी सुनने में आता है*

θ *हिं. सं. प. भाग–३, पष्ठ*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी– जद्यपि काल बली अति समरथ, नाहिन ताको चोट ।
अंतरा— 'परमानन्द' प्रभु पारस परसत, लोह कनक नहि खोट ।।३।।

(८)

क्रमिक पु. ३ में राग-विहाग, ताल-त्रिताल का छोटा ख्याल का प्रथम छपा हुआ* पाठ देखिए:—

स्थायी– तेरे सिर कुसुम बिथुर रह्यो भामनि, सोभा देत मानों नभ निसि तारे ।
स्याम अलक छुटि रही री बदन पर, चांद छिप्यो मानों बादर कारे ।।

अंतरा– मुक्तमाल मानो मान सरोवर, कुच चकवा चकवी दोऊ न्यारे ।
'कुंभनदास' गोवरधनधारी, बस कीने नंदलाल पियारे ।।

ताल सुरफागता (सूलताल) में गाये जाने वाले इस ध्रुपद का सम्प्रदाय की सायं-सेवा में शयन के दर्शनान्तर के समय प्रायः शीतकाल में जब बादल होते हैं तब राग-विहाग में ही गान किया जाता है । ख्याल बन जाने पर चतुर्थ पंक्ति में कुछ पाठान्तर हो गया है। छाप में भी मतभेद दृष्टिगत होता है । कुंभनदासजी के अतिरिक्त नायक 'धौंधी' की यह रचना भी हवेली-संगीत में निम्न पाठ में प्रचलित है—

स्थायी– तेरे सिर कुसुम बिखर रहे भामिनी, शोभा देत मानों नभ घन तारे ।
अंतरा– स्याम अलक छुटि रही बदन पर, चंद छिप्यौ मानों बादर कारे ।।१।।
संचारी– मोतिन माला मानों मानसरोवर, कुच चकवा दोऊ न्यारे न्यारे ।
आभोग– 'धौंधी' के प्रभु तीन लोक बस कीने, ते बस कीने आली नंददुलारे ।।२।।

(९)

क्रमिक-भाग-३ में राग-मालकौंस, ताल-एकताल का बड़ा ख्याल छपा हुआ है, जो आज कल विशेष प्रचार में है । इनका शब्द पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी–पीर न जानी बलमा देखे तेहारी अनोखी रीत ।
अन्तरा– ऐसो निरमोही भइला बलमा, अजहुं न आये कहां की रीत ।

छपा हुआ पाठ ही आज कल प्रचार में सुनने में आता है। 'तानसेन' की इस रचना का शुद्ध और पूर्ण पाठ प्राप्त न होने पर कर्णोपकर्ण द्वारा जो कुछ सुना होगा उनमें स्थायी के शब्द कुछ मिलते हैं, किन्तु अंतरे के पाठ में कुछ

* हि. सं. प. भाग–३–पृष्ठ
शुद्ध पाठ 'कुंभनदास प्रभु गोवरधनधर'
'कुंभनदास 'कांकरोली प्रकाशन पृ. १०७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिलते जुलते शब्द जोड़ दिए गए दिखाई देते हैं तथा ख्यालों में प्रायः संचारी-आभोग वर्ज्य ही होते हैं। सदारंग-अदारंग के समय में ही इस द्रुपद की ख्याल रचना होने की संभावना है।

उपर्युक्त बड़े ख्याल की बंदिश के शब्द हवेली संगीत परंपरा के निम्न लिखित द्रुपद से लिये गये हैं। संचारी-आभोग सहित इस पद को शीतकाल में राग-मालकौंस चौताल में गाने की प्रथा है। मंगला से शृंगार समय तक गाये जाने वाले 'खंडिता के पद राग-मालकौंस, के कीर्तनों में इनका समावेश किया हुआ है। 'तानसेन' की इस रचना का पाठ सम्प्रदाय के लिखित संग्रह में इस प्रकार प्राप्त हुआ है:—

स्थायी– पीर न जानी हो पिय, देखी तिहारी अनोखी प्रीत ।
अंतरा– हमसों अवधि बदी अनत बिलम रहे, कौन गाम की रीत ।।१।।
संचारी– तारे गिनत चार जुग बीते, कौन के भवन सिधारे मीत ।
आभोग– 'तानसेन' के प्रभु अब न पत्याऊं तुम्हें करि राखौं रस रीत ।।२।।

(१०)

क्रमिक पु. ४ में ललित राग, त्रिताल का विलंबित ख्याल का स्थायी-अंतरा का पाठ इस प्रकार छपा हुआ है*:—

स्थायी– प्यारी तेरे नैन रागमगे, निस पिय सौं ंग जागे ।
अंतरा– अरुन बरन सोभित आलस भरे, अति रति रती रस पागे ।।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन-सेवा प्रणाली में माघशीर्ष १५ के पश्चात् पौष मास में प्रात: मंगला तथा शृंगार-समय राग ललित-मालकौंस में खंडिता के पद गाये जाते हैं। द्रुपद-धमार अंग के पद को उपर्युक्त वड़ा-ख्याल की बंदिश में प्रकाशित किया गया है। अष्टछाप के वाग्गेयकार श्री 'कृष्णदास' जी-रचित यह कीर्तन सम्प्रदाय में ललित राग में ही गाया जाता है। प्राचीन संग्रहों में इसका संचारी आभोग सहित पाठ इस प्रकार प्राप्त होता है:—

स्थायी– प्यारी तेरे नैन रंगमगे निस पिय संग जागे ।
अंतरा– अरुन बरन सोभित आलस भरे, रति रस रंग पागे ।।१।।
संचारी– पलक पीक मौंह रमि रही अली, मानों कमल परागे ।
आभोग– 'कृष्णदास' प्रभु गिरिधर पिय संग, हरि रहसि मुख लागे ।।२।।

(११)

राग-ललित-त्रिताल का बड़ा-ख्याल क्रमिक पु.-४ के अनुसार निम्न प्रकार है‡:-

स्थायी– उनींदे कान्ह आये मेरे नैन भरे रसमाते ।
अंतरा– डगमग पांई धरत धरनी पर, बेनू बोलत अरुझाते ।

---

* *हिं. सं. प. पृष्ठ–४९९ (प्रति सन् १९३९)*
‡ *हिं. सं. प. पृष्ठ ५०१ (प्रति सन् १९३९)*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपर्युक्त पाठ ठीक है, केवल अन्तरा में बेनू के स्थान पर बेन शब्द चाहिए, यह भी सम्प्रदाय के ललित राग की खंडिता का पद है जो कि पौष मास में गाया जाता है। लिखित संग्रह में इसका संपूर्ण पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी– उनींदे कान्ह आयेरी मेरे नैन भरे रसमाते ।
अंतरा– डगमग पांइ धरत धरनी पर, बैंन बोलत अरुझाते ॥१॥

संचारी– सब अंग सिथिल श्रम-जल भीने, वारंवार जूंमाते ।
आभोग– काजर रेख रही अधरन पर, काहे कों स्याम लजाते ॥२॥

संचारी २–बिनगुन माल बिराजत उर पर, नखक्षत नांहि छिपाते ।
आभोग २–'सूरदास' प्रभु सांचि कहों तुम, कौन त्रिया रंगराते ॥३॥

(१२)

ललित राग का भावमय पद का स्थायी-अंतरा क्रमिक पुस्तक–४ में विलंबित-त्रिताल का वड़ा ख्याल होकर निम्न शब्दों में छपा हुआ है:—

स्थायी– भोरेहि आये मेरे द्वारे जोगीआ के अलक कहे कर जगाये ।
अंतरा– मोहनि मूरत अलबेली सी नैना रसीले अनुरागे ।

यह चीज भी हवेली-संगीत का प्राचीन पद है, नायक 'धोंधी' रचित इस कीर्तन का शीत-ऋतु की ललित-मालकौंस के 'खंडिता' के पदों में समावेश किया गया है तथापि 'जोगिया' 'अंग भभूत' 'वरोगे' आदि शब्दों का भाव 'हरि कियो हर भेख' की भावना की ओर ले जाता है। खंडिता के अन्य पदों में इस प्रकार का भाव इस कीर्तन में ही प्राप्त होता है, जिसका सम्पूर्ण पाठ सम्प्रदाय के संग्रहों में से निम्न प्रकार* प्राप्त हुआ है:—

स्थायी– भोरही आये मेरे पाछें जोगिया अलख कहि कहि जागे ।
अंतरा– मोहिनी मूरति अँन मेंन सी, नैंन भरे अनुरागे ॥१॥

संचारी– अंग भभूत भरे गरें सेली, दरसत ही बैरागे ।
आभोग– तन मन वारोंगी 'धोंधी' के प्रभु को राखोंगी एक सुहागे ॥२॥

(१३)

क्रमिक भाग–4 पृष्ठ–739 पर राग-मुलतानी, त्रिताल का छोटा ख्याल स्थायी और दो अन्तरे में निम्नलिखित शब्दों में छपा हुआ है:—

* सं. कीर्तन पद्धति पृ १०८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी– करि गोपाल की सब होये, गोपाल की सब होये ।
अंतरा– जो रच राखी नौंदनंदननें, मेट सके नहिं कोये ॥
अंतरा–२ जौंत्र मौंत्र टोना यह उदम सब अत झूठे सब जोये ॥

यह चीज भी पुष्टिमार्ग के अष्टछापी परमानंददासजी-रचित पद है। 'सूर' के भी कई पद लोग मनमाने राग में गाते हैं। हवेली-संगीत की प्राचीन प्रथा में सायं-सेवा की समाप्ति में जो आश्रय के पद गाये जाते हैं, उनमें इस पद का समावेश है। यह बिहाग राग में गाया जाता है। सम्प्रदाय के संग्रहों में इस पद का बिहाग राग में छपा हुआ पाठ प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है:—

स्थायी– कियो गोपाल को सब होय ।*
अंतरा– जो जानें पुरुसारथ अपनो, अतिसै झूठो सोय ॥१॥
संचारी– दुख सुख लाभ अलाभ सहज गति, नाहिन मरिये रोय ॥
अंतरा–२ जो कुछ लेख लिख्यो नंदनंदन, मेटि सके नहिं कोय ॥२॥
संचारी–२ जंत्र मंत्र साधन उद्यम बल, ये सब डारों धोय ।
आभोग– 'परमानंददास' को ठाकुर, चरन कमल चित पोय ॥३॥

(१४)

क्रमिक भाग-5 दुर्गा राग में ताल-त्रिताल के विलंबित (वड़ा) ख्याल का पाठ निम्न प्रकार प्रकाशित हुआ है:—

स्थायी– अहो जिन बोलो पिया मोसों तुम आजे ।
अंतरा– जहां बसे निस वहां सिधारो, काहे हमसों आजे ॥

उक्त ख्याल वास्तव में हवेली संगीत का पद है। यह अष्टछाप के वाग्गेयकार श्री 'छीतस्वामी' की रचना है। बिलावल राग की खंडिता का यह कीर्तन प्रातः मंगला या शृंगार के समय गाने को प्रथा है। संचारी आभोग सहित ठीक पाठ इस प्रकार है—

स्थायी– (अहो) जिन बोलो पिय मोसों आज ।
अंतरा– जहां बसे निस ताहिकें सिधारो (लाल) हमसों‡ कहा है काज ॥१॥
संचारी– सगरी रैन मोहि मग जोवत गई, दही मदन की दाज ।
आभोग– 'छीतस्वामी' गिरिधर दृग जोरत, आवत नाहिन लाज ॥२॥

---

* *पाठान्तर–कियो सब गोपाल ही को होइ*

‡ *पाठान्तर–मोतें*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१५)

क्रमिक पु. ५,* राग-ललित-पंचम का त्रिताल में प्रकाशित बड़ा-ख्याल का पाठ भी देखिए:—

स्थायी– आलस उनीदें नैन लाल तिहारे, कहां तुम रैन बिताये ।
अंतरा– पीक कपोलन देखियत है, अधरन अंजन लखाये ।।

पुष्टिमार्गीय प्रणाली में शीतकाल में गाये जाने वाले 'ललित मालकौंस' की खंडिता का यह द्रुपद अंग का 'राग-ललित' का पद गायकों के घराने में 'ललित-पंचम' का बड़ा ख्याल वन चुका है। वास्तव में यह अष्टछाप के श्री 'नंददास जी' का गाया हुआ प्राचीन कीर्तन है, जिसका संपूर्ण पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी– आलस उनींदे नैन लाल तिहारे, कहां तुम रैन बसाये ।
अंतरा– पीक कपोलन देखियत है (पिय) अधरन अंजन लखाये ।।१।।

संचारी– जावक भाल लग्यो पिय छतियां, नखक्षत चिन्ह दिखाये ।
आभोग– 'नंददास' प्रभु बोलत भले, भोर भये उठि आये ।।२।।

(१६)

भातखंडे क्रमिक पु. ५‡ में राग-ललित-पंचम का छोटा ख्याल प्रसिद्ध हुआ है; उसका शब्द-पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी– कहो तुम सांचि कहां तें जु आये, भोर भये नंदलाला ।
अंतरा–पीक कपोलन लाग रही है, घूमत नैन विशाला ।

इस ख्याल के स्थायी-अंतरा हवेली-संगीत के पद से ही लिये गये हैं। शीतकाल में ललित राग में गाया जाने वाला अष्टछाप के 'कृष्णदास'-रचित खंडिता का यह कीर्तन मंगला-समय का है। सम्प्रदाय के संग्रहों में इनका सम्पूर्ण पाठ निम्न प्रकार प्राप्त होता है :—

स्थायी– कहो तुम सांची कहां ते आये, भोर भये नंदलाल ।
अंतरा– पीक कपोलन लागि रही है, घूमत नैन बिसाल ।।१।।

संचारी– लटपटी पाग अटपटे भूखन,θ उरसि मरगजी माल ।
आभोग– 'कृष्णदास' प्रभु रसबस करि लीने, धन धन ब्रज की† बाल ।।२।।

---

* *हिं. सं प. भाग–५ हिन्दी आवृत्ति १९६३ पृष्ठ–३६७*
‡ *हिं. सं. प. भाग–१ पृष्ठ ६३ हिन्दी प्रकाशन १९६३ ।*
पाठान्त:र θ पेचन † यह व्रजवाल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१७)

क्रमिक पु. ५ में छपा हुआ राग-जेतश्री, झूमरा ताल का वड़ा-ख्याल भी पुष्टि सम्प्रदाय के द्रुपद के स्थायी अन्तरा ही है। इसका पाठ इस प्रकार दिया गया है:—

स्थायी– हालरियां माई हलराऊं हुलराऊं ।

अंतरा– अगर चंदन को पलना बनाऊं, हीरा मोतियन लालरियां ।।

उपर्युक्त अनुसार यह ख्याल की रचना बन चुकी है, यह असल में हवेली-संगीत का राग-टोडी-चौताल का द्रुपद है। सम्प्रदाय में 'श्रीजी' को जव चंदन (सूखड) के पलना में झुलाया जाता है तव यह कीर्तन (पद) विशेष रूप से गाया जाता है। इसका सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी– अरी० मेरी माई लराऊँ हुलराउं हालरियां।

अंतरा– अगर चंदन को पलना घड़ायो, बीच बीच हीरा मोती लालरियां ।।*

संचारी– सखी‡ सहेली मंगल गावहुं, बांधो बंदन-मालरियां

आभोग– कृष्ण जीवन लछीराम के प्रभुθ (माई) वारौंगी मोतिन मालरियां ।।

द्रुपद के स्थायी अंतरा को ख्याल के स्थायी-अन्तरा बनाने में बंदिश की दृष्टि से कहीं-कहीं शब्दों को आगे-पीछे या कम-ज्यादा करके या कोई मिलता जुलता शब्द लगा दिया गया है। उक्त द्रुपद की स्थायी में से 'अरी मेरी' शब्द तथा अंतरे में 'बीच-बीच' शब्द कम कर दिये हैं और अंतरा में 'घडायो' के स्थान पर 'वनाऊं' शब्द लगाकर बंदिशकार ने इच्छित राग (जेतश्री) ताल (झूमरा) में विलंवित ख्याल की रचना की है।

(१८)

पं. वि. ना. पटवर्धनजी के राग-विज्ञान, भाग-१ राम छायानट, ताल-झूमरा (बड़ा-ख्याल) की चीज का पाठ भी निम्नलिखितानुसार है–

*स्थायी–*प्रगट भई शोभा त्रिभुवन की भानु गोप के आई ।

*अंतरा–*अद्‌भुत रूप देखि ब्रज-वनिता रीझी लेत बलाई ।।

यह श्री राधाजी की जन्म-बधाई का प्राचीन पद है, राधाष्टमी के अवसर पर हवेली संगीत प्रणाली में धमार ताल में राग सारंग या कान्हरा में गाने की

---

० माई हुलराऊं जुलराऊं हालरियां * झालरियां

‡ सखी लहेली बन-बन आई, मालिन लाई डालरियां ।।

θ प्रभु पर वारि डारूं मोतिन लालरियां ।।२।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रथा आज भी चालू है, जिनका गायकों में उपर्युक्त पाठानुसार ख्याल की बंदिश में प्रचार हो रहा है। यह अष्टछाप के 'सूर" की रचना है, सम्प्रदाय के संग्रहों में इसका पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी–प्रगट भई सोभा त्रिभुवन की श्रीवृषभान गोप के आई।
अंतरा–अद्‌भुत रूप देखि ब्रज-वनिता, रीझि-रीझि के लेत बलाई ।।१।।
संचारी–नहिं कमला नहिं सची रति रंभा, उपमा उर न समाई।
आभोग–जातें प्रगट भये ब्रज-भूषन, धन्य पिता धन्य माई ।।२।।
सं.२–जुग-जुग राज करो दोऊ जन, इत तुम उत नंदराई।
आ.२–उनके मदनमोहन इत राधा, "सूरदास" बलिजाई ।।२।।

(१९)

पं. पटवर्धनजी के "राग-विज्ञान, द्वितीय-भाग" में* राग पूर्वा एकताल का बड़ा ख्याल निम्न शब्द-पाठ में छपा हुआ है:–

स्थायी–बसे मेरे नयनन में दोउ चन्द
गौर वर्ण वृषभानु-नन्दनी, शाम वरण नंदनन्द।
अंतरा–गोलक रहे लुभाय रूप में, निरखत आनंद कन्द ।।

ख्याल-गायन में संचारी-आभोग की अनावश्यकता के कारण बंदिशकारों की इस तरफ उपेक्षा-वृत्ति होना संभव है। अतः उन्हें कृष्णलीला की अप्रचलित और भाव-पूर्ण दो पंक्तियाँ प्राप्त होने पर इच्छित राग में वे ख्याल के स्थायी-अन्तरा की बंदिश में लगा देते थे। उपर्युक्त प्रकाशित पाठ की स्थायी के शब्दों में विशेष भिन्नता नहीं है। अन्तरे का पूर्व भाग भिन्न है। वास्तव में यह "हवेली-संगीत" का पद है। "श्रीजी" को जब "सेहरा" का श्रृंगार होता है तब इसे सायं-सेवा के (द्वितीय दर्शन) भोग-समय में राग "नट" में गाने की प्रथा है। यह सम्प्रदाय के मध्यकालीन वाग्गेयकार "श्री हरिराय प्रभु" की रचना है। सम्प्रदाय के संग्रहों में पाठ निम्न प्रकार प्राप्त होता है:–

स्थायी–बसो मेरे नैनन में दोउ चंद ।।
अंतरा–कनक बरन वृषभान नंदिनी, स्याम बरन नंद-नंद ।।१।।

(२०)

राग-विज्ञान, भाग-२ में राग-दुर्गा, ताल-तिलवाडा θ का विलंवित ख्याल का छपा हुआ पाठ देखिए:–

---

* पृष्ठ-२ (ई. स. १९३७ प्रकाशन)
θ पृष्ठ-१२२ (ई.स. १९३७ प्रकाशन)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी–सुनि धून मुरली बैन बाजे हरी रास रचो ।
अतरा–हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी, नीके ही आज गोपाल नचो ।।

उपर्युक्त ख्याल भी पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणाली का प्राचीन ध्रुपद है । शरदोत्सव के दिन यह पद राग-केदार में गाया जाता है । स्वामी "हरिदासजी" रचित इस ध्रुपद की स्थायी और आभोग को दुर्गा राग की बंदिश में स्थायी और अन्तरा कर दिया गया है । इसका ठीक पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी–सुन धुनि मुरली बन बाजै, हरि रास रच्यो ।
अंतरा–कुंज-कुंज द्रुमवेलि प्रफुल्लित, मंडल कंचन मनिन खच्यो ।।१।।
संचारी–निर्तत जुगल* किसोर जुवतिन संग, दोउ मिलि राग केदारो सच्यो।
आभोग–'हरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी, नीके आजु गोपाल नच्यो ।।२।।

(२१)

राग-विज्ञान भाग-३ में राग गुर्जरी टोडी, त्रिताल का मध्यलय ख्याल, जो पुष्टि-मार्ग का सूरदास-रचित "पलना का" पद है, आठ पंक्ति का संपूर्ण पाठ छपा हुआ है । इसमें कोई विशेष भिन्नता न होने पर भी कहीं-कहीं पाठ भेद है। प्रथम राग-विज्ञान में छपा हुआ पाठ देखिए:–

स्थायी–यशोदा हरि पालने झुलावै, हलरावै दुलरावै जोई सोई कछु गावै ।
अंतरा–मेरे लाल को आऊ निंदरिया काहे न आनि सुआवै।
तू काहै न बेगि सों आवै तोको कान्ह बुलावै ।।१।।
कबहूं पलक हरि मूंद लेत है कबहूं अधर फरकावै ।।
सोवत जानि मौन है है हरि करि करि सैन बुलावै ।।२।।
इहि अंतर अनुलाई उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै ।।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नन्द-भामिनी पावै ।।३।।

हवेली-संगीत में उपर्युक्त पद, जो ख्याल बन चुका है, राग बिलावल, ताल-धमार में पलना-दर्शन-समय गाने की परंपरा आज तक है । संग्रहों में भी राग-बिलावल ही लिखा हुआ है ! शुद्ध पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी–जसोदा हरि पालने झुलावै ।
अंतरा–हुलरावै हुलराइ मल्हावै, जोई सोई कछु गावै ।।१।।
स्थायी–मेरे लाल को आउ निंदरियां, काहै न आई सुवावै ।
आभोग–तू काहे न बेगि ही आवत, तोकों कान्ह बुलावै ।।२।।

---

*पाठान्तर : * नवल किसोर*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कबहुं पलक हरि मूंदि लेत हैं, कबहुं अधर फरकावै ।।
सोवत जानि मौन ह्वैके रहे, करि करि सैन बतावै ।।३।।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुर हुलावै ।।
जो सुख "सूर" अमर मुनि दुर्लभ, सो नित जसुमति पावै ।।४।।

(२२)

राग-विज्ञान, भाग-३ में राग-ललित, तीन ताल (मध्यलय) का ख्याल भी निम्न प्रकार से प्रकाशित हुआ है:—

स्थायी—जागो हो मोरे जगत उजियारे,
कोटि मदन मुसकनि पर वारत कमलनयन के तारे ।
अंतरा—ग्वाल बच्छ सबरे संग लै के, यमुना तीर पर जाउ सवारे ।।

राग-ललित में प्रकाशित उपर्युक्त ख्याल हवेली-संगीत का प्राचीन-परंपरागत राग-भैरव का पद है जो कि आज भी "श्रीजी" को जगाने के समय सुनाई पड़ता है। शुद्ध पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी— — — — — जगत उजियारे ।
अंतरा—कोटि मदन वारौं मुसकनि पर, कमल नैन अखियन के तारे ।
संचारी—सुरभी-बच्छ ग्वालन संग लैकें, जमुना के तीर जाउ मेरे प्यारे ।।
आभोग— — — — — दूर जिनि जाओ मेरे ब्रज रखवारे ।

(२३)

संगीताचार्य "श्री राजा भैया पूछवाले" की संगीतोपासना पुस्तक में पृष्ठ-४२ पर छपा हुआ "राग-विहागड़ा, ताल-आड़ा चौताल" का विलंबित ख्याल का शब्द पाठ इस प्रकार है:—

स्थायी—प्यारी पग हूं जैसी पग हूं की पायल बाजै ए मान ।
अंतरा—जागै सब ब्रिज के लोग ओर जागै अरे हटेली, नेक कहिए मान ।

उपर्युक्त वड़ा-ख्याल, जो ग्वालियर घराने की चीज वनने पर गायकों में प्रसिद्ध हो चुका है, इस चीज को हमने आगरा घराने के श्रेष्ठ गायक श्री फैयाज-खांजी से भी विहागडा राग में सुना है, किन्तु उनके स्थायी के शब्द थे "प्यारी पग हौलें हौलें धर, जैसे तेरे पायल वाजै ए मान"। वास्तव में यह चीज पुष्टिमार्गीय कीर्तन परंपरा का पद है । यह शयन के दर्शनान्तर गाये जाने वाले 'मान के पद' संग्रह का पद है । अष्टछाप के कविवर श्री नंददासजी की इस रचना को आज भी विशेषतः "विहागडा" राग में ही गाने की प्रथा है, सम्पूर्ण पाठ इस प्रकार है:—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थायी– प्यारी पग० हौलें हौलें धर, जैसे तेरे नुपूर न बाजै ॥ध्रु॥

अंतरा– जागै* जो ब्रज को लोग नाहिन सुनाये जोग,

हाहारी हठीली नेक‡ मेरो कह्यो कर ।

संचारी– जौंलों ब्रज बीथन माँहि सघन कुंज की परछाँहि,

तौंलों मुख ढाँप चलि कुंवरि रसिक बर ।

आभोग– नंददास प्रभु प्यारी छिनहू न होउ न्यारी,

सरद उजियारी जामें जैहों कहुं रर ॥२॥

(२४)

पुष्टि-सम्प्रदाय की कीर्तन प्रणाली का निम्न पद भी गायकों के घरानों का बड़ा-ख्याल वन चुका है । इसे श्री जयसुखलाल शाह ने अपने "कानडा के प्रकार" नामक पुस्तक में पृष्ठ-२५० पर राग "रायसा कानडा" में प्रसिद्ध किया है । विलंवित त्रिताल में निवद्ध किये हुए इस ख्याल के स्थायी अंतरा का पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी– री तुम समझ समझ नाहीं कछु,

उठ चल पिया पास पहेर गहेनो ।

अंतरा– कबकी मैं ठाड़ी नेहोरो करत हूँ,

एरी मेरी प्यारी तोहैं नाहीं लीनो ।

उपर्युक्त चीज वास्तव में पुष्टिमार्गीय कीर्तन परंपरा का पद है। तानसेन की रचना है । शयन के दर्शन में 'राग नायकी" में यह गाया जाता है । नित्य-पद के संग्रहों में भी राग नायकी के अंतर्गत पदों में ही सुप्रसिद्ध है । किन्तु ख्याल बंदिश बनाने वालों ने राग और शब्द-पाठ भी कुछ भिन्न कर दिये हैं । सम्प्रदाय के संग्रहों में इनका शब्द-पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी– अरी तोमें समुझ नाहिन उठि चल री

प्रिये θ पहरि गहेनों ।

अंतरा– कबकी मैं ठाडी मनावत तोकौं,

चलरी सखी तोहि नाहिन रहेनों ॥१॥

पाठान्तर : ० हरें हरें

‡ जागत ब्रज के लोग नाहिं सुनायवे जोग

* भोरी

पाठान्तर : θ पिय में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी– यह तेरो ज्ञान ध्यान यह नयो जोबन,
यह ससि-मुख तें नाहिन कहेनों ।।

आभोग– तानसेन के प्रभु वे बहुनायक,
सब सखियन में तेरोई लहेनों० ।।२।।

(२५)

राग-नायकी का निम्नलिखित ख्याल भी घरानेदार गायकों में सुप्रसिद्ध है । "कानडा के प्रकार" पुस्तक में पृष्ठ-२१६ पर राग नायकी-कानडा, ताल-त्रिताल में इसका शब्द-पाठ निम्नानुसार छपा हुआ है:–

स्थायी– मेरो पिया रसिया पिया रसिया
सुनरी सखी मेरो दोष कहां भयो ।

अंतरा– नवल लालको सब को जाने,
कौन गांव की रीति ।।

उपर्युक्त ख्याल को कोई नायक विलंबित में भी गाते हैं । किन्तु इस ध्रुपद अंग की प्राचीन चीज को ख्याल के ढांचे में ले जाने के लिए बंदिशकारों ने शब्दों में तोड़-मरोड़ की है । स्थायी और अन्तरे के अंतिम शब्दों के प्रासानुप्रास विपरीत दिशा में हैं । संचारी-आभोग सहित अष्टछाप परंपरा का यह पद पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणाली में नित्य क्रम की सेवा में शयन के दर्शन में राग-नायकी में ही गाया जाता है । सम्प्रदाय के संग्रहों में इनके तीन पाठ प्राप्त होते हैं । प्राचीनता की दृष्टि से प्रथम रचना (अष्टछाप के) श्री परमानंददासजी की, द्वितीय और तृतीय रचना "तानसेन" और "कृष्णजीवन" की है । तीनों रचनाओं के पाठ निम्न प्रकार हैं:–

* पाठ–१

स्थायी– सुनरी सखी तेरो दोस नहीं, मेरो पिय रसिया ।।
अंतरा– जोई देखत सोई †लुभाय रहत हैं, कौन-कौन के मन वसिया ।
संचारी– ऐसीθ कौन त्रिय जिन पिय बस कर लीने, नेकु चिते हसिया ।।
आभोग–"परमानंद" प्रभु कुंवर लाडिलो, अबहि कछु भींजत मसिया ।

** पाठ–२

स्थायी– अरी मेरो पिय रसिया, तेरो दोस नहीं री ।।

अंतरा– एकन सौं नैन सैन एकन सौं मीठे बैन,
एकन सों हाथ जोरि-जोरि हसिया ।।१।।

---

० महेनो
* परमानंद सागर पाठान्तर– † "भूलि"
θ सौ को जो न करी वस अपने, जातन नेंकु चितें हसिया
** ह. सं. १, नित्य (प्रत-सं. १८८९)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचारी– एकन सों (रस) बतियां करत मिलि,
नैनन सों नैन जोरि मृदु मसिया ।।
आभोग– तानसेन के पिय तुम बहुनायक,
जैसे सरद पून्यों ससिया ।।२।।

* पाठ–३

स्थायी– मेरो पिय रसिया,
सुनरी सखी तेरो दोस नहीं री ।।
अंतरा– नवल लाल कों सब कोऊ चाहत,
कौन-कौन के मन बसिया ।।
संचारी– एकन सों नैना जोरे एकन सों भोंह मरोरें,
एकन सों मुख हसिया ।।
आभोग– "कृष्णजीवन" लछीराम के प्रभु माई,
संग डोलत पूरन ससिया ।।

(२६)

भावनगर के प्रसिद्ध राजगायक स्व. उ. दलसुखरामजी राग पूर्वी, एकताल में मध्यलय का जो ख्याल उनके घराने के ढंग से गाया करते थे उसका शब्द-पाठ निम्न प्रकार है:–

देखो गोपाल जु की आवनी,
स्याम सुन्दर कमलनयन, मूरति मन भावनी ।
बरुहा चंद सीस धरें, गुंजामनि माल धरें ।
"परमानंद" स्वामी गोपाल, अंग अंग नचावनी ।

उपर्युक्त ख्याल वास्तव में हवेली संगीत का पद-कीर्तन है, जो सायं सेवा में संध्यार्ति के दर्शन के समय राग "गौरी" में गाया जाता है । ताल-धमार है । मुकुट का श्रृंगार होता है तव यह पद गाने की प्रथा है । मुकुट वर्णन का पद-पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी– देखि गोपाल की आवनी,
अंतरा– कमल-नयन स्याम सुंदर, मूरति मन भावनी ।।१।।
संचारी– वरुहचंद सीस मुकुट, गुंजा मनि लावनी ।।
आभोग– "परमानंद" प्रभु गिरिधर, अंग अंग नचावनी ।।२।

---

* कीर्तन संग्रह (ल. छ.)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(२७)

"संगीत कलाधर" ग्रन्थ में राग–"गारा-कान्हरा" में मध्यलय त्रिताल में जो ख्याल पृष्ठ ४६१ पर प्रकाशित किया गया है । जिनके स्थायी के शब्द हैं "सुन सुत एक कथा कहुं प्यारी" । यह ख्याल हकीकत में पुष्टिमार्गीय संगीत प्रणाली का पद है । इसे बाललीला के पदों में श्रीजी को पौढ़ाने के समय राग-बिहाग में गाया जाता है। सम्प्रदाय के संग्रहों में इनका "कहानी के पद' में समावेश किया गया है । शब्द-पाठ इस प्रकार है:–

स्थायी– सुन सुत एक कथा कहौं प्यारी,

अंतरा– नंदनंदन मन आनंद उपज्यो, रसिक सिरोमनि देत हुंकारी ।

संचारी– दशरथ नृप जो हते रघुबंसी, तिनके प्रगट भये सुत चारी ।

आभोग– तिनमें राम एक-व्रतधारी, तिनके प्रगट भये सुत चारी ।

संचारी– २ तात बचन सुनि राज तज्यो है, भ्राता सहित चलु बनचारी ।

आभोग– २ धावत कनक-मृगा के पाछें, राजीवलोचन केलि बिहारी ।

रावन हरन कियो सीता को, सुनि न नींद निवारी ।

"परमानंद" प्रभु रटत चाप कर, लछमन के दे जननी श्रम भारी ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तालाध्याय

प्रथम प्रकरण : ताल-विवरण

अष्टछाप (हवेली) संगीत के ताल विवरण में प्राचीन उत्तर भारतीय ताल-प्रणाली की झांकी दिखाई देती है। सम्प्रदाय के पद-संग्रहों की पुरानी पोथियों में कुछ कीर्तनों के शीर्षक में 'अठताल, मठताल, ध्रुवताल, इकताल इत्यादि, ताल-नाम दृष्टिगत होते हैं। ये ताल अधिकतर आज भी दाक्षिणात्य (कर्णाटकी) ताल-प्रणाली में सुप्रसिद्ध हैं। यद्यपि दाक्षिणात्य सम्प्रदाय के सप्ततालों के नाम एवं कुछ प्रकारों का प्रयोग अष्टछापादि ने अपनी गान-पद्धति में किया है, तथापि दक्षिण की कर्णाटकी ताल प्रणाली उत्तरीय प्रणाली से सर्वथा भिन्न है। इस प्रणाली के ताल-नामों का प्रयोग अष्टछाप ने अपनी उत्तरीय पद्धति में किस रूप से किया होगा ? इस प्रश्न की चर्चा उत्तरीय और दाक्षिणात्य ताल-पद्धति के विवरण में आगे की जायगी। तत्पूर्व यहाँ ताल-संबंधी विचार करेंगे । प्रथम हम ताल शब्द क्या है—उसका अर्थ संगीत रत्नाकर में दी हुई निम्न व्याख्या के आधार पर समझेंगे।

ताल

तालस्तलप्रतिष्ठायामितिर्धातोर्घञ्ि स्मृतः ।
गीतं वाद्यं तथा नृत्तं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ।।
कालो लघ्वादिमितया क्रियया सम्मितो मितिम् ।*

भावार्थः—ताल शब्द प्रतिष्टार्थक 'तल' धातु से व्यत्पन्न हुआ है। क्योंकि गीत, वाद्य और नृत्य ताल में ही प्रतिष्ठित होते हैं । लघु, गुरु, प्लुत से युक्त क्रिया द्वारा इन तीनों कलाओं को परिमित करने वाला 'काल' ही 'ताल' कहलाता है।

ताल के दस प्राण :—

ताल में दस तत्वों का समावेश होता है। वे ताल के प्राण माने जाते हैं। शास्त्रकारों ने इन दस प्राणों का निम्न प्रकार विधान किया है:—

कालो मार्गः क्रियांगानि ग्रहो जातिः कला लयाः ।
यतिः प्रस्तारकश्चेति तालप्राणा दश स्मृताः ।।वही—५।।

---

* सं. रत्नाकर अ. सं. तालाध्याय पृ. ३,४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१. काल, २. मार्ग, ३. क्रिया, ४. अंग, ५. ग्रह, ६. जाति, ७. कला , ८. लय, ९. यति और १०. प्रस्तार, ये ताल के दस प्राण हैं । जिनका आवश्यक विचार क्रमशः नीचे किया जाता है ।

१. काल

काल का सामान्य अर्थ है समय । संगीत की गायन, वादन एवं नृत्यादि कलाकृतियों द्वारा जितना समय प्रयोग में लिया जाता है वह 'काल' ही है। इस काल के प्रमाण को नापने के लिए मात्रा-काल ही महत्व का है। लघु, गुरु और प्लुत ये तीनों शब्द मात्रा-काल के ही नाम हैं।

हस्तद्वयस्य संयोगे वियोगे चापि सर्वदा
व्याप्तिमान् यः समादिष्टः स कालस्ताल संज्ञक : ॥९॥

भावार्थः—दोनों हाथों के संयोग से जो ध्वनि होती है, वे 'ताल' संवेदन हैं और हाथों के वियोग की 'काल' संज्ञा है। अर्थात् दोनों हाथों को मिलाने पर या अलहदा करने में जो काल विद्यमान रहता है, उसी काल की संज्ञा, नाम ताल है।

२. मार्ग

मार्ग का साधारण अर्थ है रास्ता। "संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ में मार्ग के १. ध्रुव, २. चित्र, ३. वार्तिक और ४. दक्षिण, ये चार मार्ग-भेद बताये गये हैं। ध्रुव एक कला से और शेष क्रमशः दो, चार और आठ कलाओं से बनते हैं।* 'चूड़ामणि' में ६ और 'मणिदर्पण' में १२ मार्ग बताये गये हैं। द्रुत, अणुद्रुत, लघु, गुरु आदि कला-विरामों को प्रस्तार की रीति या मार्ग कहा जाता है।

३. क्रिया

‡ क्रिया दो प्रकार की हैं—निःशब्द और सशब्द। 'निःशब्द' के चार भेद १. आवाप, २. निष्क्राम, ३. विक्षेप और ४. प्रवेश है।†

---

* *मार्गाः स्युस्तत्र चत्वारो ध्रुवश्चित्रश्च वार्तिकः*
दक्षिणश्चेति तत्र स्याद् ध्रुवेक मात्रिका कला ॥१६।
शेषेषु द्वेचतस्त्रोऽष्टौ क्रमान्मात्राः कला भवेत् ॥

‡ *निःशब्दा शब्दयुक्ता च क्रियातु द्विविधा मता ।*

† *निःशब्दा तु कला प्रोक्ता चतुर्धा सा प्रकीर्तिता*
आवापश्चाथ निष्क्रामो विक्षेपश्च प्रवेशक : ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सशब्दा के १. ध्रुव, २. शम्पा, ३. ताल और ४. सन्निपात ये चार भेद बताये हैं।*

सशब्दा क्रिया में पात एवं कला भी कहलाती है।‡

सशब्दा क्रिया के चार-भेदों का भावार्थ इस प्रकार ० कहा है।

१. ध्रुव—चुटकी↑ (ताली) बजाते हुए हाथ को नीचे की ओर ले जाना ध्रुव है।

२. शम्पा—दाहिने हाथ से चुटकी बजाने को 'शम्पा" कहते हैं।

३. ताल—बांये हाथ से चुटकी बजाने को 'ताल' कहते हैं।

४. सन्निपात—दोनों हाथों से एक साथ ताली बजाना सन्निपात है।

४. अंग

अनुद्रुतो द्रुतश्चाथदविरामो लघुस्तथा ।
लविरामो गुरुश्चैव प्लुतश्चेति यथाक्रमम् ।।

अणुद्रुत, द्रुत, द्रुतविराम, लघु, लघुविराम, गुरु और प्लुत, ये ताल के सात अंग माने गये हैं। इन अंगो के सांकेतिक चिह्न इस प्रकार हैं।

नाम	चिह्न	मात्रा
१. अणुद्रुत अंग	◡	१
२. द्रुत—अंग	०	२
३. द्रुत—विराम अंग	◡०	३
४. लघु—अंग	।	४
५. लघुविराम—अंग	◡।	५
६. गुरु—अंग	ऽ	८
७. प्लुत—अंग	◡ऽ	१२

इनके अलावा काक—पद का चिन्ह + और मात्रा १६ मानी जाती हैं।

---

* निःशब्देति चुतुर्धोक्ता, सशब्दापि चतुर्विधा ।।१७।।
ध्रुव शम्पा तथा तालः सन्निपात इतांरिता ।।

‡ पातः कला च सा ज्ञेया तासां लक्ष्माभिधीयते ।।१८।।

↑ चुटकी के स्थान पर आजकल एक हाथ पर दूसरे हाथ से ताल देने का व्यवहार है।
ध्रुवो हस्तस्य पातः स्याच्छोटिका शब्दपूर्वकः ।
शम्पा दक्षिणहस्तस्य तालो वामकरस्य तु ।
उभयोः सन्निपातस्यात्तासां मार्गवशान्मितिः ।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपर्युक्त सप्त अंगों का उच्चारण करने वाले पक्षियों के नाम भी इस प्रकार बताये हैं।

तित्तिरश्चटकश्चैव वकचातककोकिला : ।
वायसः कुक्कुश्चैव क्रमावुच्चारयन्त्यनून् ॥

अणु का तीतर, द्रुत-चटक (गौरेया*), द्रुतविराम का वक (बगुला), लघु का चातक (पपीहा), लघु विराम का कोयल, गुरु का वायस (कौआ) और प्लुत का कुक्कुट (मुर्गा) उच्चारण करता है।

अंगों के विवरण में हस्त चेष्टाओं का विधान भी प्राप्त होता है। जैसे द्रुत के लिए चार अंगुलों की (३-४ इंच) ऊँचाई से हाथ का आघात होता है। लघु और प्लुत के लिए आठ अंगुलों की उंचाई से, तथा काक पद में ऊपर-नीचे एवं दाहिनी ओर हाथ दिखाया जाता है। शब्द न होने के कारण काक पद का नाम निःशब्द भी कहा जाता है।

ताल के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए ताली, खाली, भरी के विभागों को मालूम करने के लिए, मात्राओं के कुछ समूहों को अलग-अलग दिखाने के लिए उत्तरीय एवं दाक्षिणात्य संगीत में इन अंग–विभागों की सहायता आवश्यक होती है। इस प्रकार अंगों से ही हरएक ताल वनती है।

उपर्युक्त वताये गये आठ अंगों में से 'कर्णाटकी संगीत' में मुख्य ६ अंगों का ही प्रयोग व्यवहार में है। द्रुत विराम और लघु विराम व्यवहृत. नहीं हैं। विराम का अर्थ विश्रांति या समाप्ति होता है। अर्थात् द्रुत या लघु के बाद सुख-भाव के लिये थोड़ी विश्रांति के साथ समाप्ति करना होता है। यह ध्यान रहे कि लघु और द्रुत के साथ ही विराम आता है, अन्य अंगों में नहीं।

५. ग्रह

संगीत (गीत-वाद-नृत्य) का आरंभ ताल के आरंभ के साथ यानी दोनों समकाल से एवं कुछ आगे या पीछे आरंभ होता हुआ भी व्यवहार में है। इनमें ताल की जिस मात्रा से गायन वादन या नृत्यशुरू किया जाता है, उसे ग्रह स्थान कहते हैं। चाहे ताल की पहली मात्रा से आरंभ हो या अन्य किसी भी मात्रा से हो, ग्रह स्थान वही है।

---

* चिड़िया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ग्रह के चार प्रकार माने गये हैं। १. सम-ग्रह, २. विषम-ग्रह, ३. अतीत और ४. अनागत।*

१. समः—गीत और ताल का समकाल (साथही) आरंभ होता हो तब सम-ग्रह कहलाता है।

२. विषमः—ताल और गीत अनियत रूप से शुरू होता हो तब विषम-ग्रह कहलाता है। कई लोग खाली मात्रा से या अन्य अनियत मात्रा से जब गीत का आरंभ होता है तब उस को विषम-ग्रह कहते हैं।

३. अतीतः—गीत के आरंभ होने के पश्चात् अतीत होने के बाद ताल का आरंभ हो तो अतीत ग्रह कहलाता है। अर्थात् ताल का सम निकल जाने के बाद फिर सम दिखलाना अतीत-ग्रह है। भ्रम में डालने के लिये गीत का सम छिपा कर जब ताल का सम निकल जाता है तब गायक लोग ताल का जो सम दिखलाते हैं वह अतीत ही है। इसी प्रकार मृदंग या तबला वादक भी सम के बाद जोर देकर सम दिखलाता है।

४. अनागतः—गीत के आरंभ के पहिले गायक या वादक सम के पहिले ही अपना सम दिखलाकर गीत या ताल शुरू करता है, उसे अनागत ग्रह कहते हैं। उपर्युक्त चार प्रकारों के पर्याय नाम क्रमशः १. ताल, २. विताल, ३. अनुताल और ४. प्रतिताल थे। उसी के क्रमशः १. समपाणि, २. विषमपाणि, ३. अवपाणि और ४. उपरिपाणि नाम भी ग्रन्थों में बताये हैं।

६. जाति

प्राचीन ग्रन्थ 'भरतनाट्यशास्त्र' तथा 'संगीत रत्नाकर' में त्र्यश्र और चतुरश्र प्रकार की जाति बताई गई है। चतुरश्र जाति का चच्चत्पुट तथा त्र्यश्र जाति ताल का चाचत्पुट नाम से उल्लेख किया गया है। किन्तु इनका यथार्थ प्रयोग 'अंधयुग' में विसर्जन होने के बाद जाति शब्द लघु के अक्षर काल या मात्रा काल के अर्थ में परिवर्तन हो गया। लघु की तीन मात्रा रहे तो त्र्यश्र जाति और चार मात्रा रहे तो चतुश्रजाति बनती है। इस प्रकार लघु की कीमत बदलने पर जातियां बदलती रहती हैं, जो दक्षिण भारतीय ताल प्रणाली में विद्यमान है। दक्षिण यानी कर्णाटकी संगीत सम्प्रदाय में सात ताल और प्रत्येक की पाँच-पाँच जातियाँ मानी गई हैं।

---

* *समातीतोऽनागतस्य विषमश्च चतुर्विधः।*
ग्रहस्तालेषु विज्ञेय : सूक्ष्मदृष्टया विचक्षणः॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सप्त तालों के नाम*:– ध्रुव ताल, २. मठताल, ३. रूपक ताल, ४. झपताल, ५. त्रिपुट ताल, ६. अठताल और ७. एकताल

पांच प्रकार की जातियों के नाम इस प्रकार हैं।θ

१. चतुरश्र, २. त्र्यश्र (तिश्र) ३. मिश्र जाति, ४. खंड जाति, ५. संकीर्ण जाति।

दक्षिण की कर्णाटकी संगीत प्रणाली में मुख्यतः सात ही ताल हैं, परन्तु उपर्युक्त पाँच जातियों के कारण प्रत्येक ताल की पाँच पाँच संख्या बनती है। इस सम्प्रदाय में तालों के लिये अंग-नाम, मात्रा-काल तथा सांकेतिक चिन्ह इस प्रकार हैं।

नाम	चिन्ह	मात्रा
विराम	◡	१
द्रुत	०	२
लघु	।	४
गुरु	ऽ	८
प्लुत	३	१२
काक–पद	+	१६

७. कला

'कला' शब्द शास्त्र में तीन अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। (अ) कला शब्द का अर्थ है 'भाग'। जो काल प्रमाण का नाम है। (आ) आदिकाल में चच्चत्पुट, चाचपुट इत्यादि पांच ताल ही थे। परन्तु इनके अंग को द्विकला (दुगुना) चतुष्कला (चौगुना) और अष्टकला (अठगुना) करके नये-नये तालों की कल्पना किया करते थे। उस समय कला-वृद्धि का यही नियम था। चतुश्रजाति-चच्चत्पुट के ताल में एककल, द्विकल, चतुष्कल रूप थे और चाचत्पुट-तिश्रजाति ताल में त्रिकल

---

* ध्रुवो मठ्यो रूपकं च झंपा त्रिपुट एव च।
अट्टतालके ताले च सप्तताला: प्रकीर्तित:॥

θ चतुरश्रस्तथा त्र्यश्र: खंडो मिश्रस्तथैव च।
संकीर्ण इति विज्ञेया जातय: क्रमशो बुधै:॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

षट्कल और द्वादशकल इत्यादि रूपों से कला-वृद्धि की जाती थी। आजकल दक्षिण एवं उत्तर भारत में एककल, द्विकल, चतुष्कल, अष्टकल इत्यादि का प्रयोग किया जा रहा है।

(इ) शास्त्र में कला के निम्न आठ प्रकार भी बताये गये हैं:—*

१. ध्रुवका, २. सर्पिणा, ३. कृष्णा, ४. पद्मिनी, ५. विसर्जिता, ६. विक्षिप्तका, ७. पताका और ८. पतिता।

(ई) आजकल कला की निपुणता को भी कला कहने का व्यवहार है। अर्थात् गीत, वाद्य एवं नृत्यादि संगीत को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की क्रिया को कला कहते हैं।

८. लय

क्रियानंतर विश्रांतिर्लयः स त्रिविधो मतः।
द्रुतो मध्यो विलंबश्च द्रुतः शीघ्रतमो मतः॥

क्रिया के आरंभ के पश्चात् होने वाली विश्रांति अर्थात् दो क्रियाओं के बीच में रहने वाले अवकाश को लय कहते हैं। लय के तीन प्रकार हैं::—

१. विलंबित लय २. मध्यलय (विलंबित से द्विगुण) ३. द्रुत-लय (मध्य से द्विगुण प्रमाण की गति)। साधारण अर्थ में गति को ही लय कहते हैं।

९. यति

θलय की प्रवृत्ति अर्थात् चाल-क्रम (गति) के नियम को यति कहते हैं। यति के पाँच भेद हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. समयति—आदि, मध्य और अंत तक एक ही प्रकार की लय प्रयोग में रहे तो उसको समयति कहते हैं।‡

---

* *ध्रुवका सर्पिणी कृष्णा पद्मिनी च विसर्जिता।*
विक्षिप्तका पताका च कलास्यात्पतिताष्टमी॥

θ *लयप्रवृत्तिनियमो यतिरित्यभिधीयते*
समा स्रोतोगताश्चान्या मृदंग च पिपीलिका॥
गोपुच्छा चेति विबुधैर्यति : पंच विधोदिता।

‡ *आदिमध्यावसानेषु लयैकत्वेसमात्रिधा।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२. स्रोतागता व स्रोतावहा:—इसकी ताल (गति) नदी के जलप्रवाह की तरह रहती है। आदि में विलंबित, बीच में मध्यलय और अन्त में द्रुतलय हो उसे स्रोतागता या स्रोतावहा कहते हैं।* कुछ विद्वानों के मतानुसार बीच में विलंबित मानी गई है।

३. मृदंग—यति:—जिस प्रकार मृदंग में दोनों ओर छोटा और बीच में बड़ा भाग होता है उसी प्रकार आदि और अन्त में द्रुत, तथा मध्य में विलंबित लय हो तो उसे मृदंग-यति कहते हैं। मतभेदानुसार आदि-अंत में द्रुत और मध्य में मध्यलय अथवा आदि अन्त में मध्यगति और मध्य में विलंबित कहा गया है।‡

४. पिपीलिका-यति:—जिस प्रकार चींटी की चाल कभी तेज और कभी धीमी रहती है, उसी भांति पिपीलिका-यति की लय होती है। इसके तीन प्रकार हैं:—

(अ) आदि और अन्त में विलम्ब, मध्य में द्रुतगति।

(आ) आदि अंत में मध्यलय और मध्य में द्रुतलय तथा

(इ) आदि अन्त में विलंबित और मध्य में मध्यलय।

५. गोपुच्छ-यति:—इसकी चाल-गति गाय की पूंछ की तरह होती है। द्रुत से आरंभ होकर मध्य और विलंबित क्रम से लयों का होना या द्रुत और मध्य तथा मध्य और विलंबित को भी गोपुच्छ यति कहते हैं।

१०. प्रस्तार

ताल के कई अंगों में से भिन्न-भिन्न रूप से की जाने वाली अंग कल्पना-मात्र 'प्रस्तार' है। कल्पना क्रम से रूपों की कल्पना निश्चयपूर्वक साध्य होती है। प्लुत, गुरु, लघु, द्रुत इन चार अंगों से (चतुरंग) प्रस्तार किया जाता है। प्रस्तारों के प्रमाण-कालादि अंगों द्वारा भिन्न-भिन्न ताल-प्रस्तार का क्रम भी ग्रन्थों में बताया गया है। इन प्रस्तार क्रम से १०८ की ताल संख्या उत्पन्न होने का विधान 'आदि भरत' एवं 'भरतार्णव' ग्रन्थ में बताया गया है। किन्तु अन्य कला भागों के साथ यह प्रणाली भी नष्ट होने के पश्चात् दक्षिण भारत के पुनरुज्जीवित प्रबन्ध 'सालागसूड' के सात ताल मात्र प्रचार में आने लगे। इन सप्त तालों का कोष्टक सहित विवरण आगे में दिया जा रहा है।

---

* चिर मध्य द्रुत लयैर्युक्ता स्रोतावहा मता।

‡ द्रुताद्यंता मध्यमध्या मृदंगाख्या सतां मता।
अथवाऽऽद्यंतयोर्मध्यगतिमध्ये विलंबिता। (ताल श्रेणी पृ०-१२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आजकल के व्यवहार में भिन्न-भिन्न तालों को अग-प्रत्यंगों के काल-प्रमाणानुसार पेशकार, काय, पलटे, टुकड़े, रेले, परन आदि वजाया जाय अथवा चिह्नों द्वारा लिखा जाय, उसे प्रस्तार या विस्तार कहने का रिवाज दृष्टिगत होता है।

दाक्षिणात्य सप्त ताल:—

दक्षिण यानी कर्णाटकी पद्धति के सप्त तालों का नामोल्लेख हम पहिले कर चुके हैं किन्तु प्रत्येक की पाँच-पाँच जाति होने के कारण कुल ३५ ताल बनते हैं; जो निम्नलिखित कोष्टक से स्पष्ट समझ सकते हैं।

ताल-नाम	चतस्त्र जाति	तिस्त्र जाति	मिश्र जाति	खंड जाति	संकीर्ण जाति
ध्रुव ताल	४-२-४-४ । ० । । मात्रा-१४	३-२-३-३ । ० । । मात्रा-११	७-२-७-७ । ० । । मात्रा-२३	५-२-५-५ । ० । । मात्रा-१७	९-२-९-९ । ० । । मात्रा-२९
मठ ताल	४-२-४ ।-०-। मात्रा-१०	३-२-३ ।-०-। मात्रा-८	७-२-७ ।-०-। मात्रा-१६	५-२-५ ।-०-। मात्रा-१२	९-२-९ ।-०-। मात्रा-२०
रूपक ताल	४-२ ।-० मात्रा-६	३-२ ।-० मात्रा-५	७-२ ।-० मात्रा-९	५-२ ।-० मात्रा-७	९-२ ।-० मात्रा-११
झंप ताल	४-१-२ ।-U-० मात्रा-७	३-१-२ ।-U-० मात्रा-६	७-१-२ ।-U-० मात्रा-१०	५-१-२ ।-U-० मात्रा-८	९-१-२ ।-U-० मात्रा-१२
त्रिपुट ताल	४-२-२ ।-०-० मात्रा-८	३-२-३ ।-०-० मात्रा-७	७-२-२ ।-०-० मात्रा-११	५-२-२ ।-०-० मात्रा-९	९-२-२ ।-०-० मात्रा-१३
अठ ताल	४-४-२-२ ।-।-०-० मात्रा-१२	३-३-२-२ ।-।-०-० मात्रा-९	७-७-२-२ ।-।-०-० मात्रा-१८	५-५-२-२ ।-।-०-० मात्रा-१४	९-९-२-२ ।-।-०-० मात्रा-२२
एक ताल	४ । मात्रा-४	३ । मात्रा-३	७ । मात्रा-७	५ । मात्रा-५	९ । मात्रा-९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपर्युक्त कोष्टक के कर्णाटिकी पद्धति में प्रचलित सप्त तालों के नाम, इनकी मात्राएँ एवं लघु, द्रुतादि के संकेत चिन्ह तथा जाति भेद से उत्पन्न होने वाली कुल-३५ तालों का चित्रण किया गया है; जिनमें लघु का मूल्य बदलता जाता है। इस पद्धति के ताल नियम मुख्यत: निम्न प्रकार है:–

१. लघु क्रमानुसार ४, ३, ५, ७, ९ मात्राओं का होता है।

२. तदनुसार क्रम से चतश्र, तिस्त्र, मिश्र, खंड व संकीर्ण प्रकार की पाँच जातियाँ होती हैं। तथापि चिह्न ज्यों के त्यों ही रहते हैं।

३. प्रत्येक ताल की पाँच जातियाँ होने पर सप्त तालों की कुल ३५ ताल बनाती हैं।

४. जितने चिह्न होते हैं उतने ही तल के ठेके तथा खंड (अंग व बार) समझे जाते हैं।

५. ताल की सम सदैव पहिली मात्रा पर रहती है।

६. हर एक जाति में अंग सशब्द और नि:शब्द क्रियाओं से गिने जाते हैं। अर्थात् लघु को एक शंपा (ताल-पात) के वाद बाकी अक्षरों का अंगुलियों से गणन करते हैं। द्रुत को एक शंपा के बाद एक विक्षेप करके गिनते हैं। अणुद्रुत को एक शंपा से गिनते हैं।

दाक्षिणात्य विद्वानों में अपनी पद्धति में जाति भेद से ३५ तालों का उल्लेख किया तथापि आजकल प्राय: हरएक ताल में एक, दो या तीन जातियों का ही व्यवहार दिखाई देता है।

ताल प्रकरण द्वितीय : उत्तर भारतीय ताल

उत्तरीय पद्धति के प्राचीन तालों का विवरण अष्टछाप परंपरा की गायन शैली एवं प्राचीन हस्तलिखित कीर्तन-संग्रहों के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे अष्टछाप काल में प्रचलित तालों का परिचय मिल जाएगा।

हमारी मान्यतानुसार उस समय उत्तरीय संगीत सम्प्रदाय में ध्रुव ताल, मठताल, रूपकताल, झंपताल, त्रिपुट (त्रिवट) ताल, अठताल, एकताल, पटताल, षटताल (खटताल) चपक ताल, जाति ताल तथा चर्चरी ताल इत्यादि का प्रयोग किया जाता था।

इन तालों में हमें कर्णाटकी पद्धति के ताल-नाम भी दृष्टिगत होते हैं। कहीं-कहीं मात्राओं की संख्या में भी समानता है। तथापि इनका प्रकार उत्तर भारतीय संगीत-सम्प्रदाय की गान शैली के अनुसार होने से दोनों पद्धतियों का रूप

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भिन्न हो जाता है। शैली-भेद से मृदंग का वाज, ठेका-बोल, ताली, खाली, खंड एवं अंग-प्रत्यंगादि की भिन्नता से दाक्षिणात्य पद्धति से उत्तरीय पद्धति का भिन्न रूप स्पष्ट होता है। जिस प्रकार कर्णाटकी संगीत के कुछ रागों के नाम एवं स्वर समान होते हुए भी उत्तरीय पद्धति से भिन्न प्रकार का रूप दिखाई देता है उसी प्रकार ताल-नाम तथा मात्राएँ समान होते हुए भी शैली भेद के कारण ताल-भेद रूप भिन्न हैं।

लगभग २००-२५० वर्ष पूर्व की लिखित कीर्तन-पोथियों के आधार पर कांकरोली विद्या विभाग की ओर से प्रकाशित 'कुंभनदास' तथा 'कृष्णदास' इत्यादि पद-संग्रह संपादन किया गया है; उनमें कतिपय पदों के शीर्षक पर राग के साथ ताल का जो उल्लेख उपलब्ध होता है, वह उपर्युक्त प्राचीन तालों के समर्थन को स्पष्ट करता है।

इन तालों के क्रियात्मक प्रयोग के उदाहरण इस ग्रन्थ के द्वितीय खंड में स्वरलिपि प्रकरण में स्पष्ट किये जाएँगे। प्राचीन तालों का विवरण निम्न प्रकार है।

उत्तरीय-प्राचीन तालों का स्पस्टीकरण.—

(१) ध्रुव ताल—मात्रा—१४, पात—४ द्रुत, लघु, लघु, लघु (०।।।)

मा०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
ठे०	धा	किट	द्धा	गे	दिं	ता	क	द्धा	दिं	ता	कीट	तक	गदि	गन
	×		२				३				४			

दक्षिण पद्धति के ध्रुव ताल का रूप ।०।। है, किन्तु प्रथम लघु के स्थान पर उत्तरीय पद्धति में प्रथम द्रुत के बाद तीन लघु माने जाते हैं।

(२) मठताल—मात्रा—१०, पात—३, लघु, द्रुत और लघु (।०।)

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
ठेका	धा	किट	तक	धुम	किट	धा	किट	तक	गदि	गन
	×				२		३			

इन ताल की मात्रा-पात (ताली) और नाम कर्णाटकी सम्प्रदाय के सदृश हैं।

३—(अ) रूपक ताल—मात्रा—६, पात—२ रूप—लघु और द्रुत है। *

१	२	३	४	५	६
धा	—	दिन	दिंग	ता	—
×				२	

* मदंग सागर—पृ० २०९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उत्तरीय रूपक ताल की मात्रा, ताल और नाम कर्णाटक पद्धति के समान ही माने गये हैं।

३–(ब) अन्य मतानुसार प्रमुख द्रुत और बाद में लघु माना गया है,† जो इस प्रकार होगा।

१	२	३	४	५	६
धा	तिट	धा	दिं	ता	किट
×		२			

४ (अ) झंप-ताल-मात्रा-७, पात (ताली) ३ ।०‿ लघु, विराम; द्रुत‡

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७
ठेका	था	गे	न	ता	तिट	किट	तक
	×				२	३	

४ (ब) कुछ विद्वान् लघु को पीछे हटा कर निम्न रूप को उत्तरीय झंपताल का रूप मानते हैं* नं. ४ (अ) का रूप कर्णाटकी के सदृश है।

१ | २ ३ | ४ ५ ६ ७

५ (अ) ताल-त्रिपुट (त्रिवट) मात्रा-८, । ०० लघु, द्रुत और द्रुत θ

पात-३ इस प्रकार है। मात्रा तथा अंग रूप कर्णाटकी के सदृश हैं।

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८
ठेका	धा	तिट	ता	किट	तिट	कत	गदि	गन
	×				२		३	

५ (ब) तिश्र जाति त्रिपुट– ३+२+२=७**

१	२	३	४	५	६	७
पा			पा		पा	

† मूलाधार पृ० ४, ७२

‡ ताल-दीपिका पृ-२६

* मूलाधार-पृ. १९

θ ताल दीपिका, भाग-४ पृ. २६

** मूलाधार पृ १८—२०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(६) अठ-ताल (अट ताल) मात्रा-१२ ।।००, लघु, लघु, द्रुत, द्रुत का रूप दाक्षिणात्य पद्धति के समान है। इनमें चार पात (ताली) हैं। चार ताली होने के करण आगे जाकर चौताल नामकरण से संबोधित आधुनिक प्रचार में दृष्टिगत होता है। है। अतः अठताल का रूप इस प्रकार है।०

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ठेका	धा	कि	ट	धा	किट	धा	दि	ता	किट	तक	गदि	गन
	×				२				३		४	

उपर्युक्त कर्णाटकी प्रकार है।

कर्णाटकी नामकरण की सप्त तालों के पश्चात् उत्तरीय सम्प्रदाय की अन्य प्राचीन तालों का विवरण निम्न प्रकार है।

(८) चपक ताल—मात्रा-७,‿००० अणुद्रुत, द्रुत, द्रुत और द्रुत का रूप है। पात-४

* मात्रा	१	२	३	४	५	६	७
‡ ठेका	धा	किट	तक	धुम	किट	धदि	गन
ठेका	धात्	धिन	नक	किट	तक	गदि	गन
	×	२		३		४	

इस ताल को चंपक ताल भी कहते हैं।θ इन्हीं का आधुनिक ग्रन्थकारों ने 'अर्ध आडा चौताल' नाम से उल्लेख किया है।**

(९) पट ताल-मात्रा-८, पात-६ रूप ‿‿०‿‿० दो अणु द्रुत बाद में द्रुत + दो अणुद्रुत।

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८
ठेका	धा	धा	दि	ता	तिट	कत	गदि	गन
	×	२	३		४	५	६	

० भारतीय ता. मं. पृ. १३

* मृदंग सागर पृ. १४९

‡ भारतीय ता. मं. पृ १७।

θ भारतीय ता. मं. पृ. १७।

** नाद चिन्तामणि पृ. तथा संगीत कलाधर पृ. १९१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आधुनिक त्रिताल के समान मात्राएँ हैं तथापि अंग-प्रत्यंग भिन्न हैं। इस ताल को कोई षट (खट-ताल) भी कहते हैं। किन्तु॰ खट-ताल का रूप निम्न प्रकार भी प्राप्त होता है।

(१०) खट-ताल-मात्रा-१८, रूप (। ० । ० ०) है। पात-६θ

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
*धा	कि	ट	धा	दिं	ता	दिं	दिं	धा	धा	किट	धा	दिं	ता	किट	तक	गदि	गन
×				२		३				४		५		६			

इनका रूप आधुनिक मत्त-ताल के समान है।

(११) जति-ताल (यति ताल) मात्रा-१४, आधुनिक ग्रन्थों में इस ताल का रूप और बोल प्रचलित दीपचंदी ताल के सदृश बताया है; जिसका प्राचीन रूप एवं बोल इस प्रकार माना जाता है।

मा.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
ठेका	धा	–	–	धी	ट	धा	–	ग	दि	न्न	ति	स	ता	–
				२				०			३			

ताल दीपिका और मा. ताल मंजली में भी उपर्युक्त मात्राएँ और ठेका-बोल, खंड इत्यादि दीपचंदी के समान ही प्राप्त होते हैं। परन्तु हमारी परंपरागत मान्यतानुसार सम्प्रदाय की जति-ताल का रूप 'धमार' होना चाहिए। उपर्युक्त जति-प्रकार में केवल द्वितीय (ताली) ४ मात्रा से हटाकर ६ मात्रा पर ले जाने से धमार अंग होता है। पं. भातखंडेजी शास्त्र के प्रथम भाग में लिखा है—"यति ताल को कुछ मंद-गति से बजाने से ध्रुपद अंग का 'धमार' या तीव्रा हो जाता है।‡ अतः यति या जति ताल को हम धमार का रूप ही समझेंगे, जो इस प्रकार है:—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
×					२					३			

॰ भारतीय ता. मं. पृ.-७

θ नाद चिन्तामणि पृ. १६३

* भा. ता. मंजरी अनुसार

‡ हिं. सं. पद्धति भाग-१ (गुजराती, पष्ठ-६५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१२) जत-ताल-मात्रा-८ (।०।) रूप है । जो उपर्युक्त जति ताल से भिन्न है ।* ताल दीपिका में निम्न प्रकार का रूप प्राप्त होता है ।

१	२	३	४	५	६	७	८
धा	धीं	धाग	धीं	ताक	तीं	धाग	धीं
×		२		०		३	

(१३) झंपा--(झंप) ताल, मात्रा-१०‡

संगीत रत्नाकर में झंपा का रूप ०̆ ०̆ ।=३+३+४=१० मात्रा का कहा है; जो इस प्रकार लिखा जायगा ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
पा			पा			पा			

(१४) चर्चरी-ताल, मात्रा-१० ०̆ । ०̆ ३+४+३=१० मात्रा

रत्नाकर के समय के वाद कालान्तर उपर्युक्त झपताल के अंगों में लघु जो अन्तिम है, जो उसको बीच में लाकर उसका रूप निम्न प्रकार वना हुआ दिखाई देता है । अष्टछाप परंपरा में झंपताल के इस रूप को चर्चरी ताल कहते हैं ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धा	तत्	ता	धे	कि	ट	तक	धा	कि	ट
पा			पा		खा		पा		

चर्चरी ताल का प्राचीन रूप यही है उसका प्रमाण यह है कि इसके अंग रत्नाकर के झंपा से मिलते हुए हैं । दूसरा यह कि प्राचीन प्रबन्धादि उस समय के गीत, पद-कीर्तनादि में भी इनके छंद शब्द रचना इसी चर्चरी ताल के अंग-प्रत्यंगों से सदृश है ।θ उस समय तालों की मात्राओं का कई पदों जैसा विभाग करने की परंपरा थी । अंगों के अनुसार 'पाद भाग' । (खंड) नियत किये जाते थे किन्तु खाली की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था ।

---

* ताल दीपिका पृ ५

‡ झंपातालो विरामान्तं द्रुतद्वन्द्वं लघुस्तथा

θ ताल दीपिका पृ. ५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दुस्तानी पद्धति के प्रचलित तालों का विवरण

प्राचीन प्रणाली में तालों के अंगों पर विशेष ध्यान दिया है। जबकि प्रचलित हिन्दुस्तानी पद्धति में तालों की मात्राओं तथा ताली एवं खाली के स्थान और ठेके एवं बोल पर अधिक लक्ष्य दिया गया है।

(१) त्रिताल—मात्रा-१६ खंड-४, ताली-३, खाली-१*

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ना	धीं	धीं	ना	ना	धीं	धीं		ना	तीं	तीं	ना	ना	धीं	धीं	ना
×				२				०				३			

प्रकार-२

धी	धीं	धीं	धा	धा	धीं	धीं	धा	धा	तीं	तीं	ता	ता	धीं	धीं	धा

(२) तिलवाडा या धीमा त्रिताल मात्रा-१६, खंड-४, ताली-३, खाली-१

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	त्रक	धीं	धीं	ना	ना	तीं	तीं	ता	त्रक	धीं	धीं	ना	ना	धीं	धीं
×				२				०				३			

(३) ताल पंजाबीθ मात्रा-१६, ताली-३, खाली-१, खंड-४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धी	नधी	न	धा	धी	नधी	न	धा	ती	नती	न	ता	धी	नधी	न	धा
×				२				०				३			

* *प्राचीन ताल विवरण में त्रिपुट ताल का उल्लेख किया गया है। त्रिपुट का त्रिवट होकर त्रिताल हो गया है। त्रिपुट ताल-८ मात्रा से युक्त है। उसे दक्षिण सम्प्रदाय में आदि ताल भी कहते हैं। हर एक अक्षर को दुगुना करके उत्तर-भारतीय सम्प्रदाय में १६ मात्राएँ बनाई गई हैं। अष्टछाप घराने की परंपरा में त्रिताल की मात्रा-८ ही मानी जाती हैं। अष्टछाप के समय में त्रिपुट (त्रिवट) ताल का जो प्रयोग किया जाता था इन्हीं को आजकल त्रिताल के नाम से पुकारते हैं। सम्प्रदाय की इस त्रिताल में १, ३, ५ पर ताली और ७ वीं मात्रा पर खाली है किन्तु आजकल ५ वीं मात्रा पर खाली लेने की प्रथा है जो कि प्राचीन नहीं है।*

θ *पंजाबी माखा धीमा त्रिताल के समान अंग-प्रत्यंग का ताल है। केवल ठेके-बोल में अन्तर है। धीमा त्रिताल (तिलवाड़ा) का विलंबित ख्याल में प्रयोग किया जाता है किन्तु ठुमरी गायन के लिए इन्हीं का अनुसरण रूप बनाये हुए इस ताल का प्रयोग प्रायः ठुमरी गान में ही किया जाता है।*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(४) चौताल मात्रा-१२, ताली-४, खाली-२, खंड-६*

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	किट	तक	गदि	गन
×		०		२		०		३		४	

(५) ताल-एक ताल‡ मात्रा-१२, ताली-४, खाली-१, खंड-६

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धीं	धीं	धागे	त्रक	तू	ना	क	त्ता	धागे	त्रक	धी	ना
×		०		२		०		३		४	

(६) सूलताल (सुरफागता) मात्रा-१०, ताली-३, खाली-२, खंड-५

प्राचीन सालगसूड प्रणाली के मंठ या मठ्य-ताल के अंग ।०।४+२+४ लघु, द्रुत, लघु के अनुसार ही उत्तरीय पद्धति में अष्टछाप के समय में मठ-ताल का प्रचार था। किन्तु सम्राट् अकबर के समय के लगभग इसका सूरफागता या सूलताल एवं 'उसूले फाक्ता' नामकरण प्रचार में आने लगे। प्राचीन ताल का ही अनुसरण रूप यह सूलताल द्रुपद अंग का ताल है। प्राचीन समय में खाली के खंड (विभाग) अलग नहीं थे किन्तु अर्वाचीन समय में खाली के खंड अलग बताये जाते हैं। अतः इनके ५ खंड का रूप इस प्रकार है।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	०१
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन
×		०		२		३		०	

---

* चौताल प्राचीन अट्ट (अड्ड) ताल से उत्पन्न हुआ है। इनमें चार ताल-स्थान होने के कारण समयान्तर उत्तरीय पद्धति में चौताल नाम से प्रसिद्ध हुआ।

‡ एकताल का यह रूप ख्याल गायन की उत्पत्ति के साथ विलंबित ख्याल गायन के लिए चौताल से ही उत्पन्न किया हुआ भिन्न प्रकार है। प्राचीन एकताल से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(७) ताल-धमार मात्रा-१४, ताली-३, खाली-२, खंड-४

प्राचीन जति-यति ताल का अनुसरण रूप 'धमार' ताल माना जाता है। अष्टछाप परंपरा में फाल्गुन खेल की श्रीकृष्ण लीला के पदों को धमार के पद से ही संबोधित किया जाता है। होरी खेल के ये पद अधिकतर धमार ताल में ही गाये जाते हैं।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
क	धि	ट	धि	ट	धा	–	धा	ति	ट	ति	ट	ता	–
×					२		०			३			

(८) दीपचंदी मात्रा-१४, ताली-३, खाली-१, खंड-४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धा	धी	–	धा	गे	तीं	–	ता	ती	–	ध	गे	धीं	–
×			२				०			३			

इन ताल का रूप प्राचीन जति (यति) ताल का अनुसरण है। कोई इसे जत-ताल भी कहते हैं और ठेका–बोल दीपचन्दी के ही दिये हैं।* हमारी मान्यतानुसार जति (यति) ताल का रूप समयान्तर बाद 'धमार' और दीपचंदी ने पकड़ लिया। दीपचंदी को कोई आजकल होरी का ठेका भी कहते हैं।† किन्तु होरी का प्राचीन ठेका धमार है। जो ध्रुपद अंग का है। आधुनिक ख्याल अंग की होरी में तथा ठुमरी गायन में दीपचंद ताल का प्रयोग किया जाता है।

(९) झूमरा ‡ मात्रा–१४, ताली-३, खाली-१, खंड-४

प्रकार-१

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धीं	धा	किटतक	धीं	धीं	धागे	किटतक	तीं	ता	किटतक	धीं	धीं	धागे	किटकत

प्रकार-२

धीं	धा	तक	धीं	धीं	धागे	तक	तीं	ता	तक	धीं	धीं	धागे	तक

---

* ताल-दीपिका भा.-२, प.-६

† संगीत-शास्त्र प.-२२७ (के वा. शास्त्री)

‡ मृदंग सागर के अनुसार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इन ताल का अंग-प्रत्यंगादि दीपचंदी के समान है। ख्याल गायन की उत्पत्ति के बाद दीपचंदी से यह ताल उत्पन्न हुआ माना जाता है। जो आधुनिक ख्याल ख्याल गायन में प्रयुक्त होता है और दीपचंदी का होरी के ख्याल तथा ठुमरी अंग में प्रयोग होता है। समान रूप होते हुए भी शैली भेद से दोनों के ठेका-बोल भिन्न वने हुए हैं।

(१०) आडा-चौताल मात्रा-१४, ताली-४, खाली-३, खंड-७

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धीं	त्रक	धीं	ना	तू	ना	क	त्ता	धी	धी	ना	धी	धी	ना
×		२		०		३		०		४		०	

कर्णाटकी सम्प्रदाय के अट्ट ताल चतुश्र जाति के प्रथम लघु और द्वितीय द्रुत के स्थान को अलग उलटा कर अर्थात् द्रुत, लघु, लघु, लघु का रूप हिन्दुस्तानी अट-ताल का प्राचीन रूप है। इसी से आड़ा चौताल उत्पन्न हुआ है। इनमें चार ताल होने के कारण कुछ समायान्तर वाद उसी का आडा-चौताल नाम व्यवहृत होना संभावित है। ख्याल गायन की प्रवृत्ति के पूर्व द्रुपद शैली अनुसार पखवाज में यह ताल का प्रयोग होता था। किन्तु आज कल वह ख्याल-गायन का ताल बन चुका है। अतः इनके ठेका-बोल भी तबला-वाद्य के उपयुक्त प्रकार के प्रचार में दिखाई देता है।

(११) झपताल मात्रा-१०, ताली-३, खाली-१, खंड-४

प्रकार-१

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना

प्रकार-२

धा	—	धा	गे	कि	ट	किट	धा	कि	ट
×		२			०		३		

उपर्युक्त प्रकार-१ ख्याल गायन शैली के तबला के बोल हैं। इसी का आजकल अधिक प्रचार है। किन्तु द्रुपद घराने के गायक इसी ताल में द्रुपद शैली के जो गीत गाते हैं; उसे वे लोग 'सादरा' कहते हैं। उपर्युक्त प्रकार-२ के बोल सादरा के साथ पखवाज में बजाये जाते हैं; जिनको कुछ लोग 'चर्चरी' ताल कहते हैं। किन्तु चर्चरी ताल इस झपताल से कुछ भिन्न है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१२) तीव्रा मात्रा-७, ताली-३, खंड-३

प्राचीन कर्णाटकी त्रिपुट का तिश्रजाति के अनुसरण रूप हिन्दुस्तानी पद्धति में तीव्रा ताल उत्पन्न हुआ है। इनको पहिले त्रिपुट-तीवरा नाम से पहिचानते थे किन्तु आजकल केवल तीव्रा नाम से ही पुकारते हैं। जो इस प्रकार है।

१	२	३	४	५	६	७
धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
×			२		३	

(१३) रूपक ताली-३, मात्रा-७, खंड-३

१	२	३	४	५	६	७
ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
×			२		३	

आधुनिक प्रचलित रूपक ताल का रूप तीव्रा ताल के समान है। तीव्रा का ध्रुपद अंग के गीतों में और 'रूपक' का ख्याल -गायन में प्रयोग किया जाता है। आधुनिक रूपक का यह रूप ख्याल गायन के लिए उत्पन्न किया हुआ दिखाई देता है। तीव्रा से भिन्नता लाने के लिए पहली मात्रा ९ सम के स्थान पर खाली वताया जाता है।

(१४) दादरा मात्रा-६

दादरा ताल के दो प्रकार माने जाते हैं। दोनों में मात्राएँ समान हैं। केवल ताली-खाली स्थान में अन्तर है।

प्रकार-१

१	२	३	४	५	६
ध	धी	ना	धा	ती	ना
×			०		

प्रकार-२

१	२	३	४	५	६
धा	धीं	धा	धा	तू	ना
		२		०	

प्रथम प्रकार में ताली- १, खाली-१, खंड-२ हैं। दूसरे प्रकार में दो ताली खाली-१ और खंड-३ हैं। दूसरा प्रकार प्राचीन सम्प्रदाय के रूपक ताल के अनुसरण से उत्पन्न हुआ दिखाई देता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१५) कहरवा मात्रा–४, ताली–१, खाली–१

१	२		३	४
धागि	नति	|	नक	धिन
×			०	

पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीत की गान परंपरा में तालों का अति महत्व है। इस सम्प्रदाय में मंगला दर्शन के पश्चात् शयन पर्यन्त की सभी सेवा-प्रणाली के साथ जो कीर्तन गान किया जाता है; वह बिना ताल गाने की प्राचीन परंपरा नहीं है। बारहों मास कीर्तन प्रणाली में अधिकतर मृदंग के साथ झांझ से ताल दी जाती है। मुख्य कीर्तनकार (कीर्तन के मुखियाजी) तथा पार्श्वगायकों (झीलनियां) हाथ से झांझ बजाते हुए कीर्तन गान करते हैं। यहाँ ध्यान रहे कि इस ताल पद्धति में खाली स्थान (दो हाथों को अलग करके बजाने की प्रथा) नहीं है। प्राचीन समय में पात अर्थात् ताली स्थान का ही महत्व था, जो हम पूर्व विवरण में बता चुके हैं; अष्टछाप के समय में यही प्रथा चालू थी और आज भी अधिकांश चालू है। किन्तु तत्पश्चात् तबला-वादन का प्रचार अधिकतर होने के कारण आधुनिक तालों के प्रभाव से हमारे कीर्तनकार भी वंचित नहीं रहे। फलतः आज हमारे कीर्तन गायकों से पूछा जाय कि चौताल, धमार, आडचौताल, सूलताल, चर्चरी और त्रिताल इत्यादि तालों को समझाइये, तो वे ताली और खाली का स्थान आधुनिक प्रचार के समान बताएँगे किन्तु झांझ बजाते हुए कीर्तन-गान में वह प्रचार से कुछ भिन्न दिखाई देता है क्योंकि झांझ में दो हाथों को अलग करके खाली बताने की चेष्टा की नहीं जाती है। तदुपरान्त झांझ में तालों के स्थान के अतिरिक्त कहीं-कहीं आघात देते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। यह कृत्य प्राचीन परंपरा की चलती हुई लीक है किन्तु लोग परंपरा को भूल गये हैं। हमारे अनुभव से स्पष्ट कहा जा सकता है कि झांझ बजाने की पद्धति में अधिकांश प्राचीनता दिखाई देती है। कभी-कभी झांझ में खाली स्थान पर जो कम प्रमाण में आघात किया है। जाता है वह लय की सुबद्धता के कारण होना संभावित है। अतः हमारी प्राचीन पद्धति और आधुनिक प्रणाली की समानता और भिन्नता जो ऊपर हम कह चुके हैं उसका सारांश निम्न प्रकार दिया जा रहा है।

१. खटताल—जिसकी १८ मात्रा हैं। आधुनिक पद्धति में मत्त ताल कहा जाता है।

२. जति ताल—जिसकी मात्रा-१४ हैं। यह आधुनिक दीपचंदी के समान है। तथा इस ताल में उस ताल का दूसरा खंड परिवर्तित करने पर ताल 'धमार' की उत्पत्ति होना संभावित है।

३. अठताल—यह ताल १२ मात्रा का है, जो आज चौताल के नाम से सुप्रसिद्ध है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

४. **मठताल**—इसकी मात्रा १० हैं। जिसका आधुनिक नाम 'सूलताल' अथवा 'सुरफागता' ताल भी है।

५. **चर्चरी**—इसकी मात्रा १० हैं। जिसका प्रचार आज कल 'झपताल' के समान हमारे मंदिरों में भी हो रहा है। यह भूलना नहीं चाहिए कि झपताल और चर्चरी के खंड अलग-अलग हैं। झपताल में २, ३, २, ३=१० और चर्चरी में ३, २ : २, ३=१० मात्रा के खंड हैं। झपताल तबले का और चर्चरी मृदंग का ताल है।

६. **पटताल**—इसकी मात्रा ८ हैं। जो आधुनिक ८ मात्रा की त्रिताल के समान होते हुए भी इसमें ताल के ६ आघात स्थान आते हैं।

७. **त्रिपुटताल**—यह ताल भी ८ मात्रा की आधुनिक तीन ताल के समान होते हुए भी इनमें ६ ताली का स्थान माना गया है। ताल और पटताल की मात्रा समान होते हुए भी ताली स्थान भिन्न है।

८. **ध्रुवताल**—मात्रा १४ हैं। जो आजकल आड चौताल के नाम से सुप्रसिद्ध है। हमारी दृष्टि से तबले पर बजती हुई ताल का नाम आड चौताल और मृदंग में बजने वाली ताल का नाम ध्रुवताल कहना सुसंगत होगा।

९. **चपकताल**—यह ताल ७ मात्रा का है। इसी ताल में तीव्रा ताल की उत्पत्ति होना संभावित है। अष्टछाप परंपरा में इस ताल में १, २ : ४, ६ मात्रा पर ताली स्थान सुप्रसिद्ध है। जो तीव्रा में १, ४, ६ मात्रा पर ताली स्थान होने के कारण चपताल में ४ खंड और तीव्रा में ३ खंड माने गए हैं। इस ताल को आज कल कोई अर्ध आड चौताल भी कहते हैं।

१०. **रूपक**—इसकी मात्रा ६ हैं। इस ताल की प्राचीनता देखते हुए इसी ताल में से आधुनिक दादरा ताल की उत्पत्ति होना संभावित है। इस ताल में १, ५ और दादरा में १, ४ पर ताली का स्थान होने से यह इसकी भिन्नता स्पष्ट होती है।

उपर्युक्त तालों का अधिक स्पष्टीकरण इसी प्रकरण में तालों के बोल मात्राएँ तथा खंड इत्यादि विवरण सहित दे चुके हैं। अतः उसे ध्यान में रखकर अष्टछाप संगीत परंपरा में यदि तालों का प्राचीन तत्त्व प्रचार में लाने का प्रयास किया जायगा तो ध्रुपद को पुनः जीवन प्राप्त होगा—यह कहना अस्थानीय नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिशिष्ट–१

मृदंगाचार्यों का परिचय

सम्प्रदाय में उत्तम मृदंगाचार्यों में से कुछ नामी मृदंगवादक हो गये हैं। उनमें से कुछ प्रसिद्ध मृदंगाचार्यों का परिचय यहाँ देना आवश्यक है।

मृदंगाचार्य वल्लभदासजी:—संवत् १८४९ में गो. श्री. वड़े गिरिधरलालजी महाराज ने श्री वल्लभदास पखावजी को जयपुर से वुलाकर श्रीनाथजी की सेवा में नियत किया था। संवत् १८७७ में वे वड़ौदा नरेश श्रीमान गायकवाड़ सरकार के यहाँ गये थे। महाराजा के आग्रह से इन्हें लगभग चार साल तक रहना पड़ा। वहाँ से आकर वे अपने जीवन पर्यन्त संवत् १९०६ तक श्रीनाथजी के पखावज की सेवा करते रहे।

मृदंगाचार्य श्री पहाड़सिंहजी:—ये हिन्दुस्तान के मशहूर पखावजी थे तथा जोधपुर इत्यादि राज्यों के महाराजाओं से सम्मानित थे। नाथद्वारा के पखावजी वल्लभदासजी का जव वड़ौदा जाना हुआ तव संवत् १८७७ से १८८१ तक श्रीनाथजी की कीर्तन मंडली में पखावज की सेवा में रहे थे।

पखावजी शंकरलालजी:—मृदंगाचार्य वल्लभदासजी के हरिशरण होने के बाद संवत् १९०६ में ये श्रीनाथजी की कीर्तन सेवा में अपने पिताजी के स्थान पर नियत हुए। इनके भ्राता खेमलालजी भी मृदंग-वादन में निपुण थे।

संवत् १९११ में जामनगर के गो. श्री. व्रजनाथजी महाराजश्री नाथद्वारा पधारे थे, आपके साथ में आदितरामजी भी थे। श्रीनाथजी के मन्दिर में शंकरलालजी का पखावज सुनकर उनके प्रति इतना सम्मान उत्पन्न हुआ कि आपने उनको राजभोग के बाद अपने निवासस्थान पर आने की आज्ञा की। तदनुसार दोपहर में श्री द्वारकानाथजी के मन्दिर में शंकरलालजी, खेमलालजी और बहुत से गुणीजन इकट्ठे हुए थे। पू. पा. श्री गोकुलोत्सवजी महाराज स्वयं श्री द्वारकानाथ लालजी भट्टजी तथा बालमुकुन्दजी के साथ उपस्थित थे तथा श्रीनाथजी के कीर्तनियाजी दौलतरामजी, बीनकार घनश्यामजी तथा नवनीतप्रियाजी के पखावजी रणछोड़जी तथा कीर्तनिया सुन्दरदासजी, गिरधरजी शिवलालजी और कीर्तनिया बालकृष्णजी के अतिरिक्त बाहर से आये हुए झाँसी के गवैये बिहारीदासजी तथा गवैये रामदासजी साधु इत्यादि गुणीजन भी उपस्थित हुए थे। पखावजी शंकरलालजी तथा खेमलालजी के पखावज-वादन के उपरांत गुजरात के सुप्रसिद्ध उस्ताद आदितरामजी के साथ मात्राओं के भेद, बोल-बांट तथा तालों के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संबंध में उत्थापन के समय तक सम्वाद हुआ था। तत्पश्चात् जाते समय गो. श्री. व्रजनाथजी महाराजश्री ने खड़े होकर शंकरलाल और खेमलाल दोनों भाइयों की पीठ ठोककर धन्यवाद के साथ शुभ आशीर्वाद देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार श्रीनाथजी की सेवा करते हुए संवत् १९५० में शंकरलालजी भगवद्शरण हुए।

पखावजी घनश्यामजी:—शंकरलाल के पश्चात् उनके पुत्र घनश्याम पखावजी को गो. श्रीमद् गोवर्धनलालजी महाराज ने श्रीनाथजी की सेवा में नियत किया। अपने पिताजी एवं काका खेमलालजी से उत्तम प्रकार की पखावज-वादन की कला और विद्या ये प्राप्त कर चुके थे। आपने अत्यन्त परिश्रम करके पखावज संबंधी सभी तरह का वर्णन शास्त्रानुसार उत्तम रीति से लिखकर तैयार किया था जिसे श्री गोवर्धन-लालजी महाराजश्री की सहायता से सवत् १९६८ में "मृदंग सागर" नामक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया। यह ग्रंथ आपकी एक अमूल्य देन है।

पं. आदितरामजी:—पं. आदितरामजी का जन्म सं. १८७५ (ई॰ स॰ १८२९) में ब्राह्मण वंश के वैकुंठराम व्यास के घर हुआ था। नवाब आमदखान ने सं. १८९६ में तखतनशीन होने के बाद आदितरामजी से मृदंग सीखने का अभ्यास किया था।

. १८९७ में जामनगर हवेली के गो. व्रजनाथलालजी महाराज का परिचय होते ही आपको सद्भाव उत्पन्न हुआ। संगीत द्वारा ईश्वर-भजन करना यह उनका दैनिक क्रम देखकर महाराजश्री की उन पर कृपा हुई और महाराजश्री द्वारा जामनगर के युवराज जामविभाजी का मिलाप हुआ जिन्होंने तखतनशीन होने के बाद आदित-रामजी को जामनगर में सं. १९०८ में आश्रय दिया।

ये मृदंग-वादन के उपरान्त गान विद्या और काव्य रचना भी करते थे। आरंभ में जूनागढ़ के नवाब के गुण-वर्णन की काव्य-रचना कर उसका गायन करते थे किन्तु जामनगर आने के पश्चात् व्रजनाथजी महाराजश्री की कृपा से सरगम, चतरंग, पदगान की रचना करने लगे और अपने धर्मगुरु और आश्रयदाता महाराजश्री व्रजनाथजी का व्रजपति तथा व्रजनाथ नामाभिधान जोड़कर श्रीकृष्ण के भक्तिमय गुणगान करने लगे और हवेली में व्रजपति के सान्निध्य में मृदंग का साथ करते रहे।

इस प्रकार सम्प्रदाय के अग्रगण्य कीर्तनकार आदितरामजी व्रजनाथजी महा-राजश्री की कृपा से अपना जीवन सफल बनाकर महाराजश्री के लीला प्रवेश के बाद अत्यधिक विरह-वेदना के कारण स्वास्थ्य पर विपरीत असर होने सं. १९२६ में गोलोकवासी हुए। आपकी संगीत रचनाओं का संग्रह आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व "संगीतादित्य" नाम से प्रकाशित हो चुका था।

पं. मदनमोहनजी उपाध्याय:—आप दतिया राज्य निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। आप पाठकजी के गुरु थे। ग्वालियर के पर्वतसिंहजी और आप गुरु भाई थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दोनों समान कोटि के मृदंगाचार्य माने जाते थे। बनारस के श्री गोपाल मन्दिर में बहुत समय तक श्रीजी के सम्मुख पखावज वजाने की सेवा आपने की थी। मन्दिर के अधिष्ठाता गो. श्री. जीवनलालजी महाराजश्री ने आपके पास संगीत का अयाम्स किया था।

मृदंगाचार्य श्री मन्नूजी:—मदनमोहनजी के पश्चात् बनारस में सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मृदंगाचार्य मन्नूजी गोपाल मन्दिर में वर्षों तक मृदंग की सेवा करते रहे। आप सम्प्रदाय की मर्यादा का चुस्त पालन करते थे। भीतर की सेवा करने की आपको आज्ञा थी। पू. पा. श्री जीवनलाल महाराज और गो. श्री. मुरलीधर महाराज के आप कृपापात्र थे। आपने १९३० ई. से लेकर १९५४ ई. तक "ताल दीपिका" नामक पुस्तिकाएँ चार भागों में प्रकाशित करके भारतीय संगीत की महत्वपूर्ण सेवा की है।

मृदंगाचार्य गोविन्दराव:—इनको कोई गोविन्दरामजी भी कहते थे। इन्दौर रियासत के वादनाचार्य सखारामजी बुआ से मृदंग की शिक्षा प्राप्त की थी। अपने समय के उच्चतर कोटि के गिनती के मृदंगाचार्यों में आपकी गणना होती थी। बुरहानपुर (खानदेश) में आपका निवास स्थान था। ईश्वर भक्ति के प्रति आपको श्रद्धा थी। बुरहानपुर के निवास दरम्यान वहाँ के वैष्णव मन्दिर (हवेली) में रोज यथासमय जाकर प्रभु सम्मुख पखावज वजाने की सेवा करते थे। आपको नाथद्वारा के तिलकायत गो. श्री. गोवर्धनलालजी महाराजश्री से ब्रह्म संबंध दीक्षा प्राप्त हुई थी। वैष्णव सम्प्रदाय के मृदंगाचार्यों में आपकी गणना होती थी। अहमदाबाद में सं. १९५५ में अखिल भारतीय पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीत सम्मेलन में आपका कार्यक्रम प्रभावशाली रहा था। गुरुजी पं. वाडीलालजी कहते थे कि मेरे परिचित पखावजियों में गोविन्दराम जैसा लयदार पखावजी मैंने कोई देखा नहीं है। आपके शिष्यों में बुरहानपुर के 'कृष्णदासजी' वैष्णव सुप्रसिद्ध हैं।

मक्खन पखावजी:—सम्प्रदाय के मन्दिरों में अधिकतर ब्रज के कोरिया जाति के पखावजियों की सेवा प्रशंसनीय है, जिनमें सर्वश्रेष्ठ नामी पखावजी 'मक्खनजी' की पखावजी उस समय के वृद्ध लोग आज भी याद करते हैं। नाम जैसा ही आपका मुलायम हाथ मक्खन जैसा था। पिछले वर्षों में बम्बई के माधवबाग मन्दिर में कुछ समय तक पखवाजी की सेवा करते थे। एक दिन मेरे साथ की हुई पखावज की संगत आज भी मेरे कर्ण पट से दूर नहीं है। गत शताब्दी में उपर्युक्त जो नामी मृदंगाचार्य हो गये हैं उनमें से श्री मक्खनजी, श्री गोविन्दरामजी तथा श्री मन्नूजी को सुनने का लाभ लेखक को प्राप्त हुआ था। तदुपरान्त मथुरा का छीद्दा तथा छुट्टनलाल पखावजी, ग्वालियर के माधोसिंग, विजयसिंग एवं इन्दौर के मृदंगाचार्य इत्यादि जिन्होंने सम्प्रदाय की सेवा की है, वे भी उल्लेखनीय है। तदुपरान्त आज के सुप्रसिद्ध मृदंगाचार्य श्री पुरुषोत्तमजी, जो मेरे मित्र हैं, वर्षों से सुनने का ही नहीं, साथ-संगत का भी लाभ मिलता रहा है जो अपने पिताजी के स्थान पर श्रीनाथजी के पखावजी की सेवा में सेवा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करने के बाद दिल्ली अकादमी में नियुक्त हुए थे। हाल निवृत्त होकर फिर नाथद्वारा में सेवा कर रहे हैं।

कीर्तनिया

गत शताब्दी के गोलोकवासी कीर्तनकारों को सुनने का ही नहीं किन्तु उनके सम्पर्क से प्रेरणा और परंपरा का जो कुछ अनुभव प्राप्त होता रहता था, ऐसे आदरणीय कीर्तनकारों के नाम इस प्रकार हैं:—

श्री गंगादासजी मुखिया, श्री गोविन्ददासजी मुखिया, श्री हरनाथजी, श्री मन्नालालजी, श्री छूररीजी (नाथद्वारा), श्री मन्नालालजी मुखिया, श्री छोटेलालजी, श्री किशनदासजी, श्री कन्हैयालालजी बीनकार (कांकरोली), श्री चन्दनजी चौबे, श्री गनपतजी, श्री शिवकुमारजी, श्री कुंदनस्वामी (मथुरा), श्री मंगलदास गांधर्व, श्री झीणाभाई गांधर्व, श्री गोरधनदास गांधर्व, श्री भोगीलालजी, श्री चुन्नीलालजी (अहमदाबाद), श्री सुन्दरलाल गांधर्व, श्री कीकाभाई गांधर्व (बड़ौदा), श्री चुन्नीलाल गांधर्व (सूरत) श्री तुलजारण गिरनारा, श्री त्रिकमदासजी (बम्बई) लेखक के पिताश्री छबीलदास नायक (पाटन), श्री शंभुलाल नायक, श्री माधवलाल डोसाभाई शेठ (बड़नगर वाले), श्री मगनलाल नायक (विसनगर), श्री नारायणदासजी (बुरहानपुर) श्री किशनदासजी अर्थात् मलिया तथा श्री वल्लभदास बापोदरा (पोरबंदर), श्री भगवतीप्रसाद भट्ट (धांगध्रा), श्री नटवरप्रसाद (वीरमगाम), ।

तदुपरान्त गत शताब्दी के अवेतनीय गोलोकवासी कीर्तनकारों में से श्री विट्ठलदासजी शाह (बम्बई, पाटन), शेठ श्री जमनादासजी जरीवाला, शेठ श्री हिम्मतलालजी (हालोल), श्री व्रजवल्लभभाई शास्त्री (खेड़ा), श्री काशीरामजी शास्त्री (मांगरोल), का भी स्मरण करना यहाँ सार्थक होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

परिशिष्ट-२

हवेली संगीत

हरिराय युग में कह चुके हैं कि विधर्मियों के उपद्रव से व्रजमंडल से सम्प्रदाय के सर्वतोधिक स्वरूप श्री गोवर्धनधरण तथा सप्त पीठों के निधि स्वरूपों को भिन्न-भिन्न रियासतों में पधराये गये और वहाँ मूर्तिपूजक हिन्दू धर्माभिमानी राजाओं ने सभी प्रकार की सुविधा के साथ श्रद्धापूर्वक आश्रय दिया। धीरे-धीरे महालों जैसे मन्दिर भी बने तथा मन्दिर के अधिपति गोस्वामी महाराजश्रीओं के प्रभाव से प्रभावित होकर मन्दिरों के निभाव के लिये बहुत से राजाओं ने जमीन-जागीर भेंटकी, सेवक भी बनने लगे।

उदेपुर के महाराजा ने नाथद्वारा के तिलकायत महाराजश्री को नाथद्वारा सहित अन्य ३६ गाँव तथा कांकरोली ततीय पीठ के महाराजश्री को कांकरोली सहित २५ गाँव भेंट करके इन गाँवों को स्वतंत्र रियासत के अधिपति बनाकर सर्वाधिकार प्रदान किये।

अष्टछाप के संस्थापक श्रीमद् विट्ठलेश्वर के प्रभाव से सम्राट अकबर शाह द्वारा गोकुल और आसपास के बक्षीस किये हुए गाँवों का उल्लेख सम्प्रदाय के इतिहास में सुप्रसिद्ध है। वल्लभ वंश की प्रभावशाली प्रतिमा की परंपरा के कारण उदेपुर, जैपुर, जोधपुर, किशनगढ़, कोटा, इन्दौर, जामनगर, जूनागढ़ इत्यादि राज्यों के महाराजा का सम्पर्क दिन प्रतिदिन बढ़ता रहा। राज्यों के आश्रित गायक-वादकादि प्रसिद्ध कलाकार गोस्वामी महाराजों के यहाँ प्रसंगानुसार संगीत सुनाने को आया करते थे। अष्टछापीय परंपरा के अतिरिक्त इस समय के अन्य प्रचलित घरानेदार चीजों का गायन सुनने का शौक बढ़ता रहा। यही नहीं पसंदगी के रागों की चीज़ों को अपनी संग्रह पोथिओं में लिखवा लेते थे जिनमें अन्य रागों में गाये हुए सम्प्रदाय के ध्रुपदों का समावेश भी किया जाता था, जैसे कांकरोली के संगीतज्ञ गो.श्री. द्वितीय व्रजभूषण जी महाराजश्री के समय की संग्रह पोथी में प्रचलित अन्य १०-१५ रागों में ध्रुपदों का उल्लेख प्राप्त होता है। तदुपरान्त भक्त नरसिंह की रचनाओं के पद भी लिखे हुए हैं। श्री व्रजभूषण महाराज का समय सं. १७६५ से सं. १८३३ तक का है। आपके श्रीहस्त से लिखी गयी इस बृहद् पोथी में सं. १८१० का उल्लेख किया गया है। किन्तु यह मानना नहीं चाहिये कि पोथी में लिखे हुए सभी राग सम्प्रदाय में गाये जाते हैं क्योंकि वे राग और नरसिंह आदि भक्तों के पद अपनी पसंदगी के होने से बे अन्य समय में सुना करते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भक्त नरसिंह के पद आपको ही नहीं किन्तु श्री गोकुल प्रभु से लेकर विक्रम की १९वीं शताब्दी तक के जो गोस्वामी महाराज गुजरात, सौराष्ट्र में पधारते थे, वे सभी बालक भक्त नरसिंह के भक्तिमय पदों का गान सुना करते थे। नरसिंह के पदों का परंपरागत रागों में गान करनेवाले ब्राह्मण लोगों को हवेली संगीत के निष्णात गोस्वामी महाराजश्रीओं का आश्रय मिलने पर ये मन्दिरों में कीर्तन की सेवा में रहने लगे। दूसरी ओर भवाई के गायक-वादक, नायक (त्रागाला ब्राह्मण), गांधर्व सेवक जिसकी चर्चा हम पूर्व कर चुके हैं, उमेंमें से कुछ लोगों ने वैष्णवी दीक्षा लेकर मन्दिरों की कीर्तन सेवा को अपना व्यवसाय वना लिया था।

श्री हरिरायजी के समय पश्चात हमारी कीर्तन परम्परा के गायक-वादक तीन विभाग में दृष्टिगत होते हैं—

(१) राजस्थान-मध्यप्रदेश
(२) व्रजमंडल (उ.प्र.)
(३) गुजरात-सौराष्ट्र

राजस्थान तथा व्रजमंडल में महाबनिया, सनाढ्य तथा रासधारी ब्राह्मणादि कौम के कीर्तनीया कीर्तन की सेवा में रहने लगे। इसी प्रकार गुजरात-सौराष्ट्र में गिरनारा तथा अन्य ब्राह्मण एवं नायक, गांधर्व इत्यादि मन्दिरों में कीर्तन की सेवा में रहने लगे।

संगीत क्षेत्र में जैसे ग्वालियर को संगीत का मूल घराना माना जाता है वैसे अष्टछापीय परंपरा का मूल केन्द्र गोवर्धन माना जायगा। भारतीय संगीत के भिन्न-भिन्न घराने लगभग १५० साल से प्रचार में आने लगे। इसी दरम्यान हवेली संगीत के उपर्युक्त बताये गये तीन स्थानों में अधिक प्रचार होता रहा। वास्तव में गोवरधारी (गोवरहारी) बानी की द्रुपद शैली एक ही होते हुए भी समयान्तर तीनों विभागों में कुछ न कुछ शैली भेद दृष्टिगत प्रचार में आने लगा। नाथद्वारा-कांकरोली विभागों में कुछ न कुछ शैलीभेद दृष्टिगत प्रचार में आने लगा। नाथद्वारा-कांकरोली आदि घराने में गोवरहारी बानी की कुछ झाँखी परंपरागत होती रही। इस शैली में तान-आलाप इत्यादि का प्रयोग किया नहीं जाता केवल मूल बंदिश के अनुसार सीधे-सादे ढंग से गाने की प्रथा है। यहाँ अन्य विभागों की अपेक्षा कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता किन्तु कुछ मार्मिक लोगों का कहना है कि आजकल कीर्तनगान शीघ्रता से गाये जाने के कारण ताल, राग तथा महानुभावियों की वाणी के शब्द यथा समय समझ में आना मुश्किल हो जाता है।

मथुरा-बनारस विभाग के घरानों की कीर्तन गायको में कहीं-कहीं ठुमरी एवं ख्याल अंग की कुछ छाया प्रदर्शित होती रहती है तथा विलंबित गति से गाने का कुछ व्यवहार प्रचलित होने लगा है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गुजरात-सौराष्ट्र की कीर्तन शैली लगभग एकसी है। यहाँ की कीर्तन लैशी में आजकल कीर्तन के शब्दों के उठाव पहले तार सप्तक में मध्यम या पंचम स्वर की टीप लगाते हुए दिखाई देते हैं तथा छोटी-छोटी तान मूर्कया लेने का व्यवहार भी प्रचलित होता रहा है। यह कृत्य योग्यता अनुसार और सुसंगत अंग से बताना मुश्किल है।

उपर्युक्त तीनों विभाग एवं अन्य प्रांतों में भक्तिमार्ग के प्रचारार्थ किये हुए प्रवासों के फलरूप अनेक मन्दिरों में स्थापित हो चुके थे जिनमें मुखिया, भीतरिया, कीर्तनिया इत्यादि अधिक संख्या में सेवक टहलेवाओं का पालन-पोषण होता रहता था। आठ घंटे की प्रात: और सायं सेवा प्रणाली के समय बीच चार घंटे का भाव पूर्वक कीर्तन गान करते हुए उस समय के कीर्तनकारों को हमेशा का रियाज होता रहता था। इस प्रकार के रियाज से एवं महाराजश्रीओं के मार्गदर्शन से अच्छे सुरीले और और तालज्ञ कीर्तनकार आसानी से तैयार होते थे।

केवल तृतीयगृह—कांकरोली तथा षष्ठमगृह—सूरत की छपी हुई कीर्तन प्रणाली को देखने से ज्ञात होता है कि शीतकाल-उष्णकाल, चतुर्मास तथा उत्सव-त्यौहार इत्यादि की प्रणाली अनुसार के गाये जाने वाले हजारों पदों के शब्द, लय, ताल-रागादि की ओर ध्यान रखने के उपरान्त भिन्न-भिन्न बंदिशों को कंठस्थ रखने की कला को ग्रहण करना आसान नहीं था। वर्षों की तपश्चर्या के बाद यह कला सिद्ध होती थी।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीत को हवेली संगीत कहने का रिवाज अन्तिम ५० वर्षों से ही प्रचार में आने लगा। सौराष्ट्र में पुष्टिमार्गीय मन्दिर को वर्षों से हवेली कहने का रिवाज है। इस शब्द के प्रचार से धीरे-धीरे पुष्टिमार्ग के सभी मन्दिरों के लिये यह शब्द पर्यायवाचक बन गया। अन्य मन्दिरों जैसे पुष्टिमार्गीय मन्दिरों को घूम्मट या शिखर-बंद बनाये नहीं जाते। किन्तु श्रीमंतों की हवेलियों की तरह उसकी रचना होने से हवेली और हवेली में गाये जाने वाले अष्टछापीय कीर्तन संकीत को हवेली संगीत कहना सुसंगत होगा।

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध श्री के. का. शास्त्रीजी ने सन १९३८ में बुद्धिप्रकाश मासिक में हवेली-संगीत शीर्षकान्तर्गत विस्तारपूर्वक लेख प्रसिद्ध किया था। तभी से हवेली संगीत नाम क्रमश: प्रचार में आने लगा। तत्पश्चात् आकाशवाणी के केन्द्रों से हवेली संगीत नाम से पुष्टिमार्गीय कीर्तनों का प्रसारण होता रहा है। फलत: आज अधिकतर लोग अष्टछापीय परंपरा के संगीत को हवेली संगीत नाम से पहचानने लगे हैं। पुष्टि सम्प्रदाय का सर्वप्रथम बना हुआ गोवर्धन पर्वत का मन्दिर था जिसमें सं. १९५६ में श्रीनाथजी की सेवा का आरंभ हुआ था। इस सर्वप्रथम मन्दिर से लेकर आज तक के सभी मन्दिरों हवेलियों से मिलते-जुलते बने हुए हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अधिकतर मन्दिरों की रचना निम्न आकृति अनुसार होती रहती है—

मंदिर—हवेली की रचना

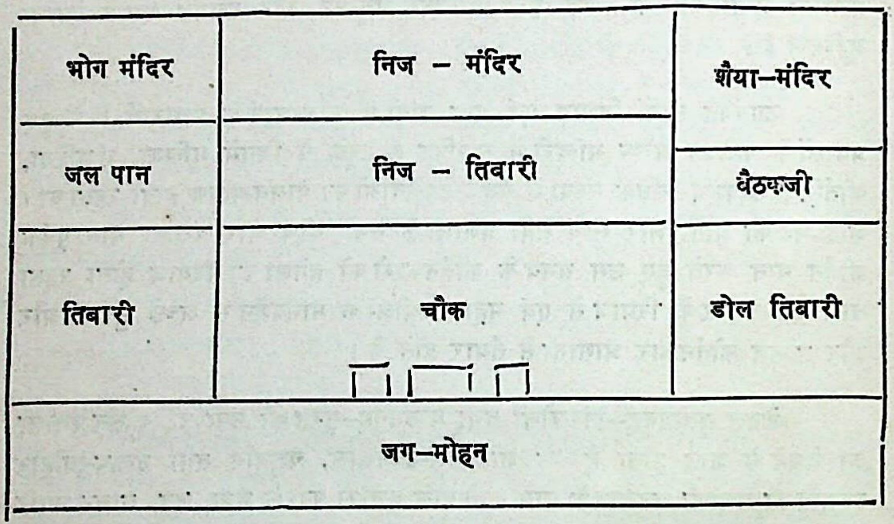

गोवर्धन चौक

उपर्युक्त आकृति के उपरान्त स्थल की अन्य अनुकूलता अनुसार रसोईघर, बालभोग, दूधघर, पानघर, जलघर तथा तोषाखाना इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।

अन्य सम्प्रयदायों में भगवान का प्रतीक होता है। इसलिये पूजा, अर्चना, आव्हान आदि किया जाता है। पुष्टि सम्प्रदाय में ईश्वर का प्रतीक नहीं किन्तु साक्षात बाल प्रभु की भावना की जाती है। अतः उनका मन्दिर नहीं परन्तु निवास स्थान माना जाता है। भावना की दृष्टि से नन्दालय यानी नन्दरायजी के आवास की भावना की जाती है। इस मान्यतानुसार हवेली संगीत नाम का उद्भव सुसंगत कहा जायगा। पहले पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीत था, जो अष्टछाप कीर्तन संगीत के नाम से पहचाना जाता था। इस मान्यता के आधार पर 'बुद्धिप्रकाश' मासिक में १९३८ में श्री के. का. शास्त्री का हवेली-संगीत शीर्षक का एक लेख प्रसिद्ध हुआ था। पुष्टिमार्गीय युवक परिषद् वम्बई की ओर से ई. सं. १९३९ में हवेली-संगीत, नाम के स्थान पर 'पुष्टि-मार्गीय कीर्तन प्रकार' नामकरण से पुस्तिका प्रगट की गई थी।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन-संगीत तथा हवेली-संगीत ये दोनों नामकरण सैद्धान्तिक दृष्टि से समान होते हुए भी व्यापक दृष्टि से यदि कोई भेद निकालना चाहे तो (१) उपर्युक्त बताई गई आकृति के अनुसार के समग्र भागों में सेवा की प्रणाली के अनुसार गाये जाने वाले परंपरागत कीर्तन गान के अतिरिक्त (२) गोवर्धन चौक;

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महाराजश्री की बैठक इत्यादि स्थानों में जन्मोत्सव इत्यादि प्रसंगोपात्त जो घोल, धवल, हींच-हमचो, गरबा इत्यादि जो वैष्णव स्त्री-पुरुष इकट्ठे होकर नरसिंह, वल्लभ, दयाराम, लाला लहरी, चन्द्रसखी, सोभामाजी निजंजन इत्यादि की रचनाओं का गान करके जो आनंदोत्सव मनाते हैं इसका भी हवेली के संगीत के अन्तर्गत समावेश हो सकता है, किन्तु दोनों प्रकार को (१) परंपरागत शास्त्रीय संगीत तथा (२) सुगम संगीत इस प्रकार के भेद भिन्न रखना आवश्यक है।

अष्टछाप संगीत का भी घराना है। आकाशवाणी ने भी हवेली संगीत को सुबद्ध संगीत में स्थान दिया है, जिसमें इन दोनों भेदों की स्पष्टता होना आवश्यक है। ख्याल, ध्रुपद के घरानों की गायकी में और सुगम संगीत के प्रकार की गायकी में आवाज निकालने की तरह भिन्न है। एक में परंपरा की निश्चित की हुई स्वर रचना शास्त्रीय नियमों से सुबद्ध है, जो दूसरे में ऐसा कोई नियम दिखाई नहीं देता। वाग्गेयकार भगवद् भक्तों के शास्त्रीय राग-तालादि में गाये गुणानुवाद को पद कहने का प्राचीन रिवाज है। सम्प्रदाय के सभी कीर्तन संग्रहों में विविध प्रकार के कीर्तन 'पद' संज्ञा से विभाजित किये गये हैं। पद के संबंध में यहाँ कुछ विचार करना ठीक होगा।

पद:—पद संज्ञा का सर्जन विक्रम की प्रथम शताब्दी के पश्चात् होना माना जाना है। कुछ भिन्न मत इस प्रकार हैं:—

(१) पद्य का संक्षिप्त स्वरूप जिसे गद्य विभाग से अलग रखने के लिए एक इकाई के रूप में हो उसे 'पद' कहते हैं।

(२) जिसकी रचना सरस, ललित, मधुर, कोमलकान्त पदावलियों से युक्त, संगीतमय, ताल और लय से बद्ध, एक विचार से पूर्ण एवं भावयुक्त हो, उसे 'पद' कहते हैं। काव्यों को भी अष्टछाप के पूर्व भक्त नरसिंह के काव्यों को भी "पद" संज्ञा दी गयी है। किन्तु यथार्थ स्वरूप में अष्टछाप के समय से अर्थात् १६वीं शताब्दी के आरंभ से उसका प्रचार होना सर्वसम्मत माना जाता है।

वाणी:—वास्तव में पद, वाणी और कीर्तन का एक ही स्वरूप होते हुए भी ये तीनों शब्द प्रचार में दिखाई देते हैं। अष्टसखा के पद के अतिरिक्त अष्टसखाओं की वाणी (बानी) भी कही जाती है। राधा-वल्लभ तथा गौड़िया सम्प्रदाय में पदों की अपेक्षा वाणी कहने का अधिक रिवाज है। इस वाणी को "पद" संज्ञा से संबोधन करने का व्यवहार उपर्युक्त की गई व्याख्यानुसार समझा जाता है।

गीत:—पद को भी कोई गीत कहते हैं किन्तु प्रचार की दृष्टि से देखा जाय तो गीत का सुगम संगीत में समावेश होना सुसंगत कहा जायगा। संगीत शास्त्र में गीत के ६ लक्षण बताये गये हैं। जिनमें ईश्वर स्तुति आदि भाव प्रकट होते हो, उसको भक्ति गीत कहे जाते हैं। गीत में शब्द और स्वर का पूर्ण साम्य होना चाहि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिनमें किसी प्रकार का तान, आलाप होना आवश्यक नहीं है। किन्तु गीत में शब्द और स्वर का भाव सुन्दर और मनोरंजक होना चाहिये। इस प्रकार के आजकल भक्ति-गीत, भजन-गीत, ठुमरी-गीत, लोक-गीत, गरबा, गरबी तथा अन्य भाव गीत जो सुनने में आते हैं, ये सभी गीत के प्रकार माने जाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिशिष्ट—३

पुष्टि-कीर्तन संगीत के अभ्यासियों को मार्गदर्शन

(१) सम्प्रदाय की कीर्तन परंपरा में नित्य-क्रम, जन्म-बधाई और त्यौहारोत्सव तथा ऋतु-ऋतु अनुसार नियत किये हुए रागों में गाये जाते हैं।

(२) ऋतु प्राधान्य रागों के आरंभ करने से पहले आलापचारी (आलाप) की जाती है।

(३) इस परंपरा के गीतों को कीर्तन, पद या वाणी कहने का रिवाज है।

(४) इस घराने की परंपरा ध्रुपद शैली की है।

(५) प्रत्येक पद में कम से कम दो तुक यानी चार चरण होते हैं जो क्रमश: स्थायी, अन्तरा, संचारी व आभोग कहे जाते हैं।

(६) दो तुक से अधिक चरण के भी पर्याप्त कीर्तन हैं। अधिक की सभी तुक संचारी और आभोग की समान गायी जाती है।

(७) पद के प्रत्येक चरण दो, तीन या चार आवर्तनों से बने हुए होते हैं।

(८) काव्य की भाषा, भाव और इस वर्णन के अनुरूप स्वर और शब्दोच्चार का झोक होना चाहिये।

(९) कीर्तन के शब्दों में ह्रस्व-दीर्घ के उच्चार की ओर ध्यान रखना आश्वयक है।

(१०) प्रत्येक पद परंपरागत बंदिश के अनुसार नियत राग और ताल में गाये जाने चाहिये।

(११) जन्म-बधाई तथा त्यौहारोत्सव के दिनों में मंगला-दर्शन के बाद शयन पर्यन्त झांझ पखावज के साथ कीर्तन गाये जाते हैं।

(१२) नित्य-क्रम में तानपुरा, मृदंग और सारंगी (आजकल हारमोनियम) का उपयोग किया जाता है।

(१३) होरी के दिनों में (वसंत पंचमी से डोल तक), झांझ, डफ, उपंग, किन्नरी का वादन मृदंग के साथ किया जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१४) कीर्तन के तालों में लय के तीनों प्रकारों का प्रयोग किया जाता है। लय की गति का प्रमाण इस प्रकार दृष्टिगत होता है।

(अ) द्रुतलय मात्रा-१ का प्रमाण १/३ सेकन्ड

(ब) मध्यलय मात्रा-१ ,, ,, १ सेकन्ड

(क) विलंबित लय मात्रा १ का प्रमाण १½ सेकन्ड

इससे अधिक विलंबित सम्प्रदाय की परंपरा में दिखाई नहीं देता।

(१५) मध्यरात्रि से लेकर दिन के मध्यान्ह तक गाये जाने वाले रागों को प्रातः सेवा की प्रणाली में तथा मध्यान्ह से लेकर मध्यरात्रि तक के गाये जाने वाले रागों को सायं-सेवा प्रणाली में समावेश किया गया है।

(१६) प्रातःकाल के संधिप्रकाश राग मंगला समय तथा सायं संधि प्रकाश राग भोग तथा संध्यार्ति समय गाये जाते हैं।

(१७) शीतकाल में कानड़ा राग के विविध प्रकार तथा उष्णकाल में सारंग के विविध प्रकार और चातुर्मास में मल्हार के प्रकार विशिष्ट रूप से गाये जाते हैं।

(१८) सम्प्रदाय की दीक्षा किसी भी श्रीमद्वल्लभ वंश के बालक से ग्रहण करने के पश्चात ही श्रीजी के सम्मुख कीर्तन गाने का अधिकार प्राप्त होता है।

(१९) गत शताब्दी पूर्व के लहिया के लिखित कीर्तन संग्रहों तथा कीर्तनियाओं की परंपरागत कीर्तन-गान की पोथी में जो कीर्तन संग्रहित किये गये हैं उसके अतिरिक्त किसी भी पद-गान की रचना प्रभु सम्मुख गाने की चेष्टा सम्प्रदाय की प्रणाली में नहीं है।

(२०) निम्नलिखित रागों को सीखने के पहले वह राग जिस ठाट में से उत्पन्न होता है उसी ठाट के स्वरों में अलंकार पलटाओं का ठीक अभ्यास करना चाहिए। बाद में राग के स्वर विस्तार का रियाज करना भी आवश्यक है। जिसके लिये हमारे 'संगीत सुबोधिनी' ग्रन्थ का अवलोकन कीजिये। निम्नलिखित राग-ताल का अभ्यास आवश्यक है—

प्रथम श्रेणी:—

राग:—(१) भैरव (२) विभास (३) विलावल (४) आसावरी (५) सारंग (६) पूर्वी (७) काफी (८) इमन (९) केदार (१०) बिहाग।

ताल:—(१) आदिताल (आठ मात्रा की त्रिताल) (२) चंपकताल (अर्ध आड़ा चौताल) (३) चर्चरी (झपताल अंग की) (४) धमार (५) चौताल (६) दादरा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

द्वितीय श्रेणी:–

राग:—(१) रामकली (२) मालकौंस (३) धनाश्री (४) सारंग के चारों प्रकार (५) नट (६) हमीर-हमीर कल्याण (६) सोरठ (७) कान्हरा (८) गौरी (९) खमाज।

ताल:—(अ) चौताल, धमार, चर्चरी, आदि ताल, अर्ध आड़ा चौताल ये सभी तालों की चलती (चलन)।

(ब) धीमा त्रिताल, झूमरा, दीपचंदी, आड़ा चौताल, तीव्रा, चर्चरी, रूपक के प्राचीन प्रकार का ज्ञान।

तृतीय श्रेणी:–

राग:—(१) ललित (२) देवगंधार (३) पंचम (४) परज (५) जेतश्री (६) विलावल के और सारंग के सभी प्रकार (७) वसंत तथा मल्हार के सभी प्रकार तथा उपर्युक्त लिखित रागों के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में दिये हुए सभी रागों का ज्ञान।

(२१) द्रुपद गान में चौताल, सूलताल, तीव्रा तथा चर्चरी वगैरह तालों का समावेश किया जाता है।

(२२) सुरीले एवं प्राचीन परंपरा के कीर्तनकारों से कीर्तन संगीत सुनने का आग्रह रखना चाहिये।

(२३) कीर्तन गान में लय की (विलंब, मध्य एवं द्रुत) गति रखने का आधार सेवा समय के अवकाशानुसार सुसंगत होना चाहिये।

(२४) (अ) झाँझ, पखावज के साथ गाये जाने वाले बधाई, त्यौहार के कीर्तन गान में पद की अन्तिम तुक चलती में गाई जाती है।

(ब) श्रीजी को आर्ति आने के समय में चलती में गान किया जाता है।

(२५) (अ) आठ या सोलह मात्रा की त्रिताल में गाये जाने वाले कीर्तन की चलती चार मात्रा के आधुनिक केरवा के अनुसार ली जाती है। (ब) चौताल, चर्चरी, सात या चौदह मात्रा का आड़ा चौताल तथा धमार ताल की चलती में उसी ठेकों को द्रुतलय में बजाते हैं तथा ठेका में कायदा, टुकडे एवं तोड़ा के प्रकार भी बजाए जाते हैं।

(क) धमार ताल के त्रिताल की चलती में बजाने का भी रिवाज दिखाई देता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिशिष्ट-४

कीर्तन मर्मज्ञ गोस्वामी महाराजों का परिचय

सम्प्रदाय के गोस्वामी महाराजश्रीओं द्वारा भिन्न-भिन्न स्थलों पर मन्दिरों की स्थापना होती रही। मन्दिरों में हवेली संगीत का गान करने वाले व्यवसायी और अव्यवसायी वैष्णव वर्ग की संख्या भी वढ़ने लगी। मन्दिरों के अधिपति महाराजश्रीओं का राज्यों से सम्पर्क वढ़ने के कारण घरानेदार गायक-वादकों का संगीत सुनने का व्यवहार भी वढ़ता रहा। अष्टछापीय संगीत का महाराजश्रीओं को वाल्यकाल से ही श्रवण करने का संस्कार रहा करता था। तदुपरान्त अन्य गायक-वादक, नृत्य-नाट्य तथा भवाईक इत्यादि के कलाकारों का संपर्क वढ़ जाने से संगीत प्रिय गोस्वामी महाराजश्री स्वयं उच्चकोटि के संगीत के ज्ञाता वन चुके थे। इस प्रकार के संगीतज्ञ गोस्वामी महाराजश्रीओं ने सम्प्रदाय के संख्यावद्ध कीर्तनकारों को तथा अन्य कलाकारों को भी योग्यतानुसार भेंट-सौगात इत्यादि से प्रसन्न रखते थे। अष्टछापीय परंपरा का प्रचार करने वाले ऐसे संगीतज्ञ महानुभाव गोस्वामी महाराजश्रीओं में से उदाहरणार्थ कतिपय गोस्वामी महाराजश्रीओं का परिचय कराना उचित समझता हूँ जिनमें आधुनिक युग के पूर्वकाल के प्रथम गो. श्री. गोपाललालजी महाराज के समय से यह आरंभ किया जा रहा है, जिन्होंने भवाईवंशों के कलाकारों को उत्तेजन देकर गायन-वादन और नृत्य-कला को प्रोत्साहन दिया था।

. . संवत् १६७७ में श्री गुसांईजी के पौत्र गो. श्री गोपाललालजी महाराज ने सौराष्ट्र की यात्रा की, तव वांकानेर, हलवद होकर जब वठवाण पधारे थे तब वहाँ के राजा पृथ्वीसिंग (पृथ्वीराज) और उनके कौटुम्बिक एवं संबंधीजन तथा पांचाल प्रदेश के अनेक राजपूत गरासिया लोग भी आपके सेवक थे। राजा भमावद सेवा और स्मरण में ही मग्न रहता था और राज्य का कारोबार बरवाला वाले घेलाशा के पिता माधाशा नामक वणिक सेठ संभालते थे। एक समय मच्छकांठा (मोरवी) के तरमाला (भवैया) हीरजी व्यास अपनी भवाई मंडली लेकर वठवाण आये थे। वे राज-भवैया कहलाते थे। उनका कार्यक्रम दरवारगढ़ में आयोजित किया गया। राजा वैष्णव होने से नायक ने भक्त राजा अम्वरीष का आख्यान भवाई वेशों में व्यक्त किया। प्रेक्षकों की ओर से वहुत इनाम प्राप्त हुए। नायक ने पृथ्वीराज के पास आकर नमन किया तब राजा ने राजरीति के अनुसार जरी-कीनखाव का पोषाक तथा ५०० कोरी का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इनाम देकर कहा कि "यह पाग-पोषाक पहनकर किसी को मुजरा करना नहीं क्योंकि वठवाण के राजा की पाग प्रभु के सिवा किसी को झुकती नहीं।" नायक ने कहा कि महाराज हमारे पूर्वज में दयाराम वैद्य हुए थे। उनका भवाई में वैष्णव का वेश धारण करते ही उनके शरीर में से चार हत्याएँ दूर हट गयीं। श्री गुसांईजी के शरण जाकर उनके अनन्य सेवक हुए थे। इस प्रकार के हमारे परंपरागत प्रभाव को जानता हूँ, इसलिये मैं सौगंध से कहता हूँ कि मेरा प्राण जाने पर भी आपकी पाग आदि वेशभूषा अणनम रहेगी।

पृथ्वीराज की इस टेक की खबर कर्णोपकर्ण दिल्ली तक पहुँच चुकी थी।

कुछ समय वाद यही भवाई मंडलो प्रवास करती हुई दिल्ली आ पहुँची, जिनकी प्रशंसा राज के खासदारों द्वारा जहाँगीर ने सुनकर 'दीवाने खास' में खेल रखने का फरमान किया। संगीत कला एवं नृत्यादि से खुश होकर उनके नायक को स्वर्ण पदक तथा एक अशरफी (सिक्का) का इनाम दिया। पश्चात नायक ने जो वेश परिधान किया था वह उतारकर अपनी रोजाना की पाग पहनकर बादशाह के सामने आकर कदम-पोष करके सिर झुकाकर मुजरा किया। यह देखकर शहनशाह जहाँगीर क्रोधित हुआ और उनके खासदार जलालुद्दीनखाँ ने इस वेअदवी वर्तन के कारण नायक को धमकी दी। नायक पैरों में झुककर कहने लगा कि मेरी वेअदवी जैसा वर्तन लगा हो तो यह गुलाम आपकी क्षमा चाहता है क्योंकि यह पाग प्रभुभक्त पृथ्वीराज ने भेंट की थी तब मैं वचनवद्ध हुआ था कि प्राण जाने पर भी यह पाग पहनकर किसी को नमन नहीं करूँगा।*

इस प्रकार उस समय लोक समाज में भवाई और भवाइओं को आदरपात्र मानते थे। सुसंस्कृत और उच्चकोटि की इस भवाई और भवैया के संबंध में निम्न-प्रकार संक्षेप में माहिती देना आवश्यक समझता हूँ।

श्री गिरिधरलालजी महाराज (भवाईवाले)

श्री गिरिधरलालजी महाराज (भवाईवाले) का जन्म सं. १७४५ में हुआ था। आपके पितृचरण का नाम श्री व्रजभूषणजी महाराज था, जिन्होंने गोकुल से द्वारकाधीश को आसोटिया (कांकरोली) में पधराये थे। आपको संगीत का अत्यन्त शौक था। अष्टछापीय कीर्तन परंपरा के भी आप ज्ञाता थे। आपके पास गायक-वादक, लोग संगीत सुनाने के लिये आया करते थे।

किन्तु तृतीय गृह की गादी पर विराजित होने के बाद गायन-वादन, नृत्य और नाट्य इन सभी कलाओं का जिनमें दर्शन होता था उनका इस प्रकार की भवाई की ओर ध्यान गया। फलतः भवाई के इस निजी शौक को प्रभु को निवेदन कर भक्ति

* "वैपूवानर" मासिक पृष्ठ २४-२६ अंक जान्यु. फेबु. सन १९६२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का एक उत्तम साधन बना दिया। जिसका उल्लेख कांकरौली का इतिहास पृष्ठ ५७ पर से निम्न प्रकार उद्धृत किया जाता है—

"तिलकायित होने के बाद गिरिधरजी महाराज ने ठिकाना और द्वारकाधीश की सेवा का भार संभाला। प्रभु को इन्होंने विविध लाड़ लड़ाये। इन महाराज को भवाई का खेल देखने का बड़ा शौक था। जब कोई भवाई का खेल करने वाला कांकरौली आता, तो ये उसका खेल देखकर उसे अच्छा पारितोषिक प्रदान करते थे। इसी शौक के कारण आगे चलकर इनका नाम भी "भवाईवाले गिरिधरलालजी" पड़ गया। कहते हैं कि इस खेल के व्यसन में बहुत-सा द्रव्य खर्चकर देने के कारण ठिकाने के कर्मचारी और सगे-सम्बन्धी इनसे बहुत कुछ कुढ़ने लगे थे। विनय करने पर भी जब इस पर इन्होंने ध्यान नहीं दिया, तो सब लोगों ने जाकर नाथद्वारा के तिलकायित श्री दामोदरजी महाराज से इसकी शिकायत की, और कांकरौली आकर गिरिधराललजी को सम्बोधित करने के लिये उनसे विनय की। वे वृद्ध थे, अत: मनुष्यों को उनके कहने-सुनने से प्रभाव पड़ने की आशा थी।

एक दिन जब मन्दिर में भवाइयों का तमाशा हो रहा था, गिरिधरलालजी 'कान्ह तिबारी' में बैठे खेल देख रहे थे। तमाशा करने वालों का जमघट जमा था और खेल वाले अपना करतब दिखला रहे थे।

खेल के ठीक समय नाथद्वारा के तिलकायित की सवारी आई। उन्होंने खेल देखते ही गिरिधरलालजी को फटकारना चाहा। कहते हैं कि उस समय उन्हें गिरिधर-लालजी महाराज की गोद में बैठकर खेल देखते हुए द्वारकाधीश के दर्शन हुए। नाथद्वारा के तिलकायित प्रभु की इस बाललीला-भाव के दर्शनकर मुग्ध हो गये और उन्होंने भी कुछ द्रव्य न्यौछावर कर भवाइयों को प्रदान किया। लोगों ने जब इसका कारण पूछा तो वे यह कहकर वहाँ से चले गये कि महाराज अपने शौक के लिये नहीं, प्रत्युत ठाकुरजी के लिये ही यह खेल करवाते हैं। ठाकुरजी की प्रसन्नता के लिये सब कुछ न्यौछावर किया जा सकता है।"

इस घटना का यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि गिरिधरलालजी महाराज के शिष्य भी गुजरात के मन्दिरों में भवाइयों के खेल करवाने लगे और यह क्रम बहुत समय तक चलता रहा।

गुजरात में आपके अनेक सेवक हुए और मन्दिरों की स्थापना भी की। गायन, वादन, नृत्य और नाटक ये चारों कला आपको प्रिय थीं। अपनी प्रिय कलाओं को भवाई द्वारा सेव्य प्रभु को प्रसन्न करने का साधन माना गया और धंधुकादि गुजरात के कुछ गाँवों में तो आपके जन्म दिन के रोज भवाई खेल का आयोजन भी किया जाता था। यह प्रथा वर्षों तक रही। भवाई करने वाले नायक कौम के कलाकार भी आपके सेवक हुए, इनमें से कुछ भावुक कलाकारों को सम्प्रदाय के कीर्तनों की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तालीम देकर मन्दिरों में कीर्तन की सेवा में नियत किये। इस प्रकार हवेली संगीत का प्रचार क्रमशः गुजरात में होता रहा।

नायक (भवैया) कौम का संबंध सम्प्रदाय में श्री गुसांईजी के सेवक दयाराम भवैया के समय से है। २५२ वैष्णव की वार्ता में दया भवैया की वार्ता सुप्रसिद्ध होने से यहाँ उनका विस्तार करना नहीं चाहते हैं। दया भवैया जिस स्वरूप को सेवा करते थे वह श्री मदनमोहनजी का स्वरूप आज जूनागढ़ के बड़े मन्दिर हवेली में विराजमान है।

दया भवैया के समय से इस जाति के लोग दूर-दूर तक जाते थे। अंदाज से ऐसा लगता है कि इनके समकालीन गोपाल-नायक भवाई मंडलो के साथ दस वर्ष की आयु में आग्रा गये थे। वहाँ उनकी चपलता और मधुर कंठ देखकर उनको ग्वालियर भेजा गया। यह गोपाल-नायक तानसेन के समकालीन थे।

इस प्रकार गोपाल-नायक भारत का अमर गायक हो गया। कहा जाता है कि नायक बैजू (बैजनाथ) भी इस प्रकार गुजरात का ही कलाकार था किन्तु हमारी नायक जाति में केवल नायक गोपाल के संबंध में ही किंवदन्तियाँ परंपरा से सुनी जा रही हैं।

लोक-मनोरंजन करती हुई भवाई मंडलियाँ अनेक संख्या में छोटे-बड़े राज-कुटुम्बों में भी जाया करती थीं जिनमें से कुछ कलाकार राज-कुटुम्बों में रहकर संगीतादि कलाओं द्वारा मनोरंजन करते थे। इनमें से यहाँ हम भवाई को वैष्णव सम्प्रदाय द्वारा जो आश्रय प्राप्त हुआ है इस संबंध में ही कुछ कहेंगे।

अकबर शाह के समय में श्री गुसांईजी को अनन्य सेवक नायक 'दयाराम' भवैया के संबंध में हम कह चुके हैं। इसी समय से वैष्णवों में, वैष्णव राजाओं में एवं गोस्वामी महाराजश्रीओं में भवैई को उत्तेजन मिलता रहता था।

वि. सं. १८५६ (ई.सं. १८००) के बाद अष्टछापीय संगीत परंपरा का उपर्युक्त विभागीकरण के अनुसार तीसरे चरण का आरंभ होता है। पूर्व के दो चरणों में उद्‌भव और विकास की चर्चा के बाद यहाँ से जो भारतवर्ष में प्रचार हुआ उसकी ओर दृष्टि करेंगे।

(१) इस प्रचार में मुख्यतः सम्प्रदाय के संगीतज्ञ गोस्वामी महाराजश्रीओं का।

(२) सम्प्रदाय के मन्दिरों-हवेलियों का तथा।

(३) सम्प्रदाय के व्यवसायी और अव्यवसायी कीर्तनकारों का यादगार हिस्सा प्रशंसनीय है जिनमें से यहाँ इस युग के पूर्व विभाग के गोस्वामी बालकों में से प्रथम पू. पा. श्री व्रजनाथजी महाराज का स्मरण करेंगे।

गो. श्री व्रजनाथजी महाराज जामनगर

जामनगर में मन्दिर की स्थापना के संबंध में पहले कह चुके हैं। इसी स्थान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर आप जामनगर में निवसित होकर सौराष्ट्र की वैष्णव जनता को अपने आप सद्‌गुणों से आकर्षित कर रहे थे। "संगीतादित्य" पुस्तक में आपके संबंध में लिखा है कि "श्रीमन्महाराजनी भव्य कांतिसाथ अहर्निशना जप-तपने लीधे पवित्र परमाणुओं दर्शन करनारने पूज्य स्नेहथी वश करी लेता हता। ब्राह्म षट् कर्ममां तथा श्रीकृष्ण-चंद्रजी ने तन-मन-धन समर्पी तेमनी सेवामां तेओ आसक्त रहेता हता। संगीत द्वारा ईश्वर भजन करवुं ते पण तेमनुं मुख्य आन्हिक हतुं। तेओ विद्यामां रागी तथा गुणग्राही हता। परोपकार तेमनुं स्वाभाविक वलण हतुं। काव्यादिक रसना पूरा भोक्ता हता। चातुर्यादि गुणथी अलंकृत हता। दयाभावथी हृदय सार्द्र रहेता हता। लोभथी विरागी हता। परगुणपरत्वे धननो त्याग ए तेमनी प्रीतिनुं स्थान हतुं।"

सम्प्रदाय के प्रचारार्थं आप कलकत्ते से द्वारका तथा दिल्ली से पुणे-सतारा की यात्रा के उपरांत जोधपुर, जैपुर, बीकानेर, बूंदी, कोटा, उदेपुर, ग्वालियर, काशी, उज्जैन, मथुरा, जगन्नाथादि शहरों की यात्रा में उस्ताद आदित्यरामजी को साथ लेकर अष्टछापीय संगीत परंपरा का प्रचार भी करते रहे। इस प्रकार वहाँ के संगीतज्ञ उस्तादों से आदितरामजी की भेंट होती रही और सम्प्रदाय के द्रुपद-धमारों का मृदंग के साथ प्रचार भी करते रहे।

आप सेवा के साथ कीर्तनों का गान करते थे तथा मृदंग भी बजाते थे। इस प्रकार साहित्य और संगीत में प्रवीणता प्राप्त कर एवं वैष्णवों में अत्यन्त आदरपात्र होकर श्री व्रजनाथजी महाराज भगवद लीला स्मरण हुए—सं. १९२४।

गो. श्री दामोदरलालजी गो. श्री गिरिधारलालजी गो. श्री कल्याणरायजी महाराज

इसी समय के गोकुल-मथुरा के (१) गो. श्री दामोदरलालजी (२) श्री गिरिधर-लालजी (३) श्री कल्याणरायजी को भी भूलना न चाहिये जिन्होंने "रागकल्पद्रुम" नामक ग्रंथकर्ता कृष्णानंद व्यास को "राग-सागर" की उपाधि प्रदान की थी।

"राग कल्पद्रुम" ग्रंथ के दोनों भाग सं. १८४२ से १८४९ तक प्रसिद्ध किये गये थे जिनमें से आवश्यक उल्लेख यहाँ इस प्रकार है।

मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत उदयपुर 'जोहती' नामक स्थान में कृष्णानंद व्यास रहते और गोकुल में संगीत शास्त्र पढ़ते थे। गोकुल के सुप्रसिद्ध संगीताचार्य दामोदर गोस्वामी गिरिधर गोस्वामी एवं कल्याणराय प्रभुति गोस्वामी गण ने उन्हें 'राग-सागर, की उपाधि दी थी।

× × उन्होंने ३२ वर्ष उत्तर एवं दक्षिण भारत के स्थान-स्थान घूम-फिर उस्तादों या गायकों और पदकर्ताओं से मिलकर उनके निकट उस समय भाषा में जितने प्रकार के श्रेष्ठ गान रहे उन सबका संग्रह किया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

× × × हिन्दुस्तानी पंडितों और गायकों में भाषा-ज्ञान का भी यथेष्ट तारतम्य है।

× × × गायक जिस भाव से गाता है, उसीके स्वरालाप की पद्धति और उच्चारण के आधार पर ही ग्रन्थ छपाने की अनुमति देता है।

गो. श्री कन्हैयालालजी महाराज गोकुल

सं. १९२५ को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन आपका जन्म हुआ था। आप श्री चतुर्थगृह के तिलकायत थे। संगीत साहित्य एवं नृत्य-नाट्यादि कलाओं के प्रति बाल्य-काल से ही आप आसक्त थे।

आपके पूर्व तृतीय तिलकायत गो. श्री व्रजपति महाराजश्री विक्रम की अठारवीं शताब्दी में विराजमान थे। आपको अष्टछाप के पदों का तल-स्पर्शीय अभ्यास था। यही नहीं आपने स्वयं अनेक पदों की रचना की है जो आज भी "व्रजपति" के छाप के अनेक पद प्रभु सन्मुख गाये जाते हैं। इस प्रकार के बहुत से पद प्राचीन संग्रहों में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार व्रजपति महाराज की संगीत और कीर्तन की परंपरा गो. श्री कन्हैयालालजी महाराज में यथार्थ रूप से दिखाई देती थी।

आप स्वयं कवि थे। सं. १९४९ से आपके पास कविजनों-गुणीजनों-संगीतकार नाट्यकार इत्यदि कलाकार रहा करते थे। आपके यहाँ ६ लहिये गद्य-पद्यादि साहित्य लिखने के लिये रहते थे। आपने अनेक कवित्त, सवैया, घोल, गरबी इत्यादि की रचनायें की हैं। गुजराती भाषा का आपको उत्तम ज्ञान था। कवि दयारामादि के पद आपको बहुत प्रिय थे। स्वयं गाते भी थे और उनका प्रचार भी करते थे। भक्त नरसिंह महेता रचित प्रिय पद आपके द्वारा लिखित पद संग्रहों में दृष्टिगोचर होते हैं। चतुर्थगृह के मूल पुरुष गो. श्री गोकुलेश प्रभु को भी नरसिंह के पदों के लिये अति आदर था। अष्टछापीय कीर्तन संगीत का आपको अच्छा अभ्यास था। सैकड़ों पद-कीर्तन आपको कंठस्थ थे। सेवा के समय में प्रणालीनुसार अष्टछाप के पदों का गान किया करते थे।

कीर्तन गान के साथ सेवा विधि में बजने वाले शंख, घंटा, झालर, इत्यादि भी स्वर-संवाद से मिले हुए रखे जाते थे। अर्थात् तानपुरा, पखावज, सारंगी का स्वर षड्ज में मिला हुआ हो तो झालर, घंटा, झांझ आदि मध्यम या पंचम स्वर में मिले हुए रखे जाते थे। आप जरा भी बेसुरे आवाज को सहन नहीं करते।

एक रोज छट्ठी के दिन शंकर का वेश धारण करके नृत्य करते हुए आप महादेव लीला के कीर्तन गान करते थे और अन्य कीर्तनिया आपके पीछे झालते हुए गाया करते थे। साथ में तबला की दो जोड़ रखी गई थी। चतुरा और बदलू दोनों तबलची उपस्थित थे। चतुरा संगत कर रहा था। कुछ समय बाद तबला बेसुरा हुआ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किंतु श्री आपने इशारा किया किन्तु चतुरा का ध्यान न जाने से आपने हाथ में धारण की हुई शृंगी का जोर से तवला पर आघात किया। पुड़ी टूट गई और टूट जाने से वदलू ने दूसरे तवले पर संगीत शुरू किया। इस प्रकार गान समय कोई भी वाद्य वेसुरा या चढ़ा-उतरा हो जाय तो उसको मिलाने में जरा भी विलम्ब होना चला नहीं लेते। इसी कारण आप प्रत्येक दो दो वाद्य और वादक रखते थे; जैसे गायक में गोपालजी और चंदनजी, तवला वादक चतुरा और वदलू, सारंगी वादक कुंदन स्वामी और गंगुली, दिलरुवा (इसराज) वादक छन्नुजी तथा लालनजी चौवे। इस प्रकार कविजन, गुनीजन और नाट्य कला के तथा सम्प्रदाय के कीर्तन कला के कलाकार भी आपके साथ रहा करते थे। जिनमें उपर्युक्त वताये गये गायक, वादकों के अतिरिक्त ये भी हैं– जमनलालजी, रामकृष्णलालजी, विहारी, रोशन कवि (गिरिराज के), मोहन कवि, न्यालचंद्र, रघुनाथ, मथुरदास, कलोजी, मुनशी, गोविन्दराम, मथुरी, केदारी, नन्सी वेगनीया, जोरावर, अमचूर, कोकम, प्याजमंद, इजारमंद, पिरवीं, छवीलदास नायक, व्रजवल्लभ शास्त्री, हिम्मतलाल, मगनलाल, हरगोवनदास और शंकर समाधानी।

निम्न कवित्त की आपकी रचना में शीतकाल में गाये जाने वाले राग के उल्लेख से संगीत शास्त्र का एवं कविता का उत्तम ज्ञान दृष्टिगत होता है।

"मंदिर शिखर दान अन्दर दुलीचा दिव्य अगर अंगीठी आन सुखद धरी है,
चारों ओर दीपदान सखीपै अतरदान पानदान पीकदारी हाजिर खरी है,
मालकोस ललित विभास षट जोनपुरी आसावरी नाइकी निसदिन अरी रहै,

ऐसे नंदलाल के कहां को शीतकाला
जाको कैऊ व्रजबाला गले माला सी परी है ॥

आपको नाटक का भी अत्यन्त शौक था। आपने चंद्रावली, लीलावती, मनहार लीला, जोगी लीला, भूलभुलैया इत्यादि नाटकों की रचना की थी। तदुपरांत अन्य नाटक भी आप अपने आश्रितों द्वारा कराते थे। यही नहीं कभी स्वयं भी नाटक के पात्र में अभिनय करते थे।

गो. श्री वालकृष्णलालजी महाराज (कांकरौली), गो. श्री गोपाललालजी महाराज (मथुरा), गो. श्री मधुसूदनलालजी महाराज (अहमदवाद), गो. श्री जीवनलाल जी महाराज (काशी):–

गो. श्री वालकृष्णलालजी का जन्म सं. १९२४ में हुआ था। आपके पिता का नाम गो. श्री कल्याणरायजी महाराज था, जो मथुरा के श्री दाऊजी, मदन मोहनजी के मन्दिर के अधिपति थे। आपको गो. श्री गोपाललालजी, गो. श्री कल्याणलालजी और गो. श्री वालकृष्णलालजी इन तीन पुत्रों में से श्री वालकृष्णलालजी महाराज सं. १९३६ में कांकरौली तिलकायत के स्थान पर विराजमान हुए। श्री कल्याणरायजी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महाराज ने कृष्णानन्द व्यास को 'राग-सागर' की उपाधि दी थी, यह हम पूर्व कह चुके हैं।

श्री वालकृष्णलालजी महाराज संगीत, साहित्य और कला के उत्तम मर्मज्ञ थे। आप स्वयं कविता भी करते थे। 'कृष्ण' और 'कान्ह' उपनाम से आपने बहुतसी कविताओं की रचनाएँ की हैं। आपको उर्दू-फारसी का भी अच्छा परिज्ञान था। उन्होंने नाटक भी लिखे थे। आपश्री गायन और वाद्य विद्या के पारंगत थे। कांकरोली, मथुरा, वड़ौदा, राजनगर और काशी तीनों स्थानों में से जहाँ कहीं महाराजश्री का मुकाम होता था, सभी गुणीजन उनके पास उपस्थित होने आया करते थे। उस समय का बड़ौदा का एक प्रसंग यह है कि एक दिन अपने द्वारकाधीश के मन्दिर की बैठक में अंजनीवाई के गायन का कार्यक्रम रखा गया था। आपने 'मालवी' राग सुनाने की फ़र्माइश की। उस समय उस्ताद नजीरखाँ भी बड़ौदा आये थे, उनसे अंजनीवाई ने मालवी राग की तालिम प्राप्त की हुई थी। डेढ़ घंटे तक गायन का स्रोत वहता रहा। गाने और सुनने वालों की आँखों में आनंद के अश्रु भी दिखाई देने लगे थे। उस समय आपने अपने कंठ से मोती की माला उतारकर अंजनीवाई को प्रदान दी। इस प्रकार आपको द्रुपद, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, रसिया इत्यादि गान करने वाले सुनाने आया करते थे। ये सभी को मूल्यवान वस्तुओं का इनाम दिया करते थे।

गो. श्री गोपाललालजी महाराज अपने पितृचरण के पश्चात दाऊजी, मदनमोहन जी मन्दिर के अधिपति हुए। नृत्य कला में, नाट्य और गान कला में आप अच्छे पारंगत थे। तीनों भ्राताओं में आप नृत्य करते थे; गो. श्री वालकृष्णलालजी गान करते थे और गो. श्री जीवनलालजी महाराज तबला की संगत करते थे।

गो. श्री जीवनलालजी महाराज ने सुप्रसिद्ध मदनमोहन पखावजी से तबला, मृदंग का ज्ञान प्राप्त किया था। बनारस के गोपाल मन्दिर के आप अधिपति थे। गो. श्री वालकृष्णलालजी महाराज, गो. श्री गोपालालजी महाराज एवं गो. श्री कन्हैया-लालजी महाराज तथा गो. श्री मधुसूदनजी महाराजों का बनारस में आपके यहाँ कई वार आना-जाना होता था। उस समय बनारस के गायक-वादक तथा गायिकाओं की (गणिकाओं की) महफिल होती रहती थी जिसमें ठुमरी के गायन से सभी मुग्ध हो जाते थे।

गो. श्री मधुसूदनलालजी महाराजश्री का जन्म मथुरा में संवत् १९२५ में गो. श्री व्रजनाथजी महाराज के यहाँ हुआ था किन्तु राजनगर में गो. श्री व्रजरायजी महाराज के पश्चात् आप नटवरलाल श्यामलाल मन्दिर की गादी पर गोद आये थे। आपश्री संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। सम्प्रदाय के कीर्तन प्रणाली के सैकड़ों पद कंठस्थ थे। कीर्तन समाज में आप जब स्वयं कीर्तन गान करते तब कीर्तनीया मंडली और सुनने वाले सभी आनंद मग्न हो जाते थे। आप कला और सेवा के रसिक थे। फलतः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रभु के अनेक मनोरथ में विविध प्रकार की लीलात्मक सजावट और भावात्मक कीर्तन गान से सभी दर्शक वैष्णव आकर्षित हो जाते थे।

संवत् १९५४-५५ में आपने महादान का मनोरथ किया था। दानगढ़, मानगढ़ और गोवर्धन का शिखर इत्यादि के विविध प्रकार की भावात्मक सजावट, कीर्तन के साथ यथार्थ मूर्तिमान दिखाई देती थी। इस समय गो. श्री कन्हैयालालजी महाराज, गो. श्री गोपाललालजी महाराज, गो. श्री बालकृष्णलालजी महाराज भी विराजते थे। एक ओर श्री गोपाललालजी महाराज तथा दूसरी ओर पाँच साल के गो. श्री रणछोड़-लालजी महाराज कीर्तन गाते थे। गोकुल के श्री कन्हैयालालजी महाराज और कांकरौली वाले श्री बालकृष्णलालजी महाराज दानगढ़ और मानगढ़ के शिखर पर जहाँ प्रभु बिराजते थे वहाँ से जब कीर्तनकारों ने 'गोवर्धन की शिखर पे मोहन दीनी टेर" यह पद गाना का आरंभ किया। तब ऊँची टेर का गान जब दोनों भ्राताओं ने तार सप्तक की टीप का स्वर लगाकर तथा छोटी तान मुर्कियां लेकर गान किया तब श्रोताजन मुग्ध हो गये थे। इस समय राजनगर के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञाता और गायकों के कदरदान सेठ श्री वाड़ीलाल जेसिंगभाई उपस्थित थे। सेठ श्री जैन होते हुए भी संगीत और साहित्य के माध्यम से वे गो. श्री बालकृष्णलालजी तथा गो. श्री मधुसूदन महाराज के संपर्क में सतत् आया करते थे। इस प्रकार की भावात्मक सजावट और लीलात्मक कीर्तन का झाँझ, मृदंग, सारंगी इत्यादि वाद्यों के साथ महाराजश्री ने जो गान किया जिससे प्रभावित होकर सेठ श्री ने कहा कि "गोकुल के कनैया के लीलात्मक संगीत गान का इस प्रकार के बंदिश में वाद्यों के साथ वास्तविक दर्शन कराने से आज मैं कृतार्थ हुआ हूँ।" इस प्रकार गो. श्री मधुसूदनलालजी महाराज नटवर प्रभु का अनेक विध मनोरथों से लाड़ लड़ाते थे। नटवर प्रभु के राजनगर में आगमन के विषय का उल्लेख निम्न प्रकार संक्षेप में दिया जाता है।

गो. श्री मधुसूदन महाराजश्री के पश्चात् आपके सुपुत्र गो. श्री रणछोड़लालजी महाराज नटवरलाल श्यामलाल मन्दिर के अधिपति रहे। बाल्यकाल से ही आपको कीर्तन संगीत के प्रति अनुराग था। सेवा और स्मरण के सिद्धान्त को अपने जीवन की दिन चर्या के साथ ओतप्रोत कर दिये थे। सेवा श्रृंगार में अतिरसिक थे। आपको कीर्तन प्रणाली के अनेक पद कंठस्थ थे। यही नहीं प्राचीन प्रणालीनुसार समाज में कीर्तन गान करने का आग्रह रखते थे। कीर्तनों के भावार्थ के आप अति मर्मज्ञ थे। इस ग्रंथ के लेखक ने भी युवावस्था में कीर्तनों का कठिन भावार्थ समझने के लिये आपके पास जाकर अलभ्य लाभ लिया था। अहमदाबाद की इस गद्दी पर मूल अधिपति गो. श्री रघुनाथलालजी महाराज थे जिनका कुछ परिचय यहाँ दिया जाता है।

अहमदाबाद के नटवरलाल श्यामलाल के मन्दिर में सबसे प्रथम गो. श्री रघुनाथ लालजी महाराज ने सं. १९५१ में पधराये। आपके पश्चात् गो. श्री छोटाजी महाराज अतिप्रभावशाली व्यक्ति थे। मन्दिर की सेवा समृद्धि आपके समय में वृद्धि हुई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सं. १८९४ में आपने छप्पन भोग का आयोजन किया था। उस समय गोकुल से गो. श्री लक्ष्मणलालजी महाराज पधारे थे। आपके साथ गोकुल के कीर्तनीया मंडली भी लाये थे।

पू. पा. छोटाजी महाराज के बाद गो. श्री व्रजरायजी महाराज गादी पर आये। आप बड़े विद्वान थे। "वल्लभाख्यान" पर आपने संस्कृत टीका लिखकर सम्प्रदाय पर बड़ा उपकार किया है। सं. १९४३ में आपने श्री नटवर प्रभु को छप्पन भोग का मनोरथ किया था। उस समय गाँव-गाँव से कीर्तन की मंडलियाँ आई थीं और वैष्णव लोग कीर्तनों के अलौकिक आनंद में भाव मग्न हो गये थे :

गो. श्री जीवनलालजी महाराजः—लगभग १०० वर्ष पूर्व आप बम्बई में विराजमान थे। अष्टछापीय कीर्तन संगीत की प्राचीन पद्धति के आप उच्चकोटि के ज्ञाता थे। आप उच्चकोटि के वीनकार थे। यही नहीं घरानेदार गायक वादकों के भी मार्गदर्शक जैसे पारंगत थे। वहुत से गायक वादक आपके पास अपनी कला सुनाने को आया करते थे। महाराजश्री वीनवाद में अद्वितीय थे। एक दिन भारतवर्ष के नामी वीनकार अलीअहमद महाराजश्री को वीन सुनाने को आये थे। सुनकर महाराजश्री अति प्रसन्न हुए और रु. ५०० वक्षीस देकर कहा था कि उस्ताद के पास पाँच साल और अभ्यास करते तो वहुत ही अच्छा होता।

तानसेन घराने के बीनकार बाजपेयी से आपने बीन वादन का अभ्यास किया था तथा वल्लभदासजी से संगीतोद्धारक पं. भातखंडेजी ने शिक्षा प्राप्त की थी।

आपके सम्पर्क में रहकर व्यवसायी कीर्तनकार भाई शंकर गिरनारा, तुलजारामजी मुखियाजी, भट्टजी इत्यादि उस समय के नामी कीर्तनीया हो गये। अव्यवसायी वैष्णव कीर्तनकारों में पाटन के विट्ठलदास शाह उस समय के वैष्णव कीर्तनकारों में अद्वितीय थे। जिनके पास से जरीवाला जमनादास सेठ ने शिक्षा प्राप्त की थी। विट्ठलदास शाह हमेशा लालबाबा के मन्दिर में मानद कीर्तनीया के नाते से वर्षों तक प्रभु सन्मुख कीर्तन की सेवा की तथा बाद में अपने गाँव पाटन में आकर अंत तक रहे। इस प्रकार बम्बई में अष्टछापीय हवेली संगीत के प्रचार में पू. पा. महाराजश्री का श्रम अभिनंदनीय है।

इसके अतिरिक्त बड़ा मन्दिर बम्बई के अधिपति गो. श्री जीवनलालजी महाराज का तथा गो. श्री गोकुलनाथजी महाराज का भी हवेली संगीत के उत्कर्ष और प्रचारार्थ किया हुआ श्रम कोई कम नहीं था। आपके मन्दिर में हमेशा (१) मुख्य कीर्तनीया (२) झीलने वाला (३) पखावजी और (४) सारंगीदार ये चारों आश्रित कीर्तन की सेवा में उपस्थित रहते थे। संगीत का आपको बड़ा शौक था। पं. भातखंडेजी कभी-कभी उत्तम गायक-वादकों को आपके पास भेजते थे। उनका संगीत सुनकर यथायोग्य बक्षीस देकर प्रसन्न करते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिशिष्ट–५

भवाई और उसका स्वरूप

भवाई आधुनिक नाट्यांक की जनेता मानी जाती है। भवाई खुले चौगान में होती थी। इसके आद्य पुरुष असाइत ठाकर सिद्धपुर (गुजरात) के औदित्य ब्राह्मण थे। सिद्धपुर के पास 'ऊँझा' गाँव में पटेल जाति के वे गोर थे। वे उच्चकोटि के कथाकार गायक थे। ऊँझा के यजमान की स्वरूपवान बेटी को उस समय के मुस्लिम सूबेदार की बेगम बनाने के लिये ले गये थे: उनके शील की रक्षा के कारण उस पटेल कन्या 'गंगा' को अपनी बेटी बनाली जिसके कारण ज्ञातिजनों ने असाइत को जाति से बहिष्कृत कर दिया। पाटीदार कौम की कुलदेवी उमिया माता के प्राचीन मन्दिर में असाइत के सात दिन तक निर्जल उपासना करने के बाद माता ने प्रसन्न होकर भवाई वेशों की रचनाकर, उसको भक्ति का अंग बनाने का आदेश दिया। असाइत के साथ अपने कुटुंब के तीन घर भी सम्मिलित हुए थे। इसलिये वे तीन घराले भी कहलाते थे जिसका अपभ्रंश आज 'त्रिगाला' हो गया है। असाईत ने भवाई के विविध वेशों की रचना कर नाट्य का एक अंग बनाया जिसमें संगीत की—गायन-वाद्य और नृत्य इन तीनों कलाओं का संगम किया।

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में भवाई का आरंभ हुआ। इनमें कुछ समय बाद व्यास, सेवक और भोजक जो श्रीमाली ब्राह्मण से बहिष्कृत हुए थे वे भवाई की मंडली में जुड़ गये। भवाई की मंडलियाँ दूर-दूर तक राजा-महाराजाओं के महालयों में, जमींदारों के यहाँ तथा धनपतियों के यहाँ जाकर मनोरंजन के साथ भक्ति-भाव उपरांत वर्तमान परिस्थिति के विविध वेशों का समावेश करते थे,। मंडली के मुख्य कलाकारों को 'नायक' कहा जाता था। आजतक इनके वंशजों को नायक कहते हैं जो यह त्रिगाला–भवैया जाति के कहलाते थे। ब्राह्मण कुलोत्पन्न नायक जाति का यह आजीविका का साधन बन गया। फलतः ग्राम्यलोक की आम जनता को खुश करने के लिये शूद्र कोटिक हास्यास्पद संवादों का भी उसमें समावेश किया गया।

तथापि १८वीं शताब्दी तक भवाई का स्तर उच्चकोटि का रहा। अनेक प्रकार की काव्य रचना में धार्मिक, सामाजिक और व्यावहारिक दृष्टि को सामने रखकर उपदेशात्मक रचनाएँ भवाई वेशों के पात्रों द्वारा प्रस्तुत की जाती थीं। इनमें गाये जाने वाली शैलियों के नाम इस प्रकार थे—कवित्त, छप्पय, साखी, दोहा, छंद, रेखता, धोल, आंखडुं, कडवुं, फगवा, गाथा, भावन, पवाडा, वधामणुं इत्यादि तालों में जो निम्न

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गाये जाते थे। चौताला, मंद त्रिताल, दीपचंदी, उलाडो, त्रगडो, खोड, चलती और हींच। यही नहीं संगीत की व्याख्यानुसार गायन, वादन और नृत्य इन तीनों कलाओं का प्रयोग किया जाता था।

भवाई के गीतों के राग जो मेरी स्मृति में हैं, वे इस प्रकार हैं:-

(१) परज (२) प्रभात (३) रामकली (४) रामग्री (५) विलावल (६) टोड़ी (७) आसावरी (८) सामेरी (९) भैरवी (१०) सारंग (११) माठ (१२) मेवाडो (१३) मल्हार (१४) मारवा (१५) मारू (१६) पूर्वी (१७) पूर्या (१८) गौरी (गोडी) (१९) खमायची (२०) देश (२१) सौरठ (२२) वेराडी (३३) विहाग (२४) केदारो (२५) सोहनी (२६) बसंत।

प्राचीन पद्धति के भवैया गायक-वादक की संख्या ई.सं. १९०० के बाद दिन प्रति दिन कम होती जा रही थी। फलतः भवाई का स्तर नीचे की ओर गिरता रहा। उपर्युक्त बताये गये रागों में गान करने वाले आज दृष्टिगोचर होना मुश्किल है। सारंगी की जगह हारमोनियम और पखावज की जगह तबला ने स्थान ले लिया है।

भवैया जाति की उत्पत्ति के संवंध में हम कह चुके हैं। ब्राह्मण कुलोत्पन्न इस जाति में भवाई का व्यवसाय स्वीकारने से उनको समाज में भवैया कहने लगे थे। आधुनिक युग में अष्टछापीय कीर्तन परंपरा को सुरक्षित रखने में इन जाति के नायक एवं व्यास कौम के व्यवसायी कीर्तनकारों का स्थान उल्लेखनीय है। तदुपरान्त सौराष्ट्र के गिरनारा जाति के कीतनकारों का हिस्सा भी कुछ कम नहीं है।

सम्प्रदाय के संस्थापक श्रीमद् वल्लभाचार्य से गिरधरजी महाराज के समय तक श्री वल्लभ वंश के अनेक गोस्वामी महाराजश्रीओं के साथ अनेक बार गुजरात-सौराष्ट्र की यात्रा करते समय प्राचीन कीर्तन पद्धति के कीर्तन-गान करने वाले भवाई वाले साथ में आया करते थे। उन्हीं से उपर्युक्त जाति के भावुक व्यक्तियों को शिक्षा प्राप्त होती रही। कुछ व्यवसायी गायकों ने नाथद्वारा, कांकरौली एवं ब्रजमंडल के निधि स्थानों में जाकर महीनों तक रहकर कीर्तन-गान की परंपरा का ज्ञान प्राप्त किया था। अधिकतर ऐसे व्यक्तियों को जाने-आने की, ठहरने की व्यवस्था मन्दिरों की ओर से होती रहती थी, किन्तु कीर्तन के प्रति आसक्तिवाले अव्यवसायी भावुक व्यक्ति यह व्यवस्था स्वयं कर लेते थे। इस प्रकार गुजरात-सौराष्ट्र में अष्टछापीय परंपरा के कीर्तनकारों का एक घराना हो रहा।

इस समय तक नाथद्वारा, कांकरौली इत्यादि सात गृहों में कीर्तनकारों की व्यवस्थित रूप से नियुक्ति हो रही थी। सम्प्रदाय की सेवा क्रम का भाव और शास्त्र से गहरा संबंध है। तदनुसार नाथद्वारा और कांरोली इत्यादि निधिगृहों में जो कीर्तन-कारों की संख्या नियत की जाती है उनका संगीतशास्त्र से गहरा संबंध है। उपर्युक्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थानों में कीर्तन मंडल की संख्या आठ होने की आजतक प्रणाली दिखाई देती है। "संगीत रत्नाकर" ग्रन्थ में गान-वृन्द की चर्चा की गई है जिसमें (१) उत्तम (२) मध्यम और (३) कनिष्ठ वृन्द के उल्लेख में (१) उत्तम वृन्द की संख्या ३२ जिनमें मुख्य गायक चार, पार्श्व गायक १६ और अन्य १२ की संख्या बताई गई है (२) मध्यम वृन्द में मुख्य गायक २, पार्श्व गायक ८ और अन्य ६ की संख्या मिलाकर कुल १६ संख्या और (३) कनिष्ठ वृन्द में मुख्य गायक १, पार्श्व गायक ४, और अन्य ३ मिलकर कुल ८ की संख्या तथा १२ की संख्या का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

सम्प्रदाय में मुख्य गायक को कीर्तन मंडल के "मुखियाजी" और पार्श्व गायक को झीलनिया (झीलनेवाले) कहे जाते हैं। इस प्रकार कनिष्ठ वृन्द अनुसार संगीत मंडल में मुखियाजी एक, झीलनिया चार, बीनकार एक, पखावजी एक और सारंगिया एक मिलाकर आठ की संख्या और वसंत-होरी के दिनों में डफ, उपंग, किन्नरी और मंझीरा वजाने वाले अन्य चार रहते थे। इस प्रकार बारह की संख्या भी इस मंडल में नियत की जाती है। इस शास्त्रोक्त लेखानुसार नाथद्वारा के ८ और कांकरोली के ८ मिलाकर १६ की संख्या जब अन्नकूट के अवसर पर श्री द्वारकाधीश नाथद्वारा पधारते है तब इकट्ठे होकर १६ की संख्या यानी मध्यम वृन्द बन जाता है। तदुपरान्त जब सातों निधि स्वरूपों के 'छप्पन भोग" के अवसर पर अन्य निधि गृहों के कीर्तनकारों की संख्या एकट्ठी होने पर उत्तम वृन्द बन जाता है।

उपर्युक्त व्यवस्था श्री द्वारकाधीश के गोकुल से कांकरौली पधारने के बाद भवाई वाले गो. श्री गिरिधरलालजी महाराज के समय तक व्यवस्थित हो चुकी थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिशिष्ट—६

संगीत शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का भावार्थ (पुष्टि-कीर्तन-प्रणाली में)

(१) संगीतः—शब्द में गायन, वादन और नृत्य कला इन तीनों कलाओं का इसमें समावेश होता है ('गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते')

(२) सुरः—स्वर

(३) सप्तकः—मुख्य सात स्वरों को मूल क्रमानुसार एक के वाद दूसरे को कहना, लिखना या गाना उसको सप्तक कहते हैं।

(४) संचगतिः—स्वरों का संचार भिन्न-भिन्न गति में करना (संचारी)।

(५) श्रुतिः—संगीतोपयोगी मुख्य नाद २२ हैं जिनको शास्त्र में 'श्रुति' कहते हैं।

(६) नादः—ध्वनि या आवाज। नाद के दो प्रकार हैं एक आहत (व्यक्त) और दूसरा अनाहत (अव्यक्त)। आहत नाद कानों से सुनाई देता है और अनाहत नाद केवल ज्ञान गोचर है।

(७) अवघरः—ताल प्रकरण में दिया गया है।

(८) तानः—'तन्' धातु से तान शब्द बना हुआ है। तान से राग का विस्तार होता है। तानों के सात प्रकार हैं—(१) अर्चिक तान (एक स्वर की) (२) गाथिक तान (दो स्वर की) (३) सामिक तान (तीन स्वरों की) (४) स्वरान्तर तान (चार स्वर की) (५) ओडव तान (पाँच स्वरों की) (६) षाडव तान (छः स्वरों की) (७) संपूर्ण तान (सात स्वर की) इन सात प्रकार के तानों की सहायता से अनेक प्रकार की तानें उत्पन्न होती हैं जैसे संपूर्ण तान प्रकार की ५०४०, षाडव तान की ७२०, ओडव तान की १२०, स्वरान्त तान की २४, सामिक तान की ६, गाथिक तान की २ और अर्चिक तान की १ किन्तु प्राचीन मतानुसार आरोह के स्वरों को तान और अवरोह के स्वरों को पलटा कहने का रिवाज है।

(९) लागः—गायन में जब किसी एक स्वर को तोड़कर दूसरे सप्तक के उसी स्वर पर ठहराव करके पुनः मूल स्वर को जब लिया जाता है तब जिस स्वर को प्रथम तोड़ दिया गया हो उसीको लाग कहते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१०) डाट:—लाग स्वर के बाद जो ऊँचे सप्तक के उसी स्वर को अन्य स्वरों को स्पर्श किये बिना लिया जाता है उसको डाट कहते हैं जैसे मध्य सप्तक के मध्यम से तार सप्तक के मध्यम स्वर को पकड़ना।

(१२) ग्राम, मूर्छना का विरण राग-प्रकरण में दिया गया है।

(१२) अलाप या आलाप:—गायन के आरंभ में जिस राग में गीत गाने का हो उसी राग के वादी, संवादी, आरोह, अवरोह इत्यादि ध्यान में रखकर छोटे-छोटे मधुर स्वरों में उच्चारण करके राग का स्पष्ट स्वरूप प्रदर्शित करना इसे आलाप कहते हैं। विशेष विवरण इस ग्रंथ में आ चुका है।

(१३) तांडव:—मर्दाना नाच।

(१४) लास्य:—जनाना नाच।

(१५) हस्तक भेद:—हाथ की मुद्राओं के भेद।

(१६) उरप अथवा उलप:—एक के बाद दूसरे स्वरों से ग्रथित रूप से आरोह में जाने की क्रिया।

(१७) तिरप अथवा सुलप:—एक के पीछे एक स्वर के ग्रथित रूप से अवरोह की तरफ आने की क्रिया।

(१८) लरज:—मंद्र सप्तक के नीचे का मंद्र सप्तक के स्वरों को लरज के स्वर कहते हैं।

(१९) खरज:—मध्य सप्तक से नीचे का मंद्र सप्तक के स्वर को खरज के स्वर कहते हैं।

(२०) तरज:—(अ) मध्य सप्तक से ऊपर के तार सप्तक के स्वरों को तरज के स्वर भी कहते हैं। (व) राग और ताल के नियम के अनुसार किसी एक या विशेष राग की सहायता से बनी हुई कर्णप्रिय काल्पनिक रचना को तरज अथवा तर्ज कहते हैं।

(२१) नृत्य:—नाचना। ताल, मान के नियमानुसार गायन के साथ कविता में रहे हुए गुप्त भाव को हावभाव, कटाक्ष द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करना।

(२) नाट्य:—एक से अधिक व्यक्ति अथवा नायक, नायिका आदि पात्र जब रंगभूमि के स्थान पर आकर गीत को कविता के भावों को प्रदर्शित करे उसे नाट्य कहते हैं।

(२३) नृत्त:—ताल मान के अनुसार मृदंग वगैरह वाद्यों के साथ किसी हाव-भाव के बिना केवल विविध प्रकार से शरीर को नचाने की क्रिया को नृत्त कहते हैं।

(२४) ताल, अतित, अनाघात, गति, लघु, गुरु, जति, प्रातघात, उपर्युक्त शब्दों के भावार्थ ताल प्रकरण में दिये गये हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिशिष्ट—७

हवेली संगीत के वाद्यों का परिचय

तंबूरः—तंबूर को तानपुरा भी कहते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि तुंवरु ऋषि का यह वाद्य होने से तुंवरु-वीणा या तंबूर भी कहते हैं। सम्प्रदाय के पद में सूरबीन का जो उल्लेख आता है इसको तंबूर ही कहा जायगा। केवल बोध कराने वाली वीणा होने से इसको सूरवीणा भी कहा गया है। पुष्टि सम्प्रदाय की कीर्तन प्रणाली में नित्य क्रम की कीर्तन सेवा में श्री को जगाने और पौढ़ाने तक के कीर्तन तंबूर अर्थात् तानपुर के साथ हो गाये जाते हैं। अतः इसको कीर्तन गान का मुख्य वाद्य कहा जायगा। इसमें चार तार लगाये जाते हैं। पाँच और छः तार के तानपुरे भी आज दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु प्राचीन प्रणाली के अनुसार चार तार का ही तानपुरा सम्प्रदाय की प्रणाली में माना गया है। मध्य के दो तार मध्य सप्तक के षड्ज में तथा वांयीं ओर के तार पंचम में और दाहिनी ओर के तार मन्द्र षड्ज में मिलाये जाते हैं।

वीन (वीणा):—सम्प्रदाय की प्रणाली में दो प्रकार की वीणा प्रचार में है। नाथद्वारा में जो वीन बजाई जाती है उसको वे किन्नरी-वीणा कहते हैं, जिसमें पाँच तार होते हैं। उसमें बाज तार केवल एक ही रहता है। दो तुम्बे वाली इस बीना को वजाने का तरीका स्वतंत्र है। दूसरे प्रकार की बीन जो कांकरोली में और कुछ अन्य मन्दिरों में भी बजाई जाती है उसमें पर्दाओं के ऊपर चार तार लगाये जाते हैं।

इस प्रकार की वीणा में पोले बाँस की दांड को दो तुम्बे लगाये जाते हैं। दंड के ऊपर २२ श्रुतिओं को बनाने वाली १४ सारिका रहती हैं, जो पीतल की बनी हुई होती हैं और मोम से चिपकी हुई रहती हैं। दाहिनी ओर तीन तार चिकारी के मोम से लगे हुए रहते हैं। इसको कच्छपी या रुद्र वीणा भी कहते हैं।

सितारः—बीन-वीणा के अभाव में आजकल सितार का भी प्रयोग किया जाता है। सितार का उल्लेख अष्टछाप के पदों में दिखाई नहीं देता। किन्तु अष्टछाप की परंपरा के मुरारीदास ने राग अडाने की धमार में इस प्रकार उल्लेख किया है।

"गावत धमार आई व्रज की नार ×××× "संख सृंग चंग उपंग महुवर वंसी सुहतार" इनमें सुंहतार शब्द से सितार का बोध होता है। सितार को आरंभ में सहतार भी कहा जाता था।

सारंगीः—सारंगी का उल्लेख परमानंददासजी ने अपने पद में इस प्रकार किया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"रुंज मुरज आवज सारंगो जांज कीन्नरी वाजे" सारंगी प्राचीन वाद्य है। सम्प्रदाय में इसको श्रीजी सन्मुख बजाने का आरंभ श्री हरिरायजी के समय में माना जायेगा। इसमें ऊपर की तरफ तार के स्थान पर तांत की डोरी लगाई जाती हैं। नीचे की तरफ तुरवें लगी हुई रहती हैं। वायें हाथ की अंगुलियों के नाखून से तांत के तार पर घर्षण करके और दाहिने हाथ से घोड़े के पूंछ के बाल लगे हुए गज से बजाई जाती है।

मृदंग (पखावज):—उत्तर भारत में मृदंग बजाया जाता है उसको पखावज कहते हैं। यह शब्द १५वीं शती के पश्चात् प्रचार में आया हुआ माना जाता है। दक्षिण और बंगाल में जो मृदंग बजाया जाता है वह उत्तर का मृदंग अर्थात् पखावज से कुछ भिन्न दिखाई देता है। दोनों का बाज भी भिन्न है। पुष्टि सम्प्रदाय के मन्दिरों में जिस मृदंग का उपयोग किया जाता है उसके एक ओर शाही लगी रहती है और दूसरी ओर पानी से बँधी हुई आटे की लुगदी गोलाकार में लगाई जाती है। शाही के पुड़ी पर दाहिने हाथ से और आटे वाली पुड़ी पर वायें हाथ से पखावज बजाया जाता है। हवेली संगीत प्रणाली में मंगला के दर्शन बाद मृदंग का उपयोग किया जाता है। उत्सव-त्यौहारों में शयन दर्शन में भी पखावज बजाया जाता है।

झांझ:—सम्प्रदाय की प्रणाली में उत्सव-त्यौहारों के दिनों में मृदंग के साथ झांझ बजाई जाती है। इन दिनों में तानपुरे के स्थान पर झांझ बजाकर ही कीर्तन गाये जाते हैं। झीलने वाले अन्य कीर्तनकार भी झांझ बजाकर गाते हैं। झांझ कांसे और अन्य धातु की बनती हैं जो आठ अंगुल से सोलह अंगुल तक के व्यास की बनी हुई होती है। ताल स्थान पर और लय के आधार पर दो हाथ से बजाई जाती है।

किन्नरी:—किन्नरी का प्रयोग ताल-वाद्यों के साथ किया जाता है। किन्नरी को 'कर्करी' भी कहते हैं। पक्के लोहे की छड़ को त्रिकोणात्मक मोड़कर बनाई जाती है और छोटीसी लोहे की छड़ से बजाई जाती है। सम्प्रदाय में होली के दिनों में धमारों के गान के साथ झांझ के उपरान्त यह किन्नरी बजाई जाती है।

डफ:—डफ का प्रयोग सम्प्रदाय में होली के त्यौहारों में अर्थात् माघ शुक्ल से डोल तक किया जाता हैं। झांझ-मृदंग के साथ यह बजता है। डफ एक हाथ से डेढ़ हाथ तक का होता है। पतली लकड़ी के घेरे पर पतले चमड़े से मढ़ा हुआ होता है। वायें हाथ से पकड़कर हृदय के समीप रखकर दाहिने हाथ से मृदंग के तालों के आधार पर बजाया जाता है।

उपंग:—यह डमरू आकार का होता है और १६ से २० अंगुल तक काष्ट या धातु का बना हुआ होता है। एक ओर पतले चमड़े से मढ़ा हुआ होता है। तांत की डोरी लेकर उसके सिरे पर गाँठ लगाकर चमड़े की एक टिकुली उसमें पिरो देते हैं। फिर तांत की डोरी को चमड़े के मध्य से दूसरी ओर निकालकर उसे एक लकड़ी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के टुकड़े पर लपेट लेते हैं। यह डोरी चार हाथ लंबी होती है। बैठकर बायीं बगल में रखकर बायें हाथ से पकड़ के दाहिने हाथ से जवा द्वारा तांत छेड़ी जाती है। सम्प्रदाय में यह वाद्य होली के दिनों में डफ के साथ बजाया जाता है।

खंजरी:—डफली के घेरे में तीन या चार जोड़ी झांझ के ढंग की छोटी सी झांझें लगी रहती हैं। लकड़ी के घेरे पर पतला चमड़ा लगाया जाता है। यह खंजरी नृत्य में विशेष रूप से बजाई जाती है। सम्प्रदाय में होली के दिनों में डफ, उपंग के साथ खंजरी का उपयोग किया जाता है।

हारमोनियम:—आजकल सम्प्रदाय में सारंगी का स्थान हारमोनियम ने ले लिया है। इसका उपयोग सम्प्रदाय में लगभग ६० साल से होने लगा है। यह वाद्य अधिक प्रचलित है इसलिये अधिक जानकारी दी गयी नहीं है।

आम्नाय-ग्रंथालय,
भरतनिधि, करौली
बाराणसी-5

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिशिष्ट—८

षटऋतु के कीर्तन-संगीत से भक्तों का लीला संबंध

सम्प्रदाय की सेवा प्रणालियों का प्रत्येक ऋतु से गहरा संबंध है। इस विषय का यहाँ विचार करते हैं। वर्षभर की छः ऋतुओं के कीर्तन—गान की दृष्टि से निम्न समय माना जाता है।

(१) हेमंत-कार्तिक (गुर्जर आश्विन)	वदी १ से मार्गशीर्ष शु-१५
(२) शिशिर-पोष (गु. मार्गशीर्ष)	वदी १ से माघ शु. १५
(३) वसंत-फाल्गुन (गु-माघ)	वदी १ से चैत्र शु-१५
(४) ग्रीष्म-वैशाख (गु. चैत्र)	वदी १ से जेठ शु-१५
(५) वर्षा-आषाढ़ (गु. जेष्ठ)	वदी १ से श्रावण शु-१५
(६) शरद-भादो (गु. श्रावण)	वदी १ से आश्विन शु-१५

उपर्युक्त छः ऋतुओं में नवधा भक्ति के नव प्रकार के भक्तों के कीर्तन अंगीकार किये हुए हैं। हेमंत और शिशिर में श्रवण, कीर्तन एवं अर्चन; वसंत-ग्रीष्म में स्मरण, पाद सेवन एवं वंदन तथा वर्षा-शरद में दास्य, सख्य एवं आत्म निवेदन भक्ति की सेवा प्रभु अंगीकार करते हैं। ये नवधा भक्ति प्रेम लक्षणा भक्ति के अन्तर्गत हैं।

सम्प्रदाय की लीलात्मक भावनानुसार छः ऋतुओं में सात्विक, राजस और तामस भक्तों की सेवा का विभाजन-क्रम निम्न प्रकार माना जाता है।

तामस—सात्विक ,, —राजस ,, —तामस	हेमंत-शिशिर (शीतकाल)
राजस—सात्विक ,, —राजस ,, —तामस	वसन्त-ग्रीष्म (उष्णकाल)
सात्विक—सात्विक ,, —राजस ,, —तामस	वर्षा-शरद (चतुर्मास)

मुख्यतः व्यवहार में शीतकाल के कार्तिक से माघ, उष्णकाल के फाल्गुन से जेठ और चातुर्मास के आषाढ़ से आश्विन मास माने जाते हैं। ऋतुक्रम के इन महीनों से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

...ग्रन्थालय, भरतनिधि, ... वाराणसी-5

नवधा भक्ति एवं सात्विक, राजस और तामस भक्तों की सेवा का गहरा संबंध है। इस संबंधानुसार पुष्टि सेवा प्रकार के राग, भोग और श्रृंगार की प्रणाली नियत की हुई दिखाई देती है। इस आधार पर यहाँ पुष्टि संगीत (हवेली संगीत) प्रणाली का निम्न प्रकार विचार करें।

(१) तीन प्रकार के तामस भक्तों का समय कार्तिक शु. १५ से फाल्गुन शुक्ल-१५।

(२) राजस भक्तों का फा. शु. १५ से आषाढ़ शु. १५ तथा

(३) सात्विक भक्तों की सेवा आ.शु. १५ से का.शु. १५ तक मानी जाती है।

कार्तिक शु. १५ से फा. शु. १५ तक के चार महीनों में शीतकाल की दो ऋतुएँ मानी जाय। तीन प्रकार के तामस भक्तों के अधिकार की सेवा का विभाजन इस प्रकार दिखाई देता है।

प्रत्येक प्रकार के भक्तों को सेवा का विशिष्ठ अधिकार ४० दिन का माना जाता है। इस प्रकार नवधा भक्ति के नौ प्रकार के भक्त तथा सात्विक, राजस, तामस इन नौ प्रकार के भक्तों की ४०×९=३६० दिन की सेवा का अखंडित क्रम माना जाता है। सम्प्रदाय के ऋतु अनुसार सेवा प्रणाली की यह एक विशिष्टता है कि प्रत्येक ऋतु के आरंभ के पूर्व कुछ दिन ऋतु आगमन माना जाता है जैसेः–

शीतकाल (हेमंत ऋतु) का आरंभ का. शु. १५ से कात्यायनी व्रत से माना जाता है किन्तु का. शु. ११ से उसके आगमन के दिनों का आरंभ हो जाता है। उसी रोज से श्रीजी को रुई का गद्दल, फरगुल इत्यादि धराये जाते हैं। अँगीठी एवं परदे भी लगाये जाते हैं।

शीतकाल में गाये जाने वाले प्रधान रागों में से मुख्यतः ललित, मालकौस, खट, जेतश्री, धनाश्री इ. रागों का प्रबोधिनी की रात्रि के जागरण पश्चात् राजभोग पर्यन्त की सेवा में ही आरंभ किया जाता है। यही नहीं चातुर्मास में गौण हो जाने वाले भैरव, बिलावल, आसावरी, टोडी, नायकी, अड़ाना आदि राग हेमंत और शिशिर ऋतु में गाये जाते हैं।

का. शु. १५ से पुस (गुर्जर मागसर) बदी ९ तक के ४० दिन तथा मागसर (व्रज पोष) बदी १० से माघ शुक्ल ४ तक के ४० दिन तामस-सात्विक और तामस-राजस भक्तों द्वारा उपर्युक्त रागों में गान होने की भावना की जाती है।

तत्पश्चात् माघ शु. ५ से ४० दिन की सेवा में तामस-तामस भक्त की भावना मानी जाती है।

हमारे संगीत की एक विशिष्टता यह है कि जिस प्रकार सामग्री और श्रृंगार में ऋतु-ऋतु अनुसार परिवर्तन होता रहता है, तदनुसार कीर्तन गान के राग भी ऋतुओं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं। शीतकाल में गाये जाने वाले राग अधिकतर उष्ण प्रकृति के होते हैं जो हेमंत-शिशिर ऋतु में ही गाये जाते हैं। ये राग उष्णकाल को ग्रीष्म ऋतु में गौण हो जाते हैं। किन्तु वसन्त ऋतु होरी-खेल के दिनों यानी फा. कृ. ७ से डोल (धुरेटी) के २५ दिन तक के समय कोई बंधन रहता नहीं है अर्थात् इन दिनों में सभी रागों का अंगीकार किया जाता है।

वसंत ऋतु का आरंभ माघ शु. १५ के लगभग होता है परन्तु वसंत आगमन का आरंभ माघ शु. १ से होता है। शु. १ से ४ दिन वसंत आगमन के भाव के पद गाये जाते हैं। और उसी रोज तक शीतकाल के रागों की अवधि मानी जाती है। पश्चात् होरी डोल के दूसरे ही दिन से चैत्र शु. १५ तक वसंत ऋतु होते हुए भी ग्रीष्म ऋतु आगमन अर्थात् वसंत के साथ ग्रीष्म ऋतु का संगम समय माना जाता है। इस समय में प्रायः शीतोष्ण प्रकृति के नूर-सारंग, मधमाध सारंग तथा बिलावल के कुछ प्रकार एवं नट, गौरी, केदार आदि राग गाने की प्रथा दिखाई देती है।

वैशाख शु. १ से दो दिन ग्रीष्मागम के भाव के पद तथा वै. शु. ३ (अक्षय तृतीया) से ग्रीष्म ऋतु के भावानुसार सेवाक्रम बन जाता है। इन दिनों में उष्णकाल की विविध लीलाओं के भावात्मक पद गाये जाते हैं। जेठ शु. १५ के बाद वर्षाऋतु का आरंभ माना जाता है परन्तु आषाढ़ शु. २ (रथयात्रा) तक ग्रीष्म और वर्षा ऋतु की संधि के समय में वर्षा आगमन के भाव के पद ऋतु (ग्रीष्म-वर्षा) संधि के रागों में गाये जाते हैं। रथयात्रा (अ. शु. २) से वर्षा के मौसमी राग-मल्हार का आरंभ हो जाता है और श्रावण शु. १० तक जन्माष्टमी की बधाई के एवं अन्य उत्सव त्यौहारादि विशेष क्रम के अतिरिक्त नित्य की प्रत्येक सेवा प्रणाली में मल्हार के सभी प्रकार गाये जाते हैं।

तत्पश्चात् जन्माष्टमी की बड़ी बधाई के साथ शरद ऋतु का आरंभ आगमन हो जाता है। आश्विन मास में शरद ऋतु के प्रधान राग गाये जाते हैं। प्रत्येक ऋतु में गाये जाने वाले रागों की नामावली हम पहले दे चुके हैं। षड् ऋतु के साथ रागों की तथा भक्तों की लीला संबंधित भावना के अतिरिक्त संगीत के सात स्वरों की भावना की ओर देखा जाय तो छः स्वरों में धर्म की भावना और सातवें स्वर में धर्मी की भावना मानी गई है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai